प्रवचन -क्रम

113..संन्यास की मंगल -वेला
....2
114..जीने की कला
....27
115...विराट की अभीप्सा
....50
116...राजनीति और धर्म
....78
117...बुद्धत्व का आलोक
....105
118..समग्र संस्कृति का सृजन
....128
119...ब्राह्मणत्व के शिखर --बुद्ध
....154
120...अप्प दीपो भव !
....179
121..जागो और जीओ
....202
122...एस धम्मो सनंतनो
....222

एस धम्मो सनंतनो, भाग 12
एक सौ तेरह प्रवचन

संन्यास की मंगल-वेला

सब्बसो नाम-रूपस्मिं यस्स नत्थि ममायितं।
असता च न सोचति स वे भिक्खूति वुच्चति।। 303।।

सिंच भिक्खु! इमं नावं सित्ता ते लहुमेस्सति।
छेत्त्वा रागंच दोसंच ततो निब्बाणमेहिसि।। 304।।

पंच छिन्दे पंच जहे पंच चुत्तरि भावये।
पंच संगातिगो भिक्खु ओघतिण्णो"ति वुच्चति।। 305।।

नत्थि झानं अपांंस्स पांं नत्थि अझायतो।
यम्हि झानंच पंजा च स वे निब्बाणसन्तिके।। 306।।

प्रथम दृश्यः

भगवान श्रावस्ती में विहरते थे। श्रावस्ती में पंचग्र-दायक नामक एक ब्राह्मण था। वह खेत बोने के पश्चात फसल तैयार होने तक पांच बार भिक्षुसंघ को दान देता था। एक दिन भगवान उसके निश्चय को देखकर भिक्षाटन करने के लिए जाते समय उसके द्वार पर जाकर खड़े हो गए। उस समय ब्राह्मण घर में बैठकर द्वार की ओर पीठ करके भोजन कर रहा था। ब्राह्मणी ने भगवान को देखा। वह चिंतित हुई कि यदि मेरे पति ने श्रमण गौतम को देखा, तो फिर यह निश्चय ही भोजन उन्हें दे देगा और तब मुझे फिर से पकाने की झंझट करनी पड़ेगी। ऐसा सोच वह भगवान की ओर पीठ कर उन्हें अपने पति से छिपाती हुई खड़ी हो गयी, जिससे कि ब्राह्मण उन्हें न देख सके।
उस समय तक ब्राह्मण को भगवान की उपस्थिति की अंतःप्रज्ञा होने लगी और
वह अपूर्व सुगंध जो भगवान को सदा घेरे रहती थी, उसके भी नासापुटों तक पहुंच गयी और उसका मकान भी एक अलौकिक दीप्ति से भरने लगा। और इधर ब्राह्मणी भी भगवान को दूसरी जगह जाते न देखकर हंस पड़ी।
ब्राह्मण ने चौंककर पीछे देखा। उसे तो अपनी आंखों पर क्षणभर को भरोसा नहीं आया और उसके मुंह से निकल गयाः यह क्या! भगवान! फिर उसने भगवान के चरण छू वंदना की और अवशेष भोजन देकर यह प्रश्न पूछाः हे गौतम! आप अपने शिष्यों को भिक्षु कहते हैं। क्यों भिक्षु कहते हैं? भिक्षु का अर्थ क्या है? और कोई भिक्षु कैसे होता है?
यह प्रश्न उसके मन में उठा, क्योंकि भगवान की इस अनायास उपस्थिति के मधुर क्षण में उसके भीतर संन्यास की आकांक्षा का उदय हुआ। शायद भगवान उसके द्वार पर उस दिन इसीलिए गए भी थे। और शायद ब्राह्मणी भी अचेतन में उठे किसी भय के कारण भगवान को छिपाकर खड़ी हो गयी थी।
तब भगवान ने इस गाथा को कहाः

सब्बसो नाम-रूपस्मिं यस्स नत्थि ममायितं।
असता च न सोचति स वे भिक्खूति वुच्चति।।

"जिसकी नाम-रूप--पंच-स्कंध--में जरा भी ममता नहीं है और जो उनके नहीं होने पर शोक नहीं करता, वही भिक्षु है; उसे ही मैं भिक्षु कहता हूं।"
इसके पहले कि इस सूत्र को समझो, इस छोटी सी घटना में गहरे जाना जरूरी है। घटना सीधी-साफ है। लेकिन उतरने की कला आती हो, तो सीधी-साफ घटनाओं में भी जीवन के बड़े रहस्य छिपे मिल जाते हैं।
हीरों की खदानें भी तो कंकड़-पत्थर और मिट्टी में ही होती हैं--खोदना आना चाहिए। जौहरी की नजर चाहिए। तो कंकड़-पत्थर को हटाकर हीरे खोज लिए जाते हैं।

इन छोटी-छोटी घटनाओं में बड़े हीरे दबे पड़े हैं। मैं यही कोशिश कर रहा हूं कि तुम्हें थोड़ी जौहरी की नजर मिले। तुम इनकी पर्तें उघाड़ने लगो। जितने गहरे उतरोगे, उतनी बड़ी संपदा तुम्हें मिलने लगेगी।
श्रावस्ती में पंचग्र-दायक नामक ब्राह्मण था। वह खेत के बोने के पश्चात फसल तैयार होने तक पांच बार भिक्षुसंघ को दान देता था। एक दिन भगवान उसके निश्चय को देखकर भिक्षाटन करने के लिए जाते समय उसके द्वार पर जाकर खड़े हो गए।
अभी ब्राह्मण को भी अपने निश्चय का पता नहीं है। उसके अंतस्तल में क्या उठा है, अभी ब्राह्मण को भी अज्ञात है। अभी ब्राह्मण को ख्याल नहीं है कि उसके भिक्षु होने का क्षण आ गया।
मनुष्य का बहुत छोटा सा मन मनुष्य को ज्ञात है। मनस्विद कहते हैंः जैसे बर्फ का टुकड़ा पानी में तैराओ, तो थोड़ा ऊपर रहता है, अधिक नीचे डूबा होता है। एक खंड बाहर रहता है, नौ खंड भीतर डूबे रहते हैं। ऐसा मनुष्य का मन है; एक खंड केवल चेतन हुआ है; नौ खंड अंधेरे में डूबे हैं।
तुम्हारे अंधेरे मन में क्या उठता है, तुम्हें भी पता चलने में कभी- कभी वर्षों लग जाते हैं। जो आज तुम्हारे मन में उठेगा, हो सकता है, पहचानते-पहचानते वर्ष बीत जाएं। और अगर कभी एक बार जो तुम्हारे अचेतन में उठा है, तुम्हारे चेतन तक भी आ जाए, तो भी पक्का नहीं है कि तुम समझो। क्योंकि तुम्हारी नासमझी के जाल बड़े पुराने हैं। तुम कुछ का कुछ समझो! तुम कुछ की कुछ व्याख्या कर लो। तुम कुछ का कुछ अर्थ निकाल लो। क्योंकि अर्थ आएगा तुम्हारी स्मृतियों से, तुम्हारे अतीत से।
तुम्हारी स्मृतियां और तुम्हारा अतीत उसी छोटे से खंड में सीमित हैं,
जो चेतन हो गया है। और यह जो नया भाव उठ रहा है, यह तुम्हारी गहराई से आ रहा है। इस गहराई का अर्थ तुम्हारी स्मृतियों से नहीं खोजा जा सकता। तुम्हारी स्मृतियों को इस गहराई का कुछ पता ही नहीं है। इस गहराई के अर्थ को खोजने के लिए तो तुम्हें जहां से यह भाव उठा है, उसी गहराई में डुबकी लगानी पड़ेगी; तो ही अर्थ मिलेगा; नहीं तो अर्थ नहीं मिलेगा।
कल किसी का प्रश्न था; इस संदर्भ में सार्थक है। नेत्रकुमारी ने पूछा
है कि अब संन्यास का भाव उठ रहा है। प्रगाढ़ता से उठ रहा है। लेकिन एक सवाल है--कि यह मेरा भावावेश तो नहीं है? आपने सच में मुझे पुकारा है? या यह केवल मेरी भावाविष्ट दशा है कि आपको सुन-सुनकर इस विचार में मोहित हो गयी हूं?
भाव उठ रहा है। पुराना मन कह रहा हैः यह सिर्फ भावावेश है। यह असली भाव नहीं है; भाव का आवेश मात्र है! यह असली भाव नहीं है। यह तो सुनने के कारण; यहां के वातावरण में, इतने गैरिक वस्त्रधारी संन्यासियों को देखकर एक आकांक्षा का उदय हुआ है। ठहरो। घर चलो। शांति से विचार करो। कुछ दिन धैर्य रखो। जल्दी क्या है?
घर जाकर, शांति से विचार करके करोगे क्या? यह जो भाव की तरंग उठी थी, इसको विनष्ट कर दोगे। इसको भावावेश कहने में ही तुमने विनष्ट करना शुरू कर दिया। और मजा ऐसा है कि जब यह तरंग चली जाएगी, और तुम्हारे भीतर दूसरी बात उठेगी कि नहीं; संन्यास नहीं लेना है; तब तुम क्षणभर को न सोचोगे कि यह कहीं भावावेश तो नहीं!
यह आदमी का अदभुत मन है! तब तुम न सोचोगे कि कहीं ऐसा तो नहीं है कि वापस घर आ गए; गृहस्थों के बीच आ गए; अब गैरिक वस्त्रधारी नहीं दिखायी पड़ते; अब ध्यान करते हुए मदमस्त लोग नहीं दिखायी पड़ते; अब वह वाणी सुनायी नहीं पड़ती; अब वह हवा नहीं है; और यहां बाजार, और कोलाहल, और घर, और घर-गृहस्थी की झंझटें; और सब अपने ही जैसे लोग--कहीं इस प्रभाव में संन्यास न लूं, यह भावावेश तो नहीं उठ रहा है? फिर नहीं सोचोगे। फिर एकदम राजी हो जाओगे कि यह असली चीज हाथ आ गयी!
यह असली चीज नहीं हाथ आ गयी। यह तुम्हारी स्मृतियों से आया। तुम्हारे अतीत से आया; तुम्हारे अनुभव से आया। और अभी जो आ रहा है, वह तुम्हारे अनुभव से नहीं आ रहा है; तुम्हारे अतीत से नहीं आ रहा है। वह तुम्हारी गहराई से आ रहा है। और तुम्हारी गहराइयों का तुम्हें कुछ पता नहीं है।

पूछा है कि यह कहीं भावावेश तो नहीं है? आपने सच में मुझे पुकारा है?
अब समझो। अगर मैं कहूं कि हां, सच में मैंने तुम्हें पुकारा है; तो क्या तुम सोचते हो, और विचार नहीं उठेंगे कि पता नहीं, ऐसा मुझे समझाने के लिए ही तो नहीं कह दिया कि मैंने तुझे पुकारा है! इसकी सचाई का प्रमाण क्या कि वस्तुतः पुकारा है? कहीं सांत्वना के लिए तो नहीं कह दिया? कहीं ऐसा तो नहीं है कि मुझे संन्यास में दीक्षित करना था, इसलिए कह दिया हो?
विचार की तरंगें तो उठती चली जाएंगी। उनका कोई अंत नहीं है। विचार से इसलिए कभी कोई हल नहीं होता।
इस कहानी का जो पहला हिस्सा है, वह यह कि एक दिन भगवान उसके निश्चय को देखकर... ।
अभी ब्राह्मण को निश्चय का कुछ पता नहीं है। ब्राह्मण को पता होता, तो ब्राह्मण स्वयं भगवान के पास आ गया होता। कि हे प्रभु! मेरे हृदय में भिक्षु होने का भाव उठा है। घड़ी आ गयी। फल पक गया। अब मैं गिरना चाहता हूं। और आप में खो जाना चाहता हूं। जैसे फल भूमि में खो जाता है, ऐसे मुझे आत्मलीन कर लें। मुझे स्वीकार कर लें; मुझे अंगीकार कर लें।
ब्राह्मण नहीं आया है। बुद्ध उसके द्वार पर गए हैं। और इसलिए मैं फिर
से तुम्हें दोहरा दूंः इसके पहले कि शिष्य चुने, गुरु चुनता है। इसके पहले कि शिष्य को पता चले, गुरु को पता चलता है। शिष्य चुनेगा भी कैसे अंधेरे में भटकता हुआ! उसे कुछ भी तो पता नहीं है। वह तो अगर कुछ चुनेगा भी, तो गलत चुनेगा।
कल रात हालैंड से एक युवक संन्यास लेने आए। मैं देखता हूं कि निश्चय है। लेकिन उनको अभी निश्चय का पता नहीं है। वे मुझसे कहने लगे, मैं सोचूंगा। मैं विचार करूंगा। मैंने उनसे कहाः तुम सोचोगे और विचार करोगे, तो गलत होगा। तुम्हारा सोचा हुआ कब सही हुआ? तुम्हारा विचारा हुआ कब सही हुआ? अब यहां आकर भी सोचोगे, विचारोगे! तो यहां आना हुआ ही नहीं। तुमने यात्रा हालैंड से यहां तक की व्यर्थ की। अब यहां सोचो-विचारो मत--देखो। देखना अलग बात है। देखना गहरे में उतरना है। सोचना-विचारना अपनी अतीत स्मृतियों में जाना है। अतीत में गए कि चूके। क्योंकि तुम्हारा जो अचेतन है, वह अभी मौजूद है। यहीं डुबकी मारनी है।
सोचने-विचारने वाला आदमी ऐसा है, जैसा कोई पानी की सतह पर तैरता है।
और देखने वाला आदमी ऐसा है, जैसे कोई पानी की गहराई में डुबकी मारता है-- गोताखोर। गोताखोर बनो।
बुद्ध भिक्षाटन को जाते थे। उस ब्राह्मण के घर जाने का अभी कोई ख्याल
भी न था। लेकिन अचानक उन्हें दिखायी पड़ा कि उस ब्राह्मण के अचेतन में निश्चय हो गया है। संन्यास की किरण पहुंच गयी है।
एक दिन भगवान उसके निश्चय को देखकर... ।
ध्यान रखनाः बुद्ध जैसे व्यक्ति सोचते नहीं, देखते हैं। सोचना तो अंधों का काम है। आंख वाले देखते हैं। बुद्ध को दिखायी पड़ा। जैसे तुम्हें दिखायी पड़ता है कि वृक्ष के पत्ते हरे हैं। कि एक पीला पत्ता हो गया है; कि अब यह गिरने के करीब है। जैसे तुम्हें दिखायी पड़ता है कि दिन है; कि रात है; कि सूरज निकला है; कि बादल घिर गए; कि वर्षा हो रही है--ऐसे बुद्ध को चैतन्य-लोक की स्थितियां दिखायी पड़ती हैं।
यह निश्चय पक गया। यह आदमी संन्यस्त होने की घड़ी के करीब आ गया। इसको
इस पर ही छोड़ दो, तो पक्का नहीं है कि इसको अपने निश्चय का पता कब चले। जन्म-जन्म भी बीत जाएं। और जब चले भी, तब भी पता नहीं कि यह क्या व्याख्या करे। किस तरह अपने को समझा ले, बुझा ले। किस तरह वापस सो जाए, करवट ले ले।
फिर सपनों में खो जाए।
इस परम घड़ी को बुद्ध इस ब्राह्मण पर नहीं छोड़ सकते हैं। इस ब्राह्मण
का कुछ भरोसा नहीं है। इसलिए स्वयं उसके द्वार पर जाकर रुक गए। गए तो थे भिक्षाटन को; उसके द्वार पर जाने की बात न थी।
द्वार पर जाकर खड़े हो गए। उस समय ब्राह्मण घर में बैठकर द्वार की ओर पीठ करके भोजन कर रहा था।

ब्राह्मण को तो कुछ पता ही नहीं था, क्या होने वाला है। किस घड़ी में मैं आ गया हूं, उसे कुछ पता नहीं है। वह तो सामान्य--जैसे रोज अपने भोजन के समय भोजन करता होगा--भोजन कर रहा था। द्वार की ओर पीठ किए था। उसे यह भी पता नहीं कि बुद्ध आ रहे हैं।
तुम्हें भी पता नहीं कि कब बुद्ध तुम्हारे द्वार पर आते हैं। तुम्हें
भी पता नहीं कि कब तुम्हारे द्वार पर दस्तक देते हैं।
जीसस का प्रसिद्ध वचन हैः मांगो और मिलेगा। खोजो और पाओगे। खटखटाओ और द्वार खोल दिए जाएंगे।
लेकिन साधारण आदमी की दशा इससे ठीक उलटी है। वह कहता हैः दो और मैं नहीं लूंगा। आओ, मैं पीठ कर लूंगा। द्वार खटखटाओ, मैं खोलने वाला नहीं। ब्राह्मण को इतना भी पता नहीं कि बुद्ध का आगमन हो रहा है। नहीं तो पीठ किए बैठा होता!
इसलिए मैं कहता हूं, इन छोटी-छोटी बातों में ख्याल करना। तुममें से भी अधिक मेरी तरफ पीठ किए बैठे हैं! इसका मतलब यह नहीं कि तुम पीठ किए बैठे हो। हो सकता हैः तुम बिल्कुल सामने बैठे हो। मुझे देख रहे हो। लेकिन फिर भी मैं तुमसे कहता हूं, जो मुझे देख रहे हैं, उनमें से भी बहुत से पीठ किए बैठे हैं। जो मुझे सुन रहे हैं, उनमें से भी बहुत से पीठ किए बैठे हैं। पीठ किए बैठे हैं, अर्थात रक्षा कर रहे हैं अपनी। अपने को गंवाने की तैयारी नहीं दिखा रहे हैं। अपने को विसर्जित करने की हिम्मत नहीं जुटा रहे हैं। ब्राह्मण द्वार की ओर पीठ किए भोजन कर रहा था। परम घड़ी आ गयी; संन्यास
का क्षण करीब आ गया; बुद्ध द्वार पर खड़े हैं। और वह एक छोटी सी प्रक्रिया में लगा था--भोजन!
यह भी समझ लेना। भोजन का अर्थ हैः यह साधारण जो रोजमर्रा का जीवन है-- खाना-पीना, उठना-सोना। खाते-पीते, उठते-सोते आदमी जन्म से लेकर मृत्यु तक की यात्रा पूरी कर लेता है। खाने-पीने में ही तो सब चला जाता है!
भोजन कर रहा था। उसे पता नहीं कि भगवत्ता द्वार पर खड़ी है! वह भोजन कर रहा है। वह एक छोटे से काम में लगा है। एक दैनंदिन कार्य में लगा है। कालातीत द्वार पर खड़ा है और उसे इसकी कुछ खबर नहीं है!
आदमी ऐसा ही सोया हुआ है। तुम्हारी राह पर भी बहुत बार बुद्ध का आगमन हुआ है। लेकिन तुम पीठ किए रहे। ऐसा नहीं है कि तुम बुद्धों से नहीं मिले हो। मिले हो, मगर पीठ थी, इसलिए मिलना नहीं हो पाया।
ब्राह्मणी ने भगवान को देखा। लेकिन ब्राह्मणी के मन में तो कोई निश्चय उदय नहीं हुआ है। और उसे देखकर पता है, क्या चिंता पैदा हुई! आदमी कैसा क्षुद्र है! उसे एक चिंता पैदा हुई। उसे यह नहीं दिखायी पड़ा कि भगवान द्वार पर खड़े हैं। उठूं, पांव पखारूं, बिठाऊं! उसे फिक्र एक बात की हुई कि यदि मेरे पति ने इस श्रमण गौतम को देखा, तो फिर यह निश्चय ही भोजन उसे दे देगा। और मुझे फिर पकाने की झंझट करनी पड़ेगी।
आदमी कैसी क्षुद्र बातों में विराट को खोता है! ऐसी दशा तुम्हारी भी है। इस ब्राह्मणी पर नाराज मत होना। इस ब्राह्मणी को क्षमा करना। क्योंकि यह ब्राह्मणी तुम्हारी प्रतीक है।
क्षुद्र बातों में आदमी विराट को खो देता है। चिंता भी क्या उठी! तुम्हें हंसी आएगी। क्योंकि यह तुम्हारी स्थिति नहीं है। तुम सोचते होः अपनी स्थिति नहीं है यह। तुम्हें हंसी आएगी कि ब्राह्मणी भी कैसी मूढ़ है! लेकिन यही आम आदमी की दशा है। तुम भी ऐसी ही क्षुद्र-क्षुद्र बातों से चूकते हो। बातें इतनी क्षुद्र होती हैं, लेकिन उनके लिए तुम कारण खूब जुटा लेते हो!
ब्राह्मणी को एक फिक्र पैदा हुई कि और एक झंझट द्वार पर आकर खड़ी हो गयी! अब यह श्रमण गौतम भिक्षापात्र लिए खड़ा है।
यद्यपि बुद्ध भिक्षा मांगने आए नहीं हैं। बुद्ध भिक्षा देने आए हैं!
इस ब्राह्मण के मन में एक संकल्प जन्म रहा है। बुद्ध उसे जन्म देने आए हैं। बुद्ध ऐसे आए हैं, जैसे कि दाई। इसके भीतर कुछ पक रहा है। इसे सहारे की जरूरत है। जैसे गर्भ पूरा हो गया है और बच्चा पैदा होने को है--और दाई को हम बुलाते हैं।

सुकरात ने कहा है कि मैं दाई हूं। सभी बुद्धपुरुष दाई हैं। तुम्हारा
ही जन्म होना है। तुम्हें कम से कम पीड़ा हो, ऐसे तुम्हारा जन्म हो जाए। कम से कम खून बहे, ऐसा तुम्हारा जन्म हो जाए। तुम तुम्हारे ही जन्म की प्रक्रिया में बाधा न बन जाओ, इस तरह तुम्हारा जन्म हो जाए। सरलता से, सुगमता से तुम्हारा पुनरुज्जीवन हो जाए।
तो बुद्ध तो इसलिए आए हैं। लेकिन यह स्त्री सोच रही है कि एक झंझट हुई। अब कहीं मुझे फिर भोजन न बनाना पड़े! इतना फासला है आदमी और बुद्धों में!
ऐसा सोच, वह भगवान की ओर पीठ कर अपने पति को छिपाती हुई खड़ी हो गयी, जिससे कि ब्राह्मण उन्हें देख न सके।
ऐसा यहां रोज होता है। अगर पत्नी यहां आने में उत्सुक हो जाती है, तो पति अपनी पत्नी को छिपाकर सुरक्षा करने लगता है। अगर पति यहां आने में उत्सुक हो जाता है, तो पत्नी अपने पति को छिपाकर खड़ी हो जाती है; रोकने की कोशिश में लग जाती है। सौभाग्यशाली हैं वे, जो पति-पत्नी दोनों यहां आ गए हैं। नहीं तो एक बाधा डालेगा। क्योंकि उसे डर पैदा होता है कि एक झंझट हुई! अब कहीं कुछ से कुछ न हो जाए। यह मेरी पत्नी कहीं संन्यस्त न हो जाए! यह मेरा पति कहीं संन्यस्त न हो जाए! लोग अपने बेटों को नहीं लाते।
मैं ग्वालियर में कई वर्षों पहले सिंधिया परिवार में मेहमान था। विजय राजे सिंधिया ने ही मुझे निमंत्रित किया था। लेकिन जब मैं पहुंच गया और मेरे संबंध में उसने बातें सुनीं; तो वह डर गयी।
अब मुझे बुला लिया था, तो सभा का आयोजन भी किया। डरते-डरते मुझे सुना भी। उसके बेटे ने भी सुना। दूसरे दिन दोपहर वह मुझे मिलने आयी। उसने कहा कि क्षमा करें! आपसे छुपाना नहीं चाहिए। मेरा बेटा भी आना चाहता था, लेकिन मैं उसे लायी नहीं। मैं तो प्रौढ़ हूं, लेकिन वह भावाविष्ट हो सकता है। वह आपकी बातों में आ सकता है। और आपकी बातें खतरनाक हैं। इसलिए मैं उसे लायी नहीं। मैं उसे आपसे नहीं मिलने दूंगी। और मैं आपसे कहे देती हूं, क्योंकि मैं आपसे छिपाना भी नहीं चाहती।
अब यह मां बेटे को आड़ में लेकर खड़ी हो रही है। इसे पता नहीं, किस बात से बचा रही है! और अपने को प्रौढ़ समझती है। प्रौढ़ का मतलब यह कि मैं तो बहुत जड़ हूं; मुझ पर कुछ असर होने वाला नहीं है। आप कुछ भी कहें; मैं सुन लूंगी। मुझे कुछ खतरा नहीं है। लेकिन मेरा बेटा अभी जवान है; अभी ताजा है। और आपकी बातों में विद्रोह है। और कहीं उसको चिनगारी न लग जाए।
फिर कहने लगींः मुझे क्षमा करें, क्योंकि मेरे पति चल बसे और अब बेटा
ही मेरा सब सहारा है। जैसे कि मेरे संपर्क में आकर बेटा विकृत हो जाएगा! यह बड़ी हैरानी की बात है। पत्नी इतनी परेशान नहीं होती, अगर पति शराबघर चला जाए। लेकिन सत्संग में चला जाए, तो ज्यादा परेशान होती है। क्योंकि शराबघर कितनी ही अड़चनें ला दे; लेकिन कम से कम पत्नी की सुरक्षा तो कायम रहेगी! पति एक बार वेश्यालय भी चला जाए, तो पत्नी उतनी परेशान नहीं होती, जितनी साधु-संगत में बैठ जाए तो। क्योंकि चला गया, वापस लौट आएगा। लेकिन साधु-संगत में खतरा है। कहीं चला ही न जाए! कहीं वापस लौटने का सेतु ही न टूट जाए!
जो हमारे मोह के जाल हैं, और उन मोह में जो लोग ग्रस्त हैं, उन सबको भय पैदा हो जाता है--जब तुम किसी बुद्धपुरुष के पास जाओगे। क्योंकि बुद्धपुरुषों की एक ही तो शिक्षा है कि मोह से मुक्त हो जाओ। तो जिनका मोह में निहित स्वार्थ है, वे सब तरह की अड़चन डालेंगे। और आदमी तरकीबें निकाल लेता है।
एक मित्र मेरे पास आए। उन्होंने कहा कि मैं तो संन्यास लेना चाहता हूं, लेकिन मेरी पत्नी राजी नहीं है। और जब मैं घर से चलने लगा, तो उसने तीन दफा मुझसे कसम खिलवा ली कि संन्यास नहीं लेना। मैंने कसम भी खा ली है। तो संन्यास मैं लेना चाहता हूं, लेकिन लूंगा नहीं; क्योंकि आप ही तो कहते हैंः किसी को दुख नहीं देना चाहिए। अब पत्नी को क्या दुख देना!
मैंने उनसे कुछ और बातें कीं, ताकि वे यह संन्यास की बात थोड़ी देर को भूल जाएं। मैंने उनसे पूछाः पत्नी तुम्हारी और किन-किन चीजों के खिलाफ

है? वे बोलेः अरे साहब! हर चीज के खिलाफ है! सिगरेट पीता हूं, तो खिलाफ। सिनेमा जाऊं, तो खिलाफ। ज्यादा किताबें मैं पढ़ने में लग जाऊं, तो खिलाफ। तो मैंने पूछाः सिगरेट छोड़ी? उन्होंने कहा कि नहीं छूटती। तो मैंने कहाः पत्नी को दुख दे रहे हो? और सिगरेट पीए चले जा रहे हो! और संन्यास छोड़ने को राजी हो, क्योंकि पत्नी को दुख नहीं देना चाहते हो! और कितने दुख पत्नी को नहीं दिए हैं?
और सब दुख देने की तैयारी है। सिर्फ यह संन्यास के संबंध में दुख नहीं देना चाहते! दिखायी पड़ता है न! आदमी तरकीबें निकालता है। आदमी बड़ा कुशल है। और जितनी कुशलता आदमी बुद्धों से बचने में लगाता है, उतनी कुशलता किसी और चीज में नहीं लगाता है।
पत्नी घेरकर खड़ी हो गयी है। पीछे जाकर खड़ी हो गयी पति के, ताकि भूल-चूक
से भी पति कहीं पीछे न देख ले; द्वार पर खड़ा हुआ गौतम दिखायी न पड़ जाए।
उस समय तक लेकिन भगवान की उपस्थिति की अंतःप्रज्ञा होने लगी ब्राह्मण को। वह जो भीतर संकल्प उठा था, उसी को सहारा देने बुद्ध वहां आकर खड़े हुए थे।
ख्याल रखनाः जिसके पास होते हो, वैसा भाव शीघ्रता से उठ पाता है। जहां होते हो, वहां दबे हुए भाव उठ आते हैं। तुम्हारे भीतर कामवासना पड़ी है और फिर एक वेश्या के घर पहुंच जाओ। या वेश्या तुम्हारे घर आ जाए; तो तत्क्षण तुम पाओगेः कामवासना जग गयी। पड़ी तो थी। वेश्या ऐसी कोई चीज पैदा नहीं कर सकती, जो तुम्हारे भीतर पड़ी न हो। वेश्या क्या करेगी? बुद्ध के पास पहुंच जाएगी, तो क्या होगा!
लेकिन अगर तुम्हारे पास आ गयी, तो कामवासना, जो दबी पड़ी थी, अवसर देखकर, सुअवसर देखकर, उमगने लगेगी। तलहटी से उठेगी, सतह पर आ जाएगी।
यही हुआ। बुद्ध वहां आकर खड़े हो गए। अभी बोले भी नहीं। उनकी मौजूदगी, उनकी उपस्थिति, उनका अंतःनाद, इस व्यक्ति की चेतना को हिलाने लगा। उनकी वीणा इस व्यक्ति के भीतर भी गूंजने लगी।
उसकी अंतःप्रज्ञा जागने लगी। उसे अचानक बुद्ध की याद आने लगी। अचानक भोजन करना रुक गया। भोजन करने में रस न रहा। एकदम बुद्ध के भाव में डूबने लगा। और जैसे-जैसे भाव में डूबा, वैसे-वैसे उसे वह अपूर्व सुगंध भी नासापुटों में भरने लगी, जो बुद्ध को सदा घेरे रहती थी।
और चौंका; और गहरा डूब गया उस सुगंध में। और जैसे ही सुगंध में और गहरा डूबा, उसने देखा कि घर उस कोमल दीप्ति से भर गया है, जैसे बुद्ध की मौजूदगी में भर जाता है
वह पीछे लौटकर देखने ही वाला था कि मामला क्या है! और तभी पत्नी भी हंस पड़ी। पत्नी इसलिए हंस पड़ी कि यह भी हद्द हो गयी! मैं छिपाकर खड़ी हूं इस आशा में कि यह गौतम कहीं और चला जाए भिक्षा मांगने। मगर यह भी हद्द है कि यह भी डटकर खड़ा हुआ है। न कुछ बोलता, न कुछ चालता। यह भी यहीं खड़ा हुआ है! यह भी जाने वाला नहीं है, दिखता है!
उसे इस स्थिति में जोर से हंसी आ गयी। कि एक तो मैं जिद्द कर रही हूं
कि फिर भोजन न बनाना पड़े; और यह भी जिद्द किए हुए खड़ा है कि आज बनवाकर रहेगा! इसलिए ब्राह्मणी हंस उठी।
बुद्ध की अंतःप्रज्ञा, उनकी सुगंध का नासापुटों में भर जाना, उनकी दीप्ति का घर में दिखायी पड़ना, फिर पत्नी का हंसना--तो स्वभावतः उसने पीछे लौटकर देखा। चौंककर उसने पीछे देखा। उसे तो अपनी आंखों पर क्षणभर को भरोसा ही नहीं आया।
किसको आएगा? जिसके पास भी आंख है, उसे भरोसा नहीं आएगा। हां, अंधों को
तो दिखायी ही नहीं पड़ेंगे। ब्राह्मणी को दिखायी नहीं पड़े थे। ब्राह्मणी बिल्कुल अंधी थी। उसके भीतर कोई दबा हुआ स्वर भी नहीं था अज्ञात का। सत्य की खोज की कोई आकांक्षा भी नहीं थी। वह गहन तंद्रा में थी। मूर्च्छित थी। ब्राह्मण इतना मूर्च्छित नहीं था। आंख खुलने-खुलने के करीब थी। ब्राह्मण का ब्रह्म-मुहूर्त आ गया था। सुबह होने के करीब थी। झपकी टूटती थी। या आधी टूट ही चुकी थी। रात जा चुकी थी; नींद भी हो चुकी थी; भोर के पक्षियों के स्वर सुनायी पड़ने लगे थे। ऐसी मध्य की दशा थी ब्राह्मण की।

ब्राह्मणी तो अपनी आधी रात में थी--मध्य-रात्रि में--जब स्वप्न भी खो जाते हैं और सुषुप्ति महान होती है, प्रगाढ़ होती है। ब्राह्मणी की अमावस्या थी अभी। अंधेरी रात। लेकिन ब्राह्मण की सुबह करीब आ गयी थी। ध्यान रखना, बाहर की सुबह तो सबके लिए एक ही समय में होती है। भीतर की सुबह सबके लिए अलग-अलग समय में होती है। बाहर की रात तो सभी के लिए एक ही समय में होती है। लेकिन भीतर की रात सबकी अलग-अलग होती है।
यह हो सकता है कि तुम्हारे पड़ोस में जो बैठा है, उसकी सुबह करीब है; और तुम अभी आधी रात में हो। यह हो सकता है कि तुम्हारी सुबह आने में अभी जन्मों-जन्मों की देर हो। और इसीलिए तो हम एक-दूसरे को समझ नहीं पाते, क्योंकि हमारी समझ के तल अलग-अलग होते हैं। कोई पहाड़ से बोल रहा है; कोई घाटी में भटक रहा है। कोई आंखें खोलकर देख लिया है; किसी की आंखें सदा से बंद हैं। तो एक-दूसरे को समझना बड़ा मुश्किल हो जाता है। क्योंकि सब सीढ़ी के अलग-अलग पायदानों पर खड़े हैं।
यह तो चौंक उठा। इसे तो भरोसा नहीं आया। बुद्ध--और उसके द्वार पर आकर खड़े हैं! पहले कभी नहीं आए थे। जब भी उसे जाना था, वह दान देने जाता था। पांच बार वह दान देता था भिक्षुसंघ को। वह जाता था, दान कर आता था।
बुद्ध कभी नहीं आए थे; पहली बार आए हैं। कैसे भरोसा हो! भरोसा हो तो कैसे भरोसा हो?
अनेक बार सोचा होगा उसने; प्राणों में संजोयी होगी यह आशा कि कभी बुद्ध मेरे घर आएं। सोचा होगाः कभी आमंत्रित करूं। फिर डरा होगा कि मुझ गरीब ब्राह्मण का आमंत्रण स्वीकार होगा कि नहीं होगा! भय-संकोच में शायद आमंत्रण नहीं दिया होगा। या क्यों कष्ट दूं! क्यों वहां ले जाऊं! क्या प्रयोजन है! जब आना हो, मैं ही आ सकता हूं; उन्हें क्यों भटकाऊं! ऐसा सोचकर रुक गया होगा। प्रेम के कारण रुक गया होगा। संकोच के कारण रुक गया होगा। बुद्ध आज अचानक, बिना बुलाए, द्वार पर आकर खड़े हो गए हैं।
जब जरूरत होती है, तब सदगुरु सदा ही उपलब्ध हो जाता है। सदगुरु को बुलाने की जरूरत नहीं पड़ती। तुम्हारी पात्रता जब भर जाएगी; जब तुम उस जगह के करीब होओगे, जहां उसके हाथ की जरूरत है--वह निश्चित मौजूद हो जाएगा। होना ही चाहिए।
ब्राह्मण ने चौंककर देखा। उसे अपनी आंखों पर भरोसा नहीं आया। और उसके मुंह से निकल गया--यह क्या! भगवान!
चकित, आश्चर्यविमुग्ध, आंखें मीड़कर देखी होंगी। सोचा होगाः कोई सपना
तो नहीं देख रहा! सोचा होगाः सदा-सदा सोचता रहा हूं कि भगवान आएं, आएं, आएं! कहीं उसी सोचने के कारण यह मेरी ही कल्पना तो मेरे सामने खड़ी नहीं हो गयी है!
फिर उसने भगवान के चरण छू वंदना की। अवशेष भोजन देकर यह प्रश्न पूछाः
हे गौतम! आप अपने शिष्यों को भिक्षु कहते हैं--क्यों?
उस समय तक दो तरह के संन्यासी उपलब्ध थे भारत में। जैन संन्यासी, मुनि कहलाता है; हिंदू संन्यासी, स्वामी कहलाता है। बुद्ध ने पहली दफे संन्यासी को भिक्षु का नाम दिया। संन्यास को एक नयी भाव-भंगिमा दी और एक नया आयाम दिया।
अब उलटी दिखती हैं बातें। हिंदू संन्यासी कहलाता है--स्वामी, मालिक।
और बुद्ध ने कहा--भिक्षु, भिखारी! उलटा कर दिया। जैन मुनि मध्य में है--न मालिक, न भिखारी। मौन है--इसलिए मुनि। इसलिए जैनों से हिंदू उतने नाराज नहीं हैं, जितने बौद्धों से नाराज हुए। बुद्ध ने सारी चीजें उलटी कर दीं। जैनों को क्षमा कर दिया है। इसलिए जैन हिंदुस्तान में बस सके। लेकिन बौद्ध नहीं बस सके। बौद्धों को तो समाप्त कर दिया। बौद्धों को तो उखाड़ दिया। मारा भी, काटा भी; कढ़ाओं में जलाया भी। क्योंकि बुद्ध ने प्रक्रिया को बिल्कुल उलटा कर दिया! यह सिर्फ शब्द की ही बात नहीं है, यह बुद्ध की अंतर्दृष्टि है कि हिंदू-विचार से उन्होंने बिल्कुल एक दूसरी भावधारा को जन्म दिया।
स्वामी शब्द प्यारा है; कुछ बुरा नहीं है। लेकिन उसमें एक खतरा है। खतरा तो सभी शब्दों में होता है। स्वामी शब्द में एक खतरा है कि कहीं उससे

संन्यासी अहंकारी न हो जाए। स्वामी शब्द प्यारा है। उसका मतलब होता हैः अपना मालिक। और अपनी मालकियत तो चाहिए ही। अपना स्वामित्व तो चाहिए ही। जो अपना मालिक नहीं है, वही तो संसारी है। उसके हजार मालिक हैं। हजार इच्छाएं उसकी मालिक हैं। धन उसका मालिक है; पद उसका मालिक है। उसके बहुत मालिक हैं। वह गुलाम है।
संन्यासी वही है, जिसने और सब तरह के मालिक हटा दिए और स्वयं अपना मालिक हो गया है। अब उसकी इंद्रियां उस पर काबू नहीं रखतीं; कब्जा नहीं रखतीं। अब इंद्रियां उसे नहीं चलातीं; वह अपनी इंद्रियों को चलाता है। अब मन उसे नहीं चलाता; वह मन को अपने पीछे लेकर चलता है। मन उसकी छाया हो गया। उसने अपने आत्म-गौरव की घोषणा कर दी।
शब्द बड़ा प्यारा है; अर्थपूर्ण है; लेकिन खतरा है। खतरा यह है कि अहंकार का जन्म हो जाए। अकड़ आ जाए। और अहंकार पैदा हो जाए, तो परमात्मा से मिलने में बाधा पड़ गयी। फिर संसार लौट आया पीछे के दरवाजे से। ज्यादा सूक्ष्म होकर लौट आया। पहले धन की अकड़ थी; पद की अकड़ थी; अब संन्यास की अकड़ हो जाएगी।
बुद्ध ने इसलिए बदल दिया शब्द; ठीक दूसरे तल पर ले गए; कहा--भिक्षु। लेकिन याद रखनाः भिक्षु का अर्थ भिखारी नहीं है। भाषाकोश में तो है। लेकिन बुद्ध ने भिक्षु का अर्थ कियाः जो सब तरह से खाली है; भिक्षा का पात्र हो गया है जो। जिसके पास अपना कुछ भी नहीं है; जो अपने भीतर सिर्फ शून्य है। जिसने और सब तो छोड़ा ही छोड़ा, मैं का भाव भी छोड़ दिया, आत्मा भी छोड़ दी; अत्ता भी छोड़ दी। जो अनत्ता में जी रहा है; जो सिर्फ शून्य हो गया है। ऐसा व्यक्ति भिक्षु। भिखारी नहीं। क्योंकि भिखारी तो वह है, जो अभी आशा से भरा है कि मिल जाएगा; जो मांग रहा है कि मिल जाएगा; कि पा लूंगा। किसी न किसी तरह खोज लूंगा। मांग-मांगकर इकट्ठा कर लूंगा। लेकिन अभी इकट्ठे होने की दौड़ जारी है।
भिखारी धनाकांक्षी है। धनाढ्य नहीं है, मगर धनाकांक्षी है। धन उसके पास नहीं है, लेकिन धन की तृष्णा तो उसके पास उतनी ही है, जितनी किसी धनी के पास हो; शायद धनी से ज्यादा हो। क्योंकि धनी ने तो धन का थोड़ा अनुभव भी लिया। अगर उसमें थोड़ी अकल होगी, तो यह समझ में आ गया होगा कि धन मिलने से कुछ भी नहीं मिलता। लेकिन भिखारी को तो यह भी नहीं हो सकता। भिखारी की तो धन की आकांक्षा बड़ी प्रगाढ़ है। उसे धन मिला भी नहीं; धन का अनुभव भी नहीं। वह धन के पीछे दौड़ रहा है।
भिक्षु का अर्थ हैः जिसकी कोई आकांक्षा नहीं। इतना ही नहीं कि उसने वासनाएं छोड़ीं, इंद्रियां छोड़ीं, उसने इंद्रियों पर जो मालकियत करने वाला भीतर का अहंकार है, वह भी छोड़ दिया। उसने बाहर का स्वामित्व भी छोड़ दिया; उसने स्वामी को भी छोड़ दिया। वह जो भीतर स्वामी बन सकता है, उसको भी छोड़ दिया।
बुद्ध कहते हैंः तुम भीतर एक शून्यमात्र हो। और जब तुम शून्यमात्र हो, तभी तुम वस्तुतः हो। यह भिक्षु की दशा।
ब्राह्मण ने ठीक ही पूछा। ब्राह्मण है; स्वामी शब्द से परिचित रहा होगा। यह बुद्ध को क्या हुआ कि अपने संन्यासी को भिक्षु कहते हैं!
तो उसने पूछाः हे गौतम! आप अपने शिष्यों को भिक्षु क्यों कहते हैं?
और यह प्रश्न, शायद वह तो सोचता हो कि दार्शनिक है। मगर बुद्ध जानते हैं कि दार्शनिक नहीं है, अस्तित्वगत है। इसीलिए बुद्ध आए हैं। उसके भीतर भिक्षु होने की तरंग उठ रही है। उसको भी पता नहीं है कि यह प्रश्न क्यों पूछ रहा है!
तुमको भी पता नहीं होता कि तुम कोई प्रश्न क्यों पूछते हो। तुम्हारे चित्त में घूमता है; तुम पूछ लेते हो। लेकिन तुम्हें उसकी जड़ों का कुछ पता नहीं होता कि कहां से आता है? क्यों आता है?
तुम्हें अगर पता चल जाए कि तुमने प्रश्न क्यों पूछा है, तो नब्बे मौकों पर तो प्रश्न हल ही हो जाएगा--इसी के पता चलने में कि मैंने क्यों पूछा है। करीब-करीब हल हो जाएगा। अगर तुम अपने प्रश्न के भीतर उतर जाओ, और

अपने प्रश्न की जड़ों को पकड़ लो, तो तुम पाओगेः प्रश्न के प्राण ही निकल गए। उत्तर करीब आ गया। किसी से पूछने की जरूरत नहीं रही।
इस ब्राह्मण को कुछ पता नहीं है कि यह भिक्षु के संबंध में क्यों प्रश्न पूछ रहा है! अगर तुम इससे पूछते कि क्यों ऐसा पूछते हो, तो यह यही कहता कि बहुत बार सोचा मैंने कि सदा संन्यासी को स्वामी कहा गया है, बुद्ध क्यों भिक्षु कहते हैं! बस, जिज्ञासावश पूछ रहा हूं।
लेकिन बुद्ध जानते हैं, यह जिज्ञासा नहीं है। अगर यह जिज्ञासा ही होती, तो बुद्ध आते नहीं। बुद्ध तो तभी आते हैं, जब कुतूहल गया, जिज्ञासा गयी और मुमुक्षा पैदा होती है। जब कोई वस्तुतः उस किनारे आ गया, जहां उसे धक्के की जरूरत है। जहां वह अपने से नहीं कूद सकेगा; क्योंकि आगे विराट शून्य है, और उस विराट शून्य के लिए साहस जुटाना कठिन है।
हे गौतम! आप अपने शिष्यों को भिक्षु क्यों कहते हैं? और फिर कोई भिक्षु कैसे होता है? इसकी अंतःप्रक्रिया क्या है?
यह प्रश्न उसके मन में उठा; उसके चेतन तक आया--भगवान की मौजूदगी के कारण। शायद उस दिन भगवान उसके द्वार पर आकर खड़े नहीं हुए होते, तो यह प्रश्न वर्षों तक रुकता; या न पूछता इस जीवन में। शायद कभी न पूछता।
ठीक घड़ी में भगवान की मौजूदगी; उसके भीतर तरंग उठती ही उठती थी और भगवान की मौजूदगी, और भगवान की विराट तरंग उसकी छोटी सी तरंग को ले गयी उठाकर; उसके चैतन्य तक पहुंचा दिया।
यह धक्का, यह सहारा--यही सदगुरु का अर्थ है। जो तुम्हारे भीतर धीमा- धीमा है, उसे त्वरा दे देनी। जो तुम्हारे भीतर कुनकुना-कुनकुना है, उसे इतनी गर्मी दे देनी कि भाप बनने की क्षमता आ जाए। जो तुम्हारे भीतर सोया- सोया है, उसे उठा देना, जगा देना। जो तुम्हारे भीतर सरक रहा है अंधेरे- अंधेरे में, उसे पकड़कर रोशनी में ला देना।
यह मौजूदगी से ही हो जाता है; यह सिर्फ बुद्ध जैसे व्यक्ति की उपस्थिति से हो जाता है। तुम बुद्ध के पास जाकर ऐसे प्रश्न पूछने लगते हो, जो तुमने कभी पहले सोचे भी नहीं थे। तुम बुद्ध के पास जाकर ऐसी भावदशाओं से भर जाते हो, जो बिल्कुल अपरिचित हैं। तुम बुद्ध के पास जाकर अपनी उन भाव-भंगिमाओं से परिचित होते हो, जिन्हें तुम जानते भी नहीं थे कि तुम्हारे भीतर हो भी सकती हैं।
बुद्ध की उस अनायास उपस्थिति के मधुर क्षण में... ।
और अनायास था, इसलिए और भी मधुर था क्षण। अगर ब्राह्मण निमंत्रण देकर लाया होता, तो इतना मधुर नहीं होता। क्योंकि इतना आघातकारी नहीं होता। अगर निमंत्रण देकर लाया होता, तो इतनी चोट करने वाला नहीं होता; इतना अवाक नहीं करता। यह क्या! ऐसा ब्राह्मण नहीं पूछ पाता। जानता कि बुलाकर लाया हूं, इसलिए आए हैं। इसी जानकारी के कारण वंचित रह जाता; निर्दोष नहीं होता।
चूंकि बुद्ध अनायास आ गए हैं, ब्राह्मण को बिल्कुल निर्दोष दशा में पकड़ लिया है। अनायास पकड़ लिया है।
और ध्यान रखना, परमात्मा सदा अनायास आता है। तुम जब बुलाते हो, तब नहीं आता। तुम्हारे बुलाने से कभी नहीं आता। तुम्हें जब पता ही नहीं होता; तुम जब शांत बैठे हो, खाली बैठे हो, कुछ नहीं बुला रहे हो; न संसार को बुला रहे, न परमात्मा को बुला रहे; तुम्हारे भीतर कोई पुकार ही नहीं है; तुम्हारे भीतर कोई वासना-कामना नहीं है; तुम्हारे भीतर कोई स्वप्न तरंगें नहीं ले रहा है--और अचानक! उसके पैरों की आवाज भी नहीं सुनायी पड़ती और वह तुम्हारे सामने आकर खड़ा हो जाता है!
भगवान सदा ही अनायास आता है। अनायास आने में ही तुम्हारा रूपांतरण है। भगवान तुम्हें सदा जब आता है, तो चौंकाता है। विस्मयविमुग्ध कर देता है। तुम्हारी समझ में नहीं पड़ता कि यह क्या हो गया, कैसे हो गया! तुम अबूझ दशा को उपलब्ध हो जाते हो। क्योंकि भगवान रहस्य है। रहस्य बुलाए नहीं जा सकते; निमंत्रण नहीं दिया जा सकता।
इस मधुर क्षण में उसके भीतर संन्यास की आकांक्षा का उदय हुआ था।

ब्राह्मण को भी दिखायी पड़ा कि कुछ कंपता हुआ उठ रहा है, झंझावात कुछ भीतर आ रहा है। कुछ भीतर उमग रहा है, जो पहले कभी नहीं उमगा था। कोई बीज फूटा है, अंकुर बना है। और अंकुर तेजी से बढ़ रहा है। अचानक उसे दिखायी पड़ा कि मैं भिक्षु होना चाहता हूं। मैं संन्यस्त होना चाहता हूं।
वह जो निश्चय भगवान को दिखायी पड़ा था, वह ब्राह्मण को भी दिखायी पड़ गया। भगवान की सन्निधि का परिणाम!
इसलिए सदा से साधु-संगत का मूल्य है। साधु-संगत में कुछ बाहर से नहीं होगा। होना तो भीतर ही है। जागनी तो तुम्हारी ही ज्योति है। लेकिन जहां बहुत ज्योतियां जगी हों, और जहां ज्योति के जगने की बात होती हो, चर्चा होती हो, महिमा होती हो, जहां जगी हुई ज्योतियां नाचती हों--वहां ज्यादा देर तक तुम बुझे न रह सकोगे। उस रौ में बह जाओगे। उस नाचती हुई ऊर्जा में वह क्षण आ जाएगा, जब तुम भी नाचने लगोगे। तुम्हारे भीतर भी भभककर उठ आएगी तुम्हारी सोयी हुई ज्योति।
शायद भगवान उसके द्वार पर उस दिन इसलिए ही गए थे कि जो ज्योति धीमी- धीमी सरक रही है, धुएं में दबी पड़ी है, वह प्रज्वलित हो जाए।
और शायद ब्राह्मणी की चेष्टा--कि भगवान दिखायी न पड़ें--उसके अचेतन में उठे किसी भय के कारण ही संभव हुई थी। ब्राह्मणी सोच रही थी, शायद भगवान भोजन मांग लेंगे और मुझे फिर भोजन बनाना पड़ेगा। यह उसकी व्याख्या थी। लेकिन शायद उसके भीतर भी जो भय पैदा हुआ था, वह भोजन का ही नहीं हो सकता।
क्या भोजन बनाने में इतना भय हो सकता है? भय शायद यही रहा होगा कि कहीं आज ब्राह्मण को ही भगवान न ले जाएं।
क्योंकि जब भगवान बुद्ध जैसा व्यक्ति किसी के द्वार पर आता है, तो क्रांति होगी; तो आग लगेगी; तो पुराना जलेगा; तो नए का जन्म होगा।
लेकिन यह ब्राह्मणी को भी साफ नहीं है कि वह क्यों जाकर ब्राह्मण को छिपाकर, पीछे खड़ी हो गयी है। वह तो यही सोच रही है, गरीब ब्राह्मणी यही सोच रही है कि कौन दुबारा झंझट में पड़े!
तुम अक्सर जो कारण सोचते हो अपने कृत्यों के, वे ही कारण कारण हों, ऐसा
मत सोच लेना। तुम्हारे कारण तो कल्पित होते हैं। तुम्हें मूल का तो पता नहीं होता है।
ब्राह्मणी भी भयभीत हो गयी। और ध्यान रखना, स्त्रियों के भीतर अचेतन ज्यादा सक्रिय होता है पुरुषों की बजाय। इसलिए अक्सर स्त्रियों को उन बातों की झलक पुरुष से भी पहले मिल जाती है, जो बातें स्पष्ट नहीं हैं। तुमने कई बार अनुभव किया होगा। रोज ऐसा घटता है--कि स्त्री के भीतर विचार के पार पकड़ने की कुछ ज्यादा क्षमता है। पुरुष में बुद्धि बढ़ गयी है। स्त्री में अभी भी अचेतन घना है।
इसलिए स्त्री अगर तुमसे कहे कि आज मत जाओ; इस हवाई जहाज से यात्रा मत करो; तो सुन लेना। स्त्री कहेः आज... । हालांकि वह कोई जवाब नहीं दे सकेगी; समझा नहीं सकेगी। रोएगी। कहेगी कि आज मत जाओ इस ट्रेन से। और तुम कहोगेः क्या कारण है? क्यों न जाऊं? वह कहेगीः कारण मुझे भी कुछ पता नहीं है। या कुछ बनाया हुआ कारण बताएगी कि मैं ज्योतिषी के पास गयी थी; वह मना करता है कि आज का दिन खराब है; कि मुहूर्त ठीक नहीं है; कि कल चले जाना; कि आज मुझे काम है; कि बच्चा बीमार है। कुछ कारण खोजकर बताएगी। लेकिन अगर तुम ठीक से पूछो, सहानुभूति से पूछो, तो वह कहेगीः बस, मेरे भीतर ऐसा होता है कि आज न जाओ। मुझे भी कुछ पता नहीं है कि ऐसा क्यों होता है।
स्त्री अभी भी हृदय से ज्यादा जीती है, बजाय तर्क के। इसलिए यह मजेदार घटना घटी।
इसके पहले कि ब्राह्मण--जिसके लिए बुद्ध आए थे--उसके निर्णय को गति मिले, उसके पहले ब्राह्मणी का अचेतन जाग गया। उसके पहले ब्राह्मणी खड़ी हो गयी बचाने को! खतरे के पहले बचाने को खड़ी हो गयी। खतरा द्वार पर खड़ा है। बुद्ध का आगमन खतरनाक है।
हालांकि ब्राह्मणी को भी पता नहीं है; उसने सोचा कि बस, भोजन दुबारा न बनाना पड़े। यह गौतम कहां आकर खड़ा हो गया!

फिर ब्राह्मणी हंसी। उस हंसी में भी... ऊपर से तो कथा इतना ही कहती है
कि वह इसलिए हंसी कि हद्द हो गयी! एक मैं एक बार भोजन बनाने की झंझट से बचने के लिए पति को छिपाए खड़ी हूं, रोके खड़ी हूं बुद्ध को। और एक यह गौतम! इसकी भी जिद्द हद्द हो गयी! बढ़ता नहीं। दूसरे दरवाजे चला जाए; इतना बड़ा गांव पड़ा है! अब आज यहीं कोई... जिद्द बांधकर खड़ा है।
ब्राह्मणी सोचती हैः इसलिए मैं हंसी कि यह गौतम भी जिद्दी है। लेकिन शायद यह हंसी भी उसके अचेतन से आयी है। शायद उसे कहीं भीतर यह भी साफ हुआ कि भोजन फिर से बनाना पड़े, इतनी सी बात के लिए मैं रोककर खड़ी नहीं होने वाली थी। कुछ और है। और जो और की थोड़ी सी झलक उसे मिली होगी कि कहीं यह श्रमण मेरे पति को न ले जाए; तो हंसी होगी। यह भी कोई बात सोचने की हुई! यह क्यों ले जाएगा? मेरे पति ने कभी संन्यस्त नहीं होना चाहा; कभी भिक्षु नहीं होना चाहा। मेरे पति, यद्यपि इस गौतम को कभी-कभी दान देते हैं, लेकिन अब भी ब्राह्मण हैं। अब भी पूजा करते हैं; हवन करते हैं; वेद पढ़ते हैं; शास्त्र में लगे रहते हैं। भ्रष्ट होने की कोई आशा नहीं है। मैं भी कैसी चिंता में पड़ गयी! इसलिए भी हंसी होगी।
उस घड़ी भगवान ने यह गाथा कही; और यह गाथा ब्राह्मण का संन्यास बन गयी। फिर क्षणभर नहीं रुका। फिर बुद्ध के चरणों में समर्पित हो गया। फिर बुद्ध के पीछे चल पड़ा।
और ब्राह्मणी भी, जो क्षणभर पहले बुद्ध से बचाने को खड़ी हुई थी, वह भी दीक्षित हुई; वह भी संन्यस्त हुई। उसका प्रेम अपने पति से, सिर्फ शरीर के तल का ही नहीं रहा होगा। शरीर के ही तल का होता, तो नाराज होती। गहरा रहा होगा; थोड़ा ज्यादा गहरा रहा होगा। और अगर आज पति संन्यस्त होता है, और दीक्षा के मार्ग पर जाता है, तो ठीक है, वह भी जाएगी। निस्संकोच, निर्भय--जो पति कर रहा है, वह वह भी करेगी।
यह चौंकाने वाली बात है कि जो अभी क्षणभर पहले एक बार और भोजन बनाने
से परेशान हो रही थी, वह आज पति के साथ भिक्षुणी होने को तैयार हो गयी है! मनुष्य के भीतर ऐसे द्वंद्व हैं। जो स्त्री तुम्हारे लिए जिंदगी को दूभर बना दे, वही तुम्हारे ऊपर जान भी दे सकती है। जो स्त्री तुम्हारे ऊपर अपने जीवन को न्योछावर कर दे, क्रोध से भर जाए तो तुम्हें जहर भी पिला सकती है।
प्रेम के रास्ते बड़े उलझे हुए हैं! प्रेम के रास्ते बड़े जटिल हैं। प्रेम का गणित सीधा-सीधा नहीं है। प्रेम के रास्ते सीधे-साफ नहीं हैं, पगडंडियों की तरह हैं; बड़े उलटे-सीधे जाते हैं।
एक क्षण पहले भोजन पकाने में झिझकी थी; और एक क्षण बाद सब छोड़कर जाने में झिझक न हुई! उस ब्राह्मणी का प्रेम बुद्ध से तो नहीं था, लेकिन अपने पति से था। और इसलिए मैं तुमसे कहता हूं कि प्रेम किसी से भी हो, तो परमात्मा तक जाने का मार्ग बन सकता है।
अपने पति से प्रेम था; बुद्ध से कुछ लेना-देना नहीं था। उसने एक बार भी भगवान की तरह बुद्ध को नहीं सोचा। वह कहती है, यह गौतम! यह श्रमण गौतम कहां खड़ा हो गया है आकर! लेकिन पति के प्रति उसका मन वही होगा, जो इस देश में सदा से सोचा गया, विचारा गया, जिसके काव्य लिखे गए हैं, जिसके गीत गाए गए हैं। उसने अपने पति को परमात्मा माना होगा। और जब उसका परमात्मा जाता है, तो उसके लिए भी जाना है। जहां उसका परमात्मा जाता है, वहां उसे जाना है। जैसे स्त्रियां इस देश में कभी पति की चिता पर चढ़कर सती होती रहीं, ऐसे इस देश में स्त्रियां कभी पति के साथ संन्यस्त भी हो गयी हैं। जिसके साथ राग जाना, उसके साथ विराग भी जानेंगे। और जिसके साथ सुख जाना, उसके साथ तपश्चर्या भी जानेंगे। साथ एक बार हो गया, तो अब सुख हो कि दुख, घर-द्वार हो कि रास्ता--साथ हो गया, तो साथ हो गया। इस देश ने साथ के बड़े अंतरंग प्रयोग किए हैं।
बुद्ध ने कहाः "जिसकी नाम-रूप--पंच-स्कंध--में जरा भी ममता नहीं है और
जो उनके नहीं होने पर शोक नहीं करता, वह भिक्षु कहा जाता है।"
बड़ी सीधी परिभाषा, गणित की तरह साफः "जिसकी नाम-रूप में जरा भी ममता नहीं है... ।"

नाम-रूप का अर्थ होता है, मानसिक और शारीरिक। मनुष्य दो अवस्थाओं का पुंज है--मन और शरीर। सूक्ष्म पुंज मन; उसका नाम है--नाम। क्योंकि तुम्हारे सूक्ष्म पुंज मन का जो सबसे गहरा भाव है, वह है अहंकार--मैं। और जो स्थूल पुंज है शरीर, उसका नाम है--रूप। आदमी दो में डोलता रहता है--नाम-रूप। जिनको हम बड़े-बड़े आदमी कहते हैं, वे भी इस अर्थ में छोटे ही छोटे होते हैं। जिनको सामान्य जनता बड़े नेता कहती है, महात्मा कहती है, वे भी साधारणतः इन्हीं दो में बंधे होते हैं। और इन दो से जो मुक्त हो जाए, वही भिक्षु।
परसों मैंने जयप्रकाश नारायण का एक वक्तव्य पढ़ा। उन्होंने बंबई में अपने मित्रों को धन्यवाद देते हुए कहा--जनता को धन्यवाद देते हुए कहा--कि मैं जनता का सदा-सदा के लिए अनुगृहीत रहूंगा, क्योंकि मेरे देश की जनता ने ही मेरे नाम और यश को दुनिया के कोनों-कोनों तक फैला दिया है।
जयप्रकाश नारायण जैसा विचारशील व्यक्ति भी नाम और यश--उसमें ही बंधा
रह जाता है! धन्यवाद भी किस बात का दे रहे हो! इसलिए कि लोगों ने मेरे नाम और यश को दुनिया के कोनों-कोनों तक फैला दिया है। क्या होगा इससे? राजनीति की लड़ाई अक्सर सिद्धांतों की लड़ाई नहीं है। सिद्धांत तो सिर्फ आड़ होते हैं। असली लड़ाई तो अहंकारों की लड़ाई है। गहरी लड़ाई तो व्यक्तित्वों की लड़ाई है।
यह कुछ कांग्रेस और जनता की लड़ाई कोई सिद्धांतों की लड़ाई नहीं है। यह सिर्फ व्यक्तित्वों की लड़ाई है। कौन प्रतिष्ठित होता है! कौन पद पर बैठता है! और इसीलिए दुश्मन तो दुश्मन होते ही हैं राजनीति में, मित्र भी दुश्मन होते हैं। क्योंकि जो पद पर बैठा है, उसके आसपास जो मित्र इकट्ठे होते हैं, वे भी कोशिश में लगे हैं कि कब धक्का दे दें! अब जगजीवनराम को मौका मिले, तो मोरारजी को धक्का नहीं देंगे? कि चरणसिंह को मौका मिले, तो धक्का नहीं देंगे? इनको धक्का नहीं देंगे, तो अपनी छाती में छुरा भुक जाएगा!
वे जो पास खड़े हैं, वे भी धक्का देने को खड़े हैं। वे देख रहे हैं कि कब जरा कमजोरी का क्षण हो कि दे दो धक्का! राजनीति में शत्रु तो शत्रु होते ही हैं, मित्र भी शत्रु होते हैं।
जयप्रकाश नारायण ने मोरारजी को पद पर बिठाया। लेकिन अभी कुछ दिन पहले भोपाल में किसी ने मोरारजी को पूछा कि हमने सुना है कि अब जयप्रकाश नारायण महात्मा गांधी की अवस्था में पहुंच गए हैं! आप क्या कहते हैं? मोरारजी एकदम कहेः नहीं, कोई महात्मा गांधी की अवस्था में कभी नहीं पहुंच सकता। वे अद्वितीय पुरुष थे। और फिर जयप्रकाश नारायण ने ऐसा कोई दावा किया भी नहीं है।
जरा इसको सूक्ष्म से देखना। जरा ऊपर की धूल को झाड़कर देखना। तुम भीतर बड़े अंगारे पाओगे।
पहली तो बात यह कि मोरारजी को महात्मा गांधी अद्वितीय थे या नहीं-- इससे कोई प्रयोजन नहीं है। गांधी अद्वितीय थे, यह बात तो इसलिए कही जा रही है, ताकि जयप्रकाश नारायण को उनकी जगह पर न रखा जाए। अब वस्तुतः तो मोरारजी चाहेंगे कि वे महात्मा गांधी हो गए हैं--जयप्रकाश कहां बीच में आते हैं!
चीजों को तुम सीधे देखोगे, तो कभी नहीं समझ पाओगे।
मोरारजी महात्मा गांधी हैं! महात्मा गांधी की सब जड़ताएं उनमें हैं।
और एक जड़ता और ज्यादा है--स्व-मूत्र का पीना। वे महात्मा गांधी से बड़े महात्मा हैं! फिर कहते हैं कि जयप्रकाश नारायण ने इसका कोई दावा किया भी नहीं है।
अब जरा मजा देखनाः अगर जयप्रकाश नारायण दावा न करें, तो जब दावा ही नहीं किया, तो कैसे हो सकते हैं! और अगर कल दावा करें, तो इसीलिए फिर महात्मा गांधी नहीं हो सकते--कि कहीं दावेदार महात्मा गांधी हुए!
देखना, तर्क बड़ा मजेदार होता है! दावा नहीं किया जयप्रकाश नारायण ने! जैसे कि महात्मा गांधी होने का दावा करके फिर किसी अदालत से फैसला लेना होगा--कि हां, ये महात्मा गांधी हो गए! दावा नहीं किया, इसलिए कैसे इसको मानना? और अगर दावा करें, तो मोरारजी कहेंगे कि दावेदार कहीं महात्मा

गांधी होते हैं। महात्मा गांधी तो ऐसे विनम्र थे! विनम्रता! और ये दावेदार!
लेकिन असली बात कुछ और है। असली बात यह है कि मोरारजी नहीं चाहेंगे कि उनसे ऊपर कोई आदमी प्रतिष्ठित हो। उनसे ऊपर किसी का यश हो। और महात्मा गांधी से किसको क्या लेना है!
मैंने सुना है कि महात्मा गांधी की हत्या के पहले मोरारजी को पता चल गया था। खबर उनको दी गयी थी। कुछ भी उन्होंने किया नहीं। वल्लभ भाई पटेल को भी, कहते हैं, खबर मिल गयी थी; लेकिन कुछ किया नहीं।
महात्मा गांधी के मरने के पहले वल्लभ भाई पटेल राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की दो सभाओं में गांधी की आलोचना किए और राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की प्रशंसा किए। और जिस दिन गांधी की हत्या हुई, उसके घंटेभर पहले गांधी ने जो वल्लभ भाई पटेल से कहा था, वह वचन याद करने जैसा है।
महात्मा गांधी ने वल्लभ भाई पटेल को कहा था--घंटेभर पहले मरने के--कि सरदार! जैसा मैं तुम्हें जानता था, अब तुम वैसे नहीं रहे। तुम बदल गए। तुम अब वही नहीं हो, जिस व्यक्ति को मैं जानता था। पद पर पहुंचकर तुम कुछ के कुछ हो गए।
फिर गांधी की हत्या हो गयी। और इतने दिन हो गए गांधी की हत्या हुए, मोरारजी ने एक बार भी इसके पहले नहीं कहा कि इसमें आर.एस.एस. का कोई हाथ नहीं है। लेकिन अब पद पर पहुंचकर उन्होंने कहना शुरू कर दिया कि आर.एस.एस. का इसमें कोई हाथ नहीं है। कि गोडसे तो आर.एस.एस. का सदस्य ही नहीं रहा था, जब उसने हत्या की।
यह हो सकता है कि गोडसे सदस्य न रहा हो हत्या करते वक्त, सिर्फ इसीलिए ताकि अगर कोई अड़चन हो, तो जिम्मेदारी आर.एस.एस. पर न आए। वह सिर्फ इतना ही बताती है बात कि वह आर.एस.एस. को बचाने की आकांक्षा रही होगी भीतर--कि संस्था बदनाम न हो। अगर मैं पकड़ भी जाऊं, तो संस्था पर कोई लांछन न लगे। लेकिन बड़े मजे की बात है! गांधी के भक्त महात्मा गांधी की समाधि पर फूल चढ़ाते हैं और यहां अब आर.एस.एस. को बढ़ावा दे रहे हैं! क्योंकि आर.एस.एस. ने ही उनको प्रतिष्ठित किया है, उनको पद पर बिठाया है।
इस दुनिया में सारी खोज पद की है, यश की है, नाम की है। किसी को और किसी बात से मतलब नहीं है। सबको एक बात से मतलब है कि मैं किसी तरह सिद्ध करके दिखा दूं कि मैं महान हूं। और जो भी व्यक्ति सिद्ध करके दिखाना चाहता है कि महान है, उसके भीतर हीनता की गं्रथि है; इनफीरियारिटी कांप्लेक्स है; और कुछ भी नहीं।
बुद्ध ने कहाः जिसके भीतर से नाम-रूप की ममता चली जाए; जिसे न तो यश की आकांक्षा हो, न पद की आकांक्षा हो। जिसके भीतर सूक्ष्म-स्थूल दोनों में से किसी के प्रति कोई लगाव न रह जाए। ऐसा जो ममता से मुक्त है, वही भिक्षु है। "और पद-प्रतिष्ठा, नाम-रूप, सबके खो जाने पर जो शोक न करे... ।"
क्योंकि यह बहुत आसान हैः जब तुम पद पर होते हो, तब तुम कह सकते हो कि मुझे पद इत्यादि की कोई चिंता नहीं है। मुझे पद चाहिए नहीं। पद पर होने वाले लोग अक्सर ऐसी बातें कहने लगते हैं कि हमें पद से क्या! पद में क्या रखा!
पद पर जो पहुंच जाते हैं, वे अक्सर विनम्रता दिखाने लगते हैं। तुमने अक्सर देखा होगाः छोटे पद पर लोग ज्यादा उपद्रवी होते हैं। बड़े पद पर लोग कम उपद्रवी हो जाते हैं। क्योंकि अब प्रतिष्ठा हो ही गयी; अब यह मजा भी ले लो साथ में कि हम प्रतिष्ठा से भी मुक्त हैं। हमें यश का कोई लेना-देना नहीं है।
तुमने देखा, पुलिस वाला ज्यादा झंझट खड़ी करता है। इंस्पेक्टर थोड़ी कम। पुलिस कमिश्नर और थोड़ी कम। जितने बड़े पद पर होता है आदमी, उतनी कम झंझट करता है।
मैंने सुना हैः एक अंधा भिखारी राह पर बैठा है। रात है। और राजा और उसके कुछ साथी राह भूल गए हैं। वे शिकार करने गए थे। उस गांव से गुजर रहे हैं। कोई और तो नहीं है, वह अंधा बैठा है झाड़ के नीचे; अपना एकतारा बजा रहा

है। और अंधे के पास उसका एक शिष्य बैठा है। वह उससे एकतारा सीखता है; वह भी भिखारी है। दोनों भिखारी हैं।
राजा आया और उसने कहाः सूरदासजी! फलां-फलां गांव का रास्ता कहां से जाएगा? फिर वजीर आया और उसने कहाः अंधे! फलां-फलां गांव का रास्ता कहां से जाता है? अंधे ने दोनों को रास्ता बता दिया। पीछे से सिपाही आया; उसने एक रपट लगायी अंधे को--कि ऐ बुड्ढे! रास्ता किधर से जाता है? उसने उसे भी रास्ता बता दिया।
जब वे तीनों चले गए, तो उस अंधे ने अपने शिष्य से कहा कि पहला बादशाह था; दूसरा वजीर था; तीसरा सिपाही। वह शिष्य पूछने लगाः लेकिन आप कैसे पहचाने? आप तो अंधे हैं! उसने कहाः अंधे होने से क्या होता है! जिसने कहा सूरदासजी, वह बड़े पद पर होना चाहिए। उसे कोई चिंता नहीं है अपने को दिखाने की। वह प्रतिष्ठित ही है। लेकिन जो उसके पीछे आया, उसने कहा अंधे! अभी उसे कुछ प्रतिष्ठित होना है। और जो उसके पीछे आया, वह तो बिल्कुल गया-बीता होना चाहिए। उसने एक धप्प भी मारा। रास्ता पूछ रहा है और एक धप्प भी लगाया! वह बिल्कुल गयी-बीती हालत में होना चाहिए। वह सिपाही होगा।
आदमी जब बड़े पदों पर पहुंच जाता है, तब तो वह यह भी मजा ले लेता है कहने
का कि पद में क्या रखा है!
इसलिए बुद्ध कहते हैंः पहले तो ममता न हो। और इसका प्रमाण क्या होगा?
जब ये चीजें छूट जाएं, तो शोक न हो। तभी असली बात पता चलेगी। दुख न हो। ममता नहीं थी, तो दुख हो ही नहीं सकता। ममता थी, तो ही दुख हो सकता है।
"... वही भिक्षु कहा जाता है।"
ब्राह्मण ने सुना। चरणों में झुका और उसने कहा कि मुझे स्वीकार कर लें। मुझे भी इस रास्ते पर ले चलें। ममता में रहकर मैंने देख लिया; दुख के अतिरिक्त कुछ भी नहीं पाया। अब मुझे ममता के पार ले चलें।
ममता शब्द प्यारा है; अर्थपूर्ण है। इसका मतलब होता है मैं-भाव। मम धन ता, मम यानी मैं, चीजों में बहुत मैं-भाव रखना। यह मेरा मकान। यह मेरी पत्नी। यह मेरी दुकान। यह मेरा धर्म। यह मेरी किताब। यह मेरा मंदिर। यह मेरा देश। यह सब ममता है। जब मैं-भाव चला जाए... ।
मकान मकान है, मेरा क्या! और देश देश है, मेरा क्या! कुरान कुरान है, मेरा क्या! पत्नी स्त्री है, मेरा क्या! मेरा कुछ भी नहीं है। जब सब मेरे गिर जाते हैं, तो अचानक तुम पाओगेः एक चीज अपने आप गिर जाती है, वह है मैं। मैं को सम्हालने के लिए मेरों के डंडे लगे हुए हैं चारों तरफ से। मैं टिक ही नहीं सकता, बिना मेरे के। इसलिए जितना तुम चीजों को कह सकते हो मेरा, जितनी ज्यादा चीजें तुम्हारे पास हैं कहने को मेरी, उतना तुम्हारा मैं बड़ा होता जाता है। और जब तुम्हारे पास कोई मेरा कहने को नहीं बचता, तो मैं को खड़े रहने की जगह नहीं बचती। मैं तत्क्षण गिर जाता है।
तुम मेरे को गिराओ, मैं अपने से गिर जाता है। और उस मैं के गिर जाने का नाम--भिक्षु। मैं का गिर जाना यानी शून्य हो जाना। वह जो भिक्षु के हाथ में भिक्षापात्र है, वह अगर हाथ में ही हो, तो बेकार है। वह उसकी आत्मा में होना चाहिए, तभी सार्थक है।
द्वितीय दृश्यः

भगवान के अग्रणी शिष्यों में से एक महाकात्यायन के शिष्य कुटिकण्ण सोण स्थविर कुररघर से जेतवन जा भगवान का दर्शन कर जब वापस आए, तब उनकी मां ने एक दिन उनके उपदेश सुनने के लिए जिज्ञासा की और नगर में भेरी बजवाकर सबके साथ उनके पास उपदेश सुनने गयी। जिस समय वह उपदेश सुन रही थी, उसी समय चोरों के एक बड़े गिरोह ने उसके घर में सेंध लगाकर सोना-चांदी, हीरे- जवाहरात आदि ढोना शुरू कर दिया। एक दासी ने चोरों को घर में प्रवेश किया देख उपासिका को जाकर कहा।
उपासिका हंसी और बोलीः जा, चोरों की जो इच्छा हो सो ले जावें; तू उपदेश सुनने में विघ्न न डाल।

चोरों का सरदार, जो कि दासी के पीछे-पीछे उपासिका की प्रतिक्रिया देखने आया था, यह सुनकर ठगा रह गया, अवाक रह गया। उसने तो खतरे की अपेक्षा की थी।
वह उपासिका बड़ी धनी थी। उस नगर की सबसे धनी व्यक्ति थी। उसके इशारे पर हजारों लोग चोरों को घेर लेते। चोरों का भागना मुश्किल हो जाता। चोरों का सरदार तो डर के कारण ही पीछे-पीछे गया था कि अब देखें, क्या होता है! यह उपासिका क्या प्रतिक्रिया करती है!
और उपासिका ने कहाः देख, जा; चोरों की जो इच्छा हो, सो ले जावें। तू उपदेश सुनने में विघ्न न डाल।
स्वभावतः, चोरों का सरदार अवाक रह गया। उसने तो खतरे की अपेक्षा की थी। लेकिन उपासिका के वे थोड़े से शब्द उसके जीवन को बदल गए। उन थोड़े से शब्दों से जैसे चिनगारी पड़ गयी; जैसे किसी ने उसे सोते से जगा दिया हो। जैसे एक सपना टूट गया। जैसे पहली बार आंख खुली और सूरज के दर्शन हुए। वह जागा इस सत्य के प्रति कि सोना-चांदी, हीरे-जवाहरातों से भी ज्यादा कुछ मूल्यवान जरूर होना चाहिए। अन्यथा हम हीरे-जवाहरात ढो रहे हैं और यह उपासिका कहती हैः जा, चोरों को जो ले जाना हो, ले जाने दे; उपदेश में विघ्न मत डाल। जरूर यह कुछ पा रही है, जो हीरे-जवाहरातों और सोना-चांदी से ज्यादा मूल्यवान है। यह तो इतना सीधा गणित है।
उसने लौटकर अपने साथियों को भी यह बात कही--कि हम कूड़ा-कर्कट ढो रहे हैं। सोना वहां लुट रहा है! क्योंकि उपासिका ने कहाः जा, ले जाने दे उनको जो ले जाना है। तू उपदेश में विघ्न मत कर। वहां कुछ अमृत बरस रहा है मित्रो! हम भी चलें। वहां कुछ मिल रहा है उस स्त्री को, जिसकी हमें कोई भी खबर नहीं है। कोई भीतरी संपदा बरसती है। कुछ लुट रहा है वहां और हम कूड़ा- कर्कट... ।
उन्हें भी बात जंची। फिर उन्होंने चुराया हुआ सामान पुनः पूर्ववत रखा
और सभी धर्म-सभा में आकर उपदेश सुनने बैठ गए। वहां उन्होंने अमृत बरसते देखा। वहां उन्होंने अलौकिक संपदा देखी। उसे फिर उन्होंने जी भरकर लूटा।
चोर ही थे! फिर लूटने में उन्होंने कोई कमी नहीं की। कोई दुकानदार नहीं थे कि लूटने में डरते। उन्होंने दिल भरकर लूटा। उन्होंने दिल भरकर पीया। शायद जन्मों-जन्मों से इसी संपदा की तलाश थी, इसीलिए चोर बने घूमते थे। फिर सभा की समाप्ति पर वे सब उपासिका के पैरों पर गिरकर क्षमा मांगे। चोरों के सरदार ने उपासिका से कहाः आप हमारी गुरु हैं। अब हमें अपने बेटे से प्रव्रज्या दिलवाएं। उपासिका अपने पुत्र से प्रार्थना कर उन्हें दीक्षित करायी। वे चोर अति आनंदित थे और संन्यस्त हो एकांत में वास करने लगे; मौन रहने लगे और ध्यान में डूबने लगे। उन्होंने शीघ्र ही ध्यान की संपदा पायी।
भगवान ने ये सूत्र इन्हीं भूतपूर्व और अभूतपूर्व चोरों से कहे थे।

सिंच भिक्खु! इमं नावं सित्ता ते लहुमेस्सति।
छेत्त्वा रागंच दोसंच ततो निब्बाणमेहिसि।।

"हे भिक्षु, इस नाव को उलीचो; उलीचने पर यह तुम्हारे लिए हलकी हो
जाएगी। राग और द्वेष को छिन्न कर फिर तुम निर्वाण को प्राप्त कर लोगे।"

पंच छिन्दे पंच जहे पंच चुत्तरि भावये।
पंच संगातिगो भिक्खु ओघतिण्णो"ति वुच्चति।।

"जो पांच को काट दे, पांच को छोड़े, पांच की भावना करे और पांच के संग का
अतिक्रमण कर जाए, उसी को बाढ़ को पार कर गया भिक्षु कहते हैं।"

नत्थि झानं अपांंस्स पांं नत्थि अझायतो।
यम्हि झानंच पंजा च स वे निब्बाणसन्तिके।।

"प्रज्ञाहीन मनुष्य को ध्यान नहीं होता; ध्यान न करने वाले को प्रज्ञा नहीं होती। जिसमें ध्यान और प्रज्ञा हैं, वही निर्वाण के समीप है।"
पहले घटना को समझें।
भगवान के अग्रणी शिष्यों में से एक महाकात्यायन के शिष्य कुटिकण्ण सोण कुररघर से जेतवन जा भगवान का दर्शन करके जब वापस आए, तब उनकी मां ने एक दिन उनके उपदेश सुनने के लिए जिज्ञासा की और नगर में भेरी बजवाकर सबके साथ उनके पास उपदेश सुनने गयी।
ऐसे थे वे दिन! बुद्ध की तो महिमा थी ही। बुद्ध के दर्शन करके भी कोई अगर लौटता था, तो वह भी महिमावान हो जाता था। ऐसे ही जैसे कोई फूलों से भरे बगीचे से गुजरे, तो उसके वस्त्रों में फूलों की गंध आ जाती है। ऐसे ही कोई बुद्ध के पास से आए, तो उसमें थोड़ी सी तो गंध बुद्ध की समा ही जाती।
तो यह कुटिकण्ण सोण अपने गांव से बुद्ध के दर्शन करने को गए। वहां से
जब लौटे वापस, तो उनकी मां ने कहाः तुम धन्यभागी हो। तुम बुद्ध के शिष्य महाकात्यायन के शिष्य हो। तुम महाधन्यभागी हो; तुम बुद्ध के दर्शन करके लौटे। हम इतने धन्यभागी नहीं। चलो, हमें फूल न मिले, तो फूल की पाखुड़ी मिले। तुम जो लेकर आए हो, हमसे कहो। सूरज के दर्शन शायद हमें न हों, तुम जो थोड़ी सी ज्योति लाए हो, उस ज्योति के दर्शन हमें कराओ। तो उसने प्रार्थना की कि तुमने जो सुना हो वहां, वह दोहराओ; हमसे कहो।
और दूसरी बातः वह अकेली सुनने नहीं गयी। उसने सारे गांव में भेरी फिरवा दी और कहा कि कुटिकण्ण बुद्ध के पास होकर आए हैं, थोड़ी सी बुद्धत्व की संपदा लेकर आए हैं। वे बांटेंगे; सब आएं।
ऐसे थे वे दिन! क्योंकि जब परम धन लुटता हो, बंटता हो, तो अकेले-अकेले नहीं, भेरी बजाकर, सबको निमंत्रित करके। इस जगत की जो संपदा है, उसमें दूसरों को निमंत्रित नहीं किया जा सकता। क्योंकि वे बांट लेंगे, तो तुम्हारे हाथ कम पड़ेगी। उस जगत की जो संपदा है, अगर तुमने अकेले ही उसको अपने पास रखना चाहा, तो मर जाएगी; मुर्दा हो जाएगी; सड़ जाएगी। तुम्हें मिलेगी ही नहीं। उस जगत की संपदा उसे ही मिलती है, जो मिलने पर बांटता है। जो मिलने पर बांटता चला जाता है। जो जितना बांटता है, उतनी संपदा बढ़ती है। इस जगत की संपदा बांटने से घटती है। उस जगत की संपदा बांटने से बढ़ती है। इस सूत्र को ख्याल रखना।
तो भेरी बजवा दी। सारे गांव को लेकर उपदेश सुनने गयी। स्वभावतः, सारा गांव उपदेश सुनने गया। चोरों की बन आयी। गांव में कोई था ही नहीं। सारा गांव उपदेश सुनने गांव के बाहर इकट्ठा हुआ था। चोरों ने सोचाः यह अवसर चूक जाने जैसा नहीं है। वे उपासिका के घर में पहुंच गए बड़ा गिरोह लेकर। ठीक संख्या बौद्ध-गं्रथों में है--एक हजार चालीस। क्योंकि उपासिका महाधनी थी। उसके पास इतना धन था कि ढोते-ढोते दिन लग जाते, तो ही वे ले जा सकते थे।
तो एक हजार चोर इकट्ठे उसके घर पर हमला बोल दिए। सब तरफ से दीवालें तोड़कर वे अंदर घुस गए। सिर्फ एक दासी घर में छूटी थी। उसने इतना बड़ा गिरोह देखा, तो भागी। वे चोर सोना-चांदी, हीरे-जवाहरात ढो-ढोकर बाहर ले जाने लगे।
दासी ने जाकर उपासिका को कहा।
दासी घबड़ायी होगी। पसीना-पसीना हो रही होगी। सब लुटा जाता है! लेकिन उपासिका हंसी और बोलीः जा; चोरों की जो इच्छा हो, सो ले जावें; तू उपदेश सुनने में विघ्न न डाल।
इस देश ने एक ऐसी संपदा भी जानी है, जिसके सामने और सब संपदाएं फीकी हो जाती हैं। इस देश को ऐसे हीरों का पता है, जिनके सामने तुम्हारे हीरे कंकड़-पत्थर हैं। इस देश ने ध्यान का धन जाना। और जिसने ध्यान जान लिया, उसके लिए फिर और कोई धन नहीं है; सिर्फ ध्यान ही धन है। इस देश ने समाधि जानी। और जिसने समाधि जानी, वह सम्राट हुआ; उसे असली साम्राज्य मिला।
तुम सम्राट भी हो जाओ संसार में, तो भिखारी ही रहोगे। और तुम भीतर के जगत में भिखारी भी हो जाओ, तो सम्राट हो जाओगे। ऐसा अदभुत नियम है।
उस क्षण उपासिका रस-विमुग्ध थी। उसका बेटा लौटा था बुद्ध के पास होकर। बुद्ध की थोड़ी सुवास लाया था। बुद्ध का थोड़ा रंग लाया था; बुद्ध का

थोड़ा ढंग लाया था। वह जो कह रहा था, उसमें बुद्ध के वचनों की भनक थी। वह लवलीन होकर सुनती थी। वह पूरी डूबी थी। वह किसी और लोक की तरफ आंख खोले बैठी थी। उसे किसी विराट सत्य के दर्शन हो रहे थे। उसे एक-एक शब्द हृदय में जा रहा था और रूपांतरित कर रहा था। उसके भीतर बड़ी रासायनिक प्रक्रिया हो रही थी। वह देह से आत्मा की तरफ मुड़ रही थी। वह बाहर से भीतर की तरफ मुड़ रही थी।
उसने कहाः जा; चोरों की जो इच्छा हो, सो ले जावें। तू उपदेश सुनने में विघ्न न डाल। ऐसा तो कोई तभी कह सकता है, जब विराट मिलने लगे।
और मैं तुमसे कहता हूंः क्षुद्र को छोड़ना मत; विराट को पहले पाने में लगो, क्षुद्र अपने से छूट जाएगा। तुमसे मैं नहीं कहता कि तुम घर-द्वार छोड़ो। मैं तुमसे मंदिर तलाशने को कहता हूं। मैं तुमसे नहीं कहता कि तुम धन-दौलत छोड़ो। मैं तुमसे ध्यान खोजने को कहता हूं। जिसको ध्यान मिल जाएगा, धन-दौलत छूट ही गयी। छूटी न छूटी--अर्थहीन है बात। उसका कोई मूल्य ही न रहा।
आमतौर से तुमसे उलटी बात कही जाती है। तुमसे कहा गया है कि तुम पहले संसार छोड़ो, तब तुम परमात्मा को पा सकोगे। मैं तुमसे कहना चाहता हूंः तुम संसार छोड़ोगे; तुम और दुखी हो जाओगे, जितने तुम दुखी अभी हो। परमात्मा नहीं मिलेगा। लेकिन अगर तुम परमात्मा को पा लो, तो संसार छूट जाएगा। अंधेरे से मत लड़ो, दीए को जलाओ। अंधेरे से लड़ोगे, दीया नहीं जलेगा। अंधेरे से लड़ोगे--हारोगे, थकोगे, बड़े परेशान हो जाओगे। ऐसे ही तो तुम्हारे सौ में से निन्यानबे महात्माओं की दशा है। और परेशान हो गए! तुमसे ज्यादा परेशान हैं।
तुम्हें यह बात दिखायी नहीं पड़ती--कि कभी-कभी साधारण गृहस्थ के चेहरे
पर तो कुछ आनंद का भाव भी दिखायी पड़ता है, तुम्हारे तथाकथित साधु- संन्यासियों के चेहरे पर तो आनंद का भाव बिल्कुल खो गया है। एकदम जड़ता है। एकदम गहरी उदासी। सब जैसे मरुस्थल हो गया। क्या कारण है?
बातें तो करते हैं कि सब छोड़ देने से आनंद मिलेगा। मिला कहां है? तुमने किसी जैन मुनि को नाचते देखा है? प्रसन्न देखा है? आनंदित देखा है? छोड़कर मिला क्या है?
छोड़ने से मिलने का कोई संबंध नहीं है। बात उलटी हैः मिल जाए तो छूट जाता है। दीया जलाओ और अंधेरा अपने से नष्ट हो जाता है।
ऐसी ही घटना उस उपासिका को घट रही थी। वह तल्लीन थी। उसे धीरे-धीरे- धीरे उस रस का स्वाद आ रहा था। इस घड़ी में यह खबर आयी कि सब धन लुटा जा रहा है। उसने कहाः ले जाने दे उनको सब। अब कोई चिंता की बात नहीं। तू मेरी इस भावदशा में विघ्न न डाल।
चोरों का सरदार भी पीछे-पीछे चला आया था उपासिका की प्रतिक्रिया देखने। वह तो सुनकर अवाक रह गया। वह तो ठिठक गया।
अक्सर ऐसा हो जाता है कि पापी तुम्हारे तथाकथित पुण्यात्माओं से जल्दी रूपांतरित हो जाते हैं। वाल्मीकि और अंगुलिमाल! और अक्सर ऐसा हो जाता है कि अपराधियों में एक तरह की सरलता होती है, जो तुम्हारे प्रतिष्ठित कहे जाने वाले लोगों में नहीं होती। प्रतिष्ठित लोग तो चालाक, चालबाज, कपटी, पाखंडी होते हैं। लेकिन जिनको तुम अपराधी कहते हो, उनमें कपट नहीं होता, चालबाजी नहीं होती। कपट और चालबाजी ही होती, तो वे पकड़े ही क्यों जाते! पहली बात। जिनमें कपट और चालबाजी है, वे तो पकड़े नहीं गए। वे तो बड़े स्थानों में बैठे हैं; वे तो दिल्ली में विराजमान हैं।
जो पकड़ जाते हैं, वे सीधे-सादे लोग हैं, इसीलिए पकड़ जाते हैं। दुनिया में छोटे अपराधी पकड़े जाते हैं। बड़े अपराधी तो प्रधानमंत्री और राष्ट्रपति बन जाते हैं। दुनिया में छोटे अपराधी जेलखानों में मिलेंगे; बड़े अपराधियों के नाम पर इतिहास लिखे जाते हैं! नेपोलियन, और सिकंदर, और चंगेज, और नादिर, और स्टैलिन, और हिटलर, और माओ--सब हत्यारे हैं। लेकिन उनके नाम पर इतिहास लिखे जाते हैं। उनकी गुण-गाथाएं गायी जाती हैं।
छोटे-मोटे अपराधी जेलों में सड़ते हैं। बड़े अपराधी इतिहास के निर्माता हो जाते हैं। तुम्हारा सारा इतिहास बड़े अपराधियों की कथाओं का

इतिहास है, और कुछ भी नहीं। असली इतिहास नहीं है। असली इतिहास लिखा नहीं गया। असली इतिहास लिखा जा सके, ऐसी अभी मनुष्य की चित्तदशा नहीं है।
अगर असली इतिहास लिखा जा सके, तो बुद्ध होंगे उस इतिहास में, महावीर होंगे, कबीर होंगे, नानक होंगे, दादू होंगे; मीरा होगी, सहजो होगी। क्राइस्ट, जरथुस्त्र, लाओत्सू और च्वांगत्सू--ऐसे लोग होंगे। रिंझाई, नारोपा, तिलोपा--ऐसे लोग होंगे। फ्रांसिस, इकहार्ट, थेरेसा--ऐसे लोग होंगे। मोहम्मद, राबिया, बायजीद, मंसूर--ऐसे लोग होंगे।
लेकिन ऐसे लोगों का तो कुछ पता नहीं चलता। फुट नोट भी इतिहास में उनके लिए नहीं लिखे जाते। उनका नाम भी लोगों को ज्ञात नहीं है! इस पृथ्वी पर अनंत संत हुए हैं, उनका नाम भी लोगों को ज्ञात नहीं है। और वे ही असली इतिहास हैं। वे ही असली नमक हैं पृथ्वी के। उनके कारण ही मनुष्य में थोड़ी गरिमा और गौरव है।
चोर आया; प्रधान था चोरों का। उसने यह बात सुनी; वह भरोसा न कर सका! उसने तो सदा जाना कि धन सोना-चांदी, हीरे-जवाहरात में है। तो यहां कोई और धन बंट रहा है! हम इसका सब लूटे लिए जा रहे हैं और यह कहती है, जा--हंसकर--ले जाने दे चोरों को। कूड़ा-कर्कट है। यहां तू विघ्न मत डाल। मेरे ध्यान में खलल खड़ी न कर। मुझे चुका मत। एक शब्द भी चूक जाएगा, तो मैं पछताऊंगी। वह सारी संपत्ति चली जाए, यह एक शब्द सुनायी पड़ जाए, तो बहुत है। चोर ठिठक गया।
मेरे देखे, अपराधी सदा ही सीधे-सादे लोग होते हैं। उनमें एक तरह की निर्दोषता होती है; एक तरह का बालपन होता है। वह ठिठक गया। तो उसने कहाः फिर हम भी क्यों न लूटें इसी धन को। तो हम कब तक वही हीरे-जवाहरात लूटते रहें! जब इसको उनकी चिंता नहीं है, तो जरूर कुछ मामला है; कुछ राज है। हम कुछ गलत खोज रहे हैं।
वह भागा गया। उसने अपने साथियों को भी कहा--कि मैं तो जाता हूं सुनने; तुम आते हो? क्योंकि वहां कुछ बंटता है। मुझे समझ में नहीं आ रहा है अभी कि क्या बंट रहा है। कुछ सूक्ष्म बरस रहा होगा वहां। अभी मेरी समझ नहीं है कि साफ-साफ क्या हो रहा है; लेकिन एक बात पक्की है कि कुछ हो रहा है। क्योंकि हम यह सब लिए जा रहे हैं और उपासिका कहती हैः ले जाने दो। लेकिन मेरे ध्यान में बाधा मत डालो। यहां मैं सुनने बैठी हूं। धर्म-श्रवण कर रही हूं। इसमें खलल नहीं चाहिए। तो जरूर उसके भीतर कोई संगीत बज रहा है, जो बाहर से दिखायी नहीं पड़ता। और भीतर कोई रसधार बह रही है, जो बाहर से पकड़ में नहीं आती। हम भी चलें; तुम भी चलो। हम कब तक यह कूड़ा-कर्कट इकट्ठा करते रहेंगे! तो हमें अब तक ठीक धन का पता नहीं था।
शायद चोर भी ठीक धन की तलाश में ही गलत धन को इकट्ठा करता रहता है। यही मेरा कहना है। इस दुनिया में सभी लोग असली धन को ही खोजने में लगे हैं, लेकिन कुछ लोग गलत चीजों को असली धन समझ रहे हैं; तो उन्हीं को पकड़ते हैं। जिस दिन उनको पता चल जाएगा कि यह असली धन नहीं है, उसी दिन उनके जीवन में रूपांतरण, क्रांति, नए का आविर्भाव हो जाएगा। उस दिन उन चोरों के जीवन में हुआ।
उन्होंने सब, जो ले गए थे बाहर, जल्दी से भीतर पूर्ववत रख दिया। भागे धर्म-सभा की ओर। सुना। पहली बार सुना। कभी धर्म-सभा में गए ही नहीं थे। धर्म-सभा में जाने की फुर्सत कैसे मिलती! जब लोग धर्म-सभा में जाते, तब वे चोरी करते। तो धर्म-सभा में कभी गए नहीं थे। पहली बार ये अमृत-वचन सुने।
ख्याल रखना, अगर पंडित होते, शास्त्रों के जानकार होते, तो शायद कुछ पता न चलता। तुमसे मैं फिर कहता हूंः पापी पहुंच जाते हैं और पंडित चूक जाते हैं। क्योंकि पापी सुन सकते हैं। उनके पास बोझ नहीं है ज्ञान का।
उनके पास शब्दों की भीड़ नहीं है। उनके पास सिद्धांतों का जाल नहीं है।
पापी इस बात को जानता है कि मैं अज्ञानी हूं, इस कारण सुन सकता है।
पंडित सोचता हैः मैं ज्ञानी हूं। मैं जानता ही हूं, इसलिए क्या नया होगा यहां! क्या नया मुझे बताया जा सकता है? मैंने वेद पढ़े। मैंने उपनिषद पढ़े।
गीता मुझे कंठस्थ है। यहां मुझे क्या नया बताया जा सकता है? इसलिए पंडित चूक जाता है।

धन्यभागी थे कि वे लोग पंडित नहीं थे और चोर थे। जाकर बैठ गए। अवाक होकर सुना होगा। पहले सुना नहीं था। कुछ पूर्व-ज्ञान नहीं था, जिसके कारण मन खलल डाले।
उन्होंने वहां अमृत बरसते देखा। वहां उन्होंने अलौकिक संपदा बंटते देखी। उन्होंने जी भरकर उसे लूटा। चोर थे! शायद इसी को लूटने की सदा कोशिश करते रहे थे। बहुत बार लूटी थी संपत्ति, लेकिन मिली नहीं थी। इसलिए चोरी जारी रही थी। आज पहली दफे संपत्ति के दर्शन हुए।
फिर सभा की समाप्ति पर वे सब उपासिका के पैरों पर गिर पड़े। क्षमा मांगी। धन्यवाद दिया। और चोरों के सरदार ने उपासिका से कहाः आप हमारी गुरु हैं। आपके वे थोड़े से शब्द--कि जा; चोरों को ले जाने दे जो ले जाना हो। आपकी वह हंसी, और आपका वह निर्मल भाव, और आपकी वह निर्वासना की दशा, और आपका यह कहना कि मेरे धर्म-श्रवण में बाधा न डाल--हमारे जीवन को बदल गयी। आप हमारी गुरु हैं। अब हमें अपने बेटे से प्रव्रज्या दिलाएं। हम सीधे न मांगेंगे संन्यास। हम आपके द्वारा मांगेंगे। आप हमारी गुरु हैं। उपासिका अपने पुत्र से प्रार्थना कर उन्हें दीक्षित करायी। वे चोर अति आनंदित थे। उनके जीवन में इतना बड़ा रूपांतरण हुआ--आनंद की बात थी। जैसे कोई अंधेरे गर्त से एकदम आकाश में उठ जाए। जैसे कोई अंधेरे खाई-खड्डों से एकदम सूर्य से मंडित शिखर पर बैठ जाए। जैसे कोई जमीन पर सरकता- सरकता अचानक पंख पा जाए और आकाश में उड़े।
उनके आनंद की कोई सीमा नहीं थी। क्योंकि कोई चोरी करता रहे--कितनी ही चोरी करे, और कितना ही कुशल हो, और कितना ही सफल हो, और कितना ही धन इकट्ठा करे--चोरी काटती है भीतर। चोरी दंश देती है। कुछ मैं बुरा कर रहा हूं, यह पीड़ा तो घनी होती है। पत्थर की तरह छाती पर बैठी रहती है।
चोर जानता है--चोर नहीं जानेगा, तो कौन जानेगा--कि कुछ गलत मैं कर रहा हूं। करता है; करता चला जाता है। जितना करता है, उतना ही गलत का बोझ भी बढ़ता जाता है। आज सब बोझ उतर गया।
संन्यस्त हुए वे; दीक्षित हुए वे। वे अति आनंदित थे। वे प्रव्रजित हो एकांत में वास करने लगे; मौन रहने लगे; ध्यान में डूबने लगे। संसार उन्होंने पूरी तरह देख लिया था, सब तरह देख लिया था। बुरा करके, भला करके, सब देख लिया था। अब करने को कुछ बचा नहीं था। अब वे न-करने में उतरने लगे। एकांत का अर्थ है न-करना। मौन का अर्थ है न-करना। ध्यान का अर्थ है न-करना। अब वे शांत शून्य में डूबने लगे।
उन्होंने शीघ्र ही ध्यान की शाश्वत संपदा पायी। बौद्ध कथा तो ऐसा कहती है कि बुद्ध को आकाश से उड़कर जाना पड़ा। मैंने छोड़ दिया उस बात को। तुम्हें भरोसा न आएगा। नाहक तुम्हें शंका के लिए क्यों कारण देने। लेकिन कहानी मीठी है। इसलिए एकदम छोड़ भी नहीं सकता; याद दिलाऊंगा ही।
कहानी तो यही है कि उन चोरों ने जंगल में बैठकर... । उन्होंने बुद्ध को देखा ही नहीं। उन्होंने तो उपासिका को गुरु मान लिया। उपासिका के माध्यम से उसके बेटे सोण से दीक्षित हो गए। उन्होंने बुद्ध को देखा नहीं है। लेकिन उनकी प्रगाढ़ ध्यान की दशा--बुद्ध को जाना पड़ा हो आकाश-मार्ग से तो कुछ आश्चर्य नहीं। करोगे क्या, जाना ही पड़ेगा।
मैं यह नहीं कह रहा हूं कि आकाश-मार्ग से गए ही होंगे। मगर जो मैं कह रहा हूं, वह यह कि बुद्ध को जाना ही पड़ेगा। इतने ध्यान की गहराई और ऐसे साधारणजनों में, ऐसे पापियों में! बुद्ध खिंचे चले आए होंगे। आना ही पड़ा होगा।
आकाश-मार्ग से आने की कथा इतना ही बताती है कि बुद्ध को उड़कर आना पड़ा। इतनी जल्दी आना पड़ा कि शायद पैदल चलकर आने में देर लगेगी, उतनी देर नहीं की जा सकती। और ये चोर--इसलिए कहता हूं इनको, भूतपूर्व और अभूतपूर्व--ये चोर ऐसी महान गहराई में उतरने लगे कि बुद्ध को लगा कि और थोड़ी देर हो गयी, तो लांछन होगा। इसलिए जाना पड़ा होगा।
उन्होंने जाकर ये सूत्र इन चोरों से कहे थे।

सिंच भिक्खु! इमं नावं सित्ता ते लहुमेस्सति।

"हे भिक्षु! इस नाव को उलीचो; उलीचने पर यह तुम्हारे लिए हलकी हो जाएगी।"
किस नाव की बात कर रहे हैं? यह जो मन की नाव है, इसको उलीचो। इसमें कुछ
न रह जाए। इसमें कामना न हो, वासना न हो, महत्वाकांक्षा न हो। इसमें खोज न हो, इसमें मांग न हो, इसमें प्रार्थना न हो। इसमें विचार न हों, इसमें भाव न हों। इसमें कुछ भी न बचे। उलीचो भिक्षुओ। सिंच भिक्खु! इस नाव से सब उलीच दो। इस नाव को बिल्कुल खाली कर लो, शून्य कर लो। यह तुम्हारे लिए हलकी हो जाएगी।
"राग और द्वेष को छिन्न कर फिर तुम निर्वाण को प्राप्त हो जाओगे।"
यह नाव हलकी हो जाए, इतनी हलकी कि इसमें कोई वजन न रह जाए, तो इसी क्षण निर्वाण उपलब्ध हो जाता है। शून्य मन का ही दूसरा नाम है--निर्वाण। जहां मन शून्य है, वहां सब पूर्ण है। जहां मन भरा है, वहां सब अधूरा है।
"जो पांच को काट दे भिक्षुओ! पांच को छोड़ दे भिक्षुओ! पांच की भावना करे भिक्षुओ! और पांच के संग का अतिक्रमण कर जाए भिक्षुओ! उसी को बाढ़ को पार कर गया भिक्षु कहते हैं। वही उस पार चला गया।"
ये पांच क्या हैं?
जो पांच को काट दे भिक्षुओ--पंच छिन्दे।
पांच चीजें बुद्ध ने काटने योग्य कही हैंः सत्काय दृष्टि--कि मैं शरीर हूं; विचिकित्सा, संदेह, श्रद्धा का अभाव; शीलव्रत परामर्श--दूसरों को सलाह देना शील और व्रत की और स्वयं अनुगमन न करना; काम-राग और व्यापाद-- सदा कामना से भरे रहना, यह पा लूं, वह पा लूं। ऐसा हो जाऊं, वैसा हो जाऊं। व्यापाद--और सदा व्यस्त; कभी क्षणभर को विराम नहीं। ये पांच चीजें छेद देने जैसी हैं। इनको छेद्य-पंचक कहा।
फिर पांच को छोड़ दे जो--हेय-पंचक। रूप-राग, अरूप-राग, मान, औद्धत्य और अविद्या।
रूप का आकर्षण। पानी पर उठे बबूले जैसा है रूप। सुबह फूल खिला, सांझ गया। अभी कोई सुंदर था, युवा था, अभी बूढ़ा हो गया।
अरूप रागः और ऐसा न हो कि रूप से राग छूटे, सौंदर्य से राग छूटे, तो तुम असौंदर्य से राग को बांध लो; कुरूप का राग करने लगो। वह भी भूल हो गयी। ऐसे लोग भी हैं, जो रूप से राग छोड़ देंगे, तो अरूप के राग में पड़ जाएंगे। वह भी छूट जाना चाहिए।
मान--अहंकार। औद्धत्य--जिद्द, हठ, और अविद्या। अविद्या का अर्थ है, स्वयं को न जानना। इन पांच को हेय-पंचक।
और फिर पांच को कहा है--भावना। इनकी भावना करनी। भाव्य-पंचक। श्रद्धा, वीर्य, स्मृति, समाधि और प्रज्ञा।
श्रद्धाः एक सरल भरोसा--अस्तित्व पर, स्वयं पर, जीवन पर।
वीर्यः ऊर्जा। मंद-मंद नहीं जीना चाहिए। ऐसा जीना चाहिए, जैसे मशाल दोनों तरफ से जलती हो। ऊर्जा--वीर्य।
स्मृतिः होशपूर्वक जीना चाहिए। एक-एक बात को स्मरणपूर्वक करना चाहिए।
समाधिः समाधान चित्त की दशा। जहां कोई समस्या न रही, कोई प्रश्न न रहे; उत्तर की कोई तलाश न रही। जहां सब विचारों की तरंगें शांत हो गयीं।
जहां मन न रहा। मनन न रहा, तो मन न रहा--समाधि।
और प्रज्ञाः और जहां समाधि घटती है, वहीं तुम्हारे भीतर अंतःप्रज्ञा
का दीया जलता है।
ये पांच भावने योग्य हैं।
और उल्लंघ्य-पंचक। और पांच का अतिक्रमण कर जाना हैः राग, द्वेष, मोह, मान, मिथ्या-दृष्टि।
"प्रज्ञाहीन मनुष्य को ध्यान नहीं होता है, ध्यान न करने वाले को प्रज्ञा नहीं होती है। जिसमें ध्यान और प्रज्ञा हैं, वही निर्वाण के समीप है।"
ये दो शब्द बड़े बहुमूल्य हैं--ध्यान और प्रज्ञा।

ऐसा समझो कि दीया जलाया। तो दीए का जलना तो ध्यान है। और फिर जो रोशनी दीए की चारों तरफ फैलती है, वह प्रज्ञा। ये संयुक्त हैं।
इसलिए बुद्ध कहते हैं--

नत्थि झानं अपांंस्स... ।

"प्रज्ञाहीन मनुष्य को ध्यान नहीं होता... ।"
क्योंकि ऐसी तुमने कोई ज्योति देखी, जिसमें प्रभा न हो? बिना प्रभा के ज्योति कैसे होगी! प्रभाहीन ज्योति नहीं होती। जहां दीया जलेगा, वहां रोशनी भी होगी। ऐसा नहीं हो सकता कि दीया जले और रोशनी न हो। इससे उलटा भी नहीं हो सकता कि रोशनी हो और दीया न जले।
इसलिए बुद्ध कहते हैं--

नत्थि झानं अपांंस्स पांं नत्थि अझायतो।

"प्रज्ञाहीन मनुष्य को ध्यान नहीं और ध्यान न करने वाले को प्रज्ञा नहीं।"
ध्यान और प्रज्ञा ऐसे ही जुड़े हैं, जैसे मुरगी और अंडा। बिना मुरगी के अंडा नहीं; बिना अंडे के मुरगी नहीं। इसलिए बुद्ध कहते हैं कि तुम यह मत पूछो कि पहले क्या, पीछे क्या। वे दोनों साथ-साथ हैं। संयुक्त हैं। युगपत घटते हैं।
"जिसमें ध्यान और प्रज्ञा हैं, वही निर्वाण को उपलब्ध हो जाता है।" निर्वाण यानी उसका अंधेरा मिट जाता है। उसके जीवन में फिर रोशनी ही रोशनी हो जाती है।
इन भिक्षुओं को, जो कभी चोर थे, बुद्ध ने ये अभूतपूर्व वचन कहे। वे करीब पहुंच रहे थे; आखिरी क्षण आ रहा था। नाव को जरा और उलीचना था। कुछ थोड़ी सी चीजें छेदनी थीं; कुछ थोड़ी सी चीजें छोड़नी थीं; कुछ थोड़ी सी चीजें अतिक्रमण करनी थीं; कुछ थोड़ी सी चीजें भावना करनी थीं। उस आखिरी घड़ी में बुद्ध के सहारे की जरूरत थी।
सदगुरु के सहारे की जरूरत दो जगह सर्वाधिक हैः पहली घड़ी में और अंतिम घड़ी में। मध्य का मार्ग इतना कठिन नहीं है। पहली घड़ी कठिन; अंतिम घड़ी कठिन। और ये दोनों घटनाएं दोनों के संबंध में हैं।
पहली, पहली घड़ी के संबंध में। ब्राह्मण भोजन करने बैठा है। उसके भीतर निश्चय का उदय हो रहा है; और बुद्ध का जाना--वह पहली घड़ी थी। वहां पहला धक्का चाहिए। एक दफा आदमी चल पड़े, तो चलता जाता है।
और यह दूसरी घटना आखिरी घड़ी की। वे चोर ध्यान में गहरे उतरते-उतरते समाधि के करीब पहुंच रहे थे; आखिरी घड़ी करीब आ रही थी। उनको आखिरी धक्का चाहिए, ताकि वे महाशून्य में, निर्वाण में विलीन हो जाएं।
इन पर मनन करना। ये सूत्र तुम्हारे जीवन में भी ऐसी ही क्रांति ला सकते हैं।
आज इतना ही।

एस धम्मो सनंतनो, भाग 12
एक सौ चौदह प्रवचन

जीने की कला

पहला प्रश्नः आत्मा और परमात्मा को अस्वीकार करने वाले गौतम बुद्ध धर्म-गंगा को पृथ्वी पर उतार लाने वाले विरले भगीरथों में गिने गए। और आपने अपने धम्मपद-प्रवचन को नाम दिया--एस धम्मो सनंतनो। धम्मपद-प्रवचन के इस समापन-पर्व में हमें संक्षेप में एक बार फिर इस धर्म को समझाने की अनुकंपा करें।

आत्मा और परमात्मा को मानना--वस्तुतः किसी भी चीज को मानना--कमजोरी और अज्ञान का लक्षण है। मानना ही अज्ञान का लक्षण है। जानने वाला मानता नहीं। जानता है, मानने की कोई जरूरत नहीं। मानने वाला जानता नहीं। जानता नहीं, इसीलिए मानता है।
मानने और जानने के फर्क को खूब गहरे से समझ लेना। मानने से जानने की भ्रांति पैदा हो जाती है। वह सस्ता उपाय है। वह झूठी दवा है।
मान लिया--ईश्वर है। इस मानने में बड़ी तरकीब है मन की। अब जानने की कोई जरूरत न रही। मानने से, जानने का भ्रम खड़ा कर लिया। मानते रहे वर्षों तक, दोहराते रहे कि ईश्वर है, दोहराते रहे कि ईश्वर है--मंदिर और मस्जिद में, और गिरजे और गुरुद्वारे में--तो धीरे-धीरे भूल ही जाओगे कि मुझे पता नहीं है। बार-बार दोहराने से ऐसी प्रतीति होने लगेगी कि हां, ईश्वर है।
मगर यह तुम्हारी पुनरुक्ति है। यह तुम्हारा ही मनोभाव है, जो सघन हो गया। यह आत्म-सम्मोहन है। यह आटो-हिप्नोसिस है। यह केवल संस्कार मात्र है। तुम कहीं पहुंचे नहीं। तुम बदले नहीं। तुम्हारे जीवन में कोई क्रांति नहीं हुई। तुम वैसे के वैसे हो। सिर्फ तुमने एक आवरण ओढ़ लिया। तुमने राम-नाम चदरिया ओढ़ ली। भीतर तुम ठीक वैसे हो, जैसे पहले थे। तुमने विश्वास का वस्त्र ओढ़ लिया।
किसको धोखा दे रहे हो? और तुमने मूलतः अपने को एक भ्रांति और झूठ के साथ बांध लिया।
जिस दिन पहली बार तुमने माना कि ईश्वर है--वह झूठ था, क्योंकि तुमने बिना जाने माना था। तुमने बेईमानी की हद्द कर दी!
तुम संसार में धोखा-धड़ी करते थे--ठीक। तुम बाजार-दुकान पर धोखा-धड़ी करते थे--ठीक। तुम मंदिर में भी अपना झूठ ले आए! तुम तो न बदले मंदिर में आकर; तुमने मंदिर का ही रूप बदल दिया! मंदिर भी विकृत हुआ, भ्रष्ट हुआ तुम्हारे साथ। तुम तो न तर सके नाव को लेकर; नाव को डुबा बैठे! आप डुबंते पांडे, ले डूबे जजमान!
और जब पहले दिन ही बात झूठ थी, तो दोहराते-दोहराते अंतिम दिन कैसे सच
हो जाएगी? झूठ दोहराने से सच होता है? लाख दोहराओ, झूठ झूठ है। लेकिन झूठ दोहराने से प्रतीत होता है कि सच हो गया।
अडोल्फ हिटलर ने यही अपनी आत्मकथा मेन कैम्फ में लिखा है कि झूठ को दोहराते जाओ, दोहराते-दोहराते एक दिन सच हो जाता है। सुनो ही मत किसी की; दोहराते जाओ।
बार-बार सुनने से लोगों को भरोसा आने लगता है कि सच ही होगा--जब इतनी जगह दोहराया जा रहा है; इतने लोग दोहरा रहे हैं; इतने मंदिर-मस्जिद, इतने पंडित-पुरोहित, इतने मौलवी दोहरा रहे हैं एक ही बात। मां-बाप, स्कूल, समाज, संस्कृति--सब दोहरा रहे हैंः ईश्वर है। इस दोहराने वालों की जमात में तुमने भी दोहराना शुरू कर दिया। और धीरे-धीरे लगेगा कि सच हो गया है। लेकिन झूठ कभी सच नहीं होता।
दोहराने से कैसे कोई बात सच हो सकती है! तुम लाख दोहराते रहो कि यह पत्थर गुलाब का फूल है। पत्थर पत्थर है, गुलाब का फूल नहीं होगा। लेकिन यह हो सकता है कि बहुत बार दोहराने से तुम्हें गुलाब का फूल दिखायी पड़ने लगे।
वह झूठा गुलाब का फूल होगा। वह सपना है, जो तुमने पत्थर पर आरोपित कर लिया।

कुछ दिन मत दोहराओ, फिर पत्थर पत्थर हो जाएगा। पत्थर कभी कुछ और हुआ ही न था; पत्थर पत्थर ही था। सिर्फ दोहराने से तुम भ्रांति में पड़े थे।
सब चीजें तुमने झूठ कर डाली हैं। तुमने धर्म भी झूठ कर डाला है।
इसलिए बुद्ध कहते हैंः न तो ईश्वर को मानने की जरूरत है; न आत्मा को मानने की जरूरत है। मानने की जरूरत ही नहीं है। मानने की जड़ काटने के लिए उन्होंने कहा, ईश्वर नहीं है, आत्मा नहीं है।
ऐसा नहीं कि ईश्वर नहीं है। ऐसा नहीं कि आत्मा नहीं है। ऐसा तो बुद्ध कैसे कहेंगे! बुद्ध जानते हैं।
लेकिन तुम्हारी भ्रांतियां बहुत हो चुकीं और उनकी जड़ काटनी जरूरी है।
और एक ही तरह से जड़ कट सकती है--कि बुद्ध जैसा पुरुष कह दे कि नहीं कोई ईश्वर है; और नहीं कोई आत्मा है; ताकि तुम झकझोरे जाओ; ताकि तुम्हारी भ्रांति के बाहर तुम आओ; ताकि तुमने जो झूठ निर्मित कर लिए हैं, और झूठों के आधारों पर जो भवन खड़े कर लिए हैं, वे गिर जाएं। तुम्हारे ताश के पत्तों से बने घर को फूंक मारी बुद्ध ने। तुम्हारी कागज की नावों को डुबा दिया तुम्हारे सामने; बेरहमी से डुबा दिया।
इसलिए तो यह देश बुद्ध को माफ नहीं कर पाया। इस देश ने बुद्ध को इस देश
से ही उखाड़ फेंका।
जो तुम्हारे ताश के महलों को गिराएगा, उससे तुम नाराज हो ही जाओगे। जो तुम्हारे सपनों को तोड़ेगा और तुम्हें नींद से उठाएगा, उसके तुम दुश्मन हो ही जाओगे। और जैसा अथक प्रयास बुद्ध ने किया, किसी और ने कभी नहीं किया। बुद्ध की चोट संघातक है। जो हिम्मतवर थे और जिन्होंने झेल ली अपनी छाती पर, वे नए हो गए, उनका नया जन्म हो गया। जो कमजोर थे, वे क्रुद्ध हो गए। जो कमजोर थे, उन्होंने बदला लिया। बुद्ध के सामने तो न ले सके; लेकिन बुद्ध के जाने पर बदला लिया।
जिस देश में बुद्ध जैसा व्यक्ति पैदा हुआ, उस देश में बौद्धों का नाम मात्र न बचा! यह कैसे हुआ होगा? जरूर इस देश के मन में बड़ी प्रतिक्रिया हुई होगी--कि हमारा भगवान झूठ? हमारी आत्मा झूठ? हमारे शास्त्र झूठ? हमारे वेद झूठ! हम झूठ! सब झूठ! सिर्फ यह एक आदमी गौतम बुद्ध सच!
ऐसा बुद्ध ने कहा नहीं था कि सिर्फ मैं सच। बुद्ध ने इतना ही कहा थाः मान्यता झूठ; जानना सच। विश्वास झूठ; बोध सच। यही बुद्धत्व के धर्म का सार है।
बोध सच। जागो। जागकर देखो। मानकर मत देखो, क्योंकि मानकर देखने से तो तुम्हारी आंख पर चश्मा हो जाता है--मानने का चश्मा! तुमने मान लिया कि जगत लाल है। और मानते चले गए। और लाल को ही देखते चले गए; देखने की चेष्टा करते रहे; सम्हालते रहे। इसी को तो लोग साधना कहते हैं--लाल को देखने की चेष्टा! फिर एक दिन तुम्हें लाल दिखायी पड़ने लगा। हरे वृक्ष लाल मालूम होने लगे! नीला आकाश लाल मालूम होने लगा। तब तुमने समझा कि अब पहुंच गए।
कहीं नहीं पहुंचे। तुम और भटक गए। तुम और गिर गए। तुम जहां थे, वहां से
भी पीछे फिंक गए।
आंख खोलो और विश्वासों की धूल झाड़ दो। बुद्ध का संदेश सीधा-साफ है।
आंख हो और विश्वास-मुक्त हो। चैतन्य हो और संस्कार-मुक्त हो। बोध हो और विचार-मुक्त हो। बस, फिर जो है, वही दिखायी पड़ जाएगा।
जो है, उसको बुद्ध ने नाम भी नहीं दिया, क्योंकि नाम देना खतरनाक है।
तुम इतने खतरनाक लोग हो कि नाम देते ही नाम को पकड़ लेते हो। जिसको नाम दिया है, उसको तो भूल ही जाते हो। इसलिए बुद्ध ने कहा--जो है।
उस जो है का स्वभाव ही धर्म है। बिना विचार के जगत को देखना धर्म को जानना है। निर्विचार भाव में अस्तित्व को अनुभव करना धर्म की प्रतीति है, धर्म का साक्षात्कार है।
परमात्मा नहीं है, आत्मा नहीं है--सिर्फ इसीलिए कहा बुद्ध ने कि अगर
ये हैं--ऐसा कहो, तो तुम्हारी पुरानी झूठी धारणाओं को सबलता मिलती है, बल मिलता है।
मैं भी रोज यही करता हूं। चेष्टा करता हूं कि तुम्हारी पुरानी धारणा टूट जाए। और ऐसा नहीं है कि तुम्हारी पुरानी धारणा गलत ही होनी चाहिए।

धारणा गलत है। यह हो सकता है, ईश्वर है। लेकिन ईश्वर को मानने की वजह से तुम नहीं देख पा रहे हो। ईश्वर के मानने को छीन लेना है, ताकि जो है, वह प्रगट हो जाए।
फिर दोहरा दूंः कमजोर आदमी मानता है। कायर मानते हैं। जिनमें थोड़ा साहस है, हिम्मत है, वे जानने की यात्रा पर चलते हैं।
जानने की यात्रा पर बड़े साहस की जरूरत है। सबसे बड़ा साहस तो यही है कि अपनी सारी मान्यताओं को छोड़ देना है। मान्यताओं को छोड़ते ही तुम्हें लगेगा कि तुम अज्ञानी हो गए। क्योंकि तुम्हारी मान्यताओं के कारण तुम ज्ञानी प्रतीत होते थे। एकदम नग्न हो जाओगे, अज्ञानी हो जाओगे। सब हाथ से छूट जाएगा, सब संपदा तुम्हारे तथाकथित ज्ञान की। इसलिए हिम्मत चाहिए।
धन छोड़ने के लिए इतनी हिम्मत की जरूरत नहीं है, क्योंकि धन बाहर है। ज्ञान छोड़ने के लिए सबसे बड़े हिम्मत की जरूरत है, क्योंकि ज्ञान भीतर बैठ गया है। धन तो ऐसा है, जैसे वस्त्र किसी ने पहने हैं। फेंक दिए। नग्न हो गया। ज्ञान ऐसे है, जैसे हड्डी-मांस-मज्जा-चमड़ी; उखाड़ो, अलग करो--बड़ी पीड़ा होती है।
इसलिए लोग धन को छोड़कर जंगल चले जाते हैं, लेकिन ज्ञान को साथ ले जाते हैं। हिंदू जंगल में बैठकर भी हिंदू रहता है! जैन जंगल में बैठकर भी जैन रहता है। मुसलमान जंगल में बैठकर भी मुसलमान रहता है। क्या मतलब हुआ? संस्कार तो साथ ही ले आए।
कहते होः समाज को छोड़ दिया। क्या खाक छोड़ा! जिस समाज ने तुम्हें ये संस्कार दिए थे, वे तो तुम साथ ही ले आए। यही तो असली समाज है, जो तुम्हारे भीतर बैठा है। समाज बाहर नहीं है। समाज बड़ा होशियार है और कुशल है। उसने भीतर बैठकर तुम्हारे अंतस्तल में जगह बना ली। अब तुम कहीं भी भागो, वह तुम्हारे साथ जाएगा। जब तक तुम जागोगे नहीं, समाज तुम्हारा पीछा करेगा। बुद्ध ने कहा--जागो। जागकर जिसका दर्शन होता है, उसको ही उन्होंने धर्म कहा। वह धर्म शाश्वत है, सनातन है। एस धम्मो सनंतनो।
धर्म तुम्हारा स्वभाव है। अस्तित्व का स्वभाव; तुम्हारा स्वभाव; सर्व का स्वभाव। धर्म ही तुम्हारे भीतर श्वास ले रहा है। और धर्म ही वृक्षों में हरा होकर पत्ते बना है। और धर्म ही छलांग लगाता है हरिण में। और धर्म ही मोर बनकर नाचता है। और धर्म ही बादल बनकर घिरता है। और धर्म ही सूरज बनकर चमकता है। और धर्म ही है चांद-तारों में। और धर्म ही है सागरों में। और धर्म ही सब तरफ फैला है।
धर्म से मतलब है स्वभाव। इस सबके भीतर जो अंतस्तल है, वह एक ही है। जीवंतता अर्थात धर्म। चैतन्य अर्थात धर्म। यह होने की शाश्वतता अर्थात धर्म।
यह होना मिटता ही नहीं। तुम पहले भी थे--किसी और रूप, किसी और रंग, किसी
और ढंग में। तुम बाद में भी होओगे--किसी और रंग, किसी और रूप, किसी और ढंग में। तुम सदा से थे और तुम सदा रहोगे। लेकिन तुम जैसे नहीं। तुम तो एक रूप हो। इस रूप के भीतर तलाशो; जरा खोदो गहराई में। इस देह के भीतर जाओ; इस मन के भीतर जाओ और वहां खोजो। जहां लहर सागर बन जाती है, जहां लहर सागर है। जब भी तुम सागर में उठी किसी लहर में जाओगे, तो थोड़ी देर में, देर-अबेर सागर मिल जाएगा।
ऐसे ही तुम एक लहर हो। लहरें बनती हैं, मिटती हैं; सागर न बनता, न मिटता। सागर शाश्वत है, सनातन है। लेकिन तुमने लहर को खूब जोर से पकड़ लिया है। तुम कहते होः मैं यह लहर हूं। और तुम इस चिंता में भी लगे हो कि कैसे यह लहर शाश्वत हो जाए।
यह कभी न हुआ है, न होगा। लहरें कैसे शाश्वत हो सकती हैं! लहर का तो अर्थ ही हैः जो लहरायी और गयी। आयी और गयी--वही लहर। लहर कैसे शाश्वत हो सकती है? बनती नहीं कि मिटने लगती है। बनने में ही मिटती है। तुम तो जन्मे नहीं और मरने लगे। जन्म के साथ ही मृत्यु शुरू हो गयी।
लहर तो बनने में ही मिटती है। लहर शाश्वत नहीं हो सकती। लहर को शाश्वत बनाने का जो मोह है, इसी का नाम संसार है। यह चेष्टा--कि जैसा मैं हूं, ऐसा ही बच जाऊं। बड़े कंजूस हो! ऐसा ही बच जाऊं, जैसा हूं! और जैसे हो, इसमें कुछ

सार नहीं मिल रहा है--मजा यह है। जैसे हो, इसमें कुछ मिला नहीं है--न कोई सौंदर्य, न कोई सत्य, न कोई आनंद। फिर भी जैसा हूं, ऐसा ही बना रहूं!
तुमने कभी सोचा कि अगर यह तुम्हारी आकांक्षा पूरी हो जाए, तो इससे बदतर कोई दशा होगी! तुम जैसे हो, अगर ऐसे ही रह जाओ; सदा-सदा के लिए ऐसे ही, जैसे तुम हो; ठहर जाओ। तुमने सोचा भी नहीं है, नहीं तो तुम घबड़ा जाओगे। तुम कहने लगोगेः नहीं प्रभु! भूल हो गयी। यह प्रार्थना वापस लेता हूं। ऐसा ही रह जाऊंगा--ठहरा, रुका, अवरुद्ध! कष्टपूर्ण हो जाएगा। नहीं; मुझे जाने दो, नए को आने दो।
संसार है--मैं जैसा हूं, वैसे ही रहने की आकांक्षा। संन्यास है--जैसा हो, वैसा ही हो जाने की तत्परता। जैसा हो! आज आदमी, तो आदमी; कल कब्र में पड़ोगे और घास बनकर उगोगे। हरी घास कब्र पर परम सुंदर है।
आदमी से थक नहीं गए? घास नहीं होना है? घास का फूल नहीं बनना है?
आज आदमी हो, कल आकाश में बादल होकर मंडराओ। आज आदमी हो, कल एक तारे होकर चमको। आज आदमी हो, कल एक गौरैया होकर गीत गाओ सुबह-सुबह सूरज के स्वागत में। आज आदमी हो, कल गुलाब का फूल बनो--कि कमल बनकर किसी सरोवर में तैरो।
आदमी ही रहोगे! इसी लहर के साथ जड़? जड़ता को पकड़ लोगे?
आज पुरुष हो, कल स्त्री; आज स्त्री हो, कल पुरुष। रूप को बहने दो; धारा
को बहने दो। इस सरिता को रोको मत, अवरुद्ध मत करो।
जो हो, उसका स्वीकार, तथाता--संन्यास। जैसा मैं हूं, बस ऐसा ही रहे सदा, ऐसी जड़ आग्रह की अवस्था, ऐसा दुराग्रह--संसार।
संसार में अगर दुख मिलता है, तो इसीलिए दुख मिलता है, क्योंकि जो नहीं
हो सकता, उसकी तुम मांग करते हो। और संन्यासी अगर सुखी है, प्रफुल्लित है, आनंदित है, तो कोई खजाना मिल गया है उसे। वह खजाना क्या है? वह खजाना यही है कि जो होता है, वह उसी के साथ राजी है। जैसा होता है, उसमें रत्तीभर भिन्न नहीं चाहता। भिन्न की आकांक्षा गयी। उसकी कोई वासना नहीं है। वह कुछ मांगता नहीं है। वह प्रतिपल जीता है आनंद से। जवान है, तो जवानी में प्रसन्न है; और बच्चा था, तो बचपने में प्रसन्न था; और बूढ़ा हो जाएगा, तो बुढ़ापे का सुख लेगा। जीता था, तो जीने का गीत देखा, और जीने का नाच; और मरेगा, तो मृत्यु का नाच देखता हुआ मरेगा। जहां है, जैसा है, उससे अन्यथा या कहीं और होने की आकांक्षा नहीं है।
ऐसी जब दशा बन जाएगी, तो जो तुम्हें ज्ञान होता है, उसका नाम धर्म है। फिर तुम्हें सागर का पता चलता है। तरंगों से तुम मुक्त हो गए; लहरों से मुक्त हो गए। और निश्चित ही सागर शाश्वत है।
बुद्ध ने उसी को धर्म कहा है, जिसको दूसरों ने ईश्वर कहा है। बुद्ध ने उसी को धर्म कहा है, जिसको दूसरों ने आत्मा कहा है। लेकिन आत्मा और ईश्वर के साथ ज्यादा खतरा है। धर्म के साथ उतना खतरा नहीं है।
ईश्वर का मतलब हो जाता हैः कोई बैठा है आकाश में, चला रहा है सारे जगत को। चलो, इसकी खुशामद करें, स्तुति करें। इसको प्रसन्न कर लें किसी तरह, तो अपने लिए कुछ विशेष आयोजन हो जाएगा। अपने पर दया हो जाएगी। इसकी अनुकंपा अपने को मिल जाए, तो हम दूसरों से आगे निकल जाएंगे--धन में, ध्यान में। तो हमारी जो मांगें हैं, हम इससे पूरी करवा लेंगे। चलो इसके पैर दबाएं। चलो, इससे कहें कि हम तुम्हारी चरण-रज हैं।
तो दिशा गलत हो गयी। दिशा वासना की हो गयी। ईश्वर को मानते ही कि ईश्वर आकाश में बैठा है मनुष्य की भांति, स्वभावतः तो जो मनुष्य की कमजोरियां हैं, वे ईश्वर में भी आरोपित हो जाएंगी।
मनुष्य को खुशामद से राजी किया जा सकता है, तो ईश्वर को भी खुशामद से राजी किया जा सकता है। अगर मनुष्य को खुशामद से राजी किया जा सकता है, तो ईश्वर को थोड़ी और सुंदर खुशामद चाहिए; उसका नाम स्तुति! अगर मनुष्य को रिश्वत दी जा सकती है, तो ईश्वर को भी रिश्वत दी जा सकती है। जरा देने में ढंग होना चाहिए; जरा कुशलता और प्रसादपूर्वक। और अगर आदमी से अपनी मांगें पूरी करवायी जा सकती हैं, चाहे वे न्यायसंगत न भी हों, तो फिर ईश्वर से भी पूरी करवायी जा सकती हैं।

तुम चकित होओगेः दुनिया के धर्म-शास्त्रों में ऐसी प्रार्थनाएं हैं,
जो कि धर्म-शास्त्रों में नहीं होनी चाहिए। अधार्मिक प्रार्थनाएं हैं। मगर वे सूचक हैं, इस बात की कि अगर ईश्वर को मनुष्य की तरह मानोगे, तो यह उपद्रव होने वाला है।
वेद में ऐसी सैकड़ों ऋचाएं हैं, जिनमें प्रार्थना कर रहे हैं ऋषि कि हमारे दुश्मन को मार डालो! यहीं तक नहीं, हमारी गाय के थन में दूध बढ़ जाए और दुश्मन की गाय के थन में दूध बिल्कुल सूख जाए। ये किस तरह की प्रार्थनाएं हैं! कि हमारे खेत में इस बार खूब फसल आए और पड़ोसी का खेत बिल्कुल राख हो जाए। ये किस तरह की प्रार्थनाएं हैं! और वेद में!
मगर ये खबर देती हैं कि अगर ईश्वर को आदमी की तरह मानोगे, तो तुम उससे
जो प्रार्थनाएं करोगे, वह भी आदमी की तरह होंगी। यह आदमी की असलियत है! मंदिर भी जाता है, तो क्या मांगता है? कुरान में भी इस तरह के वचन हैं और बाइबिल में भी। सुंदर नहीं हैं।
इस अर्थ में बुद्ध ने बड़ी क्रांतिकारी दृष्टि दी। बुद्ध ने कहाः हटाओ
इस ईश्वर को। इसके कारण वेद की ये अभद्र ऋचाएं पैदा होती हैं। इसके कारण आदमी के भीतर की बेहूदी आकांक्षाओं को सहारा मिलता है। ईश्वर को हटा दो। ईश्वर की जगह नियम को स्थापित किया बुद्ध ने धर्म में। अब नियम से कोई प्रार्थना थोड़े ही कर सकते हो। किसी को तुमने गुरुत्वाकर्षण से प्रार्थना करते देखा--कि आज जरा घर के बाहर जा रहा हूं; हे गुरुत्वाकर्षण! रास्ते पर गिरा मत देना! टांग मत तोड़ देना! क्योंकि और लोगों के, कई के फ्रैक्चर हो गए हैं; मुझे न हो यह। देखो, मैं तुम्हारा भक्त हूं! गुरुत्वाकर्षण से कोई प्रार्थना नहीं करता। करेगा, तो मूढ़ मालूम पड़ेगा। खुद की ही आंखों में मूढ़ मालूम पड़ेगा। लेकिन एक दफा गुरुत्वाकर्षण को भी आदमी का रूप दे दो, कि गुरुत्वाकर्षण जो है वह एक देवता है, जो देखता रहता है कि कौन ठीक चल रहा है, कौन ठीक नहीं चल रहा है। जो इरछा-तिरछा चलता है, उसको गिराता है। दे मारता है। हड्डी तोड़ देता है। अस्पताल में भर्ती करवा देता है। जो सीधा चलता है, सधकर चलता है, सम्हलकर चलता है, उसको बचाता है।
यही तो है। बादल आकाश में गरजे; तुमने कल्पना कर ली इंद्र देवता की--कि नाराज हो रहा है इंद्र देवता! हमसे कुछ भूल हो गयी।
बिहार में भयंकर अकाल पड़ा। और महात्मा गांधी ने पता है क्या कहा! उन्होंने कहाः यह हमारे पापों का फल है। देवता पापों का प्रतिकार, दंड दे रहा है। क्या पाप? हरिजनों के साथ जो हमने पाप किया है, उसका फल दे रहा है। लेकिन वह पाप तो पूरे देश में हो रहा है; सिर्फ बिहार में ही नहीं हो रहा है! तो बिहार के ही लोगों को क्यों सता रहा है? ये बिहारियों ने बेचारों ने क्या बिगाड़ा है?
लेकिन हम जब भी ईश्वर को व्यक्ति की तरह मान लेते हैं, तो कुछ झंझटें आनी शुरू होती हैं।
बुद्ध ने ईश्वर के व्यक्तित्व को पोंछ डाला; व्यक्तित्व को हटा दिया। रूप को गिरा दिया; अरूप बना दिया।
वेद कहते हैंः परमात्मा अरूप है। लेकिन फिर भी उनकी प्रार्थनाएं जो हैं, वे उसको रूप मानकर ही चल रही हैं। बुद्ध ने वस्तुतः परमात्मा को अरूप कर दिया--है ही नहीं परमात्मा; कोई ईश्वर नहीं है। फिर क्या है? फिर एक महानियम है। जीवन का एक शाश्वत नियम है, सब जिसके आधार से चल रहा है।
नियम की प्रार्थना नहीं की जा सकती; नियम से प्रार्थना नहीं की जा सकती। नियम की खुशामद भी नहीं की जा सकती। नियम को रिश्वत भी नहीं दी जा सकती। नियम का तो पालन ही किया जा सकता है। पालन करोगे, सुख पाओगे। नहीं पालोगे, दुख पाओगे। और ऐसा नहीं है कि नियम वहां बैठा है डंडा लिए कि नहीं पाला तो सिर तोड़ देगा! कोई वहां बैठा नहीं है। तुम नियम के विपरीत जाकर स्वयं को दंड दे लेते हो।
जब तुम शराब पीकर इरछे-तिरछे चलते, तो गिर जाते हो। ऐसा नहीं कि गुरुत्वाकर्षण देख रहा है बैठा हुआ वहां कि अच्छा, अब इस आदमी ने शराब पी!

अब इसकी तोड़ो टांग! ऐसा वहां कोई भी नहीं है। जब तुम संतुलन खो देते हो, अपने संतुलन खोने के कारण ही तुम गिर पड़ते हो।
तुम ही अपने को दंड देते, तुम ही अपने को पुरस्कार। बुद्ध ने तुम्हें सारी शक्ति दे दी। बुद्ध ने तुम्हें सार्वभौम शक्ति दे दी।
बुद्ध ने जब कहा--कोई ईश्वर नहीं है, तो बुद्ध ने तुम्हारे जीवन में ईश्वरत्व की घोषणा कर दी।

दूसरा प्रश्नः ओशो, संन्यास में दीक्षित करके आपने हमें संसार का परम सौंदर्य प्रदान किया। मृत्यु सिखाते हुए जीवन का प्रेमपूर्ण उल्लास दिया। आज हम दोनों हमारी पच्चीसवीं लग्न-तिथि पर आपके दिव्य चरणों में नृत्य करते हुए बहुत-बहुत अनुगृहीत हैं। आपकी कला अपरंपार है। भाव को प्रगट करने में वाणी असमर्थ है। आपके चरणों में हमारे शत-शत प्रणाम।

पूछा है मंजु और गुलाब ने।
ऐसा ही है। जीवन का सत्य बड़ा विरोधाभासी है। अगर मरने की तैयारी हो,
तो जीवन का अनुभव होता है। और अगर दुख को अंगीकार कर लेने की क्षमता हो, तो सुख के मेघ बरस जाते हैं। और अगर जीवन में कोई वासना न रह जाए, तो जीवन अपने सब घूंघट उघाड़ देता है। जो कुछ नहीं चाहता, उसे सब मिल जाता है। और जो सब की मांग करता रहता है, उसे कुछ भी नहीं मिलता।
जीवन का गणित बहुत बेबूझ है, रहस्यपूर्ण है। ऐसा ही है।
मंजु और गुलाब ने कहाः "संन्यास में दीक्षित करके आपने हमें संसार का परम सौंदर्य प्रदान किया।"
संन्यासी ही जान सकता है संसार के सौंदर्य को; संसारी नहीं जान सकता। क्योंकि संसारी इतना लिप्त है, इतना डूबा है गंदगी में, दूर खड़े होने की क्षमता नहीं है उसकी। वह दूर खड़े होकर देख नहीं सकता। और मजा तो दूर खड़े होकर देखने में है।
तुम जब बहुत व्यस्त होते हो संसार में, तो संसार का सौंदर्य देखने की सुविधा कहां! फूल खिलते हैं, मगर तुम्हें दिखायी नहीं पड़ते। चांद-तारे आते हैं, मगर तुम्हें दिखायी नहीं पड़ते। तुम अपनी दुकान में सिर झुकाए अपने खाता-बही में लगे हो। तुम्हें समय कहां, सुविधा कहां, अवकाश कहां कि तुम फूलों से दोस्ती करो; कि पहाड़ों से नमस्कार करो; कि नदियों के साथ बैठो; कि वृक्षों से बात करो। तुम्हें फुरसत कहां? तुम्हें अपनी तिजोड़ी से फुरसत कहां?
तिजोड़ी से तुम्हारा वार्तालाप बंद हो, तो चांद-तारों की तरफ आंख उठे। तुम क्षुद्र में उलझे हो, तो विराट की सुधि कैसे लोगे? उसकी सुरति कैसे आएगी; उसकी स्मृति कैसे जगेगी?
इसलिए यह विरोधाभास घटता है। संन्यासी जान पाता है संसार के सौंदर्य को। और संसार के सौंदर्य को जानने की क्षमता पैदा ही तब होती है, जब तुम्हारा संसार से कुछ लेना-देना नहीं है। जब तुम अलिप्त भाव से खड़े हो गए; जब तुमने कहा, जो है, ठीक है। जैसा है, शुभ है। अहोभाग्य कि मैं अभी श्वास ले रहा हूं। अहोभाग्य कि मेरी आंखें हैं और मैं रंग-रूप देख सकता हूं। अहोभाग्य कि मेरे पास कान हैं और पक्षियों के गीत सुनायी पड़ते हैं। और कोई वीणा छेड़ता है, तो मेरे प्राण संगीत से भर जाते हैं। अहोभाग्य!
फिर चारों तरफ तुम्हें वीणा छिड़ती हुई मालूम पड़ेगी। प्रकृति सब तरफ मृदंग लिए नाच रही है। यहां नाच चल रहा है, अपरिसीम नाच चल रहा है। हर चीज नाच रही है। नृत्य... । लेकिन देखने वाले को थोड़ी सी क्षमता तो होनी चाहिए। और एक बात हैः तुम उतना ही जान सकते हो, जितनी तुम्हारी गहराई बढ़ जाती है। जैसे-जैसे तुम्हारा ध्यान गहरा होता है, वैसे-वैसे तुम्हारी दृष्टि प्रकृति में गहरी उतरती है। तब स्थूल विलीन होने लगता है और सूक्ष्म का दर्शन होने लगता है।
संन्यास का अर्थ क्या है? संन्यास का अर्थ हैः जो है, उससे मैं तृप्त हूं। और जो है, उससे जब तुम तृप्त हो, तो गयी भाग-दौड़, गयी आपा-धापी। फिर न कहीं जाना, न कहीं पाना, न कुछ होना।

संन्यासी का मतलब यह नहीं कि वह स्वर्ग पाने में लगा है। वह तो फिर दुकानदार ही है। फिर भी संसारी रहा वह। संन्यासी का अर्थ यह नहीं कि अब परमात्मा को पाना है; कि अब परमात्मा को पाकर रहेंगे। यह तो फिर नयी तुमने खाते-बही खोल दिए। तुमने नया बैंक-बैलेंस खोल दिया--परलोक में; मगर उपद्रव शुरू हो गया। पहले धन कमाते थे; अब पुण्य कमाने लगे। पहले धन के सिक्के इकट्ठे करते थे; अब पुण्य के सिक्के इकट्ठे करने लगे। यह तो कुछ फर्क न हुआ। यह तो बीमारी का नाम बदला, बस। जहर वही का वही; शायद और भी गहरा हो गया; और भयंकर हो गया।
संन्यासी का अर्थ हैः जिसने खोज ही छोड़ दी। जिसने कहाः खोजने को क्या है? जो है, मिला हुआ है। जिसने कहाः जाना कहां है? सब यहीं है। जिसने कहाः न कैलाश जाऊंगा, न काबा। यही स्थल, जहां मैं बैठा हूं--कैलाश। यही स्थल, जहां मैं बैठा हूं--काबा। अब किताबों में न खोजूंगा; अब आंख बंद करूंगा, अपने में खोजूंगा। आंख खोलूंगा और प्रकृति में खोजूंगा। लोगों की आंखों में झांकूंगा। मुर्दा किताबों में क्या होगा! जिंदा किताबें मौजूद हैं। ये चलते-फिरते कुरान! ये चलती-फिरती बाइबिलें! ये चलते-फिरते गुरुगं्रथ! ये चलते-फिरते वेद! इनमें झांकूंगा। इनसे दोस्ती बनाऊंगा। इनके साथ नाचूंगा।
संन्यासी का अर्थ हैः जिसके लिए यही क्षण सब कुछ है।
फिर सौंदर्य कितनी देर तुमसे छिप सकता है! तुम जब इतने ठहर जाओगे; जब तुम्हारी जीवन-ज्योति को कोई वासना कंपाएगी नहीं; तुम अकंप हो जाओगे। जैसे दीए को जलाते हो; हवा के झोंके उसे कंपाते हैं, ऐसे ही तुम्हारे भीतर की जो चेतना का दीया है, उसे वासना के झोंके कंपाते हैं। जब कोई वासना नहीं रह जाती, दीए की ज्योति थिर हो जाती है। उस थिरता में ही कुंजी है।
ठीक कहा मंजु-गुलाब ने कि "संन्यास में दीक्षित करके आपने हमें संसार
का परम सौंदर्य प्रदान किया।"
मैं संसार-विरोधी नहीं हूं; मैं जीवन-विरोधी नहीं हूं। मेरा संन्यास जीवन को जानने की कला है। जीवन को त्यागने की नहीं, जीवन के परम भोग की कला है। मैं तुम्हें भगोड़ा नहीं बनाना चाहता। भगोड़ापन तो कायरता है। जो संसार से भागते हैं, वे कायर हैं। वे डर गए हैं। वे कहते हैंः यहां रहे, तो फंस जाएंगे। यह सौ का नोट उन्हें दिखायी पड़ा कि उनके भीतर एकदम उथल-पुथल मच जाती है कि अब नहीं बचा सकेंगे अपने को। यह सौ का नोट डुबा लेगा!
यह सुंदर स्त्री जाती है। अब भागो यहां से, अन्यथा इसके पीछे लग जाएंगे! मगर यह आदमी, जो नोट देखकर लार टपकाने लगता है, यह आदमी जो सुंदर स्त्री को गुजरते देखकर एकदम होश खो देता है, यह पहाड़ पर भी बैठ जाएगा, तो क्या होगा! यह आदमी यही का यही रहेगा। यह पहाड़ पर बैठकर भी क्या सोचेगा? आंख बंद करेगा--सौ के नोट तैरेंगे! आंख बंद करेगा--सुंदर स्त्रियां खड़ी हो जाएंगी।
और ध्यान रखनाः कोई स्त्री इतनी सुंदर नहीं है, जितनी जब तुम आंख बंद करते हो तब सुंदर हो जाती है, क्योंकि वह कल्पना की स्त्री होती है। वास्तविक स्त्री में तो कुछ झंझटें होती हैं। और जितनी सुंदर हो, उतनी ज्यादा झंझटें होती हैं। क्योंकि उतनी कीमत चुकानी पड़ती है। जितना बड़ा सौंदर्य होगा, उतनी कीमत स्त्री मांगेगी। लेकिन कल्पना की स्त्री तो सुंदर ही सुंदर होती है। वह तो बनती ही सपनों से है। और तुम्हारे ही सपने हैं, तुम जैसा चाहो बना लो। नाक थोड़ी लंबी, तो लंबी। छोटी कर दो नाक, तो छोटी। या छोटी है, तो थोड़ी लंबी कर दो।
मैंने सुना हैः एक स्त्री ने रात सपना देखा कि आ गया राजकुमार, जिसकी प्रतीक्षा थी; घोड़े पर सवार। उतरा घोड़े से। घोड़ा भी कोई ऐसा-वैसा घोड़ा नहीं रहा होगा। रहा होगा चेतक। शानदार घोड़े से उतरा शानदार राजकुमार। जब सपना ही देख रहे हो, तो फिर अच्चर-खच्चर पर क्या बिठाना! अपना ही सपना है, तो चेतक पर बिठाया होगा। और राजकुमार ही आया। फिर राजकुमार भी रहा होगा सुंदरतम। अब जब सपना ही देखने चले हैं, तो इस में क्या कंजूसी, क्या खर्चा! मुफ्त सपना है; अपना सपना है!

उतरा राजकुमार। सुंदर देह उसकी। नील वर्ण। रहा होगा कृष्ण जैसा। उठाया गोद में इस युवती को। बिठाया घोड़े पर। जैसे पृथ्वीराज संयोगिता को ले भागा। पढ़ी होगी कहानी कहीं पृथ्वीराज-संयोगिता की। चला घोड़ा। उसकी टापें मीलों तक सुनायी पड़ें, ऐसी आवाज। चला घोड़ा भागता हुआ। काफी दूर निकल गए संसार से।
प्रेमी सदा दूर निकल जाना चाहते हैं संसार से, क्योंकि संसार बड़ी बाधा देता है। यहां अड़ंगे खड़े करने वाले बहुत लोग हैं। प्रेम में अड़ंगा खड़े करने वाले तो बहुत लोग हैं। सब तैयार बैठे हैं। क्योंकि खुद प्रेम नहीं कर पाए, दूसरे को कैसे करने दें! खुद चूक गए हैं, अब औरों को भी चुकाकर रहेंगे। बदला लेकर रहेंगे। यहां सब प्रेम के शत्रु हैं।
तो जब सपना ही देख रहे हैं, तो फिर चले संसार से दूर। युवती बड़ी प्रफुल्लित हो रही है। बड़ी खिली जा रही है। उसके हृदय की कली पहली दफे खिली है। आ गया राजकुमार, जिसकी जन्मों से प्रतीक्षा थी। उसी घोड़े पर सवार, जिस पर सदा राजा-महाराजा आते हैं; कि देवता आते हैं।
फिर उसने पूछा, युवती ने, बड़े सकुचाते हुए, बड़े शरमाते हुए--अपना ही सपना है, तो शरमाओ खूब, सकुचाओ खूब--उसने पूछा कि हे राजकुमार! मुझे कहां लिए चलते हो? और राजकुमार हंसने लगा। और उसने कहाः यह सपना तुम्हारा है; तुम जहां कहो! इसमें मेरा क्या बस है! मैं इसमें आता कहां हूं! सपना तुम्हारा है।
तो वे जो तुम्हारे ऋषि-मुनि बैठ जाते हैं पहाड़ों पर... । यहां अगर स्त्री मोह लेती थी, तो वहां सपने स्त्री के ही चलेंगे। तुम जिससे भागोगे, वह तुम्हारा पीछा करेगा। तुम जिससे डरोगे, तुम उसी से हारोगे।
इसलिए मैं भागने को नहीं कहता। मैं कहता हूंः यहीं समझो, पहचानो, निखारो अपने चैतन्य को।
मैं जीवन-विरोधी नहीं हूं। जीवन से मेरा असीम प्रेम है। और मैं चाहता हूं कि तुम्हारा संन्यास ऐसा हो कि तुम्हारे संसार को निखार दे; तुम्हारे संसार को ऐसा बना दे कि परमात्मा झलकने लगे।
और मंजु-गुलाब ने कहाः "मृत्यु सिखाते हुए जीवन का प्रेमपूर्ण उल्लास दिया!"
वह दूसरा विरोधाभास है। जो मरना जानता है, वही जीना जानता है। जो मरने
से डरता है, वह कभी जी नहीं पाता। कैसे जीएगा? कायर कैसे जीएगा? जो मरने से डरता है, वह जी नहीं सकता, क्योंकि जीना हमेशा मौत लाता है। जीए कि मौत! तुमने देखा, जो जितनी त्वरा से जीएगा, उतनी जल्दी मौत आ जाती है। एक चट्टान है; पड़ी है सदियों से; मरती नहीं। और गुलाब का फूल सुबह खिला और सांझ मर गया। तुमने कभी सोचा कि गुलाब का फूल इतने जल्दी क्यों मर जाता है! इसलिए मर जाता है कि इतनी तेजी से जीता है; इतनी त्वरा से जीता है; इतनी इंटेंसिटी से, इतनी सघनता से जीता है कि जो चट्टान को सदियां लगती हैं जिस समय को पार करने में, उसे गुलाब का फूल एक दिन में पार कर जाता है। एक दिन में इतना जी लेता है, जितना मंदबुद्धि चट्टान सदियों में जी पाती है। और शायद जी पाती है कि नहीं जी पाती!
तुम गुलाब का फूल होना चाहोगे कि चट्टान होना चाहोगे? चट्टान का जीवन लंबा है। गुलाब के फूल का जीवन बड़ा छोटा है, बड़ा क्षणभंगुर है। क्या तुम चट्टान होना चाहोगे? अधिक लोगों ने यही सोचा है कि वे चट्टान होना चाहेंगे। क्योंकि वे कहते हैंः जीवन लंबा हो; मौत न आ जाए।
अगर गुलाब का फूल भी सोचे कि मौत न आ जाए, तो उसके जीवन की त्वरा कम हो जाएगी। वह धीरे-धीरे जीएगा। क्योंकि जितने धीरे जीएगा, उतनी ही देर लगेगी मौत के आने में। जितना कुनकुना जीएगा, उतनी देर लगेगी मौत के आने में। जितना कम जीएगा, उतनी मौत दूर हो जाएगी। अगर बिल्कुल न जीए, तो मौत को सदा के लिए टाला जा सकता है।
मगर जो बिल्कुल न जीए, वह तो मर ही गया! अब मौत को टालकर भी क्या होगा? तुमने देखा कि मरा हुआ आदमी फिर दुबारा नहीं मरता! और अगर तुम चाहते
हो कि मैं कभी न मरूं, तो उसका मतलब एक ही होता है कि तुम बिल्कुल मुर्दा हो

जाओ। मरा हुआ आदमी कभी नहीं मरता। एक दफे कब्र में चले गए, सो चले गए; फिर कभी मौत नहीं होती।
कुछ लोग इसी डर से जीते नहीं और जीते जी कब्रों में बैठ जाते हैं। अपनी कब्र में रहने लगते हैं।
मैं तुम्हें जीवन सिखाता हूं। जीवन सिखाने का एक ही उपाय है कि तुम्हें मृत्यु सिखायी जाए। मरने को अंगीकार करने की पात्रता जिस दिन आ जाएगी, उस दिन तुम जीयोगे गुलाब के फूल की तरह--और वही जीवन है। उस दिन तुम जीयोगे, जैसे मशाल को कोई दोनों ओर से एक साथ जला दे। एक गहरी भभक... ।
और ध्यान रखनाः लंबे जीने से कुछ सार नहीं। एक क्षण को भी अगर गहरे जी लिया--लंबा नहीं, गहरा; समय में फैला हुआ नहीं, क्षण में गहरा डूबा हुआ--एक क्षण भी अगर तुमने गहराई से जी लिया, तो एक क्षण में ही तुम्हें एस धम्मो सनंतनो का पता चल जाता है। वह जो शाश्वत धर्म है, उसका पता चल जाता है। और ऐसे तुम सदियों तक एक लकड़ी के टुकड़े की तरह धारा के ऊपर तैरते रहो, धक्के खाते रहो लहरों के--इस किनारे से उस किनारे, इस तट से उस तट--तुम्हें हीरे- मोती हाथ न लगेंगे। हीरे-मोती के लिए तो गहरे जाना होता है; डुबकी मारनी होगी।
और मंजु और गुलाब ने सुनने की कोशिश की है मुझे, समझने की कोशिश की है।
चल पड़े हैं। अभी और-और सौंदर्य प्रगट होगा। इतने से कुछ नहीं होने वाला है; अभी और-और सौंदर्य प्रगट होगा। अभी रोज-रोज सौंदर्य घना होगा।
जो सूत्र हाथ लगे हैं--कि मौत से जीवन मिलता और संन्यास से संसार का सौंदर्य प्रगट होता--इन सूत्रों का उपयोग करते रहे, करते रहे, तो एक दिन विराट बरसेगा। वह घड़ी ही समाधि की घड़ी है।

तीसरा प्रश्नः प्रश्न पूछने में सार क्या है?

फिर पूछा काहे के लिए! फिर इस पर भी संयम रखते, संवर करते थोड़ा! इसको भी पूछने में क्या सार है? यह भी प्रश्न है।
प्रश्न अगर भीतर उठते हैं, तो पूछो या न पूछो, उठते ही रहेंगे। हां, पूछ लेने में एक संभावना हैः शायद समझ के कारण गिर जाएं।
ध्यान रखनाः यहां जो उत्तर दिए जाते हैं, वे तुम्हारे प्रश्नों को हल
कर देंगे, ऐसे उत्तर नहीं हैं। वे तुम्हारे प्रश्नों को सदा के लिए गिरा देंगे, ऐसे उत्तर हैं। जो प्रश्न हल होता है, वह तो शायद कल फिर खड़ा हो जाए। जो आज तुमने किसी तरह समझ लिया कि हल हो गया, वह कल फिर मौजूद हो जाएगा।
तो उत्तरों में मेरा भरोसा नहीं है। मेरा भरोसा तो इस बात में है कि तुम्हारा चित्त निष्प्रश्न हो जाए। पूछ-पूछकर ही होगा। आज पूछोगे, कल पूछोगे। इधर से पूछोगे, उधर से पूछोगे। और मैं तुम्हें हर बार तुम्हीं पर फेंक रहा हूं। मेरा हर उत्तर तुम्हें तुम्हीं पर वापस फेंक देता है। अनेक बार पूछोगे; जितने प्रश्न पूछते जाओगे, उतने प्रश्न कम होते जाएंगे। नए-नए उठेंगे। जल्दी अंत नहीं आने वाला है। मन इतने जल्दी थकता नहीं; नए पैदा करेगा। लेकिन यह अच्छा है कि नए प्रश्न उठें। उनसे नयी ताजगी होगी; नया खून बहेगा।
और जब तुम प्रश्न पूछते हो, तो तुम्हारे चित्त की दशा का सूचन होता है। और अच्छा है कि तुम्हारे चित्त की दशा तुम मेरे प्रति सूचित करते रहो। तुम शायद डरते हो पूछने में। तुम्हें शायद यह लगता है कि पूछा तो अज्ञानी मालूम पडूंगा। तो तुम अपने को समझा रहे हो कि सार क्या है! अज्ञानी पूछ रहे हैं। मैं तो ज्ञानी हूं। मुझे तो पता ही है। मुझे क्या पूछना!
लेकिन तुम्हारे भीतर प्रश्न जरूर हैं। नहीं तो यह सवाल भी नहीं उठता
कि प्रश्न पूछने में सार क्या है! ऐसा पूछकर तुम इतना ही कर रहे हो कि अपने भीतर के अज्ञान को छिपा रहे हो।
यहां कई तरह के लोग हैं। एक तो वे, जो पूछते नहीं इसलिए, कि ध्यान की गहराई सघन हुई है और पूछने को अब कुछ बचा नहीं है। दूसरे वे, जो पूछते नहीं हैं इसलिए, कि डरते हैं कि कहीं पूछने से अज्ञान प्रगट न हो जाए। तीसरे वे,

जो पूछते हैं इसलिए, और इस तरह के प्रश्न पूछते हैं, जिनसे ज्ञान प्रगट हो, पांडित्यपूर्ण प्रश्न पूछते हैं। और चौथे वे, जो इसलिए पूछते हैं, ताकि वे अपने हृदय को मेरे सामने खोल सकें, जैसा है, बुरा, भला।
ध्यान रखनाः अगर तुम्हारे भीतर प्रश्न उठने बंद हो गए हैं, तब तो शुभ।
वह तो सबसे ऊंची बात है। फिर पूछने का सवाल ही नहीं उठता। हैं ही नहीं, तो पूछोगे क्या! अगर यह न हुआ हो, तो दूसरी बात जो चुनने जैसी है वह यह है कि पूछना वही, जो तुम्हारे भीतर वस्तुतः उठता हो। ज्ञान-प्रदर्शन के लिए नहीं, अपने हृदय के आवेदन के लिए।
और हर चीज तुम्हारे संबंध में खबर देती है। तुम्हारा चलना, तुम्हारा उठना, तुम्हारा पूछना। और अच्छा है कि तुम अपने को प्रगट करते रहो। अच्छा है कि तुम मेरे दर्पण में आकर अपना चेहरा बार-बार देखते रहो। ताकि तुम्हें साफ रहे कि तुम कहां हो, क्या हो, कैसे हो।
पूछो। सार है बहुत। सार यही है कि तुम्हें तुम्हारी शक्ल बार-बार पता चलती रहे। पता चलती रहे, तो रूपांतरण संभव है।
रोज सुबह दर्पण के सामने खड़े होकर पूछते नहीं कि क्या सार है! कल भी तो देखा था; परसों भी तो देखा था। वही का वही तो हूं, बदल क्या गया! लेकिन फिर दर्पण के सामने देखते हो। सच में रोज तुम बदल रहे हो। वही नहीं हो, जो कल था। वही नहीं हो, जो परसों था। बच्चा जवान हो रहा है; जवान बूढ़ा हो रहा है; जिंदगी मौत में ढली जाती है। सब बदल रहा है।
ऐसे ही तुम रोज-रोज पूछकर दर्पण के सामने अपने को खड़ा कर लेते हो। तुम्हारा हर प्रश्न, अगर ईमानदारी से भरा हो, तो उसमें बड़ा सार है। हां, पांडित्यपूर्ण प्रश्नों का कोई सार नहीं है। इसलिए मैं उनके उत्तर भी नहीं देता। तुम पूछते भी हो, तो भी उनके उत्तर नहीं देता।
एक युवा डाक्टर ने अपनी प्रेमिका से रोमांटिक लहजे में कहाः तुम्हारी आंखों में जीवन का टानिक है। जब उदास होता हूं, तो तुम्हारा सामीप्य ऐसा महसूस होता है, जैसे आखिरी सांसें गिनते हुए मरीज को आक्सीजन मिल जाए। तुम्हारे घने काले केशों में क्लोरोफार्म जैसी मीठी मदहोशी! तुम्हारे... । बस, उस स्त्री ने कहाः बकवास बंद करो। मैं तुम्हारी प्रेमिका हूं या डिस्पेन्सरी?
मगर डाक्टर बेचारा अपना निवेदन कर रहा है!
तुम जो कहते हो, जो पूछते हो, उसमें तुम मौजूद रहो तो अच्छा है। चीजें साफ होती हैं।
एक जेबकतरा नए फैशन के कपड़ों की किताब देख रहा था। उसके चेले ने पूछाः क्यों गुरु! अब क्या दर्जी बनने का इरादा है?
नहीं, मैं देख रहा हूं कि नयी फैशन के कपड़ों में जेबें कहां-कहां बनायी जाती हैं।
एक व्यापारी ने अपनी नयी दुकान के बाहर एक बोर्ड लगा रखा थाः यह दुकान आपकी जरूरतों के लिए खोली गयी है। अब आपको कहीं दूर जाकर अपने को ठगाने की जरूरत नहीं है।
यहीं ठगा सकते हैं! उनका मतलब साफ है। हालांकि उसको ख्याल नहीं होगा
कि उसने क्या लिख दिया है! अब ठगाने के लिए दूर जाने की कोई जरूरत नहीं है! गुरुदेव! यथार्थ और भ्रम में अंतर स्पष्ट कर दें, तो बड़ी कृपा होगी, भक्त ने विनती की।
आपका यहां उपस्थित रहना और मेरा प्रवचन करना यथार्थ है, परंतु मेरा
यह सोचना कि मेरी बात पर आप ध्यान दे रहे हैं, मेरा भ्रम है। संत ने समाधान किया।
शिष्य ने पूछा हैः यथार्थ और भ्रम में अंतर क्या है! तो गुरु ने कहा कि मेरा यहां उपस्थित रहना और मेरा प्रवचन करना यथार्थ है। और मेरा यह समझना कि आप यहां उपस्थित हैं और मुझे सुन रहे हैं, मेरा भ्रम है।
तुम जो पूछोगे, उसमें तुम रहो, तो जरूर सार है; नहीं तो व्यर्थ है। दूसरे के प्रश्न मत पूछना। उधार प्रश्न मत पूछना। किताबी प्रश्न मत पूछना। जीवंत पूछना। तुम्हारे जीवन में समस्याएं होंगी; तुम्हारे जीवन

में उलझनें होंगी। अगर सुलझ गए, तब तो बड़ा अच्छा; सौभाग्य। अगर समाधान मिल गया... ।
और समाधान तो तभी मिलता है, जब समाधि मिल जाए। समाधान शब्द से ही तो समाधि बना है। या समाधि से समाधान बना है। जब समाधि मिल जाए, तब समाधान।
उसके पहले तो समस्याएं हैं और समस्याओं का जटिल जाल है।
तुम ऐसे हो, जैसे जंगल में कोई भटका हुआ आदमी। तुम पूछते होः किसी से रास्ता पूछने में क्या सार है! जंगल में भटके हो और रास्ता नहीं पूछोगे? कभी-कभी ऐसा हो जाता है कि आदमी दंभ के कारण नहीं पूछता।
एक आदमी ने शराब पी ली और अपनी कार में बैठकर घर की तरफ चला। शराब के नशे में कुछ उसे दिखायी नहीं पड़ता कि रास्ता घर का कहां है और घर कहां है! मगर किसी से पूछे, तो लोग कहेंगेः हद्द हो गयी! गांव का प्रतिष्ठित आदमी है; गांव का शायद मेयर है। अब किसी से पूछे कि मेरा घर कहां है, या किस रास्ते से जाऊं, तो लोग हंसेंगे! सारा गांव उसे जानता है। और लोग कहेंगेः अरे! क्या ज्यादा पी गए? इतनी पी गए कि अपना घर भूल गए?
तो वह पूछता भी नहीं किसी से, क्योंकि संकोच लगता है; अहंकार को चोट लगती है। तो उसने सोचाः अब करूं क्या! तो जो कार उसके सामने जा रही थी, उसने सोचा, इसी के पीछे लगा चलूं।
वह उसके पीछे हो लिया। वह आदमी जाकर अपनी गैरेज में गाड़ी खड़ा किया। जब
वह अपनी गैरेज में गाड़ी खड़ा किया, तो इसने जाकर उसकी गाड़ी से टक्कर मार दी! और खिड़की के बाहर सिर निकालकर चिल्लाया कि हद्द हो गयी! संकेत क्यों नहीं दिया कि गाड़ी खड़ी करते हो? उस आदमी ने कहाः हद्द हो गयी! मेरे ही गैरेज में मैं गाड़ी खड़ी करूं और संकेत दूं? किसको संकेत दूं? आप यहां चले कैसे आ रहे हैं?
कितनी देर छिपाओगे?
अक्सर लोग ऐसा करते हैं। किसी से पूछें न; चुपचाप कोई विधि निकाल लें, किसी के पीछे हो लें; किसी की बात मान लें; कोई किताब पढ़ लें, उसी में से रास्ता निकालकर चल पड़ें।
किसी के गैरेज में जाकर टकराओगे। और अच्छा यही है कि पूछ ही लो। नशा गहरा है। तुमने भी खूब शराब पी रखी है। और तुम्हें भी अपना घर भूल गया है। संकोच मत करो। सहजता और सरलता से जो प्रश्न तुम्हारे हों--पूछ लो।
और मैं यह नहीं कह रहा हूं कि मेरे उत्तर से तुम्हें उत्तर मिल जाएगा।
मैं यह कह रहा हूं कि मेरे उत्तर से तुम्हें अपने प्रश्न को देखने की ज्यादा क्षमता आ जाएगी। प्रश्न को समझने की क्षमता आ जाएगी। प्रश्न के प्रति जागने की बुद्धि आ जाएगी।
मैं यह नहीं कह रहा हूं कि मेरा उत्तर तुम पकड़ लेना। मैं यह कह रहा हूं
कि मेरे उत्तर से तुम्हारे भीतर कुछ रूपांतरण हो सकता है। उत्तर पकड़ लिया, तो कोई सार न होगा। वह तो ऐसे ही हुआ कि तुम दिल्ली जाते थे, रास्ते पर मील का पत्थर लगा था। उस पर लिखा था दिल्ली और तीर बना था आगे की तरफ। तुम पत्थर को ही पकड़कर बैठ गए। तुमने कहा कि अच्छा हुआ, दिल्ली मिल गयी!
उत्तर को पकड़ोगे, तो बस, मील का पत्थर पकड़कर बैठ गए। फिर बैठे रहो। उत्तर तो तीर है, वह आगे की तरफ इशारा करता है। वह कहता हैः चलो! कुछ करो! ऐसे हो जाओ, तो समाधान है।
प्रश्न हैं ये
उत्तरों तक दौड़ते से प्रश्न।
क्या सफर पूरा करेंगे
राह में दम तोड़ देंगे
ये अकेला छोड़ते से प्रश्न। प्रश्न ये दर्शन कभी कविता कभी तो धर्म
साक्ष्य हैं इतिहास के
भवितव्य के हैं जन्म
ये कभी अनुमान हैं तो
हैं कभी संधान

ये कभी ऋत हैं, कभी हैं
पूर्ण का अभिज्ञान
रास हैं ये
जिंदगी को मोड़ते से प्रश्न। ये अकेला छोड़ते से प्रश्न। प्रश्न में सबसे बड़ा है प्रश्न तू है कौन
मध्य में कुछ दिख रहा है
आदि में सब मौन
अंत के उस पार क्या है
राधिका या कृष्ण
तृप्ति है या हम सभी
रह जाएंगे सतृष्ण
प्रश्न हैं ये
उत्तरों तक दौड़ते से प्रश्न। प्रश्न के कुछ और भी हैं
रंग और आयाम
सत्य तक संकट-ज्वलित हो
क्या करेंगे काम
क्या महानिर्वीय हो कर
शव बनेंगे हम
या हथेली पर रखेंगे
प्राण अपने उष्ण
प्रश्न हैं ये
उत्तरों तक दौड़ते से प्रश्न। ये रहस्यों की खदानें
खोदते से प्रश्न
चिंतकों के घर किये हैं
राग रौनक जश्न
ज्ञेय से अज्ञेय तक है
सेतु-केतु प्रश्न
क्षितिज क्षितिजों से धरा को जोड़ते से प्रश्न।
प्रश्न हैं ये
उत्तरों तक दौड़ते से प्रश्न।
क्या सफर पूरा करेंगे
राह में दम तोड़ देंगे
ये अकेला छोड़ते से प्रश्न।
प्रश्न तो यात्रा का इंगित है। प्रश्न तो समाधान और तुम्हारे बीच सेतु है। लेकिन सच्चा हो प्रश्न। और अगर सच्चा हो, तो आज नहीं कल तुम असली प्रश्न पूछोगे कि मैं कौन हूं। सारे प्रश्न उसी एक प्रश्न में जाकर निमज्जित हो जाते हैं--कि मैं कौन हूं!
और जो जान लेता है--मैं कौन हूं! उसे सारे उत्तर मिल जाते हैं। उस एक ज्ञान से सारे उत्तर झर आते हैं।

चौथा प्रश्नः पंचग्र-दायक ब्राह्मण के घर भगवान बुद्ध का पधारना नदी- नाव-संयोग था या नदी-सागर-संयोग? लेकिन क्या यह सच नहीं है कि नदी सागर के पास जाती है, सागर नदी के पास नहीं आता है?

पहली बातः सदगुरु से मिलना नदी-नाव-संयोग नहीं है, नदी-सागर-संयोग है। नदी-नाव-संयोग क्षणभर का होता है। पति-पत्नी का, भाई-भाई का, मित्र-मित्र का। इस जगत के और सारे संबंध नदी-नाव-संयोग हैं; बनते, मिट जाते। जो बनकर

मिट जाए, वह संबंध सांसारिक है। जो बनकर न मिटे, वह संबंध संसार का अतिक्रमण कर जाता है।
इसीलिए तो सदा से आकांक्षा रही है आदमी के मन में कि ऐसा प्रेम हो, जो कभी मिटे न। क्योंकि ऐसा प्रेम अगर हो जाए, जो कभी न मिटे, तो वही परमात्मा तक ले जाने का मार्ग बन जाएगा। और जो प्रेम मिट-मिट जाते हैं; बनते हैं मिट जाते हैं, वे प्रेम नदी-नाव-संयोग हैं।
कोई अनिवार्यता नहीं है; नदी नाव से अलग हो सकती है; नाव नदी से अलग हो सकती है। तुम नाव को खींचकर तट पर रख दे सकते हो। कोई अनिवार्यता नहीं है। लेकिन एक बार गंगा सागर में गिर गयी, फिर गंगा को खींचकर बाहर न निकाल सकोगे। फिर कोई उपाय नहीं है। फिर खोज भी न सकोगे कि गंगा कहां गयी। फिर गंगा को दुबारा बाहर निकालने की कोई संभावना नहीं है।
प्रेम इस ऊंचाई पर पहुंचे, तो नदी-सागर-संयोग हो जाता है। और अगर बुद्धपुरुषों के पास भी प्रेम इस ऊंचाई पर न पहुंचे, तो फिर कहां पहुंचेगा?
जो बुद्ध के पास थे, या जो महावीर के पास थे; या जो नानक के, कबीर के पास थे, जो सच में पास थे... । उनकी नहीं कह रहा हूं, जो भीड़ लगाकर खड़े थे। भीड़ लगाकर खड़े होने से कोई पास है, यह पक्का नहीं है। पास तो वही है, जिसके भीतर ऐसे प्रेम का उदय हुआ है, जिसका अब कोई अंत नहीं है। वही पास है, जिसके भीतर शाश्वत प्रेम की ज्वाला जली है, जो अब कभी बुझेगी नहीं, जो बुझ ही नहीं सकती। वही गुरु और शिष्य का संबंध है। वह इस जगत में अपूर्व संबंध है। वह इस जगत में है, और जगत का नहीं है। वह संसार में घटता है, और संसार के पार है।
तो गुरु और शिष्य का मिलन नदी-सागर-संयोग है। पहली बात।
दूसरी बात तुमने पूछी हैः "लेकिन क्या यह सच नहीं है कि नदी सागर के पास जाती है, सागर नदी के पास नहीं आता?"
नहीं; ऊपर-ऊपर से ऐसा दिखता है कि नदी सागर के पास जाती है। भीतर-भीतर कहानी बिल्कुल और है। भीतर-भीतर कहानी ऐसी है कि सागर नदी के पास आता है। ऊपर-ऊपर ऐसा दिखता है, शिष्य गुरु के पास आता है। भीतर-भीतर ऐसा है कि गुरु शिष्य के पास जाता है। जब तक गुरु शिष्य के पास नहीं गया, शिष्य गुरु के पास आ ही नहीं सकेगा। शिष्य बेचारा क्या आएगा! अंधा--अंधेरे में टटोलता? जो रोशनी में खड़ा है, वही... । जो भटका है, वह कैसे गुरु को खोजेगा? जो पहुंच गया है, वही भटके को खोज सकता है।
और वस्तुतः भी ऐसा ही होता है। सूक्ष्म तल पर सागर ही नदी में आता है। तुम देखते नहींः रोज सागर चढ़ता है भाप बनकर बादलों में, आकाश में, और गिरता है पहाड़ों पर और नदियों में उतरता है। रोज तो यह होता है, फिर भी तुम ख्याल नहीं लेते! सागर रोज चढ़ता है, किरणों का सहारा लेकर, किरणों की सीढ़ियों से।
बादल बनता है। मेघ बनता है। फिर मेघ चलते उड़कर पहाड़ों की तरफ।
मेघ में तुम्हें सागर दिखायी नहीं पड़ता, क्योंकि मेघ सूक्ष्म है। इसलिए तुम्हें भूल हो गयी। इसलिए तुम्हें ख्याल में नहीं आया कि अगर सागर नदी के पास न जाए, तो नदी सागर तक कभी नहीं पहुंच सकेगी। नदी में जल ही नहीं होगा सागर तक पहुंचने का।
रोज सागर आता मेघ बनकर और गिरता गंगोत्रियों में, और गंगा बनती, और गंगा बहती, और गंगा सागर तक पहुंचती।
गंगा सागर तक तभी पहुंच पाती है, जब सागर पहले गंगा तक पहुंच जाता। नहीं तो गंगा बन ही नहीं सकती। गंगा के पास कोई उपाय नहीं है सागर तक पहुंचने का। बिना मेघों के आए गंगा क्या होगी? रेत का एक सूखा रास्ता, जिस पर कोई जलधारा नहीं होगी।
ऐसा ही गुरु और शिष्य का संबंध है। गुरु मेघ बनकर आता है, इसलिए दिखायी नहीं पड़ता; सूक्ष्म तल पर आता है; तुम्हारे अंतस्तल में आता है, इसलिए दिखायी नहीं पड़ता है।
तुम जब गुरु की तरफ जाते हो, तो दिखायी पड़ता है--कि चले। गंगा जब जाती
है सागर की तरफ, तो अंधे को भी दिखायी पड़ता है कि चली गंगा सागर की तरफ। यह

तो बहुत गहरी आंख हो तो दिखायी पड़ता हैः जब बादलों की तरफ उठने लगी भाप, तो सागर चला गंगा की तरफ; गुरु चला शिष्य की तरफ।

पांचवां प्रश्नः मेरे प्रश्न के उत्तर में आपने विनोदपूर्वक आत्मघातों के असफल होने की कई कहानियां कहीं। लेकिन मैं उनमें से किसी विधि का विचार नहीं करता हूं। मुझे तो सदा एक ही ख्याल आता है कि अपने मकान से कूद पडूं। मैं रहता हूं बंबई की एक गगनचुंबी इमारत में तेरहवीं मंजिल पर। ओशो, यह विधि कैसे असफल हो सकती है?

इस विधि का मुझे पता था। मगर यह बड़ी खतरनाक विधि है और इसलिए इसको मैंने छोड़ दिया था। जो विधियां मैंने कही थीं, उनमें असफलता हो सकती थी। इस विधि में और भी खतरा है।
एक झूठा लतीफा। टुनटुन अपने मोटे शरीर से परेशान हो गयी और तीसरे मंजिल मकान से, जहां वह रहती थी, कूद पड़ी। सुबह जब उसकी अस्पताल में आंख खुली, तो डाक्टर से उसने पूछाः डाक्टर! क्या मैं अभी जिंदा हूं? डाक्टर ने कहाः देवी! आप तो जिंदा हैं; मगर वे तीनों मर गए जिनके ऊपर आप गिरी थीं! इसलिए छोड़ दिया था इस विधि को। यह तो आप करना ही मत। और वह तो तीसरी मंजिल से गिरी थी, तीन मारे; आप तेरहवीं मंजिल पर रहते हैं, आप तेरह मार सकते हो! आप कृपा करके यह मत करना।
आत्मघात में इतना रस क्यों है? इतना चिंतन जीवन जीने के लिए करो; इतनी शक्ति और ध्यान जीवन की खोज में लगाओ, तो तुम्हें तेरहवीं मंजिल से कूदकर, सड़क पर गिरकर, मिटना न पड़े। तुम्हें पंख लग जाएं; तुम आकाश में उड़ जाओ। इतना विराट अवसर जीवन का और तुम आत्मघात की ही सोचते रहोगे? इतनी जल्दी भी क्या है? मृत्यु तो अपने से ही हो जाएगी; तुम न चाहोगे, तो भी हो जाएगी।
जीवन तुम्हारे हाथ में नहीं है; मृत्यु तो तुम्हारे हाथ में भी है। तुम चाहो, तो आज मर सकते हो। मगर जीवन तुम्हारे हाथ में नहीं है। जीवन तुमसे बड़ा है। मृत्यु तुमसे छोटी है, इसीलिए हाथ में है। तुम जीवन पैदा नहीं कर सकते, हालांकि आत्मघात कर सकते हो।
ख्याल किया इस बात पर! इसका मतलब क्या होता है? इसका मतलब हुआ कि मौत
तो हमारी मुट्ठी में भी हो सकती है। लेकिन जीवन हमसे इतना बड़ा है कि हम उसे मुट्ठी में नहीं बांध सकते।
जो बड़ा है, जो विराट है, उसमें डूबो; उसमें तैरो; उसमें संतरण करो।
और मौत तो अपने आप आ जाएगी। यह रुग्ण विचार तुम्हारे भीतर चलता क्यों है? यह इसीलिए चल रहा है कि तुम किसी भांति जीवन से चूके जा रहे हो और चूक गए हो।
आदमी आत्मघात की तभी सोचता है, जब जीवन में उसे कोई फूल खिलते दिखायी नहीं पड़ते; जब वह जीवन में हारा होता है। तुमने किसी सुखी आदमी को आत्मघात करने की बात सोचते देखा? तुमने कभी किसी प्रेमी को प्रेम के क्षण में आत्मघात करने की बात सोचते देखा? तुमने कभी किसी संगीतज्ञ को वीणा बजाते हुए आत्मघात की बात सोचते हुए देखा?
जब जीवन में कोई संगीत होता, फूल खिलते, सृजन होता, प्रेम होता--तो कोई आत्मघात की नहीं सोचता। तुम्हारा जीवन अनखिला रह गया होगा। तुम्हारे जीवन में सृजनात्मकता नहीं होगी। तुम्हारे जीवन में प्रेम ने पदार्पण नहीं किया। तुम्हारे जीवन में आनंद की कली नहीं खिली। तुम रेगिस्तान जैसे रह गए होओगे, इसलिए आत्मघात की बात उठती है।
और आत्मघात कर लेने से कोई कली नहीं खिल जाएगी। कली खिल जाए, तो आत्मघात का विचार विदा हो जाए।
लेकिन बहुत लोग हैं दुनिया में जो आत्मघात का विचार करते रहते हैं।
सच तो यह है, मनस्विद कहते हैं कि ऐसा आदमी खोजना कठिन है, जिसने जिंदगी में एक दो बार आत्मघात का विचार न किया हो। कभी न कभी, किसी दुख, किसी पीड़ा के क्षण में, किसी विषाद के क्षण में सभी ने सोचा है। किया नहीं--यह और बात

है। और तुम भी करोगे नहीं--यह भी पक्का है। क्योंकि इतना सोचने वाले करते नहीं। सुना नः भौंकने वाले कुत्ते काटते नहीं।
आत्मघात के लिए सोचने की क्या जरूरत है! करना हो तो कर ही लो। इतने दिन
से सोच रहे हो; सम्यक विधि की तलाश कर रहे हो! यह विधि की तलाश कर रहे हो और जीए जा रहे हो! यह जरा रुग्ण जीवन हो गया कि जी रहे हैं मौत की विधि की तलाश करने के लिए! कि मरने का विचार कर रहे हैं, इसलिए जीना पड़ रहा है, क्या करें! अभी ठीक विधि हाथ नहीं लगी।
यह बड़ी रुग्ण दशा है। इस रुग्ण दशा के बाहर आओ। इसलिए मैंने तुम्हें सुझाव दिया कि आत्मघात पीछे मैं तुम्हें बताऊंगा, ठीक-ठीक कैसे कर लेना। पहले तुम संन्यासी तो हो जाओ! इतना तो करो। इतनी हिम्मत तो करो। तुममें इतनी भी हिम्मत नहीं है। तुम आत्मघात क्या करोगे!
तुम कम से कम इतना साहस करो कि लोग हंसेंगे कि तुम संन्यासी हो गए, तो हंसने दो। लोग समझेंगे कि पागल हो गए, तो समझने दो। तुम इतनी हिम्मत कर लो, तो फिर मैं तुम्हें ठीक-ठीक विधि बता दूंगा।
सच तो यह है कि ठीक विधि तुम्हें सदगुरु के पास ही मिलेगी आत्मघात की। बाकी तो आत्मघात झूठे हैं। शरीर मर जाएगा, फिर पैदा होना पड़ेगा। मैं तुम्हें ऐसी विधि बताऊंगा कि तुम ही मर जाओगे; फिर कभी पैदा न होना पड़ेगा।
वह मैं-भाव ही मर जाएगा। आवागमन से छुटकारा हो जाएगा।
मैं तुम्हें ऐसी मृत्यु दे सकता हूं कि फिर दुबारा कभी न जन्म होगा और
न मृत्यु होगी।

छठवां प्रश्नः ओशो, शत-शत प्रणाम।
तेरे बिना जिंदगी से कोई शिकवा नहीं, शिकवा तो नहीं।
तेरे बिना जिंदगी जिंदगी नहीं, जिंदगी नहीं।

पूछा है मनु और हंसा ने।
ऐसा दिखायी पड़ने लगे, तो शुभ घड़ी आ गयी। ऐसी प्रतीति होने लगे कि अब कोई शिकायत नहीं, तो प्रार्थना की पहली किरण उतरी। मैं प्रार्थना कहता ही हूं उसे, उस चित्त की दशा को, जहां कोई शिकायत नहीं है।
और अक्सर तुम जाते हो मंदिर में प्रार्थना करने, और सिर्फ शिकायतें करने जाते हो; नाम प्रार्थना होता है। कि मेरी पत्नी बीमार है; कि मेरे बच्चे को नौकरी नहीं लग रही है; कि मेरे पास रहने को मकान नहीं है। और इसको तुम प्रार्थना कहते हो! ये सब शिकायतें हैं; ये सब शिकवे हैं। यह तुम्हारा ईश्वर के प्रति श्रद्धा का भाव नहीं है। यह तुम ईश्वर के होने पर संदेह उठा रहे हो--कि तेरे होते हुए, और मेरे पास मकान नहीं! अगर तू है, तो मकान होना चाहिए। और अगर मकान नहीं हुआ, तो समझ रखः तू भी नहीं है। भीतर छिपी यह भावदशा है कि मैं तुझे मानूंगा, अगर तू मेरी मांगें पूरी कर दे। अगर तूने मेरी मांगें पूरी नहीं कीं, तो सोच-समझ रख! एक भक्त खोया फिर तूने! फिर मैं तेरा दुश्मन हो जाऊंगा।
और भीतर तो गहरे में तुम जानते हो कि कहां है तू! कहां कौन है! यह तो देख रहे हैं, एक कोशिश करके देखे लेते हैं कि शायद मिल जाए। मूलतः मकान में तुम्हारा रस है, परमात्मा में नहीं।
तुम्हारी प्रार्थनाएं शिकायतों के छिपे हुए ढंग हैं; रंगी-पुती शिकायतें हैं। भीतर तो शिकायत की गंदगी है, ऊपर से सुंदर रंग चढ़ा दिए हैं, टीम-टाम, नया बना दिया है! किसको धोखा दे रहे हो?
लेकिन शिकायत मिटे, शिकवा मिटे, तो प्रार्थना का जन्म होता है। और प्रार्थना का जन्म इस जगत में अपूर्व बात है। प्रार्थना का अर्थ है अहोभाव। प्रार्थना का अर्थ है धन्यवाद, आभार। प्रार्थना का अर्थ हैः जो है, वह मेरी पात्रता से ज्यादा है।
"तेरे बिना जिंदगी से कोई शिकवा नहीं, शिकवा तो नहीं।"
परमात्मा न भी मिले, तो भी जिंदगी प्यारी है, अपूर्व है। और जिंदगी में ही उतरते जाओगे, तो परमात्मा भी करीब आता जाएगा। जिंदगी में ही छिपा

है। यह जिंदगी उसका ही घूंघट है। तुम उठाओगे जिंदगी का घूंघट और भीतर परमात्मा मुस्कुराता मिलेगा।
"तेरे बिना जिंदगी जिंदगी नहीं, जिंदगी नहीं।"
यह भी बात ठीक है। जिंदगी को प्रेम करो बिना शिकायत के और यह भी स्मरण रखो कि जब तक तू नहीं है--सब है, फिर भी कुछ कम है। सब है; सब तरह से तूने पूरा किया है, लेकिन तेरे बिना, तेरी मौजूदगी के बिना कुछ-कुछ कम है।
यह शिकायत नहीं है; यह प्रार्थना है।
प्रार्थना अगर मांगे, तो एक चीज मांगे--परमात्मा को मांगे। प्रार्थना कुछ और न मांगे। तुमने कुछ और मांगा कि प्रार्थना गलत हुई।
तो ठीक मनु-हंसा! शिकवा गया, शिकायत गयी, प्रार्थना बन रही है। और उस प्रार्थना में निश्चित ही यह भाव भी सघन होगा कि "तेरे बिना जिंदगी जिंदगी नहीं।" बहुत है; सब कुछ है; मगर फिर भी कुछ चूक रहा है।
परमात्मा ही जब उपस्थित हो जाता है बाहर-भीतर, तो ही परिपूर्ण परितृप्ति, तो ही परितोष। फिर उसके पार न तो शिकायत है, न प्रार्थना है। पहले शिकायत चली जाती है, फिर एक दिन प्रार्थना भी चली जाती है।
शिकायत जाए, तो प्रार्थना आती है। प्रार्थना भी एक दिन जाएगी, उसी दिन परमात्मा भी उतर आएगा।

सातवां प्रश्नः धम्मपद के गाथा-प्रसंगों से पता लगता है कि ब्राह्मण
ही भगवान बुद्ध के विरोधी थे और वे ही उनके ध्वज-धर भी बने। ऐसा क्यों हुआ ओशो?

स्वाभाविक है। जो असली ब्राह्मण थे, वे तो बुद्ध के साथ हो लिए। असली ब्राह्मण को तो बुद्ध में ब्रह्म के दर्शन हो गए। ब्राह्मण वही, जिसको ब्रह्म को देखने की कला आती हो। ब्राह्मण वही, जो ब्रह्ममय हो। वे बुद्ध को कैसे चूकते? जो वस्तुतः ब्राह्मण थे; जाति और कुल से ही नहीं, अस्तित्वगत ब्राह्मण थे... ।
जैसा कि उद्दालक ने अपने बेटे श्वेतकेतु से कहा है। जब श्वेतकेतु लौटा गुरु के आश्रम से, तो बड़ा अकड़ा हुआ लौटा। अकड़ा हुआ लौटा, क्योंकि सब शास्त्रों में पारंगत होकर लौटता था। स्वाभाविक थी अकड़। जवान की अकड़! जैसे विश्वविद्यालय से कोई लौटता है। सोचता हैः सब जान लिया।
उद्दालक ने उसे देखा खिड़की से, बगीचे में अंदर आते; उसकी अकड़ देखी; उद्दालक उदास हो गए। क्योंकि अकड़ ब्राह्मण को शोभा नहीं देती।
आया बेटा। उद्दालक ने पूछाः तू क्या-क्या सीखकर लौटा है? तो बेटे ने
सब शास्त्र गिनाए--कि वेद, उपनिषद, व्याकरण, भाषा, काव्य--सब, जो भी था। दर्शन, धर्म, ज्योतिष, भूगोल, इतिहास, पुराण--जो भी उन दिनों के विषय होंगे, सब उसने गिना दिए। कि सब में पारंगत होकर लौटा हूं; सब में प्रथम कोटि के अंक पाकर लौटा हूं। ये रहे मेरे सर्टिफिकेट!
लेकिन बाप ने सब ऐसे सुना, जैसे उसे इसमें कुछ रस नहीं है। उसने कहाः मैं तुझसे यह पूछता हूं कि ब्राह्मण होकर लौटा कि नहीं?
श्वेतकेतु ने कहाः ब्राह्मण तो मैं हूं ही। आपका बेटा हूं!
तो बाप ने कहा कि नहीं; हमारे परिवार में जन्म से हम ब्राह्मण को नहीं स्वीकार करते। तेरे बाप-दादे, मेरे बाप-दादे, सदा से ब्राह्मणत्व को अनुभव से सिद्ध करते रहे हैं। हम पैदा होने से ब्राह्मण अपने को स्वीकार नहीं करते। हमारे परिवार में जन्मना हम ब्राह्मण को नहीं मानते। तू वापस जा। ब्राह्मण होकर लौट।
बेटे ने पूछाः कमी क्या दिखायी पड़ती है! बाप ने कहाः तेरी अकड़, तेरा अहंकार। साफ है तेरे अहंकार से कि तू अपने को बिना जाने आ गया है। तूने और सब जान लिया, लेकिन अपने को नहीं जाना है; आत्मज्ञान नहीं हुआ है। तू जा।
ब्राह्मण होकर लौट।
यह ब्राह्मण की परिभाषा देखते हैं! यह ब्राह्मण का अर्थ हुआः ब्रह्म
को जानो। भीतर छिपे ब्रह्म को जानो, ताकि बाहर छिपा ब्रह्म भी प्रगट हो जाए; तो ब्राह्मण।

तो जो असली में ब्राह्मण थे--जन्म से नहीं; अनुभव से, ज्ञान से, बोध से--वे तो बुद्ध के पास आए, वे तो बुद्ध के प्यारे हो गए। बुद्ध के सारे बड़े शिष्य ब्राह्मण थे। उन्होंने यह फिकर नहीं की कि बुद्ध क्षत्रिय हैं और क्षत्रिय के सामने ब्राह्मण कैसे झुके!
ब्राह्मण तो वही है, जो झुकने की कला जानता है। वह क्या फिकर करता है, कौन क्षत्रिय और कौन शूद्र! जहां ब्रह्म अवतरित हुआ है, जहां ब्रह्म का फूल खिला है, जहां वह सहस्रार कमल खिला है, सहस्रदल कमल, और जहां सुगंध व्याप्त हो गयी है--वहां झुकेगा।
जो असली ब्राह्मण थे, वे तो झुक गए बुद्ध के पास आकर। वे तो बुद्ध के ध्वज-धर बन गए। लेकिन जो नकली ब्राह्मण थे... ।
और नकली स्वभावतः ज्यादा हैं। सौ में एकाध असली; निन्यानबे नकली। जो सिर्फ किसी घर में पैदा होने के कारण, नदी-नाव-संयोग के कारण अपने को ब्राह्मण समझते थे। समझते थे कि मेरा बाप ब्राह्मण था, इसलिए मैं ब्राह्मण हूं।
इतना आसान है ब्राह्मण होना! कि बाप ब्राह्मण था, तो तुम ब्राह्मण हो गए! तुम्हारे बाप डाक्टर हों, इससे तुम डाक्टर नहीं हो जाते। तो ब्राह्मण कैसे हो जाओगे? यह तो और गहरी बात है। तुम्हारे बाप इंजीनियर थे, इसलिए तुम इंजीनियर नहीं हो जाते। तुम्हारे बाप की जानकारी तक तुम तक नहीं पहुंचती, तो बाप का ज्ञान तो कैसे पहुंचेगा! बाप की जानकारी है कि वे बड़े डाक्टर थे। तो तुम डाक्टर बाप के घर पैदा हुए, तो तुम अपने को डाक्टर थोड़े ही लिखने लगते हो! जैसा यहां हिंदुस्तान में चलता है कि डाक्टर की पत्नी डाक्टरनी कहलाती है। यह बड़े मजे की बात है!
तो तुम डाक्टर के बेटे हो, तो तुम अपने को डाक्टर तो नहीं लिखने लगते। तुम जानते हो कि डाक्टर मैं कैसे हो सकता हूं। बाप की जानकारी थी। जानकारी मुझे अर्जित करनी पड़ेगी।
जानकारी तक नहीं आती जन्म के साथ, खून में नहीं आती, तो ज्ञान तो कैसे आएगा? ज्ञान का अर्थ होता है, आत्म-अनुभव। स्मृति नहीं उतरती, तो बोध तो कैसे उतरेगा। बोध तो और गहरा है; स्मृति से बहुत गहरा है।
इसलिए जो सोचते थे कि हम ब्राह्मण हैं, क्योंकि ब्राह्मण बाप के घर पैदा हुए हैं; और जो सोचते थे कि हम ब्राह्मण हैं, क्योंकि हमें वेद कंठस्थ हैं; जो सोचते थे कि हम ब्राह्मण हैं, क्योंकि हमें शास्त्र का ज्ञान है-- वे बुद्ध के दुश्मन हो गए। क्योंकि जब भी बुद्ध जैसा व्यक्ति पैदा होता है, तब वह सदा शास्त्रों के विपरीत पड़ जाता है। वह परंपरा के विपरीत पड़ जाता है। वह हर जड़ स्थिति के विपरीत पड़ जाता है। तो इन निन्यानबे ब्राह्मणों को तो लगा कि यह दुश्मन है, शत्रु है। यह हमारे धर्म को नष्ट करने को पैदा हुआ है। इसे उखाड़ फेंकें।
तो ब्राह्मण पक्ष में भी थे, ब्राह्मण विरोध में भी थे। यह सदा से हुआ है।
यहां भी कुछ ब्राह्मण हैं; मगर वे सौ में एक ही होंगे। निन्यानबे तो विरोध में होंगे। झूठे सदा विरोध में होंगे। सच्चे पास आ जाते हैं। फिर वे फिक्र नहीं करते।
ऐसा हुआ काशी में। सच्चे ब्राह्मण इकट्ठे हुए। काशी में झूठे ब्राह्मण तो बहुत हैं, मगर एक दफे सच्चे ब्राह्मण इकट्ठे हुए सारे देश से। वे कबीर के दर्शन को इकट्ठे हुए--पंद्रह सौ ब्राह्मण। अनूठी कथा है। हुई भी हो, इसमें शक होता है। पंद्रह सौ ब्राह्मण? मगर हो भी सकती है सच। कबीर जैसे व्यक्तियों के पास कभी-कभी ऐसे प्रसंग भी हो जाते हैं।
पंद्रह सौ ब्राह्मण सारे देश से इकट्ठे हुए कबीर के सत्संग के लिए। कबीर तो जुलाहा थे; मुसलमान थे जन्म से तो। उनकी तो शूद्र से कोई ऊंची स्थिति नहीं थी। शूद्र से गए-बीते थे! खुद उनके गुरु रामानंद ने, जो कि हिम्मतवर आदमी थे, उन तक ने इनकार कर दिया था कबीर को दीक्षा देने से--कि तू भई, हमें झंझट में डाल देगा!
कबीर ने उनसे दीक्षा ली थी बड़े उपाय से, बड़ी कुशलता से। ऐसी दीक्षा पहले कभी हुई भी नहीं थी। रामानंद ने कई बार इनकार कर दिया कबीर को कि तू

यहां आया ही मत कर, क्योंकि इससे हम झंझट में पड़ जाएंगे। यह ब्राह्मणों का गढ़ है काशी; और यहां मैं किसी जुलाहे को दे दूंगा दीक्षा, तो मुश्किल होगी। हिम्मतवर न रहे होंगे; कमजोर रहे होंगे।
तो कबीर गंगा के किनारे सीढ़ी पर, जहां रामानंद स्नान करने जाते रोज सुबह चार बजे, चादर ओढ़कर पड़ रहे। अंधेरे में रामानंद का पैर पड़ गया कबीर पर। पैर पड़ गया तो कहाः राम! राम! और कबीर ने कहाः बस, दे दिया मंत्र! हो गया मैं शिष्य आपका। आप हुए मेरे गुरु। अब राम-राम जपूंगा और पा लूंगा। और कबीर राम-राम जपकर पा लिए।
इतनी खोज हो, तो राम-राम क्या, कुछ भी जपो--मिल जाएगा। ऐसी प्रगाढ़ आकांक्षा हो! फिर तो रामानंद भी इनकार न कर सके कि ऐसा प्यारा आदमी!
इस तरकीब से दीक्षा ली! कहा कि फूंक दिया कान! ब्रह्ममुहूर्त में कह दियाः राम-राम। अब और क्या चाहिए! अब कभी न आऊंगा; अब कभी न सताऊंगा; आपको परेशान न करूंगा। लेकिन आपका हो गया।
रामानंद जिससे डरे थे शिष्य बनाने में, उसके दर्शन के लिए पंद्रह सौ ब्राह्मण... । सच्चे ब्राह्मण रहे होंगे। वही तो कबीर में उत्सुक हो सकते हैं। वे इकट्ठे हुए। कबीर को उन्होंने निमंत्रित किया कि आप आएं और धर्म हमें समझाएं।
कबीर आए। वहां पंद्रह सौ पुरुषों को देखा और लौट गए। बड़े हैरान हुए ब्राह्मण। उन्होंने कहाः आप लौट क्यों जा रहे हैं! बात क्या है? उन्होंने कहाः मीरा कहां है?
जो कबीर को सुनने आ गए थे--कबीर जुलाहे को--उनकी भी इतनी हिम्मत नहीं
थी कि स्त्री को बुलाएं! स्त्री की हालत शूद्र से बदतर रही।
इसलिए तो तुलसीदास ने उसको शूद्रों में गिना है। शूद्र, ढोल, पशु, नारी--ये सब ताड़न के अधिकारी। तुलसीदास से ज्यादा खतरनाक और बीमार आदमी इस देश में दूसरा नहीं हुआ। और जब तक इस देश का तुलसीदास से छुटकारा नहीं होता, तब तक बड़ी अड़चन है।
तो मीरा की खबर तो कई लोगों को थी। मीरा पास ही थी; उसकी सुगंध भी आती थी। लेकिन स्त्री के पास पुरुष जाए! पुरुष तो परमात्मा है; और स्त्री तो ताड़न की अधिकारी है! स्त्री को पुरुष सम्मान दे! शूद्र को भी दे दे एक बार, चलो, आखिर पुरुष है न शूद्र! पुरुष तो है। मीरा में तो बहुत झंझटें हो गयीं। स्त्री भी है। यह तो कठिन बात थी।
कबीर आकर खड़े हुए और उन्होंने कहाः जब तक मीरा न आएगी, तब तक मैं नहीं आऊंगा। मजबूरी में मीरा को निमंत्रित करना पड़ा। और जब मीरा आयी और नाची, तब कबीर आए। उन्होंने कहाः मीरा के नाच से सब शुद्ध हो गया। अब यहां सच में ही ब्राह्मणत्व की ज्योति जल रही है। अब न कोई शूद्र है, न कोई स्त्री है। अब सब भेद गिरे।
जहां भेद गिर जाते हैं, वहां ब्रह्म का अनुभव है। अभेद--ब्रह्म का अनुभव है।
तो जो सच्चे ब्राह्मण थे, वे तो बुद्ध के साथ हो लिए। वे सदा से रहे बुद्ध के साथ, महावीर के साथ, कबीर, नानक, मोहम्मद, जीसस--दुनिया में जहां भी कभी कोई लोग हुए हैं, जिन्होंने जाना है--असली ब्राह्मण सदा उसके साथ हो गए। नकली ब्राह्मण सदा उसके विपरीत हो गए हैं।
नकली की भीड़ है। नकली का समूह है। इन नकलियों ने मिलकर बुद्ध के धर्म
को इस देश से उखाड़ दिया। इस देश की सबसे बड़ी संपदा इन नकलियों ने भ्रष्ट कर दी। इस देश का सबसे बड़ा मानव इन नकलियों ने पराया कर दिया।
आज सारा एशिया बुद्ध का गुणगान करता है--एक सिर्फ उनके इस देश को छोड़कर! यह अभागा देश बुद्ध के गुणगान से भरा हुआ नहीं है।

आखिरी प्रश्नः
दीपक की चमक में आग भी है
दुनिया ने कहा परवाने से।
परवाने मगर ये कहने लगे
दीवाने तो जलकर ही देखेंगे।

तेरी याद में जलकर देख लिया
अब आग में जलकर देखेंगे।
इस राह में अपनी मौत सही
ये राह भी चलकर देखेंगे।

पूछा है अनादि ने।
यही मार्ग संन्यासी का भी है--परवाने का मार्ग। जो जलने को तत्पर है,
जो मिटने को राजी है, जो खोने की हिम्मत रखता है।
"दीपक की चमक में आग भी है
दुनिया ने कहा परवाने से।"
दुनिया तो सदा से कहती रही है परवाने से--कि पागल! कहां जाता है? वह सिर्फ चमक नहीं है दीए में; वहां आग भी है।
यही तो तुमसे भी कहा है लोगों ने कि मेरे पास मत आना; यहां चमक ही नहीं है, आग भी है।
लेकिन परवाने दुनिया की सुनते! परवाने दुनिया की सुनें, तो परवाने नहीं। जो दुनिया की सुनें, वे परवाने हो नहीं सकते। परवाने तो अपने भीतर की सुनते हैं।
दीए ने पुकारा है। शमा ने पुकारा है। उस जलती ज्योति ने पुकारा है।
जाना है--चाहे कोई भी कीमत हो।
"दीपक की चमक में आग भी है
दुनिया ने कहा परवाने से।
परवाने मगर ये कहने लगे
दीवाने तो जलकर ही देखेंगे।"
दुनिया में और कोई देखने का उपाय भी नहीं है; जलकर ही देखना पड़ता है। चलकर ही पहुंचता है कोई और जलकर ही देखता है कोई। बिना अनुभव के कोई ज्ञान नहीं।
"तेरी याद में जलकर देख लिया
अब आग में जलकर देखेंगे।
इस राह में अपनी मौत सही
ये राह भी चलकर देखेंगे।"
मौत निश्चित ही है; शक-सुबहा कहां! मौत निश्चित ही है। वह परवाना देख रहा हैः दूसरे परवाने भी जल गए हैं, जो पास पहुंचकर गिर गए हैं। उनके पंख जल गए हैं; उनके प्राण उड़ गए हैं। लेकिन यह दूसरों को दिखायी पड़ता है--कि बेचारा परवाना! जलकर मर गया! लेकिन जो दूसरे परवाने चले आ रहे हैं, वे देखते हैं कि धन्यभागी था; देह से मुक्त हो गया; पिंजरे से बाहर हो गया। छूट गया बंधन; छूट गयी काया।
ये तो जो अपने को बचाना चाहते हैं, वे सोचते हैं कि बेचारा! जलकर मर गया! नासमझ, अज्ञानी, जलकर मर गया। दूर रहता।
लेकिन जो परवाने चले आ रहे हैं और उड़ते हुए, उनको तो यही दिखायी पड़ता
है कि धन्यभागी था जो हमसे पहले पहुंच गया। वे इतना ही नहीं देखते कि जो नीचे जलकर गिरकर पड़ी है देह; वे वह भी देखते हैं जो उड़ गयी आत्मा, जो मुक्त हो गयी आत्मा। उन्हें कुछ और भी दिखायी पड़ता है।
एक तो वह है, जिसे दिखायी पड़ता है कि बीज सड़ गया, खतम हो गया-- बेचारा!
और एक वह है, जिसे दिखायी पड़ता है कि पौधा पैदा हो गया। धन्यभागी!
बीज मरता है, तभी तो पौधा पैदा होता है। परवाना मरता है, तभी तो परतंत्रता से मुक्त होता है; परम दशा को पाता है।
"इस राह में अपनी मौत सही... ।"
सही नहीं--होने ही वाली है। मौत के बिना कभी कुछ होता ही नहीं। मौत के बिना जीवन ही नहीं होता। जितनी बड़ी मौत, उतना बड़ा जीवन। जितनी घनी मौत, उतना बड़ा जीवन।
तुम उसी मात्रा में जीते हो, जिस मात्रा में तुम साहस रखते हो मरने का।
वही तो है जिंदगी, है जिसमें अटूट एहसास बका का

है मौत का जिसमें खौफ हरदम, वो जिंदगी जिंदगी नहीं है वही तो है सरवरी जो बंदों से दोस्ती बन के हो नुमायां जो कुर्सिए-अर्श पर मकीं है, वो सरवरी सरवरी नहीं है वही तो है आगही, न जिसमें हो जहदो-इसियां में फर्क कोई हो नेकोबद की तमीज जिसमें, वो आगही आगही नहीं है
वही अखुव्वत है, फर्क हो जब न आदमी आदमी में कोई
रवा जो रखे ये फर्क, वो कौमे-अहमदी अहमदी नहीं है वही तो है आदमी जो जीता है दूसरों के लिए हमेशा
जिए फकत अपने ही लिए, वो आदमी आदमी नहीं है
वही तो है शायरी जो राजे-जमाले-फितरत की तरजुमां हो जो घिर के रह जाए रंगो-बू में, वो शायरी शायरी नहीं है वही तो है जिंदगी, है जिसमें अटूट एहसास बका का
है मौत का जिसमें खौफ हरदम, वो जिंदगी जिंदगी नहीं है आज इतना ही।

एस धम्मो सनंतनो, भाग 12
एक सौ पंद्रह प्रवचन

विराट की अभीप्सा

सुंंगारं पविट्ठस्स संतचित्तस्स भिक्खुनो।
अमानुसी रती होति सम्माधम्मं विपस्सतो।। 307।।

यतो यतो सम्मसति खन्धानं उदयब्बयं।
लभती पीतिपामोज्जं अमतं तं विजानतं।। 308।।

पटिसन्थारवुत्तस्स आचारकुसलो सिया।
ततो पामोज्जबहुलो दुक्खस्सन्तं करिस्सति।। 309।।

वस्सिका विय पुप्फानि मद्दवानि पमुंचति।
एवं रागंच दोसंच विप्पमुंचेथ भिक्खवो।। 310।।

अत्तना चोदय"त्तानं पटिवासे अत्तमत्तना।
सो अत्तगुत्तो सतिमा सुखं भिक्खु विहाहिसि।। 311।।

अत्ता हि अत्तनो नाथो अत्ता हि अत्तनो गति।
तस्मा सांंमयत्तानं अस्सं भद्रं"व वाणिजो।। 312।।

प्रथम दृश्यः

भगवान जेतवन में विहरते थे। उस समय पांच सौ भिक्षुओं ने भगवान का आशीष ले ध्यान की गहराइयों में उतरने का संकल्प किया। समाधि से कम उनका लक्ष्य नहीं था। गंधकुटी के बाहर ही सुबह के उगते सूरज के साथ वे ध्यान करने बैठे। गंधकुटी के चारों ओर जुही के फूल खिले थे।
शास्ता ने उन भिक्षुओं को कहाः भिक्षुओ! जुही के खिले इन फूलों को देखते हो? सुबह खिले हैं और सांझ मुर्झा जाएंगे, ऐसा ही क्षणभंगुर जीवन है। अभी है, अभी नहीं है। इन फूलों को ध्यान में रखना भिक्षुओ! यह स्मृति ही क्षणभंगुर के पार ले जाने वाली नौका है।
भिक्षुओं ने फूलों को देखा और संकल्प कियाः संध्या तुम्हारे कुम्हलाकर गिरने के पूर्व ही हम ध्यान को उपलब्ध होंगे, हम रागादि से मुक्त होंगे। फूलो! तुम हमारे साक्षी हो।
भगवान ने साधु! साधु! कहकर अपने आशीषों की वर्षा की।
और तभी उन्होंने ये गाथाएं कही थींः

सुंंगारं पविट्ठस्स संतचित्तस्स भिक्खुनो।
अमानुसी रती होति सम्माधम्मं विपस्सतो।।

"शून्य गृह में प्रविष्ट शांत-चित्त भिक्षु को भली-भांति से धर्म की
विपस्सना करते हुए अमानुषी रति प्राप्त होती है।"

यतो यतो सम्मसति खन्धानं उदयब्बयं।
लभती पीतिपामोज्जं अमतं तं विजानतं।।

"जैसे-जैसे भिक्षु पांच स्कंधों--रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार और विज्ञान--की उत्पत्ति और विनाश पर विचार करता है, वैसे-वैसे वह ज्ञानियों
की प्रीति और प्रमोद रूपी अमृत को प्राप्त करता है।"

पटिसन्थारवुत्तस्स आचारकुसलो सिया।
ततो पामोज्जबहुलो दुक्खस्सन्तं करिस्सति।।

"जो सेवा-सत्कार स्वभाव वाला है और आचार-कुशल है, वह आनंद से ओतप्रोत होकर दुख का अंत करेगा।"

वस्सिका विय पुप्फानि मद्दवानि पमुंचति।
एवं रागंच दोसंच विप्पमुंचेथ भिक्खवो।।

"जैसे जुही अपने कुम्हलाए फूलों को छोड़ देती है, वैसे ही हे भिक्षुओ, तुम राग और द्वेष को छोड़ दो।"
इसके पहले कि हम सूत्रों पर विपस्सना करें, उन पर ध्यान करें, इस दृश्य को ठीक से मन में बैठ जाने दो।
भगवान जेतवन में विहरते थे।
जैनशास्त्र जब महावीर की बात करते हैं, तो वे कहते हैंः भगवान विराजते थे। बौद्धशास्त्र जब बुद्ध की बात करते हैं, तो वे कहते हैंः विहरते थे।
इन दो शब्दों में भेद है, तात्विक भेद है। विराजना थिरता का प्रतीक है, विहरना गति का।
जैन-दृष्टि में सत्य थिर है; ठहरा हुआ है; सदा एक-रस है। बौद्ध-विचार में सब गतिमान है, प्रवाहमान है; सब बहा जा रहा है। बौद्ध-विचार में ऐसा कहना ही ठीक नहीं है कि कोई चीज है। हर चीज हो रही है।
जैसे हम कहेंः वृक्ष है; तो बौद्ध-विचार में ठीक नहीं है ऐसा कहना।
क्योंकि जब हम कह रहे हैंः वृक्ष है, तब भी वृक्ष बदल रहा है, हो रहा है। एक पुराना पत्ता टूटकर गिर गया होगा, जब तुमने कहाः वृक्ष है। एक कली खिलती होगी, फूल बनती होगी। एक नया अंकुर आता होगा। एक नयी जड़ निकलती होगी। वृक्ष थोड़ा बड़ा हो गया होगा; थोड़ा बूढ़ा हो गया होगा।
जितनी देर में तुमने कहा, वृक्ष है, उतनी देर में वृक्ष वही नहीं रहा; बदल गया; रूपांतरित हो गया। तुम्हें दिखायी नहीं पड़ता रूपांतरण, क्योंकि रूपांतरण बड़ा धीमा-धीमा हो रहा है, आहिस्ता हो रहा है; शनैः-शनैः हो रहा है। मगर रूपांतरण तो हो ही रहा है।
इसलिए बुद्ध तो कहेंगेः ऐसा ही कहो कि वृक्ष हो रहा है। है जैसी कोई चीज जगत में नहीं है। सब चीजें हो रही हैं।
हम तो नदी तक को कहते हैं कि नदी है! बुद्ध कहते हैंः पहाड़ों को भी मत कहो कि पहाड़ हैं। क्योंकि पहाड़ भी बह रहे हैं। नदी तो बह ही रही है। वह तो हम देखते हैं कि नदी बह रही है, फिर भी कहते हैं, नदी है।
तो बुद्ध ने भाषा को भी नए रूप दिए। स्वाभाविक था। जब कोई दर्शन जन्म लेता है, तो उसके साथ ही सब नया हो जाता है; क्योंकि वह हर चीज पर अपने रंग को फेंकता है।
बुद्ध-भाषा में है का कोई मूल्य नहीं है; हो रहा है का मूल्य है।
जैन-भाषा में है का मूल्य है; क्योंकि हमें उसी को खोजना है, जो कभी नहीं बदलता। जो बदल रहा है, वह संसार।
वैसा ही हिंदू-विचार में भी, जो बदल रहा है, वह माया; और जो कभी नहीं बदलता, वही ब्रह्म। तो ब्रह्म को हम ऐसा नहीं कह सकते कि विहरता है। कहना होगा, विराजता है।
बुद्ध की सारी कथाएं, उनके संबंध में लिखे गए सारे वचन सदा शुरू होते हैंः भगवान जेतवन में या श्रावस्ती में या किसी और स्थान पर विहरते थे। गत्यात्मकता पर बुद्ध का बड़ा जोर है। सब प्रवाहरूप है। और जिस दिन प्रवाह रुक जाएगा, उस दिन तुम्हारे हाथ में ऐसा नहीं है कि पूर्ण और शाश्वत पकड़ में आ जाएगा। जिस दिन प्रवाह रुक जाएगा, उस दिन तुम तिरोहित हो जाओगे।
महावीर के मोक्ष में आत्मा बचेगी और फिर सदा-सदा रहेगी। बुद्ध के निर्वाण में आत्मा ऐसे बुझ जाएगी, जैसे दीया बुझ जाता है। इसीलिए शब्द निर्वाण का उपयोग हुआ है। निर्वाण का अर्थ होता हैः दीए का बुझ जाना।

एक दीया जल रहा है; तुमने फूंक मार दी और ज्योति बुझ गयी। अब कोई तुमसे पूछे कि ज्योति कहां गयी--तो क्या कहोगे! कोई तुमसे पूछे कि अब ज्योति कहां है--तो क्या कहोगे?
ऐसे ही, कहते हैं बुद्ध, जब वासना का तेल चुक जाता है और जीवन की ज्योति बुझ जाती है, तो तुम शून्य हो जाते हो। उस शून्य का नाम निर्वाण है। ऐसा नहीं है कि तुम्हारे हाथ में कोई थिर वस्तु पकड़ में आ जाती है। पकड़ने वाला भी खो जाता है। मुट्ठी ही खो जाती है, बांधोगे किस पर!
तो जगत है प्रवाह और निर्वाण है प्रवाह का शून्य हो जाना, प्रवाह से मुक्त हो जाना। लेकिन ख्याल रखना, यह ख्याल मत लेना मन में कि मुक्त होकर तुम बचोगे। प्रवाह में ही बचाव है। जब तक प्रवाह है, तभी तक तुम हो। प्रवाह ही तुम हो। जिस दिन प्रवाह गया, तुम भी गए।
दीए की ज्योति तुम सांझ को जलाते हो, और सुबह जब उठकर देखते हो, तो सोचते हो, वही ज्योति जल रही है; तो गलत सोचते हो। वह ज्योति तो लाखों बार बुझ चुकी रात में। प्रतिपल धुआं हो रही है। ज्योति धुआं होती जाती है। नयी ज्योति जन्मती जाती है; पुरानी हटती जाती है। जिसको तुमने सांझ जलाया था, सुबह तुम उसी को नहीं बुझा सकते। वह तो बची ही नहीं। फिर सुबह जिस ज्योति को तुम बुझाते हो, यह वही ज्योति नहीं है जिसको तुमने जलाया था; यह दूसरी ही ज्योति है। यद्यपि उसी ज्योति के प्रवाह में आयी है; संतति है, संतान है; वही नहीं है। जैसे बाप ने किसी के तुम्हें गाली दी थी, तुमने बेटे को मारा। ऐसी बात है।
सांझ जो जलायी थी ज्योति, वह तो कब की गयी। अब तुम उसके बेटे-बेटी को बुझा रहे हो; उसकी संतान को बुझा रहे हो। कई पीढ़ियां बीत गयीं रात में, लेकिन अगर तेल बचा रहे, तो ज्योति जलती चली जाएगी। और यह भी हो सकता है, इस दीए में बुझ जाए, और दूसरे दीए में छलांग लगा जाए जिसमें तेल भरा है, तो वहां जलने लगेगी; संतान वहां बहने लगेगी।
ऐसा ही व्यक्ति एक जन्म से दूसरे जन्म में छलांग लगाता है। वासना नहीं चुकती, तो ज्योति नयी वासना नए तेल को खोज लेती है, नए गर्भ को खोज लेती है। लेकिन जिस दिन वासना का तेल परिपूर्ण चुक गया, ज्योति जलकर भस्मीभूत हो जाती है; निर्वाण हो जाता है; तुम महाशून्य में लीन हो जाते हो।
प्रवाह संसार है; प्रवाह का शून्य हो जाना मोक्ष है।
भगवान जेतवन में विहरते थे। उस समय पांच सौ भिक्षुओं ने भगवान का आशीष ले ध्यान की गहराइयों में उतरने का संकल्प किया।
ध्यान के लिए संकल्प चाहिए। संकल्प का अर्थ होता हैः सारी ऊर्जा को
एक बिंदु पर संलग्न कर देना। संकल्प का अर्थ होता हैः अपनी ऊर्जा को विभाजित न करना। क्योंकि अविभाज्य ऊर्जा हो, तो ही कहीं पहुंचना हो सकता है।
जैसे सूरज की किरणें हैं। अगर इनको तुम इकट्ठा कर लो, एक जगह कर लो, तो
आग पैदा हो जाए। बिखरी रहें, तो आग पैदा नहीं होती। ऐसी ही मनुष्य की जीवन ऊर्जा है। एक जगह पड़े, एक बिंदु पर गिरने लगे, तो महाशक्ति प्रज्वलित होती है। पच्चीस धाराओं में बहती रहे, तो धीरे-धीरे खो जाती है। जैसे नदी रेगिस्तान में खो जाए। कहीं पहुंचती नहीं।
समझो, गंगा की कई धाराएं हो जाएं, तो सागर तक नहीं पहुंच सकेगी फिर। गंगा पहुंचती है सागर तक एक धारा के कारण। और जितनी धाराएं मार्ग में मिलती हैं, वे सब गंगा के साथ एक होती जाती हैं। जो नदी आयी--गिरी। यमुना आयी--गिरी। जो नदी-नाला आया--गिरा। वे सब गंगा के साथ एक होते चले जाते हैं।
गंगोत्री में तो गंगा बड़ी छोटी है। उतरते-उतरते पहाड़ों से, बड़ी होने लगती है। मैदान में विराट होने लगती है। सागर तक पहुंचते-पहुंचते खुद ही सागर जैसी हो जाती है। गंगोत्री से गंगासागर तक की यात्रा समझने जैसी है, क्योंकि वही मनुष्य की ऊर्जा की यात्रा भी है।
तुम दो तरह से जी सकते होः संकल्पहीन या संकल्पवान। संकल्पहीन का अर्थ होता हैः तुम्हारे जीवन में पच्चीस धाराएं हैं। धन भी कमा लूं; पद भी

कमा लूं; प्रतिष्ठा भी बना लूं। साधु भी कहलाऊं; ध्यान भी कर लूं; मंदिर भी हो आऊं; दुकान भी चलती रहे। तुम्हारा जीवन पच्चीस धाराओं में विभाजित है। इसलिए कुछ भी पूरा नहीं हो पाता। न दुकान पूरी होती, न मंदिर पूरा होता। न धन मिलता, न ध्यान मिलता।
ऊर्जा संगृहीत होनी चाहिए, तो संकल्प का जन्म होता है। एक धारा में गिरे, अखंडित गिरे, तो कुछ भी असंभव नहीं है। जीवन में चीजें असंभव इसलिए मालूम हो रही हैं, क्योंकि तुम टूटे हो खंड-खंड, टुकड़े-टुकड़े में। तुम एक नहीं हो, इसलिए जीवन में बहुत सी चीजें असंभव हैं। तुम एक हो जाओ, तो कुछ भी असंभव नहीं है। संकल्प का यही अर्थ होता है।
पांच सौ भिक्षुओं ने भगवान का आशीष ले ध्यान की गहराइयों में उतरने
का संकल्प किया।
फिर भी, संकल्प तो उन्होंने किया, भगवान के आशीष को भी आए। तुम्हारा संकल्प ऐसे तो काफी है, लेकिन अंततः तुम्हारा ही है। एक अज्ञानी के संकल्प का मूल्य कितना हो सकता है! बांध-बूंधकर, किसी तरह सम्हालकर करने की कोशिश करोगे; लेकिन भूल-चूक हो जाने की संभावना है। किसी ज्ञानी का आशीष भी हो, तो तुम्हारे संकल्प के बचे रहने की, तुम्हारे संकल्प के बने रहने की, तुम्हारे संकल्प के पूरे होने की ज्यादा गुंजाइश है। जीत सुनिश्चित हो जाएगी।
ज्ञानी का आशीष तुम्हारे खंडों को सीमेंट की तरह जोड़ देगा। कोई मेरे पीछे खड़ा है, जो जानता है--यह भरोसा भी तुम्हें दूर तक ले जाने वाला होगा। जैसे छोटे बच्चे को कोई डर नहीं लगता, उसकी मां पास हो, बस। फिर चाहे तुम उसे नर्क ले जाओ, कोई फिकर नहीं है। वह नर्क में भी खेलने लगेगा; उसकी मां पास है। और तुम उसे स्वर्ग ले जाओ, और उसकी मां पास न हो, तो वह स्वर्ग में भी विपन्न और दुखी होने लगेगा। उसकी मां पास नहीं है। रोने लगेगा; चीखने- पुकारने लगेगा।
वह जो मां की मौजूदगी है, वही गुरु की मौजूदगी है। गुरु मौजूद हो, तो यात्रा बड़ी सुगम हो जाती है। लेकिन गुरु की मौजूदगी का मतलब क्या होता है? गुरु की मौजूदगी का मतलब है कि तुमने किसी के चरणों में सिर झुकाया है, और किसी को गुरु स्वीकार किया है।
गुरु मौजूद भी हो, लेकिन तुम्हारे भीतर शिष्य-भाव मौजूद न हो, तो किसी अर्थ का नहीं है। फिर गुरु गुरु नहीं है। गुरु बनता है तुम्हारे शिष्य-भाव से।
इन पांच सौ भिक्षुओं ने भगवान के चरणों में आकर प्रार्थना की होगी कि
हम ध्यान की गहराइयों में जाना चाहते हैं। जी लिए बहुत विचार में और कुछ भी नहीं पाया। सोच लिया खूब, कुछ भी नहीं मिला। कर लिया सब; दुख बना रहता है, मिटता नहीं। अब हम सब दांव पर लगा देना चाहते हैं। अब हम कुछ बचाना नहीं चाहते। अब हमें आशीष दो कि हम भटक न जाएं; कि हम बीच से लौट न आएं; कि हम डगमगा न जाएं; कि हम पथ-भ्रष्ट न हो जाएं; कि हम मार्गच्युत न हो जाएं; कि हम किसी और दिशा में न बह जाएं। आशीष दो कि आप हमारे साथ रहोगे। आशीष दो कि आपकी छत्र-छाया होगी। आशीष दो कि आपकी दृष्टि हमारा पीछा करेगी; कि आप हमारे भीतर मौजूद रहेंगे और देखते रहेंगे कि हम ठीक चल रहे न! हम चूक तो नहीं रहे। यह भरोसा हमें आ जाए कि आप खड़े हो हमारे साथ; हम अकेले नहीं हैं; तो हम दूर तक की यात्रा कर लेंगे।
यात्रा तो व्यक्ति को स्वयं ही करनी है। भरोसे की कमी है। गुरु की जरूरत है भरोसे के कारण। जिस दिन तुम्हारी यात्रा पूरी हो जाएगी, उस दिन तुम पाओगेः गुरु ने कुछ भी नहीं किया और बहुत कुछ भी किया।
कुछ भी नहीं किया इस अर्थों में कि जिस दिन तुम यात्रा पूरी कर लोगे, तुम पाओगे कि गुरु पास-पास तैरता रहा; तुम्हें भरोसा बना रहा कि अगर डूबूंगा, तो कोई बचा लेगा। लेकिन तैरते तुम रहे। तुम तैरकर पहुंचे अपने आप। शायद गुरु ने हाथ भी न लगाया हो; लेकिन पास-पास तैरता रहा।
तो एक अर्थ में तो कुछ भी नहीं किया; हाथ भी नहीं लगाया। हाथ लगाने की जरूरत ही नहीं है। तुम पहुंच सकते हो, इतनी शक्ति परमात्मा ने प्रत्येक को दी है कि वापस मूलस्रोत तक पहुंच जाए। इतना पाथेय सभी के भीतर रखा है।

इतना कलेवा तुम लेकर ही पैदा हुए हो कि यात्रा पूरी हो जाए, और भोजन चुके नहीं।
लेकिन तुममें भरोसे की कमी है और वह भी स्वाभाविक है। कभी जिस मार्ग
पर चले नहीं, उस मार्ग पर चलने में भरोसा हो कैसे! श्रद्धा का अभाव है। आत्मश्रद्धा नहीं है। तुम्हें डर है कि मुझसे न हो सकेगा। और तुम्हारे डर के कारण हैं, सुनिश्चित कारण हैं। छोटी-छोटी चीजें की हैं और नहीं हो सकीं। कभी सिगरेट पीते थे और छोड़ना चाही--नहीं छूटी। वर्षों मेहनत की और नहीं छूटी। कितनी ही बार तय किया और नहीं छूटी। और हर बार तय करके गिरे; और हर बार तय करके पछताए; और फिर पीया, और फिर भूल की; फिर अपराध हुआ। धीरे- धीरे ग्लानि बढ़ती गयी; आत्म-विश्वास खोता गया। एक बात साफ हो गयी कि तुम्हारे किए कुछ होने वाला नहीं है। क्षुद्र सी बात नहीं छूटती!
तो जिस आदमी को सिगरेट पीना न छूट सका हो अपने ही संकल्प से, वह ध्यान में जाए--कैसे भरोसा हो।
जो आदमी कई बार निर्णय किया कि सुबह पांच बजे उठ आऊंगा ब्रह्म-मुहूर्त में, और कभी नहीं उठ सका। अलार्म भी भरा। पांच बजे अलार्म भी बजा, तो गाली देकर घड़ी को भी पटक दिया। करवट लेकर फिर सो रहा। सुबह पछताया। फिर रोया, चीखा। फिर कसम खायी कि अब कल कुछ भी हो जाए, उठूंगा। फिर कल यही हुआ। कितने दिन तक ऐसा करोगे? एक दिन तुम पाओगेः यह अपने से नहीं होना। छोड़ो। सोते तो रहते ही हो, अब यह झंझट भी क्यों लेनी! उठना तो होता नहीं; होगा भी नहीं। हार गए। हार गए, तो तुम्हारे भीतर से आत्म-श्रद्धा तिरोहित हो जाएगी।
इसलिए मैं तुमसे कहता हूंः क्षुद्र बातों में अपने जीवन-प्रयास को मत लगाना। क्योंकि क्षुद्र से अगर हार गए, तो विराट की दिशा में जाने में अड़चन आ जाएगी। इसलिए मैं नहीं कहता कि तुम लड़ो छोटी-छोटी बातों से। छोटी- छोटी बातों से लड़ने से सिर्फ हानि होती है, लाभ कुछ भी नहीं होता है।
मैं तो तुमसे कहता हूंः लड़ना ही हो, तो किसी बड़ी बात में ही जूझना। छोटी बात में जूझना ही मत। हारोगे, तो भी कम से कम इतना तो रहेगा ख्याल कि बात इतनी बड़ी थी, इसलिए हारा। छोटी बात से लड़ोगे, हारोगे, तो बड़ी ग्लानि होगी कि बात इतनी छोटी थी, और नहीं जीता!
आचार्य तुलसी लोगों को अणुव्रत समझाते हैं। मैं महाव्रत समझाता हूं। अणुव्रत खतरनाक है। छोटा सा व्रत लेना ही मत। जीते, तो कुछ लाभ नहीं। समझो कि सिगरेट पीते थे, और जीत गए। अब नहीं पी। तो क्या खास लाभ है? कुछ खास लाभ नहीं है। जीते, तो कोई आत्म-गरिमा पैदा नहीं होगी। अगर किसी से कहोगे कि मैंने सिगरेट पीना छोड़ दिया, तो वह कहेगाः इसमें क्या रखा है! हम पहले से नहीं पीते। इसमें कोई खास बात नहीं हो गयी। धुआं भीतर ले गए; धुआं बाहर लाए! अब नहीं ले जाते, इसमें कौन सा गुण-गौरव है? इसमें तुमने कौन सी कला सिद्ध कर ली?
जीते, तो कुछ लाभ नहीं। और अगर हारे... । और सौ में निन्यानबे मौके हैं हारने के, जीतने के नहीं। अगर हारे--जिसके निन्यानबे मौके हैं--तो बड़ी हानि है।
मैंने सुना है, ईसप की कहानी हैः एक गधे ने एक सिंह को ललकारा कि आ, हो जाएं दो-दो हाथ! आज तय हो जाए कि कौन इस जंगल का राजा है। सिंह पूंछ दबाकर भाग गया! एक लोमड़ी देखती थी; वह बड़ी हैरान हुई। यह सिंह तो हाथियों की भी चुनौतियों को कभी डरा नहीं। यह गधे से पूंछ दबाकर भाग गया! मामला क्या है? लोमड़ी ने पीछा किया। पूछा कि आप राजा हैं, सम्राट हैं, और एक गधे से... ! उसने कहाः गधे की वजह से ही भागा। अगर गधा हारा, तो हमारी जीत से कुछ लाभ नहीं। लोगे कहेंगे, क्या जीते! गधे से जीते! और बदनामी होगी। अगर गधा जीत गया भूल-चूक; गधा ही है, इसका क्या भरोसा! दुलत्ती मारे या कुछ हो जाए और कभी जीत जाए संयोग से, तो हम सदा के लिए मारे गए। हम नहीं मारे गए, हमारी संतति भी मारी गयी। फिर सदा के लिए सिंहों का सिर झुक जाएगा।
छोटे से नहीं लड़ना।
मैं भी तुमसे यही कहता हूंः छोटे से मत लड़ना। लड़ना हो, तो कोई बड़ा दुश्मन चुनना। जितना बड़ा दुश्मन चुनो, उतना लाभ है। लड़ना हो, तो धूम्रपान

मत चुनना; ध्यान चुनना। लड़ो, तो सिंह से लड़ो। हारे, तो भी कहने को तो रहेगा कि सिंह से हारे। जीते, तब तो कहना ही क्या! दोनों हाथ लड्डू होंगे।
छोटे से मत लड़ना।
आचार्य तुलसी ने मुझे एक दफा निमंत्रित किया था उनके एक सम्मेलन में।
मैंने उनसे कहा कि नहीं; अणुव्रत शब्द मुझे नहीं जमता। छोटी-छोटी बातों में मैं आदमी को नहीं उलझाना चाहता। छोटी-छोटी बातों में ही उलझकर आदमी मरा है। कुछ महाव्रत की बात हो।
और यह बड़े मजे की बात है कि छोटे से आदमी अक्सर हार जाता है, और बड़े से जीत जाता है। यह गणित बड़ा बेबूझ है। इसके पीछे बड़ा मनोविज्ञान है।
छोटे से आदमी क्यों हार जाता है? पहली तो बात यह कि जो छोटे से लड़ने चला है, उसने अपने को बहुत छोटा मान ही लिया। उसका भरोसा ही बहुत छोटे का हो गया। जो आदमी सिगरेट से लड़ने चला है, या पान से लड़ने चला है, या इसी तरह की छोटी-मोटी बातों से लड़ने चला है, उसने अपनी क्षुद्रता स्वीकार कर ली। इसी स्वीकार में हार है।
समझदार आदमी सिगरेट से लड़ता नहीं। अगर नहीं पीना है, तो सिर्फ छोड़ देता है; लड़ता नहीं। नहीं पीना है, तो नहीं पीता। कौन कहता है कि पीओ! सिर्फ छोड़ देता है, बिना लड़े। उसे बात दिख गयी, कि नहीं जंचती; कोई सार नहीं है। उस अंतर्दृष्टि में ही छूटना हो जाता है।
बिना लड़े हो जाए, तब तो ठीक। जो आदमी कहता हैः लंगोटी बांधूंगा; और दंड-बैठक लगाऊंगा; इससे लडूंगा। वह पहले से ही हारने की बात पक्की हो गयी उसकी। वह पहले से ही डरा हुआ है। वह घबड़ा रहा है। उसकी घबड़ाहट उसे कंपा रही है। वह जानता है कि मैं जीतने वाला नहीं। वह जानता है कि घड़ीभर सिगरेट न पीऊंगा, तलब उठेगी; फिर क्या होगा!
ऐसा हुआ। पहला आदमी उत्तरी ध्रुव पर पहुंचा था। तो उसने जब लौटकर अपने संस्मरण लिखे, तो उसने संस्मरणों में लिखा कि हमें सबसे बड़ी कठिनाई तब आयी, जब सिगरेट चुक गयी। भोजन कम हो गया, तो लोग एक बार भोजन करने को राजी थे। मगर जब सिगरेट चुक गयी, तो बड़ी मुसीबत खड़ी हो गयी। लोग जहाज की रस्सियां काट-काटकर पीने लगे। रस्सियां! और जो उनका प्रमुख था, वह तो बहुत घबड़ाया। उसने कहाः ये रस्सियां तुम पी गए, तो यह जहाज चलेगा कैसे! वापस हम कैसे पहुंचेंगे?
रस्सियों को बचाना मुश्किल हो गया। क्योंकि अधिक तो धूम्रपान करने वाले लोग थे। वे रात में उठ आएं, चोरी से रस्सी काटकर पी जाएं! और कोई चीज पीने को थी भी नहीं जहाज पर; रस्सियां ही थीं, जिनमें से धुआं निकल सकता था। बामुश्किल वे लौट पाए, उन रस्सियों को किसी तरह बचा-बचाकर।
एक आदमी यह पढ़ रहा था अखबार में--हाथ में सिगरेट लिए--उसे ख्याल आया कि अगर मैं भी उस यात्रा में होता... । और वहशृंखलाबद्ध धूम्रपान करने वाला था, चेन स्मोकर था। एक सिगरेट से दूसरी जलाए; दूसरी से तीसरी जलाए। सिगरेट हाथ से छूटे ही नहीं। अभी भी अखबार पढ़ रहा था... लेकिन उसे लगा कि अगर मैं उस यात्रा में होता, तो क्या मैंने भी जहाज की गंदी रस्सियां पी होतीं? मैंने भी? और उसने हाथ से सिगरेट छोड़ दी। और उसने कहाः अब मैं देखूंगा; जब इतनी तलब मुझमें उठे कि मैं जहाज की सड़ी-गली रस्सियों को धूम्रपान कर जाऊं, तभी सिगरेट हाथ में उठाऊंगा।
तीस साल बीत गए और उसने सिगरेट हाथ में नहीं उठायी। यह बिना लड़े छोड़ना है। यह सिर्फ एक बात दिखायी पड़ गयी--कि यह तो हद्द मूढ़ता की बात है। मगर यह क्या मेरी भी दशा यही होगी? ऐसा सोचते ही सिगरेट हाथ से छोड़ दी। छोड़ दी कहना, शायद ठीक नहीं; छूट गयी। लड़ा नहीं। सिगरेट और माचिस सदा टेबल पर रखी रही तीस साल तक, जब तक वह मरा नहीं। इस प्रतीक्षा में रहा कि उस दिन पीऊंगा, जिस दिन ऐसी दशा हो जाएगी कि अब कुछ भी पी सकता हूं। मगर वह दशा कभी न हुई। और वह बहुत हैरान हुआः तलब उठी ही नहीं!
तुम तलब उठने के पहले ही माने हो कि उठेगी; उठने ही वाली है। बचना मुश्किल है। तुम्हारी मान्यता ही तुम्हें भरमा रही है।
छोटी-छोटी क्षुद्र बातों से मत लड़ना। और बड़ी तो एक ही बात हैः लड़ना हो,
तो परमात्मा के लिए लड़ना। लड़ना हो, तो ध्यान के लिए लड़ना। वहां पूरी ऊर्जा

लेकर लड़ना। इस विराट की लड़ाई में तुम अकेले भी नहीं रहोगे। इस विराट की लड़ाई में, जो भी उसको उपलब्ध हो गए हैं, सबके आशीष तुम्हें उपलब्ध होंगे। आशीष लेकर लड़ना।
क्यों आशीष लेकर लड़ना? ताकि तुम्हारे साथ बुद्ध की ऊर्जा जुड़ जाए; किसी जिन की ऊर्जा जुड़ जाए; किसी संत की ऊर्जा जुड़ जाए। किसी संत का भाग्य अपने साथ जोड़ लेना--यह आशीष का अर्थ है। जब किसी संत का भाग्य अपने भाग्य से जोड़ा जा सकता हो, तो नासमझ है जो न जोड़े।
बुद्ध का आशीष लिया। चाहते थे, ध्यान की गहराइयों में उतरना है। समाधि से कम उनका लक्ष्य नहीं था।
इससे कम लक्ष्य रखना भी नहीं। छोटे-छोटे लक्ष्य रखना ही नहीं। दूर आकाश के तारे पर आंख होनी चाहिए। और अगर तुम्हें दो मील जाना हो, तो दस मील जाने का संकल्प होना चाहिए, तो दो मील पहुंचोगे। जितना तुम्हें पाना हो, उससे बड़ा संकल्प रखना।
अक्सर लोग उलटा कर लेते हैं। जाना तो चाहते हैं सूरज तक, संकल्प बड़ा छोटा सा होता है। दीए तक पहुंचने का भी नहीं होता। फिर सूरज तक कैसे पहुंचोगे?
संकल्प तो आत्यंतिक होना चाहिए। जिन लोगों ने धन को चुना है संकल्प
की तरह, उन्होंने बड़े क्षुद्र को चुन लिया। जिन्होंने ध्यान को चुना है, उन्होंने ही ठीक चुना है। चुनौती बड़ी चाहिए, ताकि तुम्हारे भीतर सोयी हुई शक्तियां जाग जाएं। इसलिए क्षुद्र के साथ लड़ाई में हार हो जाती है, क्योंकि क्षुद्र की चुनौती में तुम्हारे भीतर सोयी हुई शक्तियां जागती ही नहीं। शक्तियां जागती तभी हैं, जब उनके सामने खतरा खड़ा हो जाए।
बड़ी चुनौती दो। जितनी बड़ी चुनौती होगी, उतना ही विराट तुम अपने भीतर जागता हुआ पाओगे। चुनौती का सामना करना है। चुनौती से जूझना है।
तुमने कभी ख्याल कियाः अगर किसी कठिनाई के समय में तुम जूझ पड़ते हो,
तो तुम्हारे भीतर बड़ी ऊर्जा होती है, जैसी सामान्यतया नहीं होती।
जैसे समझो कि घर में आग लग गयी है। तुम थके-मांदे आए थे; कि सात दिन से यात्रा कर रहे थे और सारा शरीर टूट रहा था। और तुम बिल्कुल थके-मांदे थे, और भूखे थे। और चाहते थे कि किसी तरह भोजन करके गिर पड़ो बिस्तर में, और खो जाओ दो दिन के लिए बिस्तर में। दो दिन उठना ही नहीं है।
घर आए। खाने की तो बात दूर, देखा कि घर में लपटें लगी हैं; आग जल रही है। सब भूल गए। सात दिन की थकान, शरीर का टूटा-फूटा होना, भूख, निद्रा--सब गयी! एक क्षण में कोई ज्योति तुम्हारे भीतर भभककर उठी। एक ऊर्जा उठी। तुम जूझ गए।
अब शायद तुम रातभर आग से लड़ते रहो और नींद नहीं आएगी। और पहले तुम सोच रहे थे कि घड़ीभर भी अगर मुझे जागना पड़ा, भोजन के तैयार होने के समय की प्रतीक्षा करनी पड़ी, तो मैं सो जाऊंगा; गिर जाऊंगा।
क्या हुआ? कहां से यह ऊर्जा आयी? एक बड़ी चुनौती सामने खड़ी हो गयी। उस बड़ी चुनौती के कारण यह ऊर्जा आयी।
चुनौतियां चुनना बड़ी कुशलता की बात है। और अगर चुनना ही हो, तो आत्यंतिक; कहो उसे समाधि, निर्वाण, मोक्ष, परमात्मा; जो नाम देना चाहो। मगर जो परमात्मा को पाने की प्रबल अभीप्सा से जग खड़ा होता है, उसके भीतर सोयी हुई अंतस्तल की सारी शक्तियां जग आती हैं। उसकी जड़ें तक कंप जाती हैं। उसके भीतर जो भी छिपा है, सब प्रगट हो जाता है। क्योंकि इस बड़ी चुनौती के सामने अब कुछ भी छिपाकर नहीं रखा जा सकता। अब तो सभी दांव पर लगाना होगा, तो ही यात्रा हो सकती है।
इसलिए कहता हूं कि छोटी-मोटी चीज से लड़ोगे, तो हारोगे। क्योंकि तुम्हारी सोयी हुई शक्तियों को चुनौती नहीं मिलती।
अब सिगरेट नहीं पीना है--यह बात ही सुनकर कोई तुम्हारी आत्मा जागने वाली है! आत्मा कहेगी कि पीओ न पीओ, ठीक है। क्या फर्क पड़ता है! कि नमक नहीं खाएंगे आज; कि आज भोजन में घी नहीं लेंगे। इन सब क्षुद्र बातों से कुछ भी नहीं होता। कि पानी छानकर पीएंगे; कि रात पानी नहीं पीएंगे। इन सब क्षुद्र बातों से कुछ भी नहीं होता है।

ऐसी कोई चुनौती कि तीर की तरह छिद जाए, चुभ जाए, कि चली जाए भीतर तक, कि सारे सोए हुए अंतस्तल को कंपा दे; झंझावात की तरह आए, तूफान की तरह आए और तुम्हें उठा जाए। उसी उठने में पहुंचना है।
लेकिन फिर भी काश! आशीष भी मिल जाए उनका, जो पहुंच गए हैं; उनका, जिन्होंने पा लिया है; उनके हाथ का सहारा मिल जाए तो हार का कोई कारण नहीं है।
अक्सर तुम हारते हो, क्योंकि क्षुद्र से लड़ते हो; पहली बात। और कभी- कभी विराट की आकांक्षा से भी भरते हो, लेकिन तुम्हारे पास आशीष की संपदा नहीं होती। तुम अकेले पड़ जाते हो। दूर किनारा। विराट तो बहुत दूर है; पता नहीं कहां है किनारा! यह किनारा तो हमें पता है; दूसरा किनारा, वह दिखायी भी नहीं पड़ता; सागर का दूसरा किनारा; उसकी यात्रा पर चलते हो। घबड़ाहट होती है। यह किनारा छोड़ने में घबड़ाहट होती है।
इसीलिए तो जब तुम ध्यान करने बैठते हो, तो विचार का किनारा नहीं छूटता। मन पकड़-पकड़ लेता है। मन कहता है कि जो परिचित है, उसको मत छोड़ो। जिसमें परिचय है, उसमें सुरक्षा है। यह जाना-माना है; पहचाना है; अपना है; यहां रहे हैं जन्मों-जन्मों से। तुम कहां जाते हो! किस किनारे की तलाश करते हो? कहीं भटक न जाओ; कहीं सागर में डूब न जाओ! कहीं ऐसा न हो कि यह किनारा भी हाथ से जाए और दूसरा भी न मिले। दूसरा है, इसका पक्का क्या है? किसने तुमसे कहा कि दूसरा किनारा है? तुमने तो नहीं जाना। कहीं ऐसा न हो कि तुम किसी प्रवंचना में पड़ गए हो! कि किसी झूठे सपने ने तुम्हें पकड़ लिया है!
मन तुम्हारी सुरक्षा के लिए कहेगाः रुके रहो इसी किनारे पर। विचार के
तट पर ही रुके रहो। विचार है यह किनारा; ध्यान है वह किनारा। विचार है संसार; ध्यान है परमात्मा।
तो तुमने देखाः तुम ध्यान करने बैठते हो, कितने विचार उठते हैं! ज्यादा उठते हैं। उससे ज्यादा उठते हैं, जितना कि जब तुम ध्यान करने नहीं बैठते। चौबीस घंटे हजार काम में लगे रहते हो, इतने विचार नहीं सताते। घंटेभर आंख बंद करके बैठ जाओ आसन लगाकर। तुम इतने हैरान हो जाते हो कि मामला क्या है! क्या विचार प्रतीक्षा ही करते थे कि करो, बच्चू ध्यान करो, फिर तुम्हें बताएंगे! सब तरफ से टूट पड़ते हैं! सब दिशाओं से हमला बोल देते हैं। जैसे प्रतीक्षा में ही थे कि करो ध्यान, तो मजा चखाएं।
आने लगते हैं सब तरह के विचार--धन के, वासना के, काम के, राजनीति के, यह-वह, कूड़ा-करकट--सब! अखबार उड़े आते हैं। सब! एक दिशा से नहीं, सब दिशाओं से हमला हो जाता है। एकदम घिर जाते हो दुश्मनों में। थोड़ी देर में थककर उठ आते हो। सोचते होः इससे तो जब हम काम में लगे रहते हैं, तभी कम विचार होते हैं। यह तो चले थे निर्विचार होने, और विचार के झंझावात से घिर गए!
ऐसा क्यों होता है? इसलिए होता है कि मन तुम्हारी सुरक्षा कर रहा है।
मन कह रहा हैः कहां जाते हो! जिस लक्ष्य का कोई पता नहीं; जहां तुम कभी गए नहीं; जिसका कोई स्वाद नहीं; किस मृग-मरीचिका के पीछे जा रहे हो? व्यावहारिक बनो। जो जाना-माना है, परखा है, उसी को पकड़े रहो।
इसलिए आशीष की जरूरत है। आशीष का अर्थ हैः हम तो इस किनारे हैं; उस किनारे से कोई पुकार दे दे। आशीष का अर्थ हैः हम तो इस किनारे खड़े हैं, कोई उस किनारे से कह दे कि घबड़ाओ मत, मैं पहुंच गया हूं; आओ। और जैसे तुम डर रहे हो, मैं भी डरता था। डरो मत; पहुंचना होता है। देखो, मैं पहुंच गया हूं। बुद्धों का सत्संग खोजने का और क्या अर्थ होता है! यही कि किसी ऐसे आदमी के पास होना, जो अनुभव से कह सके कि पहुंच गया हूं। शास्त्रों से नहीं, अनुभव से; जो गवाह हो, जो साक्षी हो। जो यह न कहे कि मैं परमात्मा को मानता हूं। जो कहे, मैं जानता हूं। जो इतना ही न कहे, जानता हूं; बल्कि कहे कि मैं हूं।
ये तीन अवस्थाएं हैंः मानना, जानना, होना।
मानना बहुत दूर है। वह इसी किनारे खड़ा आदमी है, जो मानता है। उसे पता नहीं है। अंधा आदमी जैसे रोशनी को मानता है कि होना चाहिए, होगी। इतने लोग कहते हैं, तो जरूर होगी। मगर संदेह तो उठते ही रहेंगे, क्योंकि उसने तो

जाना नहीं; उसने तो देखा नहीं। पता नहीं, लोग झूठ ही बोलते हों! लोगों का क्या भरोसा? अपने अनुभव के बिना जानना कैसे हो? मानना भी कैसे हो? तो मानना भी थोथा होता है। सब मानना थोथा होता है। सब विश्वास अंधविश्वास होते हैं।
फिर एक आदमी है, जिसकी आंख खुली और जिसने देखा--और देखा कि हां, रोशनी है। वृक्षों पर नाचती हुई किरणें देखीं। आकाश में उगा सूरज देखा। रात में घिरा आकाश चांद-तारों से भरा देखा। देखे फूल। हजार-हजार रंग देखे। आकाश में खिले इंद्रधनुष देखे। देखा सब, और कहा कि नहीं; है। यह जानना हुआ। इसके आगे एक और स्थिति है, जब आदमी जानता ही नहीं; आंख ही नहीं हो जाता; बल्कि रोशनी ही हो जाता है; जब स्वयं प्रकाशरूप हो जाता है।
इसलिए बुद्ध को हम भगवान कहते हैं, महावीर को भगवान कहते हैं। जाना ही नहीं--हो गए। जो जाना--वही हो गए।
जानने में थोड़ी दूरी होती है। मानने में तो बहुत दूरी होती है। जानने में थोड़ी दूरी होती है। देख रहे हैं, वह रहा प्रकाश; हम खड़े यहां! फिर धीरे- धीरे दूरी मिटती जाती है, मिटती जाती है। और जो जाना जा रहा है, और जो जानने वाला है--एक ही हो जाते हैं। ज्ञाता और ज्ञेय का भेद गिर जाता है। वहीं परम ज्ञान है।
ऐसे किसी व्यक्ति का आशीष मिल जाए, तो तुम्हारे भीतर उत्साह और उमंग
भर जाती है। श्रद्धा का सूत्रपात होता है। संवेग पैदा होता है। कोई पहुंच गया है, तो हम भी पहुंच सकते हैं। कोई पहुंच गया है, तो दूसरा किनारा है। इसलिए आशीष मांगने आए थे।
बुद्ध जिस कुटी में रहते थे, उसका नाम था गंधकुटी। बुद्ध की सुगंध के कारण। एक सुवास है आत्मा की। जैसे फूल जब खिलते हैं, तो एक सुवास होती है। कागज के फूलों में नहीं होती। कागज के फूल कभी खिलते ही नहीं। असली फूलों में होती है सुवास!
साधारण आदमी में सुवास नहीं होती। वह करीब-करीब कागज का फूल है। कागज का, क्योंकि उसने सब झूठ का जाल अपने चारों तरफ बना रखा है। उसने दूसरों को धोखा दिया है; अपने को भी धोखा दे लिया है। प्रवंचक है। मिथ्या है। झूठ ही झूठ की पर्तें हैं। सच उसमें खोजे से नहीं मिलता। कितना ही खोदो, एक झूठ के बाद दूसरा झूठ; दूसरे झूठ के बाद तीसरा झूठ। कितना ही खोदो--एक मुखौटा, दूसरा मुखौटा; मुखौटे पर मुखौटे! उसके असली चेहरे का पता नहीं चलता कि असली चेहरा क्या है! और ऐसा नहीं कि तुम्हें पता नहीं चलता; उसे खुद भी पता नहीं रहा है। उसे खुद भी अपने असली चेहरे का पता नहीं है।
बुद्ध की परंपरा में भिक्षुओं से निरंतर कहा गया हैः अपने असली चेहरे
की खोज करो। वह चेहरा जो जन्म के पहले तुम्हारा था और मृत्यु के बाद फिर तुम्हारा होगा। उस चेहरे की खोज करो। जो चेहरे जिंदगी ने तुम्हें दे दिए, इन चेहरों को उतारकर रखो। वे सब चेहरे झूठ हैं।
बच्चा पैदा हुआ, तब न तो हिंदू होता, न मुसलमान; न ईसाई, न जैन, न बौद्ध।
यह असली बात है। फिर उसके ऊपर एक चेहरा हमने टांग दिया कि यह हिंदू, यह मुसलमान, यह ईसाई। फिर हिंदू में भी ब्राह्मण, कि शूद्र, कि क्षत्रिय, कि वैश्य! फिर ब्राह्मणों में भी कान्यकुब्ज ब्राह्मण, कि देशस्थ, कि कोकणस्थ। फिर रोग पर रोग हैं; बीमारियों पर बीमारियां हैं! खोजते चले जाओ, चेहरे पर चेहरे हैं। इसका असली चेहरा पता ही नहीं चलेगा।
जब यह पैदा हुआ था, तब इसे यह भी पता नहीं था कि मैं स्त्री हूं या पुरुष। तब यह बस था। तब इसे कुछ पता नहीं था। इसका देह-भाव नहीं था। सिर्फ आत्म-भाव था। मैं हूं--बस, इतना था। अब यह स्त्री है, पुरुष है। हिंदू है, मुसलमान है। गरीब है, अमीर है। ज्ञानी है, अज्ञानी है। साधु है, असाधु है। ये सब चेहरे! ये सब चेहरे इसने खरीदे बाजार से। स्कूलों में बिकते हैं, कालेजों में बिकते हैं, यूनिवर्सिटीज में बिकते हैं। सब तरफ चेहरे बिकते हैं। अब यह एम.ए. हो गया; अब यह पीएचड़ी. हो गया; अब यह डी.लिट. हो गया!
यहां इस आश्रम में तुम्हें बहुत से पीएचड़ी. बुहारी लगाते हुए मिल जाएंगे। उन्होंने चेहरा उतारकर रख दिया। तुम पहचान भी न सकोगे कि ये पीएचड़ी. हैं। बुहारी लगाते हैं। उतारकर रख दिया चेहरा।

अभी एक युवती आयी। मेडीसिन में पीएचड़ी. है। मैंने उससे कहा कि तेरा क्या इरादा है? उसने कहा कि बस, मुझे झाडू लगानी है। किसी को मैं बताना भी नहीं चाहती कि मैं पीएचड़ी. हूं मेडीसिन में। मुझे डाक्टर नहीं बनना है। तो मैंने कहा कि हमें एक अस्पताल की तो जरूरत है ही; संन्यासी बीमार पड़ते हैं। तो उसने कहाः अस्पताल में बुहारी लगा दूंगी। मगर नहीं; यह चेहरा मैं नहीं चाहती। मैं इतनी दूर से सिर्फ यहां बुहारी लगाने आयी हूं।
चेहरे उतारने पड़ते हैं। उतारकर रख देने पड़ते हैं।
पश्चिम से युवक-युवतियां संन्यास लेते हैं आकर। वे कहते हैंः अजीब बात है! हिंदुस्तान में जो मिलता है, पहले यही पूछता है, डिग्री क्या! कहां तक पढ़े हो! ये बे-पढ़े-लिखों के सवाल हैं। पढ़ा-लिखा आदमी नहीं पूछता यह बात।
पढ़ा-लिखा इसको क्या पूछेगा! ये बे-पढ़े-लिखों के सवाल हैं।
हिंदुस्तान तो बड़ा अजीब है। कहते हैं बड़ा आध्यात्मिक है, दिखता नहीं। लोग मिले नहीं... । ट्रेन में मिल जाएं, पूछते हैंः क्या काम करते हैं? क्या तनख्वाह? ऊपर से क्या मिलता है?
एक तो तनख्वाह पूछना ही अपमानजनक है। किसी आदमी की तनख्वाह नहीं पूछनी चाहिए। क्योंकि हो सकता है, बेचारे की छोटी तनख्वाह हो। और कहने में संकोच हो; और झूठ बोलना पड़े। उसकी नौकरी छोटी-मोटी हो। वह क्लर्क हो, कि किसी प्राइमरी स्कूल में मास्टर हो। अब तुम उसकी भद्द करवाने पर राजी हो। या तो वह सच बोले, तो अपमानजनक मालूम पड़ता है। या झूठ बोले। तुम उसे झूठ बोलने की उत्तेजना दे रहे हो। फिर तनख्वाह क्या मिलती है! और इतने तक चैन नहीं है आध्यात्मिक लोगों को। आखिरी में पूछते हैं, ऊपर भी कुछ मिलता है कि नहीं? अगर ऊपर मिलता है, तो नौकरी अच्छी।
हद्द हो गयी! ऊपर मिलने का मतलब क्या होता है? चोरी, बेईमानी, रिश्वत।
ये सब थोथे चेहरे हैं। और इन थोथे चेहरों पर हमें बड़ा भरोसा है। इसलिए तुम्हारी जिंदगी में सुवास नहीं है। कागज के फूलों में गंध नहीं होती। तुम्हारा असली फूल तो मरा जा रहा है। तुम्हारा गुलाब का फूल तो सड़ा जा रहा है। कागज के फूलों ने चारों तरफ से उस पर घेरा डाल दिया है। उसको सांस लेने की सुविधा नहीं है। तुम्हारे गुलाब के फूल को अवसर नहीं है कि वह सांस ले ले; कि वह रोशनी में उठ जाए; कि पखुड़ियां खोल दे; जगह नहीं है; अवकाश नहीं है। सब स्थान कागज के फूलों ने भर दिया है।
बुद्ध में गंध होती है, क्योंकि बुद्ध के सब कागज के फूल गिरा दिए गए, जला दिए गए। बुद्ध का अर्थ होता है, जिसने अपने असली चेहरे को पा लिया। अब जो फिर वैसा हो गया, जैसा निर्दोष बच्चा होता है; पहले दिन का बच्चा होता है। सिर्फ है। न कोई परिभाषा, न कोई सीमा। असीम हो गया फिर। इस सरलता में सुगंध है, सुवास है। सरलता के अतिरिक्त और कहीं सुवास नहीं। इस सहजता में सुगंध है।
इसलिए बुद्ध की कुटी का नाम था गंधकुटी। वहां फूल खिला था--मनुष्यता
का फूल। याद रखनाः तुम भी फूल हो; चाहे अभी कली में दबे हो, या हो सकता है, अभी कली भी पैदा न हुई हो; अभी किसी वृक्ष की शाखा में दबे हो। या हो सकता है, अभी वृक्ष भी पैदा न हुआ हो और किसी बीज में पड़े हो। मगर तुम भी फूल हो। और अपनी सुगंध को खोजना है। और अपनी सुगंध को मुखर करना है; अपनी सुगंध को प्रगट करना है। अभिव्यंजना देनी है। जो गीत तुम्हारे भीतर पड़ा है, उसे गाया जाना है। और जो नाच तुम्हारे भीतर पड़ा है, उसे नाचा जाना है।
नाचोगे, गाओगे, खिलोगे तो ही परितृप्ति है। उस परितृप्ति में ही, उस संतोष में ही एक सुगंध है। जो इन नासापुटों से नहीं पहचानी जाती। उसे पहचानने के लिए भी और नासापुट चाहिए। जैसे भीतर की आंख होती है, ऐसे भीतर के नासापुट भी होते हैं।
जरूरी नहीं कि तुम बुद्ध के पास जाओ, तो तुम्हें सुगंध मिले। तुम अगर अपनी दुर्गंध से बहुत भरे हो, तो शायद तुम्हें बुद्ध की सुगंध का पता भी न चले। तुम अगर अपने शोरगुल से बहुत भरे हो, तो तुम्हें बुद्ध का शून्य, और संगीत उस शून्य का कैसे सुनायी पड़ेगा!
गंधकुटी के चारों ओर जुही के फूल खिले थे।

शास्ता ने उन भिक्षुओं को कहाः भिक्षुओ! जुही के खिले इन फूलों को देखते हो! ...
एक फूल तो बुद्ध का खिला था। मगर शायद अभी ये भिक्षु उसे नहीं देख सकते, इसलिए मजबूरी है और बुद्ध को कहना पड़ाः भिक्षुओ! इन जुही के खिले फूलों को देखते हो? ये सुवासित फूल, इन पर ध्यान दो। इन फूलों में कई राज छिपे हैं। एक तो कि ऐसे ही फूल तुम हो सकते हो। ऐसी ही सुवास तुम्हारी हो सकती है।
दूसराः ये फूल सुबह खिलते हैं, सांझ मुर्झा जाते हैं। ऐसा ही यह मनुष्य का जीवन है। इसमें मोह मत लगाना। यह आया है, यह जाएगा। इस पर मुट्ठी मत बांधना। इसके साथ कृपणता का संबंध मत जोड़ना। यह तो आया है और जाएगा। जन्म के साथ ही मृत्यु का आगमन हो गया है।
ये फूल अभी कितने खुश दिखायी पड़ते हैं। सांझ मुर्झा जाएंगे; गिर जाएंगे धूल में और खो जाएंगे। ऐसा ही जीवन है।
जो जीवन को पकड़ना चाहता है, वह सदा दुख में ही रह जाता है। जीवन को पकड़ो मत। यह पकड़ा जा नहीं सकता। बहता है, बहने दो। इसे समझो। यह ध्यान की आधारशिला है।
तुम्हारे जीवन का दुख क्या है? तुम्हारे जीवन का मौलिक दुख यही है कि
जो रुकेगा नहीं, उसे तुम रोकना चाहते हो। तुम्हारे जीवन का मौलिक दुख यही है कि जो नहीं होगा, उसे तुम करना चाहते हो; जो हो ही नहीं सकता।
जैसे तुम जवान हो, तो तुम सदा जवान रहना चाहते हो। यह हो ही नहीं सकता,
तो दुखी होने वाले हो। दुख कोई तुम्हें दे नहीं रहा है। तुम अपना दुख पैदा कर रहे हो। जवान को बूढ़ा होना ही पड़ेगा। इसमें कुछ बुराई भी नहीं है। प्रवाह है। जवानी का अपना सौंदर्य है; बुढ़ापे का अपना सौंदर्य है। और अगर बुढ़ापा तुम्हें कुरूप दिखायी पड़ता है, तो उसका एक ही कारण है कि यह ब.ूढा आदमी अभी भी जवानी को पकड़ने की कोशिश में होगा, जो इसके हाथ से छूट गयी है। इसलिए बुढ़ापे का निश्चिंत भोग नहीं कर पा रहा है।
नहीं तो बचपन का अपना सौंदर्य है; जवानी का अपना सौंदर्य है; बुढ़ापे
का अपना सौंदर्य है। और ध्यान रखनाः बुढ़ापे का सौंदर्य सबसे बड़ा सौंदर्य है, क्योंकि सबसे अंत में आता है। वह फूल आखिरी है।
इसलिए तो इस देश में हम बूढ़े को आदर देते हैं। सब बूढ़े आदर के योग्य होते नहीं, इसे जानकर भी देते हैं। मान्यता भीतर यह है कि अगर कोई आदमी बचपन में पूरी तरह बचपन जीया हो, और जब बचपन चला गया, तो पीछे लौटकर न देखा हो; दो आंसू न बहाए हों उसके लिए। जवानी में पूरी जवानी जीया हो। और जब जवानी चली गयी, तो लौटकर न देखा हो। वह आदमी पूरा बुढ़ापा जीएगा। उसके बुढ़ापे में प्रज्ञा होगी, बोध होगा, समझ होगी।
बच्चा तो कितना ही निर्दोष हो, फिर भी अबोध होता है। उसकी निर्दोषता में एक तरह का अज्ञान होता है। उसकी निर्दोषता अज्ञान की पर्यायवाची होती है। वह निर्दोष है, क्योंकि अभी उसने जाना नहीं है।
जवानी जिद्दी होती है। जवानी सपनों से भरे हुए समय का नाम है। जवानी हजार सपने देखती है और हजार तरह की विपदाओं में पड़ती है। जवानी में हजार तरह की मूढ़ताएं सुनिश्चित हैं। जवानी एक तरह की मूढ़ता है। एक तरह का नशा है जवानी। एक तरह की मदहोशी है। जवानी में बड़ी गति है, और बड़ी त्वरा है, और बड़ी ऊर्जा है, लेकिन बड़ी विक्षिप्तता भी है।
बुढ़ापे में जवानी की मूढ़ता गयी, विक्षिप्तता गयी, पागलपन गया। जवानी
का जोश-खरोश गया। जवानी की उत्तेजना, ज्वर गया। बचपन का अज्ञान गया।
जीवन के सारे अनुभव बूढ़े को ताजा कर जाते, निखार जाते, शुद्ध कर जाते।
अब न वासना के अंधड़ उठते, न बचपन का अज्ञान खिलौनों में उलझाता। न जवानी की विक्षिप्तता पद, धन, प्रतिष्ठा की दौड़ में महत्वाकांक्षा जगाती। एक शांति उतरनी शुरू हो जाती है।
बूढ़ा एक अपूर्व संतोष से भरने लगता है। सब, जो देखना था, देख लिया। सब,
जो जानना था, जान लिया। अब घर लौटने लगता है।

लेकिन हमारी तकलीफ यह है कि हममें से बहुत कम लोग बूढ़े हो पाते हैं। बूढ़े हों कैसे? जो बूढ़े हैं, वे भी अभी जवानी का विचार करते रहते हैं; बचपन का विचार करते रहते हैं। कहते हैंः अरे! वे दिन गजब के थे!
जो आदमी यह कहे कि जो दिन बीत गए, वे गजब के थे, समझनाः यह आदमी बढ़ नहीं पाया। यह प्रौढ़ नहीं हुआ। क्योंकि अगर वे दिन गजब के थे, तो ये दिन और गजब के होने चाहिए, क्योंकि उन्हीं गजब के दिनों के ऊपर खड़े हैं। और जब ये दिन गजब के नहीं हैं, तो वे दिन भी गजब के नहीं हो सकते। जब बुढ़ापे में सौंदर्य नहीं है, तो जवानी कैसे सुंदर रही होगी? अगर गंगा सागर में गिरने के करीब गंगा नहीं है, तो गंगोत्री में कैसे गंगा रही होगी?
बूढ़ा आदमी एक अभिनव सौंदर्य से भर जाता है। उसके सौंदर्य में एक शीतलता होती है; जवानी की गर्मी नहीं। और बूढ़ा आदमी फिर सरल हो जाता है। लेकिन उसकी सरलता में बुद्धिमत्ता होती है--बच्चे का अज्ञान नहीं। बुढ़ापा अदभुत है।
और जो आदमी ठीक से बूढ़ा हो गया--न पीछे लौटकर देखता जवानी को, न याद करता बचपन को--वह आदमी अब मृत्यु में भी उतने ही आनंद से प्रवेश कर सकेगा। क्योंकि बुढ़ापे का डर क्या है कि कहीं मैं बूढ़ा न हो जाऊं। वह डर यही है कि बुढ़ापे के बाद फिर आखिरी कदम मौत है।
तो जवान जवानी में ही रुक जाना चाहता है। सब तरह की चेष्टाएं करता है
कि किसी तरह पैर जमाकर खड़ा हो जाऊं; यह जो नदी की धार सब बहाए ले जा रही है, यह मुझे अपवाद की तरह छोड़ दे। तो दुख ही दुख होगा।
सुख किसे होता है? सुख उसे होता है, जिसकी जीवन से कोई मांग नहीं। जीवन
जो करता है, उसे स्वीकार करने का भाव है। तथाता में सुख है। जवानी, तो जवानी में; बुढ़ापा, तो बुढ़ापा। आज किसी का प्रेम मिला, तो प्रेम; और कल प्रेम खो गया, तो उतना ही शांत भाव। आज महल थे, तो ठीक; कल झोपड़े आ गए, तो ठीक।
लेकिन दुनिया में दो तरह के मूढ़ हैं। अगर झोपड़ा है, तो वे चाहते हैं, महल होना चाहिए। और अगर महल है, तो वे चाहते हैं, झोपड़ा होना चाहिए। बड़ी मुश्किल है! आदमी जहां है, वहां राजी नहीं है! अगर झोपड़ा है, तो वे कहते हैंः जब तक महल न मिल जाए, मैं सुखी नहीं हो सकता। और महल मिल जाए, तो आदमी सोचने लगता हैः महलों में कहां सुख है? जब तक मैं भिखारी न हो जाऊं सड़क का, तब तक कहां सुख होने वाला है! गरीब अमीर होने की सोचता है; अमीर गरीब होने की सोचता है।
लेकिन तुम जो हो, जहां हो, उसको जीते नहीं। तुम जो हो, जिस क्षण में हो, जहां हो, जैसे हो, उस क्षण को पूरी समग्रता से जी लो। उससे अन्यथा की मांग न करो। जब वह क्षण चला जाएगा, कोई अड़चन न होगी। नया क्षण आएगा। नए क्षण के साथ नया जीवन आएगा।
तो फूलों में यह भी संदेश है। और फूलों में यह भी संदेश है कि यह जीवन सदा रहने को नहीं है। आज है, कल नहीं हो जाएगा। इसलिए यह यात्रा है, मंजिल नहीं है। यहां घर मत बना लेना।
सम्राट अकबर ने फतेहपुर सीकरी का नगर बसाया। बस तो कभी नहीं पाया। नगर बसते कहां! जब तक नगर बसा, तब तक अकबर के मरने के दिन करीब आ गए। फिर जा नहीं पाया। नगर सदा से बे-बसा रहा। लेकिन बनाया सुंदर नगर था। सुंदरतम नगरों में एक बनाया था। और एक-एक चीज बड़े ख्याल से रखी थी। एक-एक चीज, एक-एक ईंट बड़े सोच-विचारकर रखी गयी थी।
जो पुल फतेहपुर सीकरी को जोड़ता है, उस पुल पर क्या वचन लिखे जाएं? तो अकबर ने सालों उस पर विचार किया था। नगरद्वार पर स्वागत के लिए क्या वचन लिखे जाएं? फिर जीसस का प्रसिद्ध वचन चुना था। वचन है कि यह संसार एक सेतु है; इससे गुजर जाना; इस पर घर मत बना लेना।
फूल में यह संदेश हैः यहां सब बीत जाएगा। घर मत बना लेना। घर जो बना लेता है जीवन में, वही गृहस्थ है। और जो घर नहीं बनाता, वही संन्यस्त है। संन्यास के लिए घर छोड़कर जाने की जरूरत नहीं है। संन्यास के लिए घर बनाने की आदत छोड़ने की जरूरत है। संन्यास के लिए यहां कोई घर घर नहीं है; सभी सराय हैं। जहां ठहरे, वहीं सराय है। इसका यह मतलब नहीं है कि सराय को

गंदा करो। कि सराय है, अपने को क्या लेना-देना! इसका यह भी मतलब नहीं कि सराय कैसी भी हो, तो चलेगा। सराय को सुंदर करो। सुंदरता से रहो। लेकिन ध्यान रखो कि जो आज है, वह कल चला जाएगा। यह जीवन का स्वभाव है।
तो बुद्ध ने कहाः भिक्षुओ! जुही के इन खिले फूलों को देखते हो? ये सांझ मुर्झा जाएंगे। ऐसा ही क्षणभंगुर जीवन है। अभी है, अभी नहीं। इन फूलों को ध्यान में रखना भिक्षुओ! यह स्मृति ही क्षणभंगुर के पार ले जाने वाली नौका है।
क्यों? जो क्षणभंगुर को पकड़ना चाहता है, उसके भीतर विचारों का तूफान उठेगा। विचार हैं क्या? क्षणभंगुर को पकड़ने की चेष्टाएं। क्षणभंगुर को थिर करने की चेष्टाएं। विचार हैं क्या? घर बनाने की ईंटें। इसलिए जो क्षणभंगुर को पकड़ना नहीं चाहता, उसके भीतर विचार अपने आप क्षीण हो जाते हैं।
सार ही क्या है? जब सब चला जाना है, तो इतने सोच-विचार से क्या होगा? इतनी योजनाएं बनाने का क्या अर्थ है? अतीत चला गया; भविष्य भी आएगा और चला जाएगा; और वर्तमान बहा जा रहा है। जी लो--बजाय योजनाएं करने के।
जैसे-जैसे विचार कम होते हैं, वैसे-वैसे ध्यान प्रगट होता है। ध्यान
है निर्विचार चित्त की दशा। वही नौका है। वही पार ले जाएगी।
विचारों ने बांध रखा है जंजीरों की तरह इस तट से। ध्यान ले जाएगा नौका
की तरह उस तट पर।
भिक्षुओं ने फूलों को देखा और संकल्प कियाः संध्या तुम्हारे कुम्हलाकर गिरने के पूर्व ही हम ध्यान को उपलब्ध होंगे, हम रागादि से मुक्त होंगे। फूलो! तुम हमारे साक्षी रहो।
भगवान ने कहाः साधु! साधु!
जब भी वे आशीष देते थे, तो यही उनका आशीष थाः साधु! साधु! धन्य हो कि साधुता का जन्म हो रहा है। धन्य हो कि सरलता पैदा हो रही है। धन्य हो कि ध्यान की तरफ तुम्हारी दृष्टि जा रही है। धन्य हो कि साधना में रस उमग रहा है। साधु! साधु! ऐसा कहकर अपने आशीषों की वर्षा की। तब ये सूत्र उन्होंने कहे थेः
"शून्य गृह में प्रविष्ट शांत-चित्त भिक्षु को भली-भांति से धर्म की विपस्सना करते हुए अमानुषी रति प्राप्त होती है।"
जो व्यक्ति शून्य गृह में ठहर जाए; जो अपने भीतर निर्विचार हो जाए; जिसके भीतर विचारों की तरंगें न उठती हों। शून्य यानी निर्विचार। जो व्यक्ति शून्य हो जाए, वही शांत-चित्त है।
जो लोग तुम्हें साधारणतः शांत-चित्त दिखायी पड़ते हैं, वह शांति सिर्फ ऊपर से साधी गयी है। क्योंकि भीतर तो विचारों का बवंडर चल रहा है। चुप होने से कोई शांत नहीं होता। न बोलने से कोई शांत नहीं होता; न सोचने से शांत होता है।
तुम ऊपर से बिल्कुल पत्थर की मूर्ति बनकर बैठ सकते हो, और भीतर विचार चलते रहें, तो इस पत्थर की मूर्ति बनने से कुछ भी नहीं होगा।
एक युवक दीक्षा लेने एक सदगुरु के पास पहुंचा--एक बौद्ध भिक्षु के पास। बौद्ध भिक्षु एक बुद्ध-मंदिर में रहता था। जब वह युवक आया, तो उस गुरु ने पूछा कि पहले कहीं और कुछ सीखा है? उसने कहाः हां, पहले मैं एक योगी के पास सीखा हूं। क्या सीखे हो? उस युवक ने जल्दी से पालथी मार ली; पद्मासन में बैठ गया। आंखें बंद कर लीं। दो मिनट तक गुरु देखता रहा। उसने कहा कि अब आंखें खोलो और रास्ता पकड़ो।
युवक ने कहाः रास्ता पकड़ो! मैं आपके पास शिष्य होने आया हूं।
उस गुरु ने कहाः यहां पत्थर की मूर्तियां इस मंदिर में बहुत हैं।
हमें और जरूरत नहीं है। इन्हीं को साफ-सम्हाल करते बहुत झंझट हो रही है।
यह पद्मासन लगाकर तुम बैठ गए, लेकिन भीतर तुम्हारे मैं पूरा बाजार देख रहा हूं।
पद्मासन लगाने से क्या होगा! शीर्षासन लगाने से भी क्या होगा? भीतर
से बाजार बंद होना चाहिए। वही एकमात्र वास्तविक आसन है। शरीर के आसनों में मत उलझ जाना। असली सवाल मन का है; वहां शून्यता होनी चाहिए, तो शांत-

55

चित्त होता है कोई। और जो शांत-चित्त होता है, वही धर्म की विपस्सना कर पाता है।
विपस्सना का अर्थ होता है, लौटकर देखना। पतंजलि के शास्त्र में पतंजलि ने जिसे प्रत्याहार कहा है--पीछे लौटकर जाना; जिसको महावीर ने प्रतिक्रमण कहा है। आक्रमण यानी बाहर जाना, दूसरे पर हमला। प्रतिक्रमण यानी अपने पर आना। जिसको जीसस ने मेटानॉया कहा है--वापसी। उसी को बुद्ध विपस्सना कहते हैं।
विपस्सना का अर्थ होता हैः लौटकर अपने स्रोत को देखना। जब विचारों का जाल हट जाता है और सामने सिर्फ शून्य रह जाता है, तभी तुम लौटकर पीछे देख सकते हो। नहीं तो विचार तुम्हें पकड़े रहते हैं, लौटने नहीं देते। विचारों के उलझाव के कारण तुम अपने मूलस्रोत को देखने से वंचित रह जाते हो।
जो उस मूलस्रोत को देख लेता है--यह बुद्ध का वचन बड़ा अदभुत है--वह अमानुषी रति को उपलब्ध हो जाता है। वह ऐसे संभोग को उपलब्ध हो जाता है, जो मनुष्यता के पार है।
जिसको मैंने संभोग से समाधि की ओर कहा है, उसको ही बुद्ध अमानुषी रति कहते हैं।
एक तो रति है मनुष्य की--स्त्री और पुरुष की। क्षणभर को सुख मिलता है। मिलता है, या आभास होता है कम से कम। फिर एक और रति है, जब तुम्हारी चेतना अपने ही मूलस्रोत में गिर जाती है; जब तुम अपने से मिलते हो। एक तो रति है दूसरे से मिलने की। और एक रति है अपने से मिलने की। जब तुम्हारा तुमसे ही मिलना होता है, उस क्षण जो महाआनंद होता है, वही समाधि है।
संभोग में समाधि की झलक है; समाधि में संभोग की पूर्णता है।
"जैसे-जैसे भिक्षु पांच स्कंधों--रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार और विज्ञान--की उत्पत्ति और विनाश पर विचार करता है, वैसे-वैसे वह ज्ञानियों की प्रीति और प्रमोदरूपी अमृत को प्राप्त करता है।"
एक तो अज्ञानी का प्रेम है; एक ज्ञानी का प्रेम है। धन्यभागी हैं वे,
जो ज्ञानी की प्रेम-दशा को पा लें। अभागे हैं वे, जो अज्ञानी के प्रेम में ही पड़े रहें और भटक जाएं।
इनके भेद को ख्याल में लेना।
अज्ञान से भरा हुआ प्रेम क्या है? अज्ञान से भरा हुआ प्रेम ऐसा है, जिसमें प्रेम का कोई कण भी नहीं है। कुछ और ही है; बात कुछ और ही है। तुम अकेले होने में ऊबते हो, इसलिए किसी को प्रेम करते हो। कि अकेले होने में मजा नहीं आता है, अकेले होने में ऊब आती है, उदासी आती है; अकेले होने में घबड़ाहट होती है--किसी का साथ चाहिए। किसी का साथ तुम्हारे लिए एक जरूरत है; यह अज्ञानी का प्रेम है।
ज्ञानी का प्रेम क्या है? ज्ञानी अकेले होने में परम आनंद से भरता है।
अकेले होने में परेशान नहीं होता; अकेले होने में परम आनंद से भरता है।
लेकिन इतने आनंद से भर जाता है कि अब उस आनंद को बांटना चाहता है; किसी को देना चाहता है।
अज्ञानी का प्रेम मांगता है; ज्ञानी का प्रेम देता है।
बुद्ध ने खूब दिया। समस्त सदगुरुओं ने दिया। मिलेगा, तो देना ही पड़ेगा। जब दीया जलेगा, तो रोशनी बिखरेगी। और जब फूल खिलेगा, तो सुगंध उड़ेगी हवाओं पर। इसे रोका नहीं जा सकता।
अज्ञानी का प्रेम कैसा है? अज्ञानी का प्रेम ऐसा है कि मिल जाए। भिखारी का प्रेम है। पति पत्नी से चाह रहा है कि कुछ दो। मैं अकेले में बड़ा उदास हो रहा हूं। मुझे कुछ रस दो। और पत्नी भी कह रही है कि मुझे कुछ रस दो। दोनों भिखारी एक-दूसरे से मांग रहे हैं; देने की तैयारी किसी की भी नहीं है। तो कलह तो होगी ही। इसलिए पति-पत्नी के बीच जो कलह है, वह शाश्वत है। उस कलह का मूल कारण पति और पत्नी की कोई खराबी नहीं है; अज्ञानी का प्रेम है। दोनों मांग रहे हैं!
दो भिखारी रास्ते पर खड़े हो गए। समझ लो कि दोनों अंधे भिखारी हैं। इसलिए देख भी नहीं पाते कि दूसरा भी भिखारी है। दोनों एक-दूसरे के सामने हाथ फैलाए खड़े हैं कि कुछ मिल जाए। दया करो।

वही दशा है पति-पत्नियों की। अंधे; देख भी नहीं सकते कि दूसरा बेचारा खुद ही भिखारी है; इससे क्या मांग रहे हैं! और दूसरा भी मांग रहा है कि कुछ मिल जाए। और दोनों ही दुखी होंगे, क्योंकि मिलना तो है नहीं। देने की तैयारी किसी की वहां है नहीं। देने को वहां कुछ है ही नहीं, तैयारी भी कैसे हो! सब खाली-खाली है; रिक्त है।
इसलिए इस जगत में सभी प्रेमी समझते हैं कि धोखा दिया गया; कि कहां से
इस स्त्री की झंझट में पड़ गया! इतनी स्त्रियां थीं, जिनसे मिल सकता था। किसी से नहीं मिलने वाला था। तुम उनके पतियों से तो पूछो जाकर कि उनको क्या मिला! वे सोचते हैं कि शायद तुम्हारी पत्नी मिल जाती, तो उन्हें कुछ मिल जाता!
मैंने सुना हैः एक यहूदी पुरोहित को एक युवक ने आकर कहा कि मुझे क्षमा
कर दें। मुझे बिल्कुल क्षमा कर दें! मैं महापापी हूं। यहूदी पुरोहित ने कहाः लेकिन मुझे पता तो चले कि क्या पाप है। उस युवक ने कहाः मत पूछें। बस, मुझे क्षमा कर दें। यह पाप ऐसा है कि मैं कह न सकूंगा। लेकिन, पुरोहित ने कहा, तुम मुझसे कह सकते हो। और बिना जाने मैं क्षमा भी कैसे कर दूं!
तो मजबूरी में उस युवक ने कहा कि मामला यह है कि कई बार मेरे मन में आपकी पत्नी के प्रति वासना उठती है। मुझे क्षमा कर दें।
उस यहूदी पुरोहित ने उसके सिर पर हाथ रखा और कहाः बेटा, घबड़ा मत। मेरे
मन में भी तेरी पत्नी के प्रति विचार उठते हैं। तू निश्चिंत रह। इसमें कुछ अपराध नहीं है, क्योंकि यह हालत मेरी भी है।
यही हालत है। जो तुम्हें नहीं मिला है, सोचते हो, शायद उससे मिल जाता।
इस जगत में भिखारी भिखारियों के सामने खड़े हैं। किसी सम्राट को खोजो।
मगर सम्राट को खोजने का ढंग सम्राट होना है। इसलिए बड़ी मुसीबतें हैं।
सम्राट के पास सम्राट होकर ही पहुंच सकते हो। भिखारी को राजमहल में प्रवेश भी नहीं मिलेगा।
सम्राट को खोजने का उपाय सम्राट होना है। अगर बुद्धों से सत्संग चाहते हो, तो ध्यानी बनो। धीरे-धीरे तुम्हारा सम्राट भी भीतर पैदा हो। फिर खूब प्रेम बरसता है। प्रेम ही प्रेम बहता है। प्रेम की रसधार बहती है।
वह जैसे-जैसे विपस्सना को उपलब्ध होता है, और जैसे-जैसे देखता हैः संसार में सब क्षणभंगुर है; यहां कुछ ठहरने वाला नहीं है; वैसे-वैसे ज्ञानियों की प्रीति और प्रमोदरूपी अमृत को प्राप्त करता है।
और जब देने की कला आ जाती है, और देने की क्षमता आ जाती है, तो सुख है।
सुख देने में है, लेने में नहीं।
तुमने भी कभी-कभी जीवन में निरीक्षण किया होगा इस बात का कि जब तुम देते हो, तब एक तरह का सुख मिलता है। कुछ भी, थोड़ा सा भी दे दो। और जब तुम लेते हो, तब पीछे थोड़ी सी ग्लानि होती है। लेने में तुम दीन हो जाते हो। इसलिए एक बात जाननाः अगर तुम किसी को कुछ दो, तो ख्याल रखना, वह तुम्हें कभी क्षमा नहीं कर पाएगा। वह तुमसे बदला लेगा। इसलिए अक्सर होता है, लोग कहते हैंः हमने तो नेकी की; हमें बदले में बदी मिली! इसमें राज है। इसलिए ज्ञानियों ने कहा, नेकी कर और कुएं में डाल। फिर उसको बिल्कुल भूल ही जा। उसकी याद ही मत दिलाना, नहीं तो जिस आदमी के साथ नेकी की है, वही तेरी गरदन काटेगा। क्योंकि उसको तूने दीन कर दिया।
एक आदमी आया। तुमने उसे सौ रुपए दे दिए। और तुम्हारे मन में बड़ा नेकी
का भाव उठा कि देखो, कितना गजब का काम कर रहे हैं! इसको सौ रुपए दे रहे हैं! तुम तो गजब काम कर रहे हो, उस आदमी पर क्या गुजर रही है? वह यह देख रहा है कि अच्छा, कभी मौका मिला, तो देख लेंगे। तुम ऐसे अकड़े जा रहे! ऐसे फूले जा रहे हो! आज हम मुसीबत में हैं, ठीक है। हाथ फैलाने पड़े तुम्हारे सामने, ठीक है। वह सदा प्रार्थना करेगा कि कभी ऐसा दिन आए कि तुम भी हमारे सामने हाथ फैलाओ। तभी वह तुम्हें क्षमा कर पाएगा। नहीं तो क्षमा नहीं कर पाएगा। वह तुम्हारा दुश्मन हो गया। तुमने एक दुश्मन बना लिया।
देना इस ढंग से कि लेने वाले को पीड़ा न हो। तो ही... । नहीं तो तुम क्षमा नहीं किए जा सकोगे। देना इस ढंग से कि लेने वाले को पता न चले। इसलिए

गुप्त-दान की महिमा है। देना इस ढंग से कि लेने वाले को यह ख्याल ही न हो कि देने वाला वहां अकड़कर खड़ा था और देने में मजा ले रहा था।
देना विनम्रता से। देना झुक कर। हाथ तुम्हारा नीचा हो, इस ढंग से देना। लेने वाले का हाथ ऊपर रहे, इस ढंग से देना। ताकि लेने वाले को ऐसा लगे कि लेकर उसने तुम पर कृपा की है, अनुग्रह किया है। फिर तुम्हारे लिए कभी नेकी के बदले में बदी नहीं मिलेगी।
जिसके भीतर देने की पात्रता आ जाती है, पात्र भर जाता है प्रेम से, उसी
के भीतर प्रमोद होता है। प्रमोद है देने का आनंद। सबसे बड़ा आनंद है इस जगत में, देने का आनंद। और सबसे बड़ी देने की चीज है इस जगत में ध्यान। नंबर दो पर प्रेम। ये दो बड़ी से बड़ी संपदाएं हैं--ध्यान की और प्रेम की।
"जो सेवा-सत्कार स्वभाव वाला है और आचार-कुशल है, वह आनंद से ओतप्रोत होकर दुख का अंत करेगा।"
"जैसे जुही अपने कुम्हलाए फूलों को छोड़ देती है, वैसे ही हे भिक्षुओ! तुम राग और द्वेष को छोड़ दो।"
दूसरा दृश्यः

श्रावस्ती का एक निर्धन पुरुष हल चलाकर किसी भांति जीवन-यापन करता था। वह अत्यंत दुखी था, जैसे कि सभी प्राणी दुखी हैं।
फिर उस पर बुद्ध की ज्योति पड़ी। वह संन्यस्त हुआ। किंतु संन्यस्त होते समय उसने अपने हल-नंगल को विहार के पास ही एक वृक्ष पर टांग दिया। अतीत से संबंध तोड़ना आसान भी तो नहीं है, चाहे अतीत में कुछ हो या न हो। न हो तो छोड़ना शायद और भी कठिन होता है।
संन्यस्त हो कुछ दिन तो वह बड़ा प्रसन्न रहा और फिर उदास हो गया। मन का ऐसा ही स्वभाव है--द्वंद्व। एक अति से दूसरी अति। इस उदासी में वैराग्य से वैराग्य पैदा हुआ। वह सोचने लगाः इससे तो गृहस्थ ही बेहतर थे। यह कहां की झंझट मोल ले ली! यह संन्यस्त होने में क्या सार है?
इस विराग से वैराग्य की दशा में वह उस हल को लेकर पुनः गृहस्थ हो जाने
के लिए वृक्ष के नीचे गया। किंतु वहां पहुंचते-पहुंचते ही उसे अपनी मूढ़ता दिखी। उसने खड़े होकर ध्यानपूर्वक अपनी स्थिति को निहारा--कि मैं यह क्या कर रहा हूं।
उसे अपनी भूल समझ आयी। पुनः विहार वापस लौट आया। फिर यह उसकी साधना ही
हो गयी। जब-जब उसे उदासी उत्पन्न होती, वह वृक्ष के पास जाता; अपने हल को देखता और फिर वापस लौट आता।
भिक्षुओं ने उसे बार-बार अपने हल-नंगल को देखते और बार-बार नंगल के पास जाते देख उसका नाम ही नंगलकुल रख दिया!
लेकिन एक दिन वह हल के दर्शन करके लौटता था कि अर्हत्व को उपलब्ध हो गया। और फिर उसे किसी ने दुबारा हल-दर्शन को जाते नहीं देखा। भिक्षुओं को स्वभावतः जिज्ञासा जगीः इस नंगलकुल को क्या हो गया है! अब नहीं जाता है उस वृक्ष के पास! पहले तो बार-बार जाता था।
उन्होंने पूछाः आवुस नंगलकुल! अब तू उस वृक्ष के पास नहीं जाता, बात क्या है?
नंगलकुल हंसा और बोलाः जब तक आसक्ति रही अतीत से, जाता था। जब तक संसर्ग रहा, तब तक गया। अब वह जंजीर टूट गयी है। मैं अब मुक्त हूं।
इसे सुन भिक्षुओं ने भगवान से कहाः भंते! यह नंगलकुल झूठ बोलता है। यह अर्हत्व प्राप्ति की घोषणा कर रहा है। यह कहता है, मैं मुक्त हूं!
भगवान ने करुणा से उन भिक्षुओं की ओर देखा और कहाः भिक्षुओ! मेरा पुत्र अपने आपको उपदेश दे प्रव्रजित होने के कृत्य को समाप्त कर लिया है। उसे जो पाना था, उसने पा लिया है और जो छोड़ना था, छोड़ दिया है। वह निश्चय ही मुक्त हो गया है।
तब उन्होंने ये दो सूत्र कहेः

अत्तना चोदय"त्तानं पटिवासे अत्तमत्तना।
सो अत्तगुत्तो सतिमा सुखं भिक्खु विहाहिसि।।

अत्ता हि अत्तनो नाथो अत्ता हि अत्तनो गति।
तस्मा सांंमयत्तानं अस्सं भद्रं"व वाणिजो।।

"जो आप ही अपने को प्रेरित करेगा, जो आप ही अपने को संलग्न करेगा, वह आत्म-गुप्त--अपने द्वारा रक्षित--स्मृतिवान भिक्षु सुख से विहार करेगा।
वह मुक्त हो जाता है।"
"मनुष्य अपना स्वामी आप है; आप ही अपनी गति है। इसलिए अपने को संयमी बनावे, जैसे सुंदर घोड़े को बनिया संयत करता है।"
पहले दृश्य को समझ लें। प्यारा दृश्य है।
एक निर्धन आदमी बुद्ध के विहार के पास ही अपना हल चलाकर छोटी-मोटी खेती-बाड़ी करता था। निर्धन था बहुत। किसी भांति जीवन-यापन होता था। दो सूखी रोटी मिल जाती थी। फटे-पुराने वस्त्र; नंगा नहीं था। रूखी-सूखी रोटी; भूखा नहीं था। मगर जीवन में और कुछ भी न था। एक गहन बोझ की तरह जीवन को ढो रहा था।
वह अत्यंत दुखी था, जैसे कि सभी प्राणी दुखी हैं।
गरीब दुखी हैं, गरीबी के कारण नहीं। क्योंकि अमीर भी दुखी हैं! जो हार गए, वे दुखी हैं; हारने के कारण नहीं। क्योंकि जो जीत गए, वे भी दुखी हैं। बुद्ध कहते हैंः यहां सभी दुखी हैं। मनुष्य होने में ही दुख समाया हुआ है।
इसलिए तुम झूठे कारणों पर मत अटक जाना। तुम यह मत कहना कि मैं गरीब हूं, इसलिए दुखी हूं। यही तो भ्रांति है। तो जो आदमी सोचता हैः मैं गरीब हूं, इसलिए दुखी हूं, तो वह अमीर होने में लग जाता है। फिर अमीर होकर एक दिन पाता है कि जिंदगी अमीर होने में बीत गयी और दुखी मैं उतना का उतना हूं; शायद थोड़ा ज्यादा हो गया हूं। क्योंकि गरीब आदमी ज्यादा दुख भी नहीं खरीद सकता। गरीब की हैसियत कितनी! अमीर आदमी ज्यादा दुख खरीद सकता है। उसकी हैसियत ज्यादा है।
गरीब आदमी की... दुख में भी तो क्षमता होती है न! अब एक आदमी गरीब है, तो बैलगाड़ी में चलेगा। हवाई जहाज में उड़ने का दुख नहीं जान सकता। कैसे जानेगा? वह तो कोई हवाई जहाज में उड़े तब... !
बिड़ला परिवार की एक महिला को कोई मेरे पास लाया। उसकी कठिनाई क्या थी? उसकी कठिनाई थीः हवाई जहाज में उड़ने में उसे बड़ा भय लगता। और रेलगाड़ी में वह चल भी नहीं सकती। वह प्रतिष्ठा से नीचे है।
अब यह दुख कोई गरीब कैसे जानेगा! और हवाई जहाज में उड़ने में डर लगता है। पसीना-पसीना हो जाती है। हृदय की धड़कन बढ़ जाती है। ब्लडप्रेशर बढ़ जाता है। और रेलगाड़ी में चले कैसे?
अब यह दुख कोई गरीब जान सकता है? यह बहुत मुश्किल है मामला। गरीब को यह दुख कहां! गरीब झोपड़े में रहने का दुख जान सकता है। महलों में रहने का दुख अमीर ही जान सकता है; गरीब नहीं जान सकता। गरीब रूखी-सूखी रोटी का दुख जानता है। अमीर सुस्वादु भोजनों का दुख जानता है।
यहां मेरे पास जितने अमीर आते हैं, उनके दुख अलग। जो गरीब आते हैं, उनके दुख अलग। गरीब के दुख भी बड़े दीन-हीन होते हैं। लड़के को नौकरी नहीं लग रही है! अमीर का दुख यह होता है कि लड़का शराब पी रहा है!
अब ये बड़े अलग दुख हैं। गरीब का लड़का शराब पीए तो पीए कहां से! नौकरी
ही नहीं लगी है अभी; अब यह शराब तो बड़ी आगे की मंजिल है!
एक महारानी मुझसे मिलने आयीं कुछ दिन पहले। उनका लड़का दिनभर नशा किए पड़ा रहता है। और काम ही नहीं करता कुछ। उठ भी नहीं सकता बिस्तर से, इतना नशा किए रहता है।
महारानी का लड़का है! मैंने कहाः यह योग्य भी है। कोई गरीब का लड़का नहीं है। गरीब का लड़का होता, तो कुछ और तरह के दुख झेलता। अमीर का लड़का है, तो ये ही दुख झेलेगा।
अब धीरे-धीरे तो और तरह के ड्रग्स में पड़ गया है। शराब से अब काम नहीं चलता। शराब इतनी पी डाली है कि अब शराब से नशा नहीं होता। अब तो शराब ही बह

रही है उसके खून में! अब तो मच्छड़ भी उनको काटते होंगे, तो नशा चढ़ता होगा! तो अब उसको और ड्रग्स चाहिए--एल.एसड़ी.।
अब गरीब ने तो एल.एसड़ी. का नाम भी नहीं सुना। मारिजुआना; अब गरीब ने तो
यह नाम भी नहीं सुना। और अब मुंह से ही लेने से काम नहीं चलता। अब वह अपने को खुद ही इंजेक्शन मारता रहता है! और यह आखिरी दशा है। बस, उठकर सुबह से एक इंजेक्शन मार लिया; फिर पड़ गए। फिर जब होश आया, फिर एक इंजेक्शन मार लिया। अब उसकी हालत खराब होती जा रही है। रोज-रोज खराब होती जा रही है।
अब महारानी मुझसे कहती थी कि क्या करूं; इसको अमरीका ले जाऊं? मैंने कहाः अमरीका ले जाने से क्या होगा! अमरीका तो इसका यहीं आ ही गया! अमरीका में यही हो सकता था। यह तो इसने कर ही लिया। अब इसको वहां काहे के लिए ले जाना!
नहीं, उन्होंने कहा, चिकित्सा के लिए।
यह वहां जाकर और बिगड़ेगा। क्योंकि वहां और विकसित ड्रग उपलब्ध हो गए हैं। मैंने कहाः अमरीका ही ले जाओ, तो केलिफोर्निया ले जाना!
गरीब के दुख हैं छोटे-मोटे। अमीर के दुख हैं और बड़े, क्योंकि वह ज्यादा दुख खरीद सकता है। उसका फैलाव बड़ा है। वह दुखों में चुनाव भी कर सकता है। यह दुख लें कि वह दुख लें! कौन सा दुख खरीदें? भारतीय दुख खरीदें कि विदेशी दुख खरीदें? किस तरह का दुख खरीदें?
अब गरीब आदमी तो भारतीय दुख खरीद सकता है। अमीर आदमी विदेशी दुख खरीदेगा! गए पश्चिम और एक विदेशी स्त्री से विवाह कर लाए। यह विदेशी दुख है। यह बहुत कठिन दुख है।
मेरे एक मित्र हैं प्रोफेसर। एक अमरीकन युवती से विवाह करके आ गए। अब बड़े... सात साल साथ रहे। मेरे पड़ोस में ही रहते थे। जब मैं विश्वविद्यालय में शिक्षक था, तब मेरे पास ही रहते थे। उनका दुख चौबीस घंटे वही। हर चीज में दुख! क्योंकि जब अमरीकन स्त्री से शादी की है, तो फिर अमरीकन लहजा चाहिए। अब अमरीकन स्त्री है, वह शराब भी पीएगी, सिगरेट भी पीएगी। अब यह इनको बहुत कठिन मालूम पड़े कि स्त्री और सिगरेट पीए! और इनके ही सामने फूंक रही है! और इनसे घर में काम भी करवाए। क्योंकि अमरीका में तो पचास-पचास प्रतिशत काम है।
ठीक भी है। जब अमरीकन स्त्री ली, तो अमरीकन दुख भी लेना पड़ेगा न! तो काम बांट दिया उसने। एक दिन मैं नाश्ता बनाऊंगी; एक दिन आप बनाएं। अब बना रहे हैं पकौड़े सुबह से! और आंखें उनकी धुआं खा रही हैं!
वे मुझसे पूछते, क्या करूं! मैंने कहाः इसमें कुछ करना नहीं है। तुम विदेशी दुख लिए हो; तुम्हें देशी दुख नहीं जंचा।
फिर वह शाम को खेलने भी जाएगी टेनिस! इनको वह चिंता लगे कि वह टेनिस खेलने गयी है! मैंने कहाः उसको खेलने दो। नहीं, खेलने की बात नहीं है, वे मुझसे कहें। वह वहां लोगों के गले में हाथ डालकर घूमती है!
विदेशी दुख तो विदेशी दुख है! कठिनाइयां हैं।
गरीब अपनी सीमा में जीता। किसी तरह अमीर हो जाता है, तब उसको पता चलता
है कि यह तो मामला बिगड़ गया! यह कहां से कहां पहुंच गए!
यहां हमारे वैराग्य हैं; वे राधा के प्रेम में पड़ गए हैं। अब राधा है इटैलियन। इटैलियन मतलबः विदेशियों में भी विदेशी! अब उनको भारी कष्ट है। अब उनको चौबीस घंटे इसी की फिकर रहती है कि राधा कहां है! किससे बात कर रही है? किसके हाथ में हाथ डालकर घूमने चली गयी है?
मैंने उनसे कहाः वैराग्य! तुम गरीब घर के आदमी हो; तुम अपनी सीमा में रहो। तुम कोई भारतीय दुख खरीदो!
तो वह आदमी बड़ा दुखी था।
बुद्ध कहते हैंः दुखी होना ही आदमियत है। इसमें कारण मत खोजना कि यह कारण है, वह कारण है। आदमी जहां भी होगा, दुखी होगा। जब तक आदमी के पार न हो जाए, तब तक दुखी होगा। आदमियत कारण है। तो तुम दुख बदल ले सकते हो, मगर इससे कुछ फर्क न पड़ेगा।
उस पर बुद्ध की ज्योति पड़ी।
यह बुद्ध की ज्योति पड़ने का क्या मामला है?

अपने खेत में चलाता होगा हल-बक्खर। बुद्ध वहां से रोज निकलते होंगे।
वह विहार के पास ही खेती-बाड़ी करता था। देखता होगा रोज बुद्ध को जाते। यह शांत प्रतिमा! यह प्रसादपूर्ण व्यक्तित्व! खड़ा हो जाता होगा कभी-कभी अपने हल को रोककर। दो क्षण आंख भरकर देख लेता होगा; फिर अपने हल में जुत जाता होगा। यह रोज होता रहा होगा।
जैसे रसरी आवत-जात है, सिल पर परत निशान। पत्थर पर भी निशान पड़ जाता है, रस्सा आता रहे, जाता रहे। करत-करत अभ्यास के जड़-मति होत सुजान। रोज-रोज देखता होगा। फिर और ज्यादा-ज्यादा देखने लगा होगा। फिर बुद्ध जाते होंगे, तो पीछे दूर तक देखता रहता होगा, जब तक आंख से ओझल न हो जाएं। फिर धीरे-धीरे प्रतीक्षा करने लगा होगा कि आज अभी तक आए नहीं! कब आते होंगे! फिर किसी दिन न आते होंगे, तो तलब लगती होगी। लगता होगा कि आज आए नहीं! कभी ऐसा भी होता होगा कि बुद्ध होंगे बीमार; नहीं गए होंगे भिक्षा मांगने, तो शायद आश्रम पहुंच गया होगा! कि एक झलक वहां मिल जाए!
फिर बुद्ध को देखते-देखते बुद्ध के और भिक्षु भी दिखायी पड़ने शुरू हुए होंगे। ये बुद्ध अकेले नहीं हैं; हजारों इनके भिक्षु हैं। और सब प्रफुल्लित मालूम होते हैं! सब आनंदित मालूम होते हैं! मैं ही एक दुख में पड़ा! मैं कब तक इस हल-बक्खर में ही जुता रहूंगा?
ऐसे विचारों की तरंगें आने लगी होंगी। इन्हीं तरंगों में एक दिन बुद्ध की बंसी में फंस गया होगा।
फिर उस पर बुद्ध की ज्योति पड़ी।
एक दिन लगा होगाः मेरे पास है क्या! इस आदमी के पास सब था। राजमहल थे...
। खोजबीन की होगी; पता लगाया होगा। यह आदमी कैसा! लगता इतना प्यारा और इतना सुंदर है, और है भिखारी! लगता है सम्राटों का सम्राट। चाल में इसकी सम्राट का भाव है। भाव-भंगिमा इसकी कुछ और है। यह होना चाहिए राजमहलों में; यह यहां क्या कर रहा है आदमी!
पता लगाया होगा। पता चला होगाः सब था इसके पास। सब छोड़ दिया। इसको विचार उठने लगे होंगे कि मेरे पास कुछ भी नहीं है। यह एक हल है; यह नंगल। बस यही मेरी संपत्ति है। और मेरे पास है क्या छोड़ने को! मैं भी क्यों न इस आदमी की छाया बन जाऊं? मैं भी क्यों न इसके पीछे चल पडूं? एकाध बूंद शायद मेरे हाथ भी लग जाए--जो इसका सागर है उसकी। और जब इतने लोग इसके पीछे चल रहे हैं और पा रहे हैं... । माना कि मैं अभागा हूं, लेकिन फिर भी शायद कुछ हाथ लग जाए।
धीरे-धीरे रस लगा होगा; राग लगा होगा।
धन्यभागी हैं वे, जिनका बुद्धों से राग लग जाए; जिनको बुद्धों से प्रेम हो जाए। क्योंकि उनके जीवन का द्वार खुलने के करीब है।
तो एक दिन संन्यस्त हो गया। किंतु संन्यस्त होते समय उसने अपने हल-नंगल को विहार के पास ही एक वृक्ष पर टांग दिया।
सोचा होगा कि क्या भरोसा; अनजान रास्ते पर जाता हूं--जंचे, न जंचे! आज उत्साह में, उमंग में हूं, कल पता चले कि सब फिजूल की बकवास है, तो अपना नंगल तो सम्हालकर रख दो। कभी जरूरत पड़ी, तो फिर लौट आएंगे। रास्ता कायम रखा लौटने का कि कभी अड़चन आ जाए, तो ऐसा नहीं कि सब खतम करके आ गए। फिर लौटना ही मुश्किल हो जाए।
तो विहार के पास ही एक झाड़ पर ऊपर सम्हालकर अपने नंगल को रख दिया।
यह प्रतीक है इस बात काः इसी तरह हम अपने अतीत को सम्हालकर रखे रहते हैं। संन्यस्त भी हो जाते हैं, तो अतीत को सम्हालकर रखते हैं कि लौटने के सब सेतु न टूट जाएं।
झेन फकीर रिंझाई अपने गुरु के पास गया, तो गुरु ने पूछाः सुन! तू संन्यस्त होना चाहता है; पहले तीन-चार सवालों के जवाब दे दे। कहां से आता है?
रिंझाई ने कहाः जहां से आता हूं, वहां से बिल्कुल आ गया हूं। इसलिए उस संबंध में कोई जवाब नहीं दूंगा।
गुरु ने पूछाः छोड़। मुझे चावलों में बहुत रस है। वहां चावल के क्या दाम हैं, जहां से तू आता है?

रिंझाई ने कहाः सुनें! चावल के दाम जरूर वहां कुछ हैं; जरूर कुछ होंगे। लेकिन मैं वहां से आ गया हूं। और जहां से मैं आ गया हूं, वहां के चावलों के दाम मैं हिसाब में नहीं रखता; उसकी स्मृति नहीं रखता।
गुरु ने कहाः एक बात और। किस रास्ते से आया? कहां-कहां होकर आया?
रिंझाई ने कहाः आप फिजूल की बातें पूछ रहे हैं। और मैं जानता हूं कि
आप क्यों पूछ रहे हैं। आप मुझे भड़काएं मत। आप मुझे उत्तेजित न करें। लेकिन यह मेरा नियम रहा है कि जिस पुल से गुजर गए, उसे तोड़ दिया। जिस सीढ़ी को पार कर गए, उसे गिरा दिया। क्योंकि लौटना कहां है? लौटना है ही नहीं। आगे जाना है।
तो गुरु ने उसे आशीर्वाद दिया और कहा कि तू ठीक-ठीक संन्यस्त होने के योग्य है।
मगर इतनी योग्यता तो कब होती है! बड़ी मुश्किल से होती है।
जो अतीत को तोड़ देता है, वही संन्यासी है। जो अतीत में अपना घर नहीं रखता, वही गृहस्थ नहीं है। जो कहता हैः जो गया, गया। अब तो जो है, है। जो यहां है और अभी है।
तो यह कथा-प्रतीक प्यारा है। कि गरीब आदमी; और तो कुछ था नहीं उसके पास। कोई तिजोड़ी नहीं थी। कोई बैंक-बैलेंस नहीं था। कुछ भी नहीं था। एक नंगल था, एक हल था। उसको रख आया कि कभी जरूरत पड़े, तो एकदम असहाय न हो जाऊं। अतीत से संबंध तोड़ना बड़ा कठिन है, चाहे अतीत में कुछ हो या न हो। न हो,
तो छोड़ना और भी कठिन है। क्योंकि लगता है, गरीब आदमी हूं। यही तो एक संपदा है छोटी सी। यही चली गयी, तो फिर कुछ न बचेगा। अमीर तो शायद कुछ छोड़ भी दे, क्योंकि उसके पास और बहुत कुछ है। इतना छोड़ने से कुछ हर्जा नहीं है।
अमीर शायद धन भी छोड़ दे, क्योंकि वह जानता हैः उसके परिवार के लोग भी धनी हैं। कल अगर लौटेगा, अपना धन नहीं होगा, तो भी अपने परिवार के लोगों का धन होगा। अमीर तो शायद सब छोड़ दे, क्योंकि उसकी प्रतिष्ठा भी है, क्रेडिट भी है। कल अगर लौटकर आएगा, तो प्रतिष्ठा से भी जी लेगा। उधार भी मिल जाएगा। लेकिन गरीब आदमी! उसके पास तो हल है। दो पैसे कोई देगा नहीं उधार। प्रतिष्ठा तो कोई है नहीं। परिवार तो कुछ है नहीं। जिनको अपना कह सके, ऐसा तो कोई है नहीं। यह एक नंगल ही बस सब कुछ है। तो उसको रख दिया उसने। यही इसका परिवार है; यही इसका धन है; यही इसकी सारी की सारी आत्मा है। उसने उसे सम्हालकर रख दिया।
संन्यस्त हो कुछ दिन तक तो बड़ा प्रसन्न रहा। और फिर उदास हो गया।
यह रोज घटता है। यह यहां भी घटता है। जब कोई आदमी संन्यस्त होता है, तो बड़ी आशाओं, उमंगों, उत्साहों से भरा होता है। लेकिन तुम्हारी आशा के अनुकूल ही थोड़े ही संसार चलता है। और तुम्हारी अपेक्षाएं थोड़े ही जरूरी रूप से पूरी होती हैं। फिर तुम अपेक्षाएं भी बहुत कर लेते हो। तुम अपेक्षाएं जरूरत से ज्यादा कर लेते हो। उन अपेक्षाओं को पूरा करने के लिए जितना श्रम करना चाहिए, वह तो करते नहीं। अपेक्षाएं अटकी रह जाती हैं; पूरी नहीं होतीं। जितना संकल्प चाहिए, वह तो होता नहीं। फिर धीरे-धीरे उदासी पकड़ती है।
लोग सोचते हैं कि शायद संन्यस्त हो गए, तो सब हो गया। संन्यस्त होने
से सिर्फ शुरुआत होती है यात्रा की। सब तो अभी होना है।
मेरे पास लोग आ जाते हैं। वे कहते हैं, कि बस, संन्यास दे दीजिए। फिर दो-चार महीने बाद आते हैं कि अभी तक कुछ हुआ नहीं! जैसे कि संन्यास से कुछ होने वाला है।
संन्यास तो सिर्फ सूचना थी कि अब हम कुछ करेंगे। वह तो कुछ किया नहीं।
वे सोचते हैं कि संन्यास ले लिया, सो सब हो गया। अब जैसे जिम्मेवारी मेरी है! अब वे मुझे अदालत में ले जाने की इच्छा रखते हैं कि अभी तक किया क्यों नहीं!
तो यह आदमी संन्यस्त हो गया था। सोचता होगाः बुद्ध के शिष्य हो गए; अब
और क्या करना है? फिर उदासी आनी शुरू हुई होगी। क्योंकि बुद्ध कहते हैंः विपस्सना करो। बुद्ध कहते हैंः ध्यान करो। बुद्ध कहते हैंः संकल्प करो। बुद्ध कहते हैंः भीतर जाओ। यह जाता होगा भीतर; इसको नंगल दिखायी पड़ता

होगा। झाड़ पर लटका नंगल! जाता होगा भीतर; वही विचार आते होंगे पीछे अतीत के। सोचता होगाः यह कहां की झंझट में मैं... ! कहां भीतर जाना? कहां है भीतर? क्या है भीतर? अंधेरा-अंधेरा दिखता होगा। कि अच्छी झंझट में पड़े! अपना हल चलाते थे; अपनी दो रोटी कमा लेते थे। वह भी गयी और यह भीतर जाना! यह तो सोचा ही नहीं था। बुद्ध को देखा था। बुद्ध की महिमा देखी थी। बुद्ध का गौरव देखा था। बुद्ध का प्रकाश देखा था। उसी लोभ में पड़कर संन्यस्त हो गया था। अब यह करना भी पड़ेगा कुछ! यह तो सोचता थाः ऐसे ही मिल जाएगा। पीछे चलते-चलते मिल जाएगा।
तो कई दफे उदासी आ जाती है।
पहली दफा जब उदासी आयी, तो उसने सोचाः इसमें कोई सार नहीं। यह अपना काम नहीं है। गया। उचट गया वैराग्य से मन। पहुंचा अपने वृक्ष के पास।
सोचाः हल को लेकर पुनः गृहस्थ हो जाऊं।
लेकिन मन ऐसा ही क्षणभंगुर है।
यहां रोज ऐसा होता है। कोई मुझसे पूछता है कि मन बहुत उदास है, मैं क्या करूं? मैं कहता हूंः तीन दिन बाद आओ। वह सोचता हैः तीन दिन बाद मैं उपाय बताऊंगा। तीन दिन बाद वह आता है। वह कहता हैः अब मन उदास नहीं है।
मैंने कहाः वापस जाओ। इतना काफी है। इससे समझो कि ये सब क्षणिक भाव-भंगिमाएं हैं। इनमें इतने उलझो मत। आती हैं, जाती हैं। मौसम की तरह बदलती हैं।
सुबह सूरज; दुपहर बादल घिर गए! सांझ बूंदा-बांदी हो गयी।
अब हर चीज को समस्या मत बनाओ कि बूंदा-बांदी हो गयी; अब क्या करें? जैसे कि अब जिंदगीभर बूंदा-बांदी होती रहेगी! कल सुबह फिर सूरज निकलेगा। अब बादल घिर गए; अब क्या करें? मैं कहता हूंः तीन दिन बाद आओ। तीन दिन बाद बादल छंट जाते हैं।
इसीलिए लक्ष्मी को बिठा रखा है। वह रोकती है लोगों को। लोग कहते हैं,
आज ही चाहिए। वह कहती है, कल, परसों। टालती है। वह उपाय है। जब तक तुम मेरे पास आओगे, समस्या गयी! तुम्हारी भी गयी; मेरी भी गयी!
धीरे-धीरे तुम्हें यह समझ में आ जाएगा कि अगर तुम थोड़ा धीरज रखो, तो समस्याएं चली जाती हैं--अपने से चली जाती हैं। इसलिए अंग्रेजी में बीमार के लिए शब्द है--पेशेंट। पेशेंट का मतलब होता है जो पेशेंस रखे। बीमारी चली जाती है। धैर्य रखे। शब्द प्यारा है। धीरज रहे, तो सब चला जाता है। कहते हैं कि अगर सर्दी-जुकाम हो; दवा लो तो सात दिन में जाता है, और दवा
न लो तो एक सप्ताह में! मगर जाता है। धीरज चाहिए।
यह गया होगा। जब तक वृक्ष के पास पहुंचा, तब तक बात बदल गयी। बादल घिरे थे; अब छंट गए। सूरज निकल आया। इसने सोचाः अरे! मैं--और यह क्या कर रहा हूं! जब हल-बक्खर जोतता था, तो कौन सा सुखी था? दुख के सिवा कुछ भी न था। अब न हल-बक्खर जोतने पड़ते; न मेहनत करनी पड़ती। भिक्षा मांग लाता हूं। पहले से अच्छी रोटी मिल रही है। अच्छी दाल, अच्छी सब्जी मिल रही है। और बुद्ध का सत्संग। पहले तड़फता था। कब निकलेंगे? एक क्षणभर को देख पाता था। अब चौबीस घंटे उनकी सन्निधि है। यह मैं क्या कर रहा हूं?
सोचा होगा कि इतनी बड़ी संपदा पाने चला हूं--बुद्धत्व; थोड़ा श्रम तो करना ही होगा। थोड़ा भीतर भी हल-बक्खर चलाना होगा।
बुद्ध कहते थेः मैं भी किसान हूं। मैं भीतर की खेती-बाड़ी करता हूं। भीतर बीज बोता हूं। भीतर की फसल काटता हूं।
ऐसे ही किसानों से बुद्ध ने कहा होगा यह, क्योंकि किसान किसान की भाषा समझे।
सोचकर कि यह तो मैं गलत कर रहा हूं, यह तो मैं व्यर्थ कर रहा हूं; यह तो मैं किस दुर्भाग्य में सोचा कि वापस लौट जाऊं! नहीं, नहीं। ऐसा सोचकर, विचारकर फिर दृढ़-निश्चय हो वापस लौट आया। उसे अपनी मूढ़ता दिखी और पुनः संन्यास की उमंग से भर गया।
फिर यह तो उसकी साधना ही हो गयी। क्योंकि कोई एक दिन आ गयी उदासी, चली गयी; ऐसा थोड़े ही है। बादल एक दिन घिरे और चले गए! बार-बार घिरे; बार-बार

घिरे और बार-बार जाए। फिर तो उसे तरकीब हाथ लग गयी। फिर तो उसने सोचाः यह अदभुत तरकीब है। जब भी झंझट आती, चले गए। जाकर देखा अपने नंगल को।
उस नंगल को देखकर ही उसको अपने पुराने दिन सब साफ हो जाते, कि वहीं कौन
सा सुख था। महानरक भोग रहे थे। उससे अब हालत बेहतर है। अब चीजें सुधर रही हैं और धीरे-धीरे शांति भी उतरती है। और कभी-कभी मन सन्नाटे से भी भर जाता है। और कभी-कभी बुद्ध जिस शून्य की बात करते हैं, उसकी थोड़ी सी झलक, हवा का एक झकोरा सा आता है। और बुद्ध जिस ध्यान की बात करते हैं, यद्यपि पूरा-पूरा नहीं सम्हलता, लेकिन कभी-कभी, कभी-कभी खिड़की खुलती है। क्षणभर को सही, मगर बड़े अमृत से भर जाती है। यह हो तो रहा है। अभी बूंद-बूंद हो रहा है, कल सागर-सागर भी होगा। बूंद-बूंद से ही तो सागर भर जाता है।
ऐसा बार-बार जाता और बार-बार वहां से और भी ज्यादा प्रफुल्लित और आनंदित होकर लौटने लगा। यह तो उसकी साधना हो गयी। जब-जब उदासी उत्पन्न होती, वृक्ष के पास जाता; हल को देखता, वापस लौट आता। ऐसा अनंत बार हुआ होगा!
भिक्षुओं ने उसे बार-बार जाते देखकर तो उसका नाम ही नंगलकुल रख दिया।
वे कहने लगेः यही इसका परिवार है। क्योंकि आदमी अपने परिवार की तरफ जाता है। कोई अपनी पत्नी को छोड़ आया, तो सोचता हैः वापस जाऊं। फिर अपनी पत्नी को लेकर गृहस्थ हो जाऊं। कोई अपने बेटे को छोड़ आया; सोचता हैः जाऊं। अब बेटे को फिर स्वीकार कर लूं और गृहस्थ हो जाऊं।
इसका कोई और नहीं है। यह नंगलकुल है। इसका एक ही कुल है; एक ही परिवार है। वह है नंगल। उसमें कुछ है भी नहीं सार। उसको कोई चुरा भी नहीं ले जाता। झाड़ पर अटका है; कोई ले जाने वाला भी नहीं है गांव में। मगर यही उसकी कुल संपदा है। उसका नाम रख दिया--नंगलकुल।
वह न मालूम कितनी बार गया! न मालूम कितनी बार आया! लेकिन हर बार जब आया,
तो बेहतर होकर आया। हर बार जब आया, तो निखरकर आया। हर बार जब आया, तो और ताजा होकर आया। यह तो घटना भीतर घट रही थी। बाहर तो किसी को पता नहीं चलता था कि भीतर क्या हो रहा है।
एक दिन हल के दर्शन करके लौटता था कि अर्हत्व को उपलब्ध हो गया।
पकती गयी बात। पकती गयी बात। पकती गयी बात। एक दिन फल टपक गया। एक दिन लौटता था नंगल को देखकर और बात स्पष्ट हो गयी। अतीत गया; वर्तमान का उदय हो गया।
अर्हत्व का अर्थ होता हैः चेतना वर्तमान में आ गयी। अतीत का सब जाल छूट गया; सब झंझट छूट गयी। यही क्षण सब कुछ हो गया। इस क्षण में चेतना निर्विचार होकर प्रज्वलित होकर जल उठी।
और फिर उसे किसी ने दुबारा नंगल को देखने जाते नहीं देखा। स्वभावतः भिक्षुओं को जिज्ञासा उठी। पूछाः आवुस नंगलकुल! अब तू उस वृक्ष के पास नहीं जाता है?
नंगलकुल हंसा। हंसा अपनी मूढ़ता पर जो वह हजारों बार गया था। और उसने कहाः जब तक आसक्ति रही अतीत से, तब तक गया। जब तक संसर्ग रहा, तब तक गया। अब तो नाता टूट गया। अब न मैं नंगल का, न नंगल मेरा। अब तो मेरा कुछ भी नहीं। अब तो मेरे भीतर मैं भी नहीं। अब तो जंजीरें टूट गयीं। अब तो मैं मुक्त हूं।
लेकिन भिक्षुओं को यह बात सुनकर जंची नहीं। जंची इसलिए भी नहीं कि कोई पसंद नहीं करता यह कि हमसे पहले कोई दूसरा मुक्त हो जाए। हमसे पहले--और यह नंगलकुल हो गया? यह तो गया-बीता था; आखिरी था। इसको तो लोग जानते थे कि है यह गांव का गरीब। यहीं खेती-बाड़ी करता रहा। फिर संन्यासी भी हो गया, तो कोई बड़ा संन्यासी भी... । वह नंगलकुल! बार-बार जाए दर्शन को। और किसी चीज के दर्शन न करे, नंगल के दर्शन करे! यह--और ज्ञान को उपलब्ध हो जाए? यह कभी नहीं हो सकता।
उन्होंने जाकर भगवान को कहाः भंते! यह नंगलकुल झूठ बोलता है। यह अर्हत्व-प्राप्ति की घोषणा करता है। कहता है, मैं मुक्त हो गया हूं।
लेकिन जो औरों को नहीं दिखायी पड़ता, वह सदगुरु को तो दिखायी पड़ेगा।
तुम्हें दिखायी पड़ेगा, उसके पहले सदगुरु को दिखायी पड़ेगा।

बुद्ध ने करुणा से उन भिक्षुओं की ओर देखा।
करुणा से--क्योंकि वे ईर्ष्यावश ऐसा कह रहे हैं। करुणा से--क्योंकि राजनीति प्रवेश कर रही है उनके मन में। करुणा से--क्योंकि उनके अहंकार को चोट लग रही है। कोई वर्षों से संन्यासी था। कोई बड़ा पंडित था। कोई बड़ा ज्ञानी था। कोई बड़े कुल से था, राजपुत्र था। इनको नहीं मिला और नंगलकुल को मिल गया? वह तो अछूत था; आखिरी था।
बुद्ध ने कहाः भिक्षुओ! मेरा पुत्र अपने आपको उपदेश दे प्रव्रजित होने के कृत्य को पूर्ण कर लिया।
इसने यद्यपि किसी और से उपदेश ग्रहण नहीं किया, लेकिन अपने आपको रोज-रोज उपदेश देता रहा। जब-जब गया उस वृक्ष के पास, अपने को उपदेश दिया। ऐसे धार पड़ती रही, पड़ती रही। अपने को ही जगाया अपने हाथों से।
यह बड़ा अदभुत है नंगलकुल। इसकी महत्ता यही है कि इसने धीरे-धीरे करके अपने को स्वयं अपने हाथों से उठा लिया है। यह बड़ी कठिन बात है। लोग दूसरे के उठाए-उठाए भी नहीं उठते हैं!
उसे जो पाना था, उसने पा लिया। और जो छोड़ना था, वह छोड़ दिया। तब बुद्ध
ने ये गाथाएं कहींः

अत्तना चोदय"त्तानं पटिवासे अत्तमत्तना।
सो अत्तगुत्तो सतिमा सुखं भिक्खु विहाहिसि।।

"जो आप ही अपने को प्रेरित करेगा, जो आप ही अपने को संलग्न करेगा, वह आत्म-गुप्त स्मृतिवान भिक्षु सुख से विहार करेगा।"
उसकी किसी को कानो-कान खबर नहीं होगी। उसके भीतर ही, आत्मगुप्त, चुपचाप फूल खिल जाएगा।
जो अपने आपको प्रेरित करता रहेगा, जो अपने आपको जगाने की चेष्टा करता रहेगा, वह जाग जाता है और किसी को कानो-कान खबर भी नहीं होती।

अत्ता हि अत्तनो नाथो अत्ता हि अत्तनो गति।
तस्मा सांंमयत्तानं अस्सं भद्रं"व वाणिजो।।

"मनुष्य अपना स्वामी आप है; आप ही अपनी गति है।"
यह बुद्ध का परम उपदेश है--

अत्ता हि अत्तनो नाथो अत्ता हि अत्तनो गति।

किसी दूसरे की कोई वस्तुतः जरूरत नहीं है। अगर तुम अपने को जगाने में
लग जाओ, निश्चित ही जाग जाओगे।

अत्ता हि अत्तनो नाथो... ।

मनुष्य अपना स्वामी आप।

अत्ता हि अत्तनो गति।

अपनी गति आप। आत्म-शरण बनो।
बुद्ध का जो अंतिम वचन था, मरने के पहले, वह भी यही थाः अप्प दीपो भव-- अपने दीए स्वयं बन जाओ।
आज इतना ही।

एस धम्मो सनंतनो, भाग 12
एक सौ सोलह प्रवचन

राजनीति और धर्म

पहला प्रश्नः आपने कबीर और मीरा की एक ही सभा में उपस्थित होने की कहानी कही। लेकिन यह ऐतिहासिक रूप से संभव नहीं है। क्योंकि दोनों समसामयिक नहीं थे।

इतिहास का मूल्य दो कौड़ी है। इतिहास से मुझे प्रयोजन भी नहीं है। कहानी अपने आप में मूल्यवान है; इतिहास में घटी हो या न घटी हो। घटने से मूल्य बढ़ेगा नहीं।
कहानी का मूल्य कहानी के भाव में है। और ऐतिहासिक रूप से भी घट सकती है; कोई बहुत कठिन बात नहीं है। अगर कबीर एक सौ बारह साल जिंदा रहे हों--जो कि संभव है--तो कबीर और मीरा का मिलन हो सकता है।
लोग एक सौ पचास साल तक भी जीते हैं। रूस में हजारों लोग हैं, जो एक सौ पचास साल के करीब पहुंच गए हैं।
लेकिन उससे कुछ प्रयोजन नहीं है। मैं कह नहीं रहा हूं कि कबीर एक सौ बारह साल जिंदा रहे। मैं यह भी नहीं कह रहा हूं कि कबीर का मीरा से कभी मिलना हुआ होगा।
कहानी का मूल्य उसकी अंतर-कथा में है; उसकी अंतर्भावना में है। न मिले हों इस पृथ्वी पर--छोड़ो! स्वर्ग में पंद्रह सौ ज्ञानी इकट्ठे हुए हों और कबीर को बुलाया हो। और कबीर ने कहा हो कि जब तक मीरा न आएगी--या सहजो, या दया, या राबिया, या थेरेसा, या लल्ला--तब तक मैं न आऊंगा।
कहानी का अर्थ इतना है कि जहां सिर्फ पुरुष ही पुरुष हैं, वहां कुछ अधूरा है। जहां पुरुष ही पुरुष हैं, वहां कुछ कठोर हो जाता है; परुष हो जाता है। स्त्री के आते ही थोड़ा सा माधुर्य आता है। स्त्री के आते ही थोड़ा गीत आता है, थोड़ा संगीत आता है। स्त्री के आते ही अध्यात्म में थोड़े फूल खिलते हैं। नहीं तो अध्यात्म मरुस्थल हो जाता है।
चूंकि अध्यात्म के सभी शास्त्र पुरुषों ने लिखे हैं, इसलिए शास्त्र रूखे-सूखे हैं। चूंकि स्त्रियां मंदिरों, मस्जिदों, सिनागाग से वर्जित रही हैं, इसलिए धर्म मुर्दे की तरह जीया है। धर्म में प्राण आ जाएंगे।... कहानी का अर्थ है कि कबीर यह कह रहे हैं कि स्त्री और पुरुष का समान मूल्य है। एक। इसलिए मीरा को बुलाओ तभी मैं आऊंगा।
दूसराः स्त्री और पुरुष की ऊर्जा जहां संयुक्त होकर नाचती है, वहां परिपूर्णता का वास होता है। पुरुष आधा है, स्त्री आधी है। दोनों जहां मिलते हैं, वहां पूर्ण का जन्म होता है।
न तो पुरुष अकेला बच्चे को जन्म दे सकता है, न स्त्री अकेली बच्चे को जन्म दे सकती है। जीवन फलता है तब, जब दो का मिलन होता है। दो विपरीत ऊर्जाएं जब एक-दूसरे में गिरती हैं, तो तीसरी ऊर्जा का जन्म होता है। अध्यात्म बांझ रह गया है, क्योंकि पुरुष ही पुरुष की ऊर्जा है।
मुझसे लोग पूछते हैं कि कोई स्त्री तीर्थंकर क्यों नहीं है? कोई स्त्री अवतार क्यों नहीं है? कोई स्त्री ईश्वर की पुत्र क्यों नहीं है? कोई स्त्री पैगंबर क्यों नहीं है?
वे ठीक पूछते हैं। स्त्रियां इस योग्य हुई हैं, जो पैगंबर होनी चाहिए,
जो अवतारों में गिनी जानी चाहिए, जिनकी गिनती तीर्थंकरों में होनी चाहिए, लेकिन पुरुष का अहंकार नहीं होने देता गिनती।
उस पुरुष के अहंकार पर चोट है कहानी में। उस कहानी का इतना ही अर्थ है
कि कबीर यह कह रहे हैं कि मैं पुरुष के अहंकार को भरने को राजी नहीं हूं। स्त्री की महिमा उतनी ही है, जितनी पुरुष की। उसकी ऊंचाई उतनी ही हो सकती है, जितनी पुरुष की।
लेकिन मीरा को या सहजो को तीर्थंकर की तरह स्वीकार करना तो दूर, जैनों में एक स्त्री तीर्थंकर हो गयी, उसका नाम जैनों ने बदल दिया है--कि पता न चले किसी को कि वह स्त्री थी। नाम था, मल्लीबाई; जैन कहते हैं, मल्लीनाथ।

पुरुष की तरह गिनती कर दी। बात अखरी होगी। स्त्री रही होगी अपूर्व महिमा की। निश्चित ही महावीर से ज्यादा महिमा की स्त्री रही होगी। नहीं तो स्त्री होकर तीर्थंकरों में गिनी नहीं जा सकती थी। महिमा कुछ ऐसी रही होगी कि पुरुष भी इनकार कर नहीं सका। ज्योति कुछ इतनी ज्योतिर्मय रही होगी कि स्त्री होते हुए भी स्वीकार करना पड़ा होगा।
तेईस तीर्थंकर पुरुष हैं; उसमें एक स्त्री चौबीसवीं--मल्लीबाई! उस समय तो स्वीकार कर लिया होगा। उसकी मौजूदगी का बल! उसकी मौजूदगी का दबाव। लेकिन पीछे पुरुष के अहंकार को चोट लगी होगी--कि स्त्री और तीर्थंकर! स्त्री और इतनी ऊंचाई पा ले! और शास्त्र तो कहते हैं कि स्त्री पर्याय से मोक्ष ही नहीं हो सकता।
वे पुरुषों के लिखे हुए शास्त्र हैं, जो कहते हैं कि स्त्री पर्याय से मोक्ष नहीं हो सकता। कोई भी स्त्री सीधे स्त्री-देह से मोक्ष नहीं जा सकती। पहले मरे; पुरुष बने दूसरे जन्म में; फिर जा सकती है। पुरुष हुए बिना मोक्ष जाने का कोई द्वार नहीं है।
यह बड़ी बेहूदी बात है; अभद्र बात है। मगर पुरुषों का राज्य रहा। पुरुष मालिक रहे। स्त्रियों को पढ़ने की आज्ञा नहीं; समझने की आज्ञा नहीं; सोचने की आज्ञा नहीं!
और एक स्त्री तीर्थंकर हो गयी, तो फिर शास्त्रों का क्या होगा, जो कहते हैंः स्त्री पर्याय से मोक्ष नहीं है! उन्होंने कहानी को बदल दिया। एक छोटी सी तरकीब लगायी; एक कानूनी व्यवस्था जुटा ली; एक टेक्निकल तरकीब खोज ली। मल्लीबाई को मल्लीबाई मत कहो; मल्लीनाथ कहो। एक स्त्री कभी उस महिमा को प्रगट भी की थी, तो हमने उसका नाम मिटा दिया।
कबीर की कहानी में इतनी ही बात है कि पंद्रह सौ पंडित काशी में इकट्ठे हुए हैं और उन्होंने कबीर को निमंत्रित किया है कि आप आओ। वे गए। उन्होंने देखाः सब पुरुष हैं। लौट गए। उन्होंने कहाः मीरा को बुलाओ। मीरा नाचे, तो कबीर भी आए। मीरा नाचे, तो कबीर भी बोले।
जहां स्त्री नहीं है, वहां कुछ अधूरा है। वहां मातृत्व नहीं है; वहां प्रेम नहीं है। तर्क होगा; सिद्धांत-जाल होगा। पांडित्य होगा। आचरण भी हो सकता है। चरित्र भी हो सकता है। लेकिन उस चरित्र में सुगंध नहीं होगी। उस चरित्र में माधुरी नहीं होगी; मस्ती नहीं होगी। वहां लोग ज्ञानी होकर पत्थरों की तरह हो जाएंगे। वहां बहाव नहीं होगा।
तुमने देखाः एक कमरे में दस पुरुष बैठे हों, हवा और होती है। फिर एक स्त्री कमरे में आ जाए, हवा और हो जाती है। सिर्फ उसकी मौजूदगी से तनाव कम हो जाता है। लोग ज्यादा हंसने लगते हैं। लोग विवाद कम करते हैं। लोग अभद्र शब्दों का उपयोग नहीं करते। लोग गाली-गलौज बंद कर देते हैं!
पंद्रह स्त्रियां बैठी हों, तो भी बड़ी तू-तू मैं-मैं होती है। क्षुद्र बातों पर निंदा का रस चलता है; निंदा-रस बहता। एक पुरुष आ जाए, बात सम्हल जाती है।
स्त्री और पुरुष एक ही सत्य के दो पहलू हैं; एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। और अब तक हमने चूंकि सिक्के के एक ही पहलू को स्वीकार किया, पुरुष को, और स्त्री का अस्वीकार किया; इसलिए दुनिया बड़ी दीन रह गयी है।
दुनिया में युद्ध कम हों, अगर स्त्री भी इतनी ही स्वीकृत हो, जितना पुरुष स्वीकृत है। दुनिया में प्रेम थोड़ा ज्यादा हो--उसकी जरूरत है बहुत कि ज्यादा हो। जब प्रेम कम पड़ जाता है, तो संगीनें बढ़ती हैं, तलवारें बढ़ती हैं, बम बढ़ते हैं।
स्त्री स्वीकृत हो, संतुलित हो। स्त्री और पुरुष समान हैं। इसलिए कबीर ने कहाः जब मीरा आए... ।
मीरा को खोजा गया। जब मीरा आकर नाची, तब कबीर बोले। निश्चित ही इस बोलने में गुणवत्ता का फर्क हो गया। मीरा नाची, तब कबीर बोले। मीरा के नाचने में ही तरलता आ गयी। वे गंभीर पंडितों के चेहरे शिथिल हो गए होंगे। तर्कजाल थोड़ा भीतर कम हुआ होगा। खोपड़ियों से उतरे होंगे पंडित; हृदय में डूबे होंगे थोड़ा।

मीरा नाची। उसने घूंघर बांधे। पद घुंघरु बांध मीरा नाची रे! वातावरण शीतल हो गया होगा। थोड़े से जुही के फूल झर गए होंगे। फिर कबीर बोले। अब यह एक अलग वातावरण में बोले।
तुम कहां की फिजूल बकवास लिए बैठे हो कि इतिहास... !
यह कोई विश्वविद्यालय थोड़े ही है। यहां इस तरह की फिजूल बातों की चर्चा ही नहीं हो रही है। यहां तो इसकी भी फिकर नहीं कि कबीर हुए कि नहीं हुए! कि मीरा हुई कि नहीं हुई। इसकी भी कोई फिकर नहीं है। कहानी इतनी प्यारी है कि कहानी की वजह से कबीर को होना पड़ेगा, मीरा को होना पड़ेगा। कहानी का अपने में मूल्य है; उसका काव्य ऐसा है।
लेकिन तुम्हारी दृष्टि क्षुद्र पर अटक जाती है! तुम क्षुद्र हिसाब-किताब में लगे रहते हो। जो हुआ, उसका पक्का होना चाहिए। और ध्यान रखोः पक्का उसी का हो पाता है--जितना क्षुद्र हो, उतना पक्का हो जाता है। जैसे अडोल्फ हिटलर हुआ, इसमें कोई शक-सुबहा नहीं होता। क्योंकि अडोल्फ हिटलर इतना ध्वंसात्मक है कि अनेक खंडहर अपने पीछे छोड़ जाता है--प्रतीक और गवाह। कृष्ण हुए, यह संदिग्ध है। हुए हों न हुए हों! क्योंकि कृष्ण जो लाए थे
इस जगत में, वह तो उनके साथ ही तिरोहित हो गया; उसका कोई तो प्रमाण मिलता नहीं। खंडहर तो नहीं छोड़ गए यहां कोई। लाशों से तो नहीं पाट गए पृथ्वी को। पत्थरों पर कोई हस्ताक्षर भी नहीं कर गए। आए, खिले फूल की तरह सुबह, और सांझ खो गए। और जब फूल खो गया और वास उड़ गयी आकाश में, तो कहां खोजोगे! कहां प्रमाण खोजोगे?
कृष्णों का कोई प्रमाण नहीं है। बुद्धों का कोई प्रमाण नहीं है। जीसस
का कोई प्रमाण नहीं है। प्रमाण है नादिरशाह का। प्रमाण है तैमूरलंग का। प्रमाण है नेपोलियन का, सिकंदर का। इनके प्रमाण हैं।
इस बात की सदा संभावना है कि आज से दो हजार साल बाद रमण का कोई प्रमाण
न हो। कृष्णमूर्ति का क्या प्रमाण होगा? अखबारों में खोजने से नाम भी तो नहीं मिलेगा! प्रमाण होगा जोसेफ स्टैलिन का। प्रमाण होगा माओ-त्से-तुंग का। प्रमाण होगा मुसोलिनी का। लेकिन कृष्णमूर्ति का क्या प्रमाण होगा? दो हजार साल बाद कृष्णमूर्ति ऐसे ही संदिग्ध हो जाएंगे, जैसे आज कृष्ण हो गए। कोई फर्क नहीं रहेगा।
जितनी ऊंची बात होती है, उतने ही कम प्रमाण छूटते हैं। क्योंकि ऊंची बात आकाश की होती है; नीची बात जमीन की होती है। नीची बात जमीन पर सरकती है; उसकी लकीरें छूटती हैं। ऊंची बात आकाश में उड़ती है। आकाश में उड़ने वाले पक्षियों के कोई पद-चिह्न तो नहीं बनते! पक्षी उड़ गया, फिर कोई पद-चिह्न नहीं मिलते। लेकिन जमीन पर जो चलते हैं, उनके जाने के बाद भी पद-चिह्न छूट जाते हैं। उनके जाने के बाद भी प्रमाण होता है।
इतिहास क्षुद्र की बात कहता है। इसलिए तो इस देश को एक नयी चीज खोजनी पड़ी; उसको हम पुराण कहते हैं। पुराण बड़ा महिमावान है। दुनिया में कहीं भी पुराण जैसी धारणा नहीं है।
पुराने शास्त्र कहते हैं, इतिहास और पुराण। पुराण का अर्थ इतिहास नहीं होता। पुराण कुछ और है। पुराण का मतलब होता हैः ऐसी बात, जिसका इतिहास कोई लेखा-जोखा नहीं रखेगा। नहीं रख सकेगा। नहीं कोई उपाय है इतिहास के पास। इतिहास तो लेखा-जोखा रखता है राजनीति का, टुटपुंजियों का, जिनका कोई मूल्य नहीं है। लेकिन घड़ीभर जो मंच पर आते हैं और बड़ा शोरगुल मचा देते हैं; घड़ीभर के लिए उनकी गूंज व्याप्त हो जाती है--घड़ीभर के लिए! इतिहास तो जो घड़ीभर के लिए बड़े प्रभावशाली मालूम पड़ते हैं, उनका अंकन
कर लेता है। पुराण उनका अंकन करता है, जो सदा-सदा के लिए महिमाशाली हैं। अब इसमें दोनों में फर्क होने वाला है। जो सदा-सदा के लिए महिमाशाली है--एस धम्मो सनंतनो--उसको पहचानने में हजारों साल लग जाते हैं; उसका इतिहास कैसे बनाओगे! इतिहास तो उसका बनता है, जिसको तुम अभी पहचान लेते हो। बुद्ध को तो अभी भी पहचाना नहीं गया! कबीर से तो अभी भी जान-पहचान कहां हुई तुम्हारी! अभी भी कबीर खड़े हैं; अभी समझे जाने को हैं; अभी पहचाने जाने को हैं।

हजारों साल बीत जाते हैं, तब... । और तब भी कुछ लोग ही केवल पहचान पाते हैं, क्या है बुद्धत्व। तब तक बुद्ध खो चुके; देह न रही; देह के प्रमाण न रहे। जब तक पहचानने वाले लोग आते हैं, तब तक सब चिह्न खो जाते हैं।
इसलिए हमने--सिर्फ हमने दुनिया में--पुराण जैसी चीज खोजी। पुराण का अर्थ होता हैः समय की धारा पर जिसके चिह्न नहीं छूटते; शाश्वत से जिसका संबंध है, उसका भी उल्लेख हमें करना चाहिए, उसको भी हमें संगृहीत करना चाहिए।
पश्चिम के जो लोग भारत के पुराण पढ़ते हैं, उनकी दृष्टि पुराण की नहीं है। भारतीय भी अब भारतीय नहीं हैं। वे भी जब पुराण पढ़ते हैं, तो उनकी दृष्टि भी पुराण की नहीं है। वे कहते हैंः यह इतिहास नहीं है।
कहा किसने कि यह इतिहास है! इतिहास शब्द का अर्थ समझते हो? जिसकी इति
आ जाए, और जिसका हास हो जाए। जिसका अंत आ जाता है जल्दी और जो धूल में खो जाता है--यह इतिहास का अर्थ होता है।
पुराण का क्या अर्थ होता है? जो सदा से चला आया है और सदा चलता रहेगा-- पुर धन आण। आता ही रहा है--आता ही रहा है--चलता ही रहा है--जो शाश्वत है, सनातन है। उसे पकड़ने के लिए कुछ और उपाय है।
इसलिए जब मैं तुमसे कुछ कहता हूं, तो स्मरण रखनाः उस कहने में इतिहास इत्यादि की बकवास नहीं है। मैं उस इतिहास से बिल्कुल मुक्त हूं। मैं तो तुमसे वही कह रहा हूं, जिसके होने की शाश्वत सत्यता है। घटा हो, न घटा हो। न घटा होगा, तो घटेगा कभी।
लेकिन तुम्हारा मन इन व्यर्थ की बातों में घूमता रहता है। तुम सोचते होः शायद घटता, तो मूल्य बढ़ जाएगा। कैसे बढ़ेगा मूल्य?
समझो कि सच में ही कबीर एक सौ बारह साल जी गए। और कबीर जैसे लोगों का भरोसा क्या--जी जाएं! एक सौ बारह साल जी जाएं, तो मीरा से मिलना हो जाए। तो फिर क्या मूल्य बढ़ जाएगा कहानी का! क्या मूल्य बढ़ेगा?
इतनी ही बात के जुड़ने से--कि हां, सच में ही एक भवन में काशी के पंद्रह
सौ पंडित इकट्ठे हुए थे। फिर कबीर ने मीरा को बुलाया। मीरा नाची। इससे क्या फर्क पड़ेगा? क्या कहानी अपने आप में पूरी नहीं है? प्रकारांतर से यह प्रमाण जुटा लेने से क्या कहानी का अर्थ कुछ गहरा हो जाएगा? कुछ भी तो भेद नहीं पड़ेगा।
कहानी का अर्थ तो कहानी में है। घटी हो, न घटी हो। न घटी हो, तो घटनी चाहिए थी। न घटी हो, तो अभी कभी घटेगी। यहां न घटी हो, तो कहीं और घटी होगी। इस जमीन पर नहीं, तो किसी और जमीन पर। जमीनों पर नहीं, तो कहीं स्वर्ग में। लेकिन घटी होगी। घटेगी। घटती रहेगी। जब भी कबीर पैदा होंगे, मीराएं पुकारी जाएंगी। और जो कबीर मीरा को न पुकारे, वह कुछ अधूरा-अधूरा है; भयभीत है। कबीर के साथ और भय को जोड़ना ठीक नहीं होगा।
और जिसको यह दिखायी न पड़ जाए कि स्त्री में भी वही ज्योति, पुरुष में
भी वही ज्योति; जिसे यह स्त्री-पुरुष का वर्ग-भेद याद रह जाए, वह कबीर कैसा? उसमें बुद्धत्व ही नहीं है अभी। अभी देह पर अटका है; अभी आत्मा का पता नहीं चला है।
देह से स्त्री हो कोई, पुरुष हो कोई, लेकिन यह देह की भाषा है। कबीर को
तो देह के पार दिखायी पड़ना चाहिए। देह के भीतर जो छिपा है, उस पारदर्शी का दर्शन होना चाहिए। कबीर को तो दिखना चाहिए कि कौन पुरुष? कौन स्त्री? एक का ही विस्तार है। एक ही मौजूद है।

दूसरा प्रश्नः आप कभी-कभी बड़ा कठोर उत्तर क्यों देते हैं?

जैसा प्रश्न, वैसा उत्तर। या जैसा प्रश्नकर्ता, वैसा उत्तर।
और फिर कभी-कभी कठोरता की जरूरत होती है करुणा के कारण भी। कभी-कभी तुम्हारे सिर पर चोट पड़े, तो ही तुम्हें थोड़ा सा होश आता है। तुम ऐसी गहरी नींद में सोए हो! डर तो यह है कि तुम चोट को भी पी जाओगे और न जागोगे।

तुम्हारा पूछना किस भावदशा में होता है; किस जगह से आता है तुम्हारा प्रश्न; क्यों तुमने पूछा है--वह ज्यादा महत्वपूर्ण है मुझे, बजाय तुम्हारे प्रश्न के।
कोई सिर्फ इसलिए पूछता है कि वह अपना पांडित्य दिखाना चाहता है। अब जैसे यही प्रश्न कि कबीर और मीरा का मिलन ऐतिहासिक नहीं है। अब यहां कोई इतिहास के अंधे आ गए, जो क्षुद्र का इतिहास पढ़ते रहे हैं--राजा-राजाओं की, रानियों की कहानियां पढ़ते रहे हैं; युद्धों की कहानियां पढ़ते रहे हैं--और जिनको तारीखें इत्यादि काफी याद हो गयी हैं। इनके सिर में कचरा भर गया। अब ये कुछ और नहीं देख सकते! अब उनको हर चीज जब तक क्षुद्र के साथ प्रमाणित न हो, तब तक अर्थहीन हो जाती है।
अब इनको बड़ी कठिनाई होगी। ये समझ ही न पाएंगे विराट को। और अगर समझेंगे, तो ऐसी मांगें करेंगे कि वे मांगें बाधा खड़ी करेंगी।
अब जैसे कहानियां कहती हैं... । कहानियां हैं, इतिहास में प्रमाण हो भी नहीं सकता। कहते हैंः महावीर चलते हैं रास्तों पर, तो जो कांटे सीधे पड़े होते हैं, महावीर को देखकर जल्दी से उलटे हो जाते हैं।
अब यह कहीं होता है? कांटे इतनी फिक्र करते हैं? आदमी फिक्र नहीं करते; कांटे क्या खाक फिक्र करेंगे!
यह कभी हुआ तो नहीं होगा। कांटे रास्तों पर पड़े; महावीर आते हैं; यह देखकर कि कहीं चुभ न जाऊं, जल्दी से उलटे हो जाते हैं! सिर छिपाकर धूल में घुस जाते हैं। कांटे ऐसा करेंगे?
लेकिन इस कहानी में बड़ा अर्थ है। कहानी यह कह रही है कि कांटों को भी ऐसा करना चाहिए। महावीर जैसा व्यक्ति आता हो... । यह अपेक्षा है कहानी की कि होना तो ऐसा चाहिए कि रास्ते पर पड़े कांटे भी उलटे हो जाएं। और होता यह है कि रास्ते पर खड़े आदमी भी पत्थर मारते हैं!

यह कहानी में अपेक्षा है; इस कहानी में तुम्हारे लिए इंगित है, सूचना
है कि महावीर के रास्ते पर कांटे मत बनना। वहां तो कांटों को भी उलट जाना चाहिए। लेकिन तुम भी कांटे बन जाओगे महावीर के रास्ते पर। आदमी कांटे हो जाते हैं!
कहानियां कहती हैं कि मोहम्मद चलते हैं रेगिस्तान में, तो एक बादल उनके ऊपर छाया करता है। किस बादल को पड़ी है! बादलों को इतना बोध कहां? और अगर हो, तो सोचो तोः कितना अपमान हो गया तुम्हारा! बादल छाया करें मोहम्मद पर! और आदमियों ने क्या किया? आदमियों ने मोहम्मद की छाया छीन लेनी चाही; जीवन छीन लेना चाहा।
अब तुम कहोगेः इसका इतिहास में प्रमाण नहीं है! मैं भी नहीं कह रहा हूं। इसका इतिहास से कुछ लेना-देना नहीं है। यह बात बड़ी महिमा की है। यह काव्य है; और इसमें इंगित हैं, सूचनाएं हैं।
इसमें यह सूचना दी गयी है कि होना तो यही चाहिए कि बादल भी मोहम्मद पर छाया करें। मोहम्मद जैसा आदमी हो और बादल छाया न करें! और होता यह है कि आदमी भी मोहम्मद को मारने को उत्सुक हो जाते हैं।
कहानियां कहती हैं कि बुद्ध जब जंगलों में आते, तो सूखे वृक्षों में हरियाली आ जाती; बेमौसम फूल खिल जाते।
होना यही चाहिए। बुद्ध आएं, तो बेमौसम खूब फूल खिल जाना चाहिए। फिर क्या खाक मौसम की फिक्र किए बैठे हो? बुद्ध का आगमन हुआ। किसी वृक्ष के नीचे आकर बैठ गए। और वृक्ष कह रहा है कि जब वसंत आएगा, तब खिलूंगा। यह बात जंचती है?
वसंत आ गया--यह मतलब हुआ कहानी का। बुद्ध आ गए, तो वसंत आ गया। अब और किस वसंत की प्रतीक्षा है? इससे बड़ा वसंत और कब आएगा? बुद्ध के पास तो आदमियों के फूल खिल जाते हैं। यही तो वसंत है।
कहानी यह कह रही है कि खिल जाने चाहिए फूल। अब और किस वसंत की प्रतीक्षा है? मालिक आ गया; तुम नौकरों की प्रतीक्षा कर रहे हो!
मगर मैं यह नहीं कह रहा हूं कि फूल खिले। आदमी नहीं खिले, तो फूल क्या खिलेंगे! ये काव्य हैं। ये महाकाव्य हैं। पुराण गणित की भाषा में नहीं

लिखा जाता। पुराण काव्य की भाषा में लिखा जाता है। पुराण गणित की भाषा मानता ही नहीं। पुराण भाव की भाषा मानता है।
अब अगर मैं तुमसे कह दूं कि यह इतिहास का कूड़ा-करकट तुम्हारी खोपड़ी में भरा है, इसे जलाओ, इसे कचरे-घर में डाल आओ, तो तुम कहोगे, मैंने कठोर उत्तर दे दिया।
यह कठोर नहीं है महाराज! मेरा वश चले, तो तुम्हारा सिर उतार लूं। यह कठोर नहीं है। तुम्हारा सिर किसी काम का नहीं है। नाहक उछल-कूद कर रहे हो। नाहक परेशान हो रहे हो। यह सिर गंवा दो, तो तुम्हें सब मिल जाए। यही सिर तुम्हारे और परमात्मा के बीच बाधा बना है।
लेकिन तुम पूछते होः "आप कभी-कभी बड़ा कठोर उत्तर देते हैं!"
एक धोबन अपने गधों को हांकती घर की तरफ आ रही थी कि रास्ते में एक मसखरा मिल गया। और उसने कहाः गधों की अम्मा! सलाम!
मालूम है, उस धोबन ने क्या कहा? उस धोबन ने कहाः खुश रहो बेटा!
और कहे भी क्या!
एक सज्जन हैंः मियां बब्बन। झक्की स्वभाव के हैं। जहां खड़े होते हैं, लगते हैं दाम पूछने। एक बार वे एक बड़ी दुकान में घुस गए। दाल कितने में होगी किलो भर? और यह टूथ-ब्रश? और यह पेस्ट तो घटिया लग रही है! खैर, फिर भी कितने में दोगे? और यह हेयर ब्रश?
दुकानदार बड़ी शांति से भाव बताता जा रहा था। आखिर बब्बन मियां जब सब चीजों के दाम पूछ चुके; सुबह से सांझ होने के करीब आ गयी। तो फोन के पास आकर रुके और बोलेः क्यों मियां! यह फोन कितने का होगा?
एक सीमा होती है! दिनभर खराब कर दिया इस आदमी ने। दुकानदार भी... । बड़ा दुकानदार रहा होगा; बरदाश्त करता रहा, करता रहा, करता रहा। अब जब यह फोन के भी दाम... । जब सब चीजें ही दुकान की पूछ चुके, अब फोन ही बचा। शायद अब आगे बड़े मियां का दाम पूछे! कि आपके कितने दाम हैं!
दुकानदार बड़ी शांति से भाव बताता जा रहा था। अब जरा बात उसे सीमा के बाहर जाती मालूम पड़ी। जब बब्बन मियां ने पूछाः क्यों मियां! यह फोन कितने का होगा? दुकानदार चिल्लायाः एक-एक नंबर घुमाने के पचास-पचास पैसे। कान से लगाने के तीन पैसे। मुंह से हर शब्द बोलने के पैसे, तार की तरह। बब्बन मियां बोलेः मैंने तो समूचे फोन के दाम पूछे थे जनाब! आप चिल्लाने क्यों लगे?
समूचे ही फोन के दाम पूछ रहे हैं वे!
कुछ लोग ऐसे हैं, जिन्हें प्रयोजन भी नहीं है। किसलिए पूछ रहे हैं, यह
भी नहीं है उनको पता। पूछने के लिए पूछ रहे हैं। कुछ खरीदना नहीं है।
जब मैं देखता हूं कि तुम सिर्फ पूछने के लिए पूछ रहे हो, तो मेरे पास इतना समय नहीं है कि सुबह से शाम तक खराब करूं। जो पूछने के लिए पूछ रहा है, उसको तो मैं कठोर उत्तर देता हूं। वही उसे मिलना चाहिए।
जो कुतूहलवश पूछ रहा है, वह गलत जगह से पूछ रहा है। हां, जिज्ञासा हो,
तो मेरा उत्तर कोमल होता है। और अगर मुमुक्षा हो, तो मैं अपने सारे प्राण तुम्हारे प्रश्न के उत्तर में डाल देता हूं। तुम सच में ही मुक्त होने के लिए पूछ रहे हो, तो फिर मैं सारी चेष्टा करता हूं।
लेकिन जब मैं देखता हूं कि यह खुजली ही जैसी बात है, खुजलाहट हो रही है तुम्हारी खोपड़ी में कुछ, तो मैं खुजलाता नहीं। क्योंकि खुजलाने से खुजलाहट और बढ़ती है। फिर मैं कठोर उत्तर ही देना पसंद करता हूं।
तुम्हें वही मिलना चाहिए, जो तुम्हारी जरूरत है।

तीसरा प्रश्नः प्यारे ओशो! सत्य क्या है? क्या ललित और बच्चे सत्य हैं? क्या आप सत्य हैं? क्या धर्म सत्य है? या क्या जो मैं समझती हूं, वह सत्य है? आप स्पष्ट करें कि सत्य क्या है?

पूछा है तरु ने।
तरु! न तो ललित और बच्चे सत्य हैं; क्योंकि ललित और बच्चों से मिलना नदी-नाव-संयोग है। तू तो पहले भी थी। ललित और बच्चे भी पहले थे; इस जन्म के

पहले भी थे। लेकिन तुम्हारा कभी मिलना न हुआ था। तू भी आगे रहेगी; ललित और बच्चे भी आगे रहेंगे। लेकिन फिर दुबारा शायद मिलना न हो। या हो भी, तो पहचान नहीं रहेगी कि कौन ललित है; कौन बच्चे हैं; कौन मैं हूं!
इस संसार के रास्ते पर हम सब अजनबी हैं। घड़ीभर का मिलना है, फिर रास्ते अलग हो जाते हैं। घड़ीभर साथ चल लेते हैं, इसी से संसार बसा लेते हैं। फिर रास्ते अलग हो जाते हैं। जब कोई मरता है, तो उसका रास्ता अलग हो गया। फिर अलविदा देने के सिवाय कोई मार्ग नहीं है। फिर दुबारा तुम उसे खोज भी पाओगे अनंतकाल में--असंभव है।
इसलिए न तो बच्चे सत्य हैं, न पति सत्य है, न पत्नी सत्य है, न भाई, न बहन, न मां, न बाप। संबंध हैं ये, सत्य नहीं। संबंध भी क्षणभंगुर हैं।
फिर पूछा हैः "क्या आप सत्य हैं?"
थोड़ा ज्यादा सत्य हूं। जितना पति-पत्नी का संबंध होता है, उससे गुरु- शिष्य का संबंध थोड़ा ज्यादा सत्य है। क्योंकि पति-पत्नी का संबंध देह पर चुक जाता है। या अगर बहुत गहरा जाए, तो मन तक जाता है।
गुरु-शिष्य का संबंध मन से शुरू होता है और अगर गहरा चला जाए, तो आत्मा
तक जाता है। लेकिन फिर भी कहता हूंः थोड़ा ज्यादा सत्य है। क्योंकि गुरु- शिष्य का संबंध भी परमात्मा तक नहीं जाता; आत्मा तक ही जाता है। और जाना है तुम्हें परमात्मा तक, इसलिए एक दिन गुरु को भी छोड़ देना पड़ता है। आत्मा की सीमा आयी, उस दिन गुरु गया।
इसलिए बुद्ध ने कहा हैः अगर मैं भी तुम्हें राह पर मिल जाऊं, तो मेरी गरदन काट देना। राह पर मिल जाऊं अर्थात अगर तुम्हारे और तुम्हारे परमात्मा के बीच में आने लगूं, तो मुझे हटा देना।
गुरु द्वार बने, तो ठीक। द्वार का मतलब ही होता है कि उसके पार जाना होगा। द्वार पर कोई रुका थोड़े ही रहता है! द्वार पर कितनी देर खड़े रहोगे? द्वार कोई रुकने की जगह थोड़े ही है। उससे तो प्रवेश हुआ और आगे गए।
तो गुरु द्वार है। इसलिए नानक ने ठीक कहा; अपने मंदिर को गुरुद्वारा कहा। बस, गुरुद्वारा ही है गुरु। वह द्वार है। उससे पार चले जाना है। गुरु इशारा है; जिस तरफ इशारा है, वहां चले जाना है।
इसलिए गुरु भी थोड़ा ज्यादा सत्य है, लेकिन असली सत्य तो परमात्मा है।
तो यहां तीन बातें हो गयींः सांसारिक संबंध; आध्यात्मिक संबंध; पारमार्थिक संबंध। सांसारिक संबंध--पति, पत्नी, बच्चे। बड़े ऊपर के हैं, शरीर तक जाते हैं। बहुत गहरे जाएं, तो मन तक।
आध्यात्मिक संबंध--शिष्य और गुरु का संबंध। या कभी-कभी बहुत गहरे प्रेम में उतर गए प्रेमियों का संबंध। शुरू होता है मन से। अगर गहरा चला जाए, तो आत्मा तक पहुंच जाता है।
और फिर कोई संबंध नहीं; तुम अकेले बचो। तुम्हारे एकांत में ही परमात्मा आविर्भूत होता है; तुम ही परमात्मा हो जाते हो। फिर कोई संबंध नहीं है। परमात्मा और आदमी के बीच कोई संबंध नहीं होता--असंबंध है। क्योंकि परमात्मा और आदमी दो नहीं हैं।
तो तू पूछती हैः "क्या आप सत्य हैं?"
थोड़ा ज्यादा, ललित और बच्चों से। लेकिन परमात्मा और तेरे संबंध से थोड़ा कम।
फिर पूछा हैः "क्या धर्म सत्य है?"
धर्म सत्य है। धर्म का अर्थ हैः असंबंधित दशा। धर्म का अर्थ हैः अपने स्वभाव में थिर हो जाना; अपने में डूब जाना। कोई बाहर न रहा। किसी तरह का संबंध बाहर न रहा। गुरु का संबंध भी न रहा।
वही है गुरु, जो तुम्हें उस जगह पहुंचा दे, जहां गुरु से भी मुक्ति हो जाए। उस गुरु को सदगुरु कहा है। उस गुरु को मिथ्या-गुरु कहा है, जो तुम्हें अपने में अटका ले। जो कहे, मेरे से आगे मत जाना। बस, यही तुम्हारा पड़ाव आ गया; मंजिल आ गयी। अब आगे नहीं। जो तुम्हें अपने में अटका ले, वह मिथ्या- गुरु। जो तुम्हें अपने से पार जाने दे, जो सीढ़ी बन जाए, द्वार बन जाए; तुम चढ़ो और पार निकल जाओ, वही सदगुरु।

और ध्यान रखनाः सदगुरु के प्रति ही अनुग्रह का भाव होता है। मिथ्या- गुरु के प्रति तो क्रोध आएगा आज नहीं कल; क्योंकि मिथ्या-गुरु वस्तुतः तुम्हारा दुश्मन है। पहले प्रलोभन दिया विकास का और फिर अटका लिया! पहले आशा जुटायी; तुम्हारे भीतर खूब आशा जगायी कि मुक्ति दूंगा। और फिर तुमने पाया कि एक नए तरह का बंधन हो गया। जंजीरें बदल गयीं; दूसरी जंजीरें आ गयीं। एक कारागृह से दूसरे कारागृह में प्रवेश हो गया। एक तरह की गुलामी थी; अब दूसरी तरह की गुलामी शुरू हो गयी।
तो मिथ्या-गुरु के प्रति तो तुम कभी भी अनुग्रह का भाव अनुभव नहीं कर सकते। अनुग्रह का भाव तो उसी के प्रति होता है, जिससे परम स्वतंत्रता मिले, बेशर्त स्वतंत्रता मिले।
धर्म सत्य है।
"और क्या जो मैं समझती हूं, वह सत्य है? आप स्पष्ट करें कि सत्य क्या है।"
जो तरु तू समझती है, वह सत्य नहीं है। लेकिन जो तेरे भीतर समझता है, वह सत्य है। जो तेरे भीतर जागकर देखता है, वह सत्य है। समझने वाला सत्य है; समझ का कोई बड़ा मूल्य नहीं है। समझ तो छोड़ देनी है। पहले नासमझ छोड़नी पड़ती है; फिर समझ छोड़नी पड़ती है। पहले संसार छोड़ना पड़ता है, फिर अध्यात्म छोड़ना पड़ता है। पहले गृहस्थी छोड़नी पड़ती है, फिर संन्यास छोड़ना पड़ता है।
आखिरी में वही बच जाता है, जो सबका समझने वाला है। निर्विचार जो साक्षी बच जाता है, उसी को धर्म कहो, उसी को परमात्मा कहो, मोक्ष कहो, निर्वाण कहो--जो प्रीतिकर लगे शब्द, वह दो। लेकिन वह तुम्हारा अंतर्तम स्वभाव है।

चौथा प्रश्नः आप राजनीति के इतने विरोध में क्यों हैं?

राजनीति के मैं विरोध में नहीं हूं। राजनीति तो लक्षण है। विरोध में हूं हीनता की गं्रथि के; वह जो इंफीरियारिटी कांप्लेक्स है आदमी में, उसके। और राजनीति उसी रोग का लक्षण है।
जो व्यक्ति जितनी हीनता की गं्रथि से पीड़ित होता है, उतने ही पद का आकांक्षी होता है। जो व्यक्ति जितनी हीनता की ग्रंथि से भरा होता है, उतना ही धन का आकांक्षी होता है।
समझना। हीनता की ग्रंथि का अर्थ होता हैः भीतर तो तुम्हें लगता है-- मैं कुछ भी नहीं हूं, ना-कुछ, दो कौड़ी का। मगर यह बात अखरती है। यह खटकती है--मैं और दो कौड़ी का! यह बात मानने का मन नहीं होता। दिखा दूंगा दुनिया को कि मैं भी कुछ हूं। हो जाऊंगा प्रधानमंत्री, कि राष्ट्रपति। कि कमा लूंगा दुनिया की संपत्ति और दिखा दूंगा दुनिया को कि मैं कुछ हूं। तुम्हारे भीतर जो तुम्हें लगता हैः दो-कौड़ीपन, अर्थहीनता, रिक्तता, उसको भरने का उपाय है राजनीति। राजनीति यानी महत्वाकांक्षा; धन की हो कि पद की, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। और कभी-कभी त्याग की भी होती है। इससे भी कुछ फर्क नहीं पड़ता।
जब तक तुम इस बात को सिद्ध करने में लगे हो दुनिया के सामने कि मैं कुछ हूं, तब तक एक बात ही सिद्ध होती है कि तुम भीतर जानते हो कि मैं ना-कुछ हूं। नहीं तो सिद्ध ही क्यों करोगे?
लाओत्सू का प्रसिद्ध वचन हैः जो सिद्ध करने चलता है, वह सिर्फ अपने को असिद्ध करता है। जो दूसरे को अपने मत में रूपांतरित करना चाहता है, लाओत्सू ने कहा है, वह सिर्फ इतना ही बताता है कि उसे खुद भी अपने मत पर भरोसा नहीं है।
क्या मतलब है लाओत्सू का? और लाओत्सू जैसी आंखें कभी-कभी होती हैं। बड़ी गहरी आंख है।
लाओत्सू का वचन हैः वन हू ट्राइज टु कनव्हिन्स, डज नाट कनव्हिन्स।
उसी चेष्टा में कि मैं सिद्ध कर दूं कि मैं यह हूं, साफ हो रहा है कि इस आदमी को खुद ही भरोसा नहीं है कि यह है; नहीं तो सिद्ध करने की क्या जरूरत!

जिसको साफ हो गया कि मैं कौन हूं, वह मस्ती से चलता है। उसे कुछ सिद्ध नहीं करना है। वह सिद्ध हो ही गया। उसको ही हमने सिद्ध कहा है।
राजनीतिज्ञ सिद्ध करने की कोशिश करता है और सिद्ध नहीं कर पाता। और सिद्ध सिद्ध है; सिद्ध करने की कोशिश नहीं करनी पड़ती।
राजनीति हीनता की गं्रथि से पैदा होती है।
पश्चिम का एक बड़ा मनोवैज्ञानिक हुआ है एडलर। उसने सारे मनोविज्ञान को हीनता की गं्रथि पर ही खड़ा किया है। पद का आकांक्षी सिर्फ इतना ही बताता है कि मैं भीतर दीन हूं, मुझे बड़े सिंहासन पर बिठाओ। मैं भीतर बहुत डरा हुआ हूं। मुझे ऐसे सिंहासन पर बिठाओ कि मैं दुनिया के ऊपर दिखायी पड़ सकूं! तुम्हारे बड़े से बड़े राजनीतिज्ञ बड़ी हीनताओं से घिरे होते हैं।
मैंने सुना हैः एक छोटे कद का नेता... और नेता सभी छोटे कद के होते हैं। चाहे शरीर का कद बड़ा भी हो; भीतर का कद छोटा होता है। सब नेता लालबहादुर शास्त्री होते हैं! सब। नहीं तो नेता ही नहीं होंगे।
एक छोटे कद का नेता भाषण दे रहा था। भीड़ में से आवाज आयीः आप नजर नहीं
आ रहे हैं! खड़े होकर भाषण दीजिए!
नेता ने कहाः मैं खड़े होकर ही भाषण कर रहा हूं।
भीड़ में से फिर आवाज आयीः अच्छा हो, कृपा करके मेज पर खड़े हो जाइए।
महोदय! नेता ने कहाः मैं मेज पर ही खड़ा हुआ हूं।
नेता छोटे कद का होता ही है। उसके भीतर ही उसे साफ है कि मैं ना-कुछ। इसलिए बाहर प्रमाण जुटा रहा है कि देखो मेरी शक्ति! मेरा धन! मेरा पद! देखो मुझे! वह तुम्हें थोड़े ही समझा रहा है; वह अपने को भी समझा रहा है। वह यह कर रहा है कोशिश कि जब इतने लोग मुझे मानते हैं, तो जरूर मुझमें कुछ होना चाहिए। नहीं तो इतने लोग मुझे मानते क्यों! जब इतने लोग मुझे पूजते हैं, इतनी फूल-मालाएं आती हैं, तो जरूर मेरे भीतर कुछ होना चाहिए। नहीं तो क्या कारण था कि इतने लोग... !
हालांकि यह भ्रम जल्दी टूटेगा। एक दफा पद से उतरो, पता चलेगा कि वह जो बहुत बड़ी तस्वीर दिखायी पड़ती थी, रोज छोटी होती जाती है, छोटी होती जाती है। यह पद से उतरने पर पता चलता है कि जो तुम्हारे पास फूल-मालाएं लेकर आते थे, वे वे ही लोग हैं, जो अब जूतों की मालाएं लेकर आने लगे। ये ही लोग फूल फेंकते थे, ये ही लोग पत्थर फेंकने लगते हैं। ये वे ही लोग हैं। और यह स्वाभाविक है कि ये पत्थर फेंकें; क्योंकि अब इनको फूल दूसरों पर फेंकने पड़ते हैं।
और जब भी कोई फूल फेंकता है राजनेता पर, तो भीतर तो वह देखता है... दो बातें घटती हैं उसको। मानता है कि तुम्हारे पास ताकत है। लेकिन यह भी भीतर अनुभव होता है कि ठीक है, आज तुम पर है तो ठीक है; फिंकवा लो फूल। कभी तो उतरोगे नीचे मंच से, फिर देख लेंगे। फिर वही आदमी बदला लेता है। इसलिए पद पर राजनेता ऐसा सम्मानित होता है, और पद से उतरते ही एकदम अपमानित हो जाता है।
मगर राजनेता जब पद पर होता है, तो उसको अपने भीतर भरोसा आ जाता है--कि ठीक। तो मेरा यह ख्याल गलत था कि मैं ना-कुछ हूं। मैं कुछ हूं। देखो, सारी दुनिया मुझे मानती है!
यह भ्रांति है। तुम्हीं अपने को नहीं मानते; सारी दुनिया के मानने से क्या होगा? तुम ही अपने को नहीं जानते, सारी दुनिया तुम्हें जान ले, इससे क्या होगा? यह झूठी प्रवंचना है। लेकिन समझने की कोशिश करनाः तुम अपने को नहीं जानते, इस बात को भुलाने के लिए तुम इस कोशिश में लग जाते हो कि दुनिया मुझे जान ले। सब अखबारों में मेरी तस्वीरें हों। सारे रेडियो पर मेरा व्याख्यान हो। सारे टेलीविजन पर मैं प्रदर्शित किया जाऊं।
यह तुम क्या कर रहे हो? तुम्हारे भीतर एक ख्याल जग रहा है कि मैं अपने
को नहीं जानता। बजाय इसके कि तुम अपने को जानने में लगो, तुम एक झूठे रास्ते पर चल रहे हो कि मैं दूसरों को जना दूं कि मैं कौन हूं। तुम्हें खुद ही पता नहीं है!

यही फर्क है। राजनीति का अर्थ हैः दूसरे जान लें कि मैं कौन हूं। और धर्म का अर्थ हैः मैं जान लूं कि मैं कौन हूं। धर्म अंतर्यात्रा है।
राजनीति बहिर्यात्रा है।
राजनीति के मैं विरोध में सिर्फ इसलिए दिखायी पड़ता हूं कि भीतर जो हीनता की गं्रथि है, वह जो रोग का असली कारण है, जहां से जहर उठता है, वह तोड़ना जरूरी है।
और ध्यान रखनाः जब तक तुम्हारे सामने साफ न हो जाए कि राजनीति धर्म का झूठा परिपूरक है, तब तक तुम धार्मिक न हो सकोगे। तब तक तुम धर्म के नाम पर भी राजनीतिज्ञ ही हो जाओगे। तुम त्याग कर दोगे और दुनिया को दिखाने लगोगे कि मुझसे बड़ा त्यागी कोई नहीं है। सिद्ध कर दूंगा कि मुझसे बड़ा त्यागी कोई नहीं है। तुम नग्न खड़े हो जाओगे सब घर-द्वार छोड़कर, पत्नी-बच्चे-सुविधाएं छोड़कर; उपवास करोगे; भूखे रहोगे; शरीर को गलाओगे--मगर भीतर एक ही वासना रहेगी कि दुनिया जान ले कि मुझसे बड़ा त्यागी कोई भी नहीं है।
इसमें कुछ फर्क नहीं है। यह वही का वही खेल है। तुम अभी भी दूसरों में उत्सुक हो; दूसरे जान लें कि मैं कौन हूं!
जब तक तुम्हारी उत्सुकता दूसरे में है--कि दूसरा मुझे जान ले कि मैं कौन हूं--तब तक तुम राजनीतिज्ञ हो; राजनीति में होओ या न होओ। जिस दिन तुम सोचोगे, बदलोगे अपनी यात्रा को, कहोगे कि पहले मैं तो जान लूं कि मैं कौन हूं।
और दूसरा जानेगा ही कैसे मुझे? कोई तो मेरे भीतर नहीं जा सकता, सिवाय मेरे। कोई तो मुझे नहीं देख सकता, सिवाय मेरे। लोग तो मुझे बाहर से ही देखेंगे। मेरी रूप-रेखा देखेंगे, मेरी अंतरात्मा तो नहीं। मैं ही कहां दूसरों की अंतरात्मा देख पाता हूं? लोगों का रूप-रंग देख लेता हूं; चेहरा देख लेता हूं; कपड़े देख लेता हूं; धन-पद-प्रतिष्ठा देख लेता हूं; लेकिन भीतर कौन विराजमान है, वह तो मुझे भी नहीं दिखायी पड़ता। तो कोई मेरे भीतर जाकर कैसे देख सकेगा! वहां तो जाने के लिए सिर्फ एक को ही आज्ञा है--वह मैं हूं। वहां तुम अपने संगी-साथी को भी नहीं ले जा सकते; अपने प्रेमी को भी नहीं ले जा सकते।
और पहले मैं तो जान लूं कि मैं कौन हूं; फिर अगर कोई जानेगा मुझे, तो समझ में पड़ने वाली बात है। लेकिन जो अपने को जान लेता है, उसे दूसरों को जनाने की आकांक्षा ही समाप्त हो जाती है। उसे तो मिल गया परमधन। उसे तो मिल गया परमपद। उसे अब कोई जाने न जाने, उसे चिंता ही नहीं है। वह विचार ही समाप्त हो गया। वह जाग गया। सपने के बाहर आ गया।
राजनीति एक सपना है सोए हुए आदमी का। धर्म जागरण की कला है।
राजनीति से मुझे कुछ लेना-देना नहीं है। और कभी-कभी मैं राजनीतिज्ञों
के खिलाफ कुछ कह देता हूं, उससे भी तुम यह मत समझ लेना कि मैं उनके खिलाफ हूं। वह तो केवल उदाहरण है। उनसे व्यक्तिगत रूप से मुझे कुछ लेना-देना नहीं है। वे नहीं होंगे तो कोई और होगा उनकी जगह। इतने रुग्ण लोग हैं दुनिया में कि क्या फर्क पड़ता है। इंदिरा नहीं, तो मोरारजी होंगे। मोरारजी नहीं, तो कोई और आ जाएंगे। कोई न कोई होगा। इतने बीमार लोग हैं, और इतने पद के आकांक्षी हैं! कोई न कोई होगा।
इससे क्या फर्क पड़ता है, कौन कुर्सी पर बैठा है! कोई न कोई नासमझ बैठेगा। नासमझों में जो सबसे ज्यादा नासमझ होगा, वह बैठेगा। क्योंकि यह दौड़ ऐसी है कि इसमें समझदारों का काम नहीं है।
मुल्ला नसरुद्दीन एक दुकान पर कुछ सामान खरीदने गया था। कोई त्यौहार
के दिन थे और दुकानदार ने चीजों के दाम काफी कम कर दिए थे। कम किए हों या न किए हों, कम से कम बाहर उसने तख्ती तो लगा दी थी कि जो चीज दस रुपए की है, वह पांच रुपए में बिक रही है। चाहे वह पहले भी पांच रुपए में बिकती रही हो! मगर भीड़ भारी हो गयी थी। खासकर स्त्रियां ऐसी जगह जरूर पहुंच जाती हैं। सस्ती कोई चीज मिलती हो, तो वे फिर यह भी नहीं सोचतीं कि अपने को इसकी जरूरत भी है या नहीं! सस्ती मिल रही हो, तो वे बचा ही लेती हैं पैसा उतना! बड़ी भीड़ थी। मुल्ला अकेला पुरुष था। लेकिन पत्नी ने उसको भेजा था, तो आना पड़ा था। पत्नी जरा बीमार थी; खुद नहीं आ सकी। और सारे मोहल्ले की

पत्नियां जा रही थीं; स्त्रियां जा रही थीं! तो उसने कहाः मुल्ला! तुम्हें जाना ही पड़ेगा। सारा गांव जा रहा है; हम ही चूक जाएंगे। मैं बीमार पड़ी हूं।
अभागा है दिन आज कि मैं बीमार हूं। तुम चले जाओ।
जाना पड़ा था। बड़ी देर खड़ा रहा। स्त्रियों की भीड़-भक्का! उसमें अकेला पुरुष! ज्यादा धक्कम-धुक्की भी नहीं कर सके। और स्त्रियां खूब धक्कम-धुक्की कर रही हैं। और वे जा रही हैं और एक... ।
दो घंटे देखता रहा। उसने सोचाः यह तो दिनभर बीत जाएगा, मैं दुकान के भीतर ही नहीं पहुंच पाऊंगा! तो उसने सिर नीचे झुकाया और दोनों हाथों से स्त्रियों को चीरना शुरू किया, जैसा आदमी पानी में तैरता है; ऐसा नीचे सिर झुकाकर वह एकदम घुसा!
स्त्रियां बड़ी चौंकी। दो-चार ने उसको धक्का भी मारा और कहाः नसरुद्दीन कैसे करते हो? एक सज्जन पुरुष की तरह व्यवहार करो!
नसरुद्दीन ने कहाः सज्जन पुरुष की तरह व्यवहार दो घंटे से कर रहा हूं। अब तो एक सन्नारी का व्यवहार करूंगा! अब सज्जन से काम चलने वाला नहीं है। अब तो सन्नारी का व्यवहार करूंगा, तो ही पहुंच पाऊंगा; नहीं तो नहीं पहुंच सकता।
राजनीति में जो जितना मूढ़ हो, जितना पागल हो और जितना सिर घुसाकर पड़ जाए एकदम पीछे, वही पहुंच पाता है। समझदार तो कभी के घर लौट आएंगे, कि भई, यहां अपना बस नहीं है। यह अपना काम नहीं है। समझदार तो अपनी मालाएं ले लेंगे और राम-राम जपेंगे। यहां अपना काम नहीं है! नासमझ... !
सारी दुनिया भरी है नासमझों से। कोई तो होगा। इसलिए व्यक्तियों से मुझे कुछ लेना-देना नहीं है। व्यक्ति तो सिर्फ उदाहरण मात्र हैं।
और राजनीति से भी सीधा मुझे कोई विरोध नहीं है। विरोध है तो इसीलिए कि
वह धर्म का झूठा परिपूरक है।
लोग समझें कि धर्म क्या है, ताकि अपने भीतर के आनंद को उपलब्ध हो सकें। और यह तभी हो सकता है, जब वे राजनीति से मुक्त हो जाएं। यह तभी हो सकता है; जब उनकी महत्वाकांक्षा गिर जाए।
इसलिए विरोध है।

पांचवां प्रश्नः
तेरो तेरे पास है, अपने माहिं टटोल।
राई घटै न तिल बढ़ै, हरि बोलौ हरि बोल।।
ओशो, इस पद का भाव समझाने की कृपा करें।

इस पद का वही भाव है, जो कल बुद्ध की कथा का भाव था। अत्ता हि अत्तनो नाथो--आदमी अपना मालिक खुद है; स्वयं अपना मालिक है। और जब तक यह सत्य दिखायी न पड़ जाए, तब तक व्यर्थ ही भिखारी बना रहता है--व्यर्थ ही, अकारण ही। तुम भिखारी बने हो, भिखारी होने के कारण नहीं; तुम्हें एक सत्य का स्मरण भूल गया है कि तुम मालिक हो--अत्ता हि अत्तनो नाथो--तुम अपने मालिक स्वयं हो।
"तेरो तेरे पास है... ।"
जिसकी तुम खोज कर रहे हो, उसे तुम साथ ही लेकर आए हुए हो; उसे तुमने कभी खोया ही नहीं।
फिर लाओत्सू का प्रसिद्ध वचन है कि जो खो जाए, वह धर्म नहीं है। जो न खोए, वही तो स्वभाव है; वही धर्म है।
मुझसे लोग पूछते हैंः ईश्वर को खोजना है! मैं उनसे पूछता हूंः कब खोया? कहां खोया? अगर खोया ही नहीं है, तो खोजने जाओगे तो भटक जाओगे। क्योंकि जिसे खोया ही नहीं, उसे खोजोगे कैसे!
ईश्वर को खोजना नहीं होता; सिर्फ जागकर देखना पड़ता है अपने भीतर; वहां
वह मौजूद है।
"तेरो तेरे पास है... ।"
जिसको तुम तलाश रहे हो, वह तुम्हारे भीतर है। चूक रहे हो, क्योंकि बाहर तलाश रहे हो।

राबिया के जीवन की प्रसिद्ध कथा है। एक सांझ लोगों ने देखा कि वह घर
के बाहर कुछ खोज रही है। बूढ़ी औरत, बूढ़ी फकीरन! पास-पड़ोस के लोग आ गए। वे भी कहने लगे कि हम साथ दे दें। क्या खो गया? उसने कहाः मेरी सुई गिर गयी है। वे भी खोजने लगे।
सूरज ढलने लगा। रात उतरने लगी। सुई जैसी छोटी चीज; बड़ा रास्ता; कहां खोजें? एक समझदार आदमी ने कहा कि राबिया, सुई गिरी कहां है? ठीक-ठीक जगह का कुछ पता हो, तो शायद मिल जाए। ऐसे तो कभी नहीं मिलेगी। रास्ता बड़ा है; और अब तो रात भी उतरने लगी!
राबिया ने कहाः वह तो पूछो ही मत कि कहां गिरी! सुई तो घर के भीतर गिरी है। तब तो वे सब, जो खोजने में संलग्न हो गए थे, खड़े हो गए। उन्होंने कहाः हद्द हो गयी! तेरे साथ हम भी पागल बन रहे हैं। अगर सुई घर के भीतर गिरी है, तो यहां किसलिए खोज रही है? तेरा होश खो गया! पागल हो गयी है? बुढ़ापे में सठिया गयी है?
राबिया ने कहाः नहीं; मैं वही कर रही हूं, जो सारी दुनिया करती है। सुई
तो भीतर गिरी है, लेकिन भीतर रोशनी नहीं है--गरीब औरत; दीया नहीं है--बाहर रोशनी थी, तो मैंने सोचा, बाहर ही खोजूं। जहां रोशनी है, वहीं खोजूं।
लोग कहने लगेः यह तो हमारी समझ में आता है कि बिना रोशनी के कैसे खोजेगी। लेकिन जब गिरी ही नहीं है सुई यहां, तो यहां कैसे खोजेगी?
उसने कहाः यही तो मेरी समझ में नहीं आता। तुम सबको भी मैं बाहर खोजते देखती हूं। और जिसे तुम खोज रहे हो, वह भीतर बैठा हुआ है! शायद जिस कारण से मैं सुई बाहर खोज रही हूं, उसी कारण से तुम भी बाहर खोज रहे हो।
आंखों की रोशनी बाहर पड़ती है; हाथ बाहर फैलते हैं; कान बाहर सुनते हैं। सारी रोशनी इंद्रियों की बाहर पड़ती है। शायद इसीलिए आदमी बाहर खोजने निकल जाता है। और फिर बाहर का तो कोई अंत नहीं है; खोजते जाओ, खोजते जाओ। पृथ्वी चुक जाए, तो हिमालय के शिखरों पर खोजो। हिमालय के शिखर चुक जाएं, तो चांद पर खोजो। अब मंगल पर खोजो। और बढ़ते जाओ! और बढ़ते जाओ! कोई अंत नहीं है इस ब्रह्माण्ड का। खोजते-खोजते समाप्त हो जाओगे। और मजा यह है कि जिसे तुम खोज रहे थे, वह तुम्हारे भीतर बैठा हंस रहा है।
"तेरो तेरे पास है, अपने माहिं टटोल।"
टटोल शब्द भी बड़ा अच्छा है। क्योंकि इंद्रियां तो बाहर हैं; भीतर अंधेरा है; टटोलना पड़ेगा।
समझो कि राबिया अगर भीतर खोजे अपनी सुई, तो दिखायी तो कुछ नहीं पड़ेगा। बैठ जाएगी जमीन पर और टटोलेगी। अंधेरा है, लेकिन अगर सुई जहां गिरी है, वहां अंधेरे में भी टटोली जाए, तो मिल सकती है। और जहां गिरी ही नहीं है, वहां हजार सूरज खड़े हों, सब रोशन हो, तो भी कैसे मिलेगी?
टटोलना शब्द को ख्याल रखना। टटोलने का मतलब होता हैः पक्का पता नहीं है, कहां है। दिखता कुछ नहीं। सब अंधेरा है।
ध्यान जब तुम करते हो, तब तुम्हें लगेगा सदाः अंधेरा हो गया।
किसी ने पूछा है एक प्रश्न कि आप कहते हैंः भीतर जाओ; आप कहते हैंः आत्म-दर्शन करो। जब भी मैं ध्यान करता हूं, तो अंधेरा ही अंधेरा दिखायी पड़ता है!
ठीक हो रहा है। ध्यान शुरू हो गया। अंधेरा दिखायी पड़ने लग गया, बड़ी घटना घट गयी। चलो, कुछ तो दिखायी पड़ा। भीतर का अंधेरा भी बाहर की रोशनी से बेहतर है। चलो, कुछ तो हाथ लगा। अंधेरा सही। आज अंधेरा हाथ लगा है, कल रोशनी हाथ लग जाएगी। क्योंकि अंधेरा और रोशनी दो नहीं हैं। अंधेरे से ही जब ठीक से पहचान हो जाती है, तो रोशनी बन जाती है। अंधेरा रोशनी ही है, जिससे हम अपरिचित हैं।
तुमने देखा न, कभी-कभी तीव्र रोशनी भी अंधेरा मालूम होती है। सूरज की तरफ देखा कभी क्षणभर को? और फिर चारों तरफ देखो। सब अंधेरा हो जाता है। भीतर भी इतनी विराट रोशनी है, इसलिए अंधेरा मालूम होता है। आंखें चुंधिया जाती हैं। और तुमने यह रोशनी कई जन्मों से नहीं देखी है। इसलिए जब पहली दफा यह रोशनी आंख पर पड़ती है, एकदम अंधेरा छा जाता है।

घबड़ाओ मत। तुम्हारे हाथ में, जिसकी तुम खोज कर रहे हो, उसका पल्लू आ ही गया। यही तो चाहिए; अंधेरा दिखने लगा। अब टटोलो।
"तेरो तेरे पास है, अपने माहिं टटोल।
राई घटै न तिल बढ़ै... ।"
तुम्हारे भीतर जो है, वह न तो राईभर घटता है, न राईभर बढ़ता है। वह तो जैसा है वैसा है। जैसा का तैसा; जस का तस। जब तुम आए थे पृथ्वी पर, तब भी इतना ही था, जितना अब है; और जब तुम जाओगे पृथ्वी से, तब भी उतना ही होगा, जितना अब है। जितना तब था--जन्म के समय।
इस संसार के अंधकार में भटके हुए लोगों के पास भी उतना ही है, जितना बुद्धों के पास।
"राई घटै न तिल बढ़ै... ।"
परमात्मा के संबंध में हम सब समान अधिकारी हैं। लेकिन कुछ हैं, जिन्होंने अपने अधिकार को पहचान लिया और परम आनंद में विराजमान हो गए। और कुछ हैं, जिन्होंने अपने अधिकार को नहीं पहचाना; भिखमंगे बने भीख मांग रहे हैं।
यह प्यारा वचन हैः "राई घटै न तिल बढ़ै... ।"
न कुछ घटता, न बढ़ता। न कुछ पाना है, न कुछ खोना है। जो है, जैसा है, वैसा
ही जान लेना है।
"हरि बोलौ हरि बोल।"
इसकी पहचान हो जाए, तो ही हरि-भजन। यह जो राई न घटता न बढ़ता, यह जो तुम्हारे भीतर बैठा है, जो टटोलने से ही मिलेगा--इसकी मिलन हो जाए, इससे पहचान हो जाए, यह तुम्हारे हाथ लग जाए--तब एक हरि-बोल उठता है। वह हरि-बोल असली भजन है।
यह जो तुम बैठकर राम-राम जपते रहते हो, इस भजन का कोई मूल्य नहीं है। तुम्हें न राम का पता... । तुम्हें अपना पता नहीं, राम का क्या खाक पता होगा! तुम्हें अभी काम का भी पता नहीं है; राम का तो क्या पता होगा! तुमने अभी बंधन भी नहीं पहचाने; मोक्ष को तो तुम कैसे पहचानोगे?
अभी तुम राम-राम जपते हो, क्योंकि तुम सुनते हो कि जपने से शायद कुछ हो जाए। जपने से कुछ नहीं होता; कुछ होने से जप होता है। जब कुछ हो जाता है, तब सुगंध उठती है; तब संगीत बिखरता है।

छठवां प्रश्नः मृत्यु क्या है?

मृत्यु है ही नहीं। मृत्यु एक झूठ है--सरासर झूठ--जो न कभी हुआ, न कभी
हो सकता है। जो है, वह सदा है। रूप बदलते हैं। रूप की बदलाहट को तुम मृत्यु समझ लेते हो।
तुम किसी मित्र को स्टेशन पर विदा करने गए; उसे गाड़ी में बिठा दिया। नमस्कार कर ली। हाथ हिला दिया। गाड़ी छूट गयी। क्या तुम सोचते हो, यह आदमी मर गया? तुम्हारी आंख से ओझल हो गया। अब तुम्हें दिखायी नहीं पड़ रहा है। लेकिन क्या तुम सोचते हो, यह आदमी मर गया?
बच्चे थे, फिर तुम जवान हो गए। बच्चे का क्या हुआ? बच्चा मर गया? अब तो बच्चा कहीं दिखायी नहीं पड़ता! जवान थे, अब बूढ़े हो गए। जवान का क्या हुआ? जवान मर गया? जवान अब तो कहीं दिखायी नहीं पड़ता!
सिर्फ रूप बदलते हैं। बच्चा ही जवान हो गया। जवान ही बूढ़ा हो गया। और
कल जीवन ही मृत्यु हो जाएगा। यह सिर्फ रूप की बदलाहट है।
दिन में तुम जागे थे, रात सो जाओगे। दिन और रात एक ही चीज के रूपांतरण हैं। जो जागा था, वही सो गया।
बीज में वृक्ष छिपा है। जमीन में डाल दो, वृक्ष पैदा हो जाएगा। जब तक बीज में छिपा था, दिखायी नहीं पड़ता था। मृत्यु में तुम फिर छिप जाते हो, बीज में चले जाते हो। फिर किसी गर्भ में पड़ोगे; फिर जन्म होगा। और गर्भ में नहीं पड़ोगे, तो महाजन्म होगा; तो मोक्ष में विराजमान हो जाओगे।
मरता कभी कुछ भी नहीं।

विज्ञान भी इस बात से सहमत है। विज्ञान कहता हैः किसी चीज को नष्ट नहीं किया जा सकता। एक रेत के छोटे से कण को भी विज्ञान की सारी क्षमता के बावजूद हम नष्ट नहीं कर सकते। पीस सकते हैं, नष्ट नहीं कर सकते। रूप बदलेगा पीसने से तो। रेत को पीस दिया, तो और पतली रेत हो गयी। उसको और पीस दिया, तो और पतली रेत हो गयी। हम उसका अणु विस्फोट भी कर सकते हैं। लेकिन अणु टूट जाएगा, तो परमाणु होंगे। और पतली रेत हो गयी। हम परमाणु को भी तोड़ सकते हैं, तो फिर इलेक्ट्रान, न्यूट्रान, पाजिट्रान रह जाएंगे। और पतली रेत हो गयी! मगर नष्ट कुछ नहीं हो रहा है। सिर्फ रूप बदल रहा है।
विज्ञान कहता हैः पदार्थ अविनाशी है। विज्ञान ने पदार्थ की खोज की, इसलिए पदार्थ के अविनाशत्व को जान लिया। धर्म कहता हैः चेतना अविनाशी है; क्योंकि धर्म ने चेतना की खोज की और चेतना के अविनाशत्व को जान लिया। विज्ञान और धर्म इस मामले में राजी हैं कि जो है, वह अविनाशी है।
मृत्यु है ही नहीं। तुम पहले भी थे; तुम बाद में भी होओगे। और अगर तुम जाग जाओ, अगर तुम चैतन्य से भर जाओ, तो तुम्हें सब दिखायी पड़ जाएगा जो-जो तुम पहले थे। सब दिखायी पड़ जाएगा, कब क्या थे।
बुद्ध ने अपने पिछले जन्मों की कितनी कथाएं कही हैं! तब ऐसा था। तब ऐसा था। तब वैसा था। कभी जानवर थे; कभी पौधा थे; कभी पशु थे; कभी पक्षी। कभी राजा; कभी भिखारी। कभी स्त्री; कभी पुरुष। बुद्ध ने बहुत कथाएं कही हैं। वह जो जाग जाता है, उसे सारा स्मरण आ जाता है।
मृत्यु तो होती ही नहीं। मृत्यु तो सिर्फ पर्दे का गिरना है।
तुम नाटक देखने गए। पर्दा गिरा। क्या तुम सोचते हो, मर गए सब लोग जो पर्दे के पीछे हो गए! वे सिर्फ पर्दे के पीछे हो गए। अब फिर तैयारी कर रहे होंगे। मूंछ इत्यादि लगाएंगे; दाढ़ी वगैरह लगाएंगे; लीप-पोत करेंगे। फिर पर्दा उठेगा। शायद तुम पहचान भी न पाओ कि जो सज्जन थोड़ी देर पहले कुछ और थे, अब वे कुछ और हो गए हैं! तब वे बिना मूंछ के थे; अब वे मूंछ लगाकर आ गए हैं। शायद तुम पहचान भी न पाओ।
बस, यही हो रहा है। इसलिए संसार को नाटक कहा है, मंच कहा है। यहां रूप बदलते रहते हैं। यहां राम भी रावण बन जाते हैं और रावण भी राम बन जाते हैं। ये पर्दे के पीछे तैयारियां कर आते हैं। फिर लौट आते हैं; बार-बार लौट आते हैं।
तुम पूछते होः "मृत्यु क्या है?"
मृत्यु है ही नहीं। मृत्यु एक भ्रांति है। एक धोखा है।
सरूरे-दर्द गुदाजे-फुगां से पहले था
सरूदे-गम मेरे सोजे-बयां से पहले था
मैं आबोगिल ही अगर हूं बकौदे-शमो-सहर
तो कौन है जो मकानो-जमां से पहले था
ये कायनात बसी थी तेरे तसव्वर में
वजूदे हर दो जहां कुन फिकां से पहले था अगर तलाश हो सच्ची सवाल उठते हैं यकीने-रासिखो-महकम गुमां से पहले था तेरे ख्याल में अपना ही अक्से-कामिल था तेरा कमाल मेरे इम्तिहां से पहले था मेरी नजर ने तेरे नक्शे-पा में देखा था
जमाले-कहकशां कहकशां से पहले था
छुपेगा ये तो फिर ऐसा ही एक उभरेगा
इसी तरह का जहां इस जहां से पहले था
तज्जलियात से रौशन है चश्मे-शौक मगर
कहां वो जल्वा जो नामो-निशां से पहले था
सब था पहले ऐसा ही। फिर-फिर ऐसा ही होगा। यह दुनिया मिट जाएगी, तो दूसरी दुनिया पैदा होगी। यह पृथ्वी उजड़ जाएगी, तो दूसरी पृथ्वी बस जाएगी। तुम इस देह को छोड़ोगे, तो दूसरी देह में प्रविष्ट हो जाओगे। तुम इस चित्तदशा को छोड़ोगे, तो नयी चित्तदशा मिल जाएगी। तुम अज्ञान छोड़ोगे, तो

ज्ञान में प्रतिष्ठित हो जाओगे; मगर मिटेगा कुछ भी नहीं। मिटना होता ही नहीं।
सब यहां अविनाशी है। अमृत इस अस्तित्व का स्वभाव है। मृत्यु है ही नहीं।
इसलिए मजबूरी है; तुम्हारे प्रश्न का उत्तर न दे सकूंगा कि मृत्यु क्या है? क्योंकि जो है ही नहीं, उसकी परिभाषा कैसे करें! जो है ही नहीं, उसकी व्याख्या कैसे करें?
ऐसा ही है, जैसे तुमने रास्ते पर पड़ी रस्सी में भय के कारण सांप देखा। भागे। घबड़ाए। फिर कोई मिल गया, जो जानता है कि रस्सी है। उसने तुम्हारा हाथ पकड़ा और कहाः मत घबड़ाओ, रस्सी है। तुम्हें ले गया; पास जाकर दिखा दी कि रस्सी है। फिर क्या तुम उससे पूछोगेः सांप का क्या हुआ?
नहीं; तुम नहीं पूछोगे कि सांप का क्या हुआ? बात खतम हो गयी; सांप था
ही नहीं। क्या हुआ का सवाल नहीं है। क्या तुम उससे पूछोगेः अब जरा सांप के संबंध में समझाइए! वह जो सांप मैंने देखा था, वह क्या था?
वह तुम्हारी भ्रांति थी। वह बाहर कहीं था ही नहीं। रस्सी के रूप-रंग
ने तुम्हें भ्रांति दे दी; सांझ के धुंधलके ने तुम्हें भ्रांति दे दी; तुम्हारे भीतर के भय ने तुम्हें भ्रांति दे दी। सारी भ्रांतियों ने मिलकर एक सांप निर्मित कर दिया। वह तुम्हारा सपना था।
मृत्यु तुम्हारा सपना है। कभी घटा नहीं। घटता मालूम होता है। और इसलिए भ्रांति मजबूत बनी रहती है कि जो आदमी मरता है, वह तो विदा हो जाता है। वही जानता है कि क्या है मृत्यु जो मरता है। तुम तो मर नहीं रहे। तुम बाहर से खड़े देख रहे हो।
एक डाक्टर मुझे मिलने आए थे। वे कहने लगेः मैंने सैकड़ों मृत्युएं देखी हैं। मैंने कहाः गलत बात मत कहो। तुमने मरते हुए लोग देखे होंगे; मृत्युएं कैसे देखोगे? मृत्यु तुम कैसे देखोगे? तुम तो अभी जिंदा हो! तुमने सैकड़ों मरते हुए लोग देखे होंगे, लेकिन मरते हुए लोग देखने से क्या होता है! तुम क्या देखोगे बाहर? यही देख सकते हो कि इसकी सांस धीमी होती जाती है; कि धड़कन डूबती जाती है। मगर यह थोड़े ही मृत्यु है। यह आदमी अब ठंडा हो गया, यही देखोगे। मगर इसके भीतर क्या हुआ? इसके भीतर जो चेतना थी, कहां गयी? उसने कहां पंख फैलाए? वह किस आकाश में उड़ गयी? वह किस द्वार से प्रविष्ट हो गयी? किस गर्भ में बैठ गयी? वह कहां गयी? क्या हुआ?
उसका तो तुम्हें कुछ भी पता नहीं है। वह तो वही आदमी कह सकता है। और मुर्दे कभी लौटते नहीं। जो मर गया, वह लौटता नहीं। और जो लौट आते हैं, उनकी तुम मानते नहीं। जैसे बुद्ध यही कह रहे हैं कि मैंने ध्यान में वह सारा देख लिया जो मौत में देखा जाता है।
इसलिए तो ज्ञानी की कब्र को हम समाधि कहते हैं, क्योंकि वह समाधि को जानकर मरा। उसने ध्यान की परम दशा जानी।
इसलिए तुमने देखाः हम संन्यासी को जलाते नहीं, गड़ाते हैं। शायद तुमने सोचा ही न हो कि क्यों! गृहस्थ को जलाते हैं, संन्यासी को गड़ाते हैं। क्यों? क्योंकि गृहस्थ को अभी फिर पैदा होना है। उसकी देह जल जाए, यह अच्छा। क्योंकि देह के जलते ही उसकी आत्मा की जो आसक्ति इस देह में थी, वह मुक्त हो जाती है। जब जल ही गयी; खतम ही हो गयी; राख हो गयी--अब इसमें मोह रखने का क्या प्रयोजन है? वह उड़ जाता है। वह नए गर्भ में प्रवेश करने की तैयारी करने लगता है। पुराना घर जल गया, तो नया घर खोजता है।
संन्यासी तो जानकर ही मरा है। अब उसे कोई नया घर स्वीकार नहीं करना है। पुराने घर से मोह तो उसने मरने के पहले ही छोड़ दिया। अब जलाने से क्या सार? अब जले-जलाए को जलाने से क्या सार! अब मरे-मराए को जलाने से क्या सार? इस आधार पर संन्यासी को हम जलाते नहीं, गड़ाते हैं।
और संन्यासी की हम समाधि बनाते हैं। उसकी कब्र को समाधि कहते हैं।
इसीलिए कि वह ध्यान की परम अवस्था समाधि को पाकर गया है। वह मृत्यु को जीते जी जानकर गया है कि मृत्यु झूठ है।
जिस दिन मृत्यु झूठ हो जाती है, उसी दिन जीवन भी झूठ हो जाता है।
क्योंकि वह मृत्यु और जीवन हमारे दोनों एक ही भ्रांति के दो हिस्से हैं।

जिस दिन मृत्यु झूठ हो गयी, उस दिन जीवन भी झूठ हो गया। उस दिन कुछ प्रगट होता है, जो मृत्यु और जीवन दोनों से अतीत है। उस अतीत का नाम ही परमात्मा है; जो न कभी पैदा होता, न कभी मरता; जो सदा है।

सातवां प्रश्नः मैं प्रेम में सब समर्पित कर देना चाहता था, पर यह नहीं हुआ, क्योंकि मेरा प्रेम ही स्वीकार नहीं हुआ। और अब दिल एक टूटी हुई वीणा है। मेरी पीड़ा पर भी, जिससे मुझे प्रेम था, उसे दया नहीं आयी। अब इस टूटे-फूटे जीवन को प्रभु को कैसे चढ़ाऊं?

बात तो बड़ी ऊंची कह रहे हैं! जब टूटा-फूटा नहीं था, तब चढ़ाया नहीं। तब सोचा होगा कि अभी तो वीणा ताजी है, जवान है; अभी किसी सुंदर स्त्री के चरणों में चढ़ाएं। अभी कहां प्रभु को बीच में लाते हो! देखेंगे पीछे। तब यह सोचकर अपने को समझाया होगा कि अभी तो जवान हैं, अभी भोग लें। यह चार दिन की जिंदगी, फिर क्या पता! अंतिम समय में याद कर लेंगे प्रभु को। अभी तो यह चार दिन की जो चांदनी है, इसको लूट लें।
तो जब तुम जवान थे, जब हृदय संगीत से भरा था, तब इसलिए नहीं चढ़ाया कि चढ़ाएं किसी सुंदर देह के चरणों में। और अब कहते हो कि टूट-फूट गया। अब क्या प्रभु के चरणों में चढ़ाएं! तुमने कसम खा रखी है कि प्रभु के चरणों में कभी नहीं चढ़ाओगे!
अब तो जागो। टूट-फूट गया दिल, फिर भी जागते नहीं! अब भी इरादा यही है कि अगर वह देवी मिल जाए भूल-चूक, तो चढ़ा दें। कब जागोगे?
और ध्यान रखनाः सबके दिल टूट-फूट जाते हैं। तुम्हारी मनोकांक्षा का व्यक्ति मिले, तो टूट-फूट जाते हैं; न मिले, तो टूट-फूट जाते हैं। दिल तो टूट ही फूट जाते हैं। यह दिल तो बड़ी कच्ची चीज है। कांच की बनी है। कच्चे कांच की बनी है। तुम अकेले रहो, तो टूट जाता है; तुम संग-साथ में रहो, तो टूट जाता है। यह टूट ही जाता है। इसकी कोई मजबूती है नहीं। यह मजबूत हो ही नहीं सकता। क्योंकि जिसको तुम दिल कहते हो, यह गलत के लिए प्रेम है; यह कच्चा ही होगा।
और तुम इस भ्रांति में मत रहना कि जिससे मुझे प्रेम था, उसने मेरे प्रेम का प्रत्युत्तर नहीं दिया, इसलिए टूट गया। तो तुम जरा उन प्रेमियों से पूछना जाकर, जिनको प्रत्युत्तर मिला है, उनकी क्या हालत है!
मुल्ला नसरुद्दीन की पत्नी ने एक दिन उससे कहा कि हमारे पच्चीस साल पूरे हो गए विवाह के। अब क्या इरादा है, आज इस पच्चीसवीं वर्षगांठ को कैसे मनाएं? मुल्ला ने कहाः अगर पांच मिनट चुप रहें, तो कैसा रहे!
और क्या! पच्चीस साल की बकवास! यह पत्नी खोपड़ी खा गयी होगी। मुल्ला कह रहा है कि अब पांच मिनट चुप रह जाएं। जैसा जब कोई मर जाता है न, तो पांच मिनट लोग मौन हो जाते हैं। ऐसा अगर पांच मिनट मौन होकर मनाएं, तो कैसा रहे! तुम जरा भुक्त-भोगियों से तो पूछो!
मैंने सुना हैः नयी दुल्हन के हाथ का खाना पति ने पहली बार खाया। मिर्चें बहुत ज्यादा थीं। फिर भी वह बात नहीं बिगाड़ना चाहता था। कौन बिगाड़ना चाहता है? सुधारते-सुधारते बिगड़ जाती है, यह और बात है; मगर बिगाड़ना कोई नहीं चाहता। बिगड़ सबकी जाती है; मगर बिगाड़ना कोई भी नहीं चाहता।
तो उस पति ने कहाः बहुत अच्छा खाना बनाया है।
पत्नी ने कहाः लेकिन आप रो क्यों रहे हैं?
पति ने कहाः खुशी के कारण!
पत्नी ने कहाः और दूं?
तो पति ने कहाः नहीं; मैं ज्यादा खुशी बर्दाश्त न कर सकूंगा। भुक्त-भोगियों से पूछो। रो रहे हैं। और कह रहे हैं, बड़े खुश हैं! उनकी बातों पर मत जाना। उनकी आंखों को देखना। क्या कह रहे हैं, इसमें तो पड़ना ही मत, क्योंकि वह तो सब शिष्टाचार है, जो कह रहे हैं। उनकी हालत देखना।
सब रंग उड़ गया है। सब सपने टूट गए हैं। रस्सी तो कब की जल गयी है; राख
रह गयी है। जरा गौर से देखना। हालांकि वे कहेंगे यही कि हां, हम बड़े खुश

हैं। मगर ऐसी मुर्दगी से कहेंगे कि हम बड़े खुश हैं कि आदमी जब कहता है कि हम बड़े दुखी हैं, तब भी कुछ जान रहती है उसमें। इनकी खुशी में उतनी भी जान नहीं है!
जब कोई कहे, हम बड़े खुश हैं; तो पूछनाः फिर रो क्यों रहे हैं?
आदमी की बड़ी अदभुत दशा है! अदभुत इसलिए कि जो तुम चाहते हो, न मिले तो तुम तड़फते हो। क्योंकि तुम सोचते होः मिल जाता, तो स्वर्ग मिल जाता। और मिल जाए, तो तुम तड़फते हो--कि अरे! मिल गया और कुछ न मिला। और इस संसार में मिलने को कुछ है ही नहीं।
इस संसार में सभी हारते हैं। जो हारते हैं, वे तो हारते ही हैं; जो जीतते हैं, वे भी हारते हैं। यहां हार भाग्य है। यहां जीत होती ही नहीं; जीत बदी ही नहीं; किसी की किस्मत में नहीं है।
इस प्रतीति को जानकर ही तो आदमी अपने भीतर उतरना शुरू होता है--कि यहां बाहर तो हार ही हार है।
अब कब तक तुम यह रोना लिए बैठे रहोगे--कि किसी को प्रेम किया था। सब दे देना चाहता था! ...
भगवान का धन्यवाद दो कि बच गया। सब दे देते, तो बहुत पछताते। वही तो हालत कई की हो गयी है। सब देकर बैठे हैं अब! अब भागने का भी रास्ता नहीं मिलता!
और तुम कहते होः "लेकिन यह नहीं हुआ, क्योंकि मेरा प्रेम ही स्वीकार नहीं हुआ।"
तुम धन्यभागी हो। तुम झंझट से बच गए। उस स्त्री ने तुम पर बड़ी दया की। लेकिन तुम कह रहे हो कि "इस कारण मेरे हृदय की वीणा टूट गयी।"
उसने तो छुई नहीं तुम्हारे हृदय की वीणा; टूट कैसे गयी? छूती, तो टूटती। तार-तार बिखेर देती।
अब तुम कहते हो कि "लेकिन मेरी पीड़ा पर भी, जिससे मुझे प्रेम था, उसे दया न आयी।"
मुझे लगता है कि तुम्हें प्रेम और दया का भेद स्पष्ट नहीं है। दया आ जाती, तो प्रेम नहीं होने वाला था। दया प्रेम नहीं है। दया तो बड़ी बीमार चीज है; रुग्ण। दया में तो अपमान है। प्रेम में सम्मान है।
और यह भी हो सकता है कि तुमने दया मांगी हो, इसलिए प्रेम नहीं मिला। कोई भी स्वस्थ आदमी दया नहीं करना चाहता। क्योंकि दया का मतलब होता हैः एक गलत संबंध बनता है।
एक मेरे परिचित थे। उन्हें एक विधवा पर बहुत दया आने लगी। विधवाओं पर
कई लोगों को दया आती है! विधवाओं में कुछ खूबी होती है, जो सधवाओं में भी नहीं होती। वे कहने लगे कि मैं तो विधवा-विवाह करूंगा। मुझे विधवा पर बड़ी दया आती है। मैं तो समाज में क्रांति करूंगा।
मैंने उनसे कहा कि तुम ठीक से सोच लो। क्योंकि इससे अगर तुमने विवाह किया, तो फिर यह सधवा हो जाएगी! फिर विधवा रहेगी नहीं। फिर दया खतम हो जाएगी। फिर तो दया तुम्हें तभी आ सकती है, जब तुम मरो और इसको फिर विधवा करो! तुम्हें दया आ रही है विधवा पर। इतनी सधवाएं हैं, तुम्हें किसी पर दया नहीं आ रही है!
वे बड़े नाराज हो गए, क्योंकि वे बड़ी ऊंची बात लाए थे। सामाजिक क्रांति इत्यादि कर रहे थे--विधवा से विवाह करके।
नहीं माने। कर लिया विवाह। और छह महीने बाद मुझे कहा कि मुझे क्षमा करना कि मैं नाराज होकर गया था। आप ठीक ही कहते थे। वह दया थी; वह प्रेम नहीं था। मैं अहंकार का मजा ले रहा था--कि देखो, विधवा से विवाह करता हूं। और मेरी जाति में कोई अब तक विधवा से विवाह नहीं किया, तो मैं पहला आदमी था। मैं दुनिया को दिखाना चाहता था।
फिर विवाह हो गया। फिर फुग्गे से हवा निकल गयी। अब सामाजिक क्रांति...
। मैंने कहाः हो गयी सामाजिक क्रांति! अब तुम उसको फिर विधवा बनाओ! किसी और को सामाजिक क्रांति करने दो! अब तुम कब तक जीओगे? अब सार भी क्या तुम्हारे जीने में! तुम्हें जो करना था दुनिया में, तुम कर चुके!
बहुत बार ऐसा हो जाता है।

कल एक युवती ने मुझे आकर कहा... । फ्रांस से आयी है; संन्यासिनी है। एक मित्र को लेकर आयी है। कहती थीः मैं बहुत दुख में थी; बहुत पीड़ित थी, परेशान थी। इन मित्र ने मुझ पर बड़ी दया की। दो साल से ये सब तरह से मेरी सेवा कर रहे हैं। इनके ही सहारे जी रही हूं। अब मैं इसीलिए आयी हूं कि मुझे दुख के बाहर करें।
मैंने कहाः मैं दुख के बाहर तो कर दूं। लेकिन ये मित्र चले जाएंगे। उसने कहाः क्यों? और मैंने कहाः तू भी जानती है। अब तू कभी ठीक हो नहीं सकती। क्योंकि अब इन मित्र को रोकने का एक ही उपाय है कि इनको दया करने की सुविधा रहे। तेरा इसमें न्यस्त स्वार्थ है। अब तो तेरा इसमें बड़ा भारी स्वार्थ लग गया। अब अगर तू स्वस्थ हो जाए, ठीक हो जाए, तो ये मित्र गए! फिर ये करेंगे क्या? इनका काम ही खतम हो गया! इनको स्त्री से थोड़े ही मतलब है।
स्त्रियां तो बहुत थीं दुनिया में। इनको मतलब है दया करने से।
और मित्र बैठे थे बिल्कुल अकड़े हुए। उन्होंने दया की है! स्वभावतः।
दो साल से इसकी सेवा कर रहे हैं! वे चाहते थे, मैं भी सर्टिफिकेट दूंगा।
मेरी बात सुनकर तो उनकी हालत खराब हो गयी। मगर बात ऐसी ही है।
तुमने दया मांगी, तो गलत बात मांगी।
ध्यान रखनाः दया मांगनी पड़ती है; प्रेम दिया जाता है। और जो मांगता है, वह गलत है। वह शुरू से ही गलत हो गया।
तुम्हारी भूल वहां हो गयी कि तुमने प्रेम मांगा। वह दया है। तुमने भिखारी की तरह हाथ फैलाए। और प्रेम उन्हीं के पास आता है, जो सम्राट होते हैं।
तुम्हें देना था प्रेम। और मजा यह है कि मांगो, तो दूसरा दे तो उस पर निर्भर है। देना हो, तो देने में तुम मालिक हो। कोई तुम्हें रोक नहीं सकता। मैं सारी दुनिया को प्रेम दे सकता हूं; कोई मुझे रोक नहीं सकता। कैसे रोकेगा कोई मुझे? प्रेम एक भावदशा है, जो मैं लुटाता चल सकता हूं, राह पर लुटाता चल सकता हूं। जो राह पर आए, उसी को प्रेम से देख सकता हूं। जो करीब आए, उसी को प्रेम दे सकता हूं। जो नहीं है पास, जो दूर है, उसकी तरफ भी मेरे प्रेम की तरंगें उठकर जा सकती हैं।
प्रेम मांगता ही नहीं। प्रेम तो दान है। तुमने भूल वहीं कर दी; तुमने प्रेम मांगा। और स्त्री समझदार थी, जो तुमसे हट गयी। तुम गलत आदमी थे। तुम्हारा चित्त ही रुग्ण था।
अब तुम कहते होः "मेरी वीणा टूट गयी! अब मैं प्रभु को कैसे चढ़ाऊं?"
अब यह तुम्हारी टूटी वीणा और कोई स्वीकार भी कैसे करेगा? अब प्रभु ही
कर लें, तो बहुत! और मैं तुमसे कहता हूं, वे कर लेंगे। उनकी दुकान तो कबाड़ी की दुकान है। वहां तो सब टूटे-फूटे सामान, सब लिए चले आते हैं लोग। वे ले लेते हैं। और वे वीणाओं को सुधारने में कुशल हैं। और वे मिट्टी को भी छूते हैं, तो सोना हो जाती है।
तुम अब संकोच न करो। अब टूटी-फूटी वीणा है, कम से कम इसको ही दे दो। और मैं तुमसे कहता हूंः उनके छूते ही इस वीणा से अपूर्व संगीत उठेगा।
तुम जिस दरवाजे पर गए थे, वह गलत था। अब ठीक दरवाजे पर खड़े हो। और अब डर रहे हो! संकोच खा रहे हो!
मन का यह वासंती मौसम
सिर्फ तुम्हारे नाम।
रंगी-रंगी-सी पाखुड़ियां हैं
बगिया है मदहोश
और कहानी कहते-कहते
दर्द हुआ खामोश
कजरारी आंखों का सावन
सिर्फ तुम्हारे नाम।
मन का यह वासंती मौसम... । भोली कलियों को गंधों ने कर डाला बदनाम
खूब लिखे खत पुरवैया ने

फूलों को गुमनाम
अलसाए सपनों का दर्पण
सिर्फ तुम्हारे नाम।
मन का यह वासंती मौसम... । अंधियारे का दामन थामे
रही ऊंघती रात
सुख-दुख दोनों आज यहां हैं
सजा रहे बारात
रंग भरे गीतों का सरगम
सिर्फ तुम्हारे नाम।
मन का यह वासंती मौसम... ।
ऐसा गीत तुमने किसी क्षणभंगुर देह और रूप के सामने गाया था; अब यह गीत परमात्मा के सामने गाओ।
मन का यह वासंती मौसम
सिर्फ तुम्हारे नाम।
तुमने बहुत चिट्ठियां लिखीं--और-और नामों पर। उन नामों ने तुम्हें कुछ दाद न दी। उनके कुछ और मंसूबे रहे होंगे, कुछ और इरादे रहे होंगे। अब इस बात को लेकर रोते मत रहो। अब इस बात को लेकर बैठे मत रहो। शायद तुम जिस स्त्री के लिए रुके हो, उसे याद भी न हो कि तुमने कभी उसे प्रेम किया था। शायद उसे पता भी न चला हो कि किसी ने अपने आप ही अपनी वीणा तोड़ ली!
देखते हैं न कल नंगलकुल अपने आप ही बुद्ध हो गया! ऐसे तुमने अपने आप वीणा तोड़ ली। किसी ने तोड़ी-वोड़ी नहीं है; तुमने खुद ही गुस्से में पटक दी। तुम खुद ही तोड़-फोड़ लिए हो। और यह हो सकता है--अक्सर ऐसा होता है--कि तुम जिसके लिए तोड़-फोड़ लिए हो वीणा, उसे पता भी न चला हो। यह जगत कठोर है। यहां हृदय नहीं हैं; यहां पाषाण हैं।
बू-ए-गुल, रौशनी
रंग, नग्मा, सबा
हर हंसी चीज है
मेरे जज्बात के कत्ल से आशना।
सिर्फ तुमको नहीं
इल्म इस कत्ल का!
मेरा दिल, मेरा महबूब, मासूम दिल ओढ़कर दाइमी दूरियों का कफन
दर्द के बेअमां दश्त में दफ्न है आज भी मेरी हर मुज्तरिब सांस है उस पे नौहाकनां!
आज भी याद है
मुझको उस गर्म दोपहर का सानिहा जब तुम्हारी मुहब्बत के छतनारे से मेरा दिल, मेरा महबूब, मासूम दिल एक प्यासे परिंदे की सूरत गिरा और मेरी तरफ इक नजर देख कर
इस तरह मर गया
जैसे इस कत्ल, इस मर्गे-नागाह में मेरा भी हाथ था!
सिर्फ तुमको नहीं
इल्म इस कत्ल का!
बू-ए-गुल, रौशनी,
रंग, नग्मा, सबा
हर हंसी चीज है
मेरे जज्बात के कत्ल से आशना।
फूलों को पता है, चांद-तारों को पता है कि मेरा कत्ल हो गया है, कवि कह रहा है।

सिर्फ तुमको नहीं
इल्म इस कत्ल का!
और जिसके लिए हो गया है, जिसकी वजह से हो गया है, उसको भर पता नहीं है। बू-ए-गुल
फूलों की सुगंध।
रौशनी, रंग, नग्मा, सबा
सुगंधित हवा।
हर हंसी चीज है
मेरे जज्बात के कत्ल से आशना।
हर सुंदर चीज को पता है कि मेरी भावना मर गयी।
सिर्फ तुमको नहीं
इल्म इस कत्ल का!
शायद पता भी न हो। जिसको तुमने चाहा था, उसे पता भी न हो। इस जगत में लोगों को अपना पता नहीं, दूसरों का पता कैसे हो? लोग बेहोश हैं। लोग चले जा रहे हैं नींद में, तंद्रा में। कौन आ गया था, सपने में थोड़ी देर छांव डालकर चला गया, किसको हिसाब है?
तुम शायद उस स्त्री के सामने पड़ जाओ, वह तुम्हें पहचान भी न सके। शायद पूछे, आप कौन हैं! शायद पूछे कि चेहरा कुछ पहचाना सा मालूम पड़ता है, जैसे कहीं देखा हो!
छोड़ो। गलत से प्रेम करोगे, दुख पाओगे। व्यर्थ से प्रेम करोगे, दुख पाओगे। और फिर तुम्हारे प्रेम करने का ढंग भी बड़ा व्यर्थ और गलत है। तुमने दया मांगी और चूके। अब परमात्मा के द्वार पर खड़े हो। अब बहुत हो गया यह। साकी, तेरी रातें बिछौने के हंगामों से गुजरी हैं
अब तो सुबह करीब है, अल्लाह का नाम ले।
अब बहुत हो गया। अब अल्लाह का नाम लो। टूटी-फूटी वीणा पर ही गुनगुनाओ।
उसके नाम में जादू है। उसके नाम के संस्पर्श से वीणा सुधर जाएगी।
और जिसमें तुम डूबे जा रहे हो नाहक, चुल्लूभर पानी में डूबे जा रहे हो! वहां कुछ था नहीं डूबने जैसा। डूबना हो, तो सागर तलाशो।
तुझसे ऐ दरियाए-जिंदगी, पार कोई भी पा न सका
कैसे-कैसे डूब गए गो घुटनों-घुटनों पानी है।
बड़े-बड़े यहां डूबे जा रहे हैं--गो घुटनों-घुटनों पानी है। मामला ही क्या था? किसी स्त्री की आंख अच्छी लग गयी--घुटनों-घुटनों पानी है! किसी के बाल बड़े प्यारे थे--घुटनों-घुटनों पानी है! किसी की नाक बड़ी लंबी थी, तोते जैसी थी--घुटनों-घुटनों पानी है! इसमें ही डूब गए! जागो।

आठवां प्रश्नः ओशो, बौद्ध-साहित्य कहता हैः भगवान श्रावस्ती में विहरते थे। जैन-साहित्य कहता हैः भगवान श्रावस्ती में ठहरे थे। विहरना और ठहरना--इन अलग शब्दों के उपयोग के पीछे क्या प्रयोजन है? कैसा आश्चर्य कि उपरोक्त प्रश्न देने के पूर्व ही कल उसका उत्तर आ गया--आपके मुख से!

पूछा है अमृत बोधिधर्म ने।
बोधिधर्म का ध्यान निरंतर गहरे जा रहा है। बोधिधर्म निरंतर डूब रहे हैं। इस जीवन के जुही के फूल सूखने के पहले वे पा लेंगे, इसकी पूरी संभावना दिखती है।
जैसे-जैसे तुम्हारा ध्यान गहरा होने लगेगा, वैसे-वैसे तुम्हारे प्रश्न तुम न भी पूछो, तो मुझ तक पहुंचने लगेंगे। ध्यान गहरा न हो, तो तुम पूछो भी तो शायद ही मुझ तक पहुंचे। ध्यान गहरा न हो, तो तुम पूछ भी लो, मुझ तक पहुंच भी जाएं, तो शायद मैं उत्तर न दूं। ध्यान गहरा न हो, तुम पूछ भी लो, मैं उत्तर भी दूं, तो तुम तक न पहुंचे। और शायद तुम तक पहुंच भी जाए, तो तुम उसे समझ न पाओ। समझ लो, तो कर न पाओ।
हजार बाधाएं हैं--ध्यान न हो तो। और ध्यान हो--तुम न भी पूछो, तो मुझ तक पहुंच जाएगा। बहुत से ऐसे प्रश्नों के मैं उत्तर देता हूं, जो तुमने नहीं

पूछे हैं। लेकिन कोई पूछना चाहता था। किसी ने मुझसे भीतर-भीतर पूछा था। कोई मेरे कानों में गुनगुना गया था। कागज पर लिखकर नहीं भेजा था। जैसे-जैसे तुम्हारा ध्यान गहरा होगा, वैसे-वैसे तुम्हें यह अनुभव में आने लगेगा। तुम्हारा प्रश्न--इसके पहले कि तुम पूछो--उसका उत्तर तुम्हें मिल जाएगा। मिल ही जाना चाहिए; नहीं तो तुम्हारे मेरे पास होने का प्रयोजन क्या है!

आखिरी प्रश्नः मेरी पत्नी बहुत कुरूप है। मैं क्या करूं?

गजब के प्रश्न पूछते हो! अब मैं कोई प्लास्टिक सर्जन थोड़े हूं। अगर पत्नी कुरूप है, तो ध्यान करो पत्नी पर--लाभ ही लाभ होगा। सुंदर स्त्री खतरे में ले जाए; कुरूप स्त्री कभी खतरे में नहीं ले जाती। इस मौके को चूको मत।
सुकरात से किसी ने पूछा... । एक युवक आया। उसने कहाः मैं विवाह करना चाहता हूं। मैं करूं या न करूं? आपसे इसलिए पूछने आया हूं कि आप भुक्तभोगी हैं।
सुकरात को इस दुनिया की खतरनाक से खतरनाक औरत मिली थी; झेनथेप्पे उसका नाम था। मगरमच्छ कहना चाहिए, स्त्री नहीं। मारती थी सुकरात को! सुकरात जैसा प्यारा आदमी! मगर परमात्मा अक्सर ऐसे प्यारे आदमियों की बड़ी परीक्षाएं लेता है। भेजी होगी झेनथेप्पे को--कि लग जा इसके पीछे!
मारती थी। डांटती थी। बीच-बीच में आ जाती। सुकरात अपने शिष्यों को समझा रहे हैं, वह बीच में खड़ी हो जाती--कि बंद करो बकवास! एक बार तो उसने लाकर पूरी की पूरी केतली गरम पानी की--चाय बना रही थी; क्रोध आ गया--सुकरात समझा रहा होगा कुछ लोगों को, उसने पूरी केतली उसके सिर पर आकर उंडेल दी। सुकरात का चेहरा सदा के लिए जल गया। आधा चेहरा काला पड़ गया।
तो उस युवक ने पूछाः इसीलिए आपसे पूछने आया हूं कि आप भुक्तभोगी हैं;
आप क्या कहते हैं? विवाह करूं या न करूं? सुकरात ने कहाः करो। अगर स्त्री अच्छी मिली, तो सुख पाओगे। अगर मेरी जैसी स्त्री मिली, दार्शनिक हो जाओगे। लाभ ही लाभ है।
अब तुम कह रहे हो कि कुरूप स्त्री... !
कुरूप स्त्री पर ध्यान अगर करो, तो विराग-भाव पैदा होगा। विरागी हो जाओगे। चूको मत अवसर। अगले जन्म में कहीं भूल-चूक से सुंदर स्त्री मिल जाए, तो झंझटें आएंगी।
मुल्ला नसरुद्दीन शादी करता था, तो गांव की सबसे कुरूप स्त्री को चुन लिया। लोग बड़े चौंके। धन है उसके पास, पद है, प्रतिष्ठा है। सुंदर से सुंदर स्त्रियां उसके पीछे दीवानी थीं। और इस नासमझ ने सबसे ज्यादा कुरूप स्त्री को चुन लिया। जिसकी कि गांव के लोग विवाह की संभावना ही नहीं मानते थे--कि कौन इससे विवाह करेगा! कौन अपने को इतना कष्ट देना चाहेगा? उस स्त्री की तरफ देखना भी घबड़ाने वाला था!
मुल्ला ने जब शादी कर ली, तो लोगों ने पूछा कि यह तुमने क्या किया! उसने कहाः इसके बड़े लाभ हैं। इसको देख-देखकर मैं संसार की असारता का विचार करूंगा। इसको देख-देखकर बुद्ध जैसे व्यक्तियों के वचन मेरे ख्याल में आएंगे कि सब असार है। यहां कुछ सार नहीं है। और दूसराः यह कुरूप स्त्री है; इसकी वजह से मैं सदा निश्चिंत रहूंगा। सुंदर स्त्री का कोई भरोसा नहीं है। लोग उसके प्रेम में पड़ जाएं; वह किसी के प्रेम में पड़ जाए! इस पर मैं हमेशा निश्चिंत रहूंगा। दो-चार साल भी चला जाऊं कहीं, कोई फिकर नहीं। घर आओ, अपनी स्त्री अपनी है।

और सुंदर स्त्रियां बाहर से जितनी सुंदर होती हैं, उतनी भीतर से कुरूप हो जाती हैं। संतुलन रखती हैं। अक्सर ऐसा होगा कि सुंदर स्त्री की जबान कडुवी होगी; व्यवहार कठोर होगा; हेंकड़पन होगा; अहंकार होगा। सुंदर स्त्री भीतर से दुर्गंध देगी। सुंदर पुरुष के साथ भी यही बात है।

कुरूप स्त्री--परिपूरक खोजने पड़ते हैं उसे। देह में तो सौंदर्य नहीं है, इसलिए सेवा करेगी; प्रेम करेगी; चिंता लेगी। दुर्व्यवहार न करेगी, क्योंकि दुर्व्यवहार तो वैसे ही काफी हो रहा है! वह तो चेहरे के कारण ही काफी हुआ जा रहा है; देह के कारण ही काफी हुआ जा रहा है। अब और तो क्या सताना!
तो अक्सर ऐसा हो जाता है, कुरूप व्यक्ति भीतर से सुंदर हो जाते हैं। बाहर से सुंदर व्यक्ति भीतर से कुरूप हो जाते हैं। सुंदर को अकड़ होती है कि तुम नहीं तो कोई और सही! कुरूप को अकड़ नहीं होती; तुम ही सब कुछ हो!
पर स्त्री थी तो कुरूप ही। मुल्ला जब उसे घर ले आया, तो मुसलमानों में पूछते हैं; स्त्री घर आकर पूछती है कि मैं अपना बुर्का किसके सामने उठा सकती हूं? किसके सामने नहीं उठा सकती हूं? किसके सामने आज्ञा है?
तो पता है, मुल्ला ने क्या कहा! मुल्ला ने कहा कि मुझे छोड़कर तू सबके सामने अपना बुर्का उठा सकती है।
और यह कहानीः
आफिस का समय होने के कारण बस में अत्यधिक भीड़ थी। सामने की सीट पर एक नव-विवाहित जोड़ा बैठा था, जिसके सामने एक भद्र पुरुष रॉड पकड़कर खड़े-खड़े सफर कर रहे थे। एक जगह बस के अचानक झटके से रुकने से भद्र महोदय खुद को सम्हाल न पाए और नव-वधु की गोद में गिर पड़े।
फिर क्या था, वह महाशय का पारा सातवें आसमान पर पहुंच गया। लगे उन महाशय को बुरा-भला कहने। लोगों ने समझाने की कोशिश की कि इस हालत में कोई भी गिर सकता था। किंतु वर महाशय तो और भी ज्यादा भड़क उठे। बोलेः बस, बस, आप लोग चुप रहिए। अगर आपकी पत्नी की गोद में कोई बैठे तो क्या आप इसे सहन करेंगे?
मुल्ला नसरुद्दीन यह सब बैठा हुआ सुन रहा था। वह उठकर आया। उसने कहाः
यह रहा मेरा कार्ड। मेरा नाम मुल्ला नसरुद्दीन है। आप इस पते पर किसी भी समय आ सकते हैं और जितनी देर चाहें मेरी पत्नी की गोद में बैठ सकते हैं। अब पत्नी कुरूप है, तो यहां सुंदर और है क्या! इस संसार में सभी तो कुरूप है। इस संसार में हर चीज तो सड़ जाती है। इस संसार में हर चीज तो कुरूप हो जाती है। सुंदरतम स्त्री भी एक दिन कुरूप हो जाती है। और जवान से जवान आदमी भी एक दिन मुर्झाता है और बूढ़ा हो जाता है। सुंदर से सुंदर देह भी तो एक दिन चिता पर चढ़ा देनी पड़ेगी। करोगे क्या! यहां सुंदर है क्या?
इस जगत की असारता को ठीक से पहचानो। इस जगत की व्यर्थता को ठीक से पहचानो। ताकि इसकी व्यर्थता को देखकर तुम भीतर की सीढ़ियां उतरने लगो। सौंदर्य भीतर है, बाहर नहीं। सौंदर्य स्वयं में है। और जिस दिन तुम्हारे भीतर सौंदर्य उगेगा, उस दिन सब सुंदर हो जाता है। तुम जैसे, वैसी दुनिया हो जाती है। जैसी दृष्टि, वैसी सृष्टि।
तुम सुंदर हो जाओ। पत्नी को सुंदर करने की फिकर छोड़ो। तुम सुंदर हो जाओ। और तुम्हारे सुंदर होने का अर्थ, कोई प्रसाधन के साधनों से नहीं; ध्यान सुंदर करता है। ध्यान ही सत्यं शिवं सुंदरम का द्वार बनता है। जैसे-जैसे ध्यान गहरा होगा, वैसे-वैसे तुम पाओगेः तुम्हारे भीतर एक अपूर्व सौंदर्य लहरें ले रहा है। इतना सौंदर्य कि तुम उंडेल दो, तो सारा जगत सुंदर हो जाए।
मुझसे तुम उस सौंदर्य की बात पूछो। इस तरह के व्यर्थ प्रश्न न लाओ, तो अच्छा है।
आज इतना ही।

एस धम्मो सनंतनो, भाग 12
एक सौ सत्रह प्रवचन

बुद्धत्व का आलोक

ब्राह्मणवग्गो

छिंद सोतं परक्कम्म कामे पनुद ब्राह्मण।
खयंांत्वाअकतांंसि ब्राह्मण।। 313।।

यदा द्वयेसु धम्मेसु पारगू होति ब्राह्मणो।
अथस्स सब्बे संयोगा अत्थं गच्छंति जानतो।। 314।।

यस्स पारं अपारं वा पारापारं न विज्जति।
वीतद्दरं विसांंत्तं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं।। 315।।

झायिं विरजमासीनं कतकिच्चं अनासवं।
उत्तमत्थं अनुप्पत्तं तमहं ब्रूमि ब्राह्मण।। 316।।

दिवा तपति आदिच्चो रत्तिं आभाति चन्दिमा।
सन्नद्धो खत्तियो तपति झायी तपति ब्राह्मणो।
अथ सब्बमहोरत्तिं बुद्धो तपति तेजसा।। 317।।

प्रथम दृश्यः

वक्कलि स्थविर श्रावस्ती में ब्राह्मण-कुल में उत्पन्न हुए थे। वे तरुणाई के समय भिक्षाटन करते हुए तथागत के सुंदर रूप को देखकर अति मोहित हो गए। फिर ऐसा सोचकर कि यदि मैं इनके पास भिक्षु हो जाऊंगा, तो सदा इन्हें देख पाऊंगा, प्रव्रजित हो गए। वे प्रव्रज्या के दिन से ही ध्यान-भावना आदि न कर केवल तथागत के रूप-सौंदर्य को ही देखा करते थे। भगवान भी उनके ज्ञान की अपरिपक्वता को देखकर कुछ नहीं कहते थे। फिर एक दिन ठीक घड़ी जान--वक्कलि के ज्ञान में थोड़ी प्रौढ़ता देखकर--भगवान ने कहाः वक्कलि! इस अपवित्र शरीर को देखने से क्या लाभ? वक्कलि, जो धर्म को देखता है, वह मुझे देखता है। फिर भी वक्कलि को सुध न आयी। वे शास्ता का साथ छोड़कर कहीं भी न जाते थे। शास्ता के कहने पर भी नहीं। उनका मोह छूटता ही नहीं था।
तब शास्ता ने सोचाः यह भिक्षु चोट खाए बिना नहीं सम्हलेगा। यह संवेग
को प्राप्त हो, तो ही शायद समझे। सो एक दिन किसी महोत्सव के समय, हजारों भिक्षुओं के समक्ष, उन्होंने बड़ी कठोर चोट की। कहाः हट जा वक्कलि! हट जा वक्कलि! मेरे सामने से हट जा! और ऐसा कहकर वक्कलि को सामने से हटा दिया। स्वभावतः वक्कलि बहुत क्षुब्ध हुआ; गहरी चोट खाया। पर वक्कलि ने जो व्याख्या की वह पुनः भ्रांत थी। सोचाः भगवान मुझ से क्रुद्ध हैं। अब मेरे जीने से क्या लाभ? और जब मैं सामने बैठकर उनका रूप ही न देख सकूंगा, तो अब मर जाना ही उचित है। ऐसा सोचकर वह गृद्धकूट पर्वत पर चढ़ाः पर्वत से कूदकर आत्मघात के लिए। अंतिम क्षण में--बस, जब कि वह कूदने को ही था--अंधेरी रात में कोई हाथ पीछे से उसके कंधे पर आया। उसने लौटकर देखा। भगवान सामने खड़े थे। अंधेरी रात्रि में उनकी प्रभा अपूर्व थी। आज उसने शास्ता की देह ही नहीं, शास्ता को देखा। आज उसने धर्म को जीवंत सामने खड़े देखा। एक नयी प्रीति उसमें उमड़ी--ऐसी प्रीति जो कि बांधती नहीं, मुक्त करती है।
तभी भगवान ने इस अपूर्व अनुभूति के क्षण में वक्कलि को ये गाथाएं कही थींः

छिंद सोतं परक्कम्म कामे पनुद ब्राह्मण।
खयंांत्वाअकतांंसि ब्राह्मण।।

"हे ब्राह्मण, पराक्रम से तृष्णा के स्रोत को काट दे और कामनाओं को दूर कर दे। हे ब्राह्मण, संस्कारों के क्षय को जानकर तुम अकृत--निर्वाण--का साक्षात्कार कर लोगे।"
यदा द्वयेसु धम्मेसु पारगू होति ब्राह्मणो।
अथस्स सब्बे संयोगा अत्थं गच्छंति जानतो।।

"जब ब्राह्मण दो धर्मों--समथ और विपस्सना--में पारंगत हो जाता है, तब
उस जानकार के सभी संयोग--बंधन--अस्त हो जाते हैं।"

यस्स पारं अपारं वा पारापारं न विज्जति।
वीतद्दरं विसांंत्तं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं।।

"जिसके पार, अपार और पारापार नहीं है, जो वीतभय और असंग है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूं।"

झायिं विरजमासीनं कतकिच्चं अनासवं।
उत्तमत्थं अनुप्पत्तं तमहं ब्रूमि ब्राह्मण।।

"जो ध्यानी, निर्मल, आसनबद्ध, कृतकृत्य, आस्रवरहित है, जिसने उत्तमार्थ को पा लिया है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूं।"
पहले दृश्य को समझें।
वक्कलि ब्राह्मण-कुल में उत्पन्न हुए थे।
ब्राह्मण-कुल में उत्पन्न होने से कोई ब्राह्मण नहीं होता है। पैदा
तो सभी शूद्र होते हैं। ब्राह्मण बनना होता है।
शूद्र की परिभाषा क्या है? शूद्र की परिभाषा हैः जिसको शरीर से ज्यादा कुछ दिखायी न पड़े। जो शरीर में जीए; शरीर के लिए जीए। शरीर से अन्यथा जिसकी समझ में न पड़े। जिसकी आंखें पृथ्वी में उलझी रह जाएं; आकाश जिसे दिखायी न पड़े। जो आकृति में बंध जाए, और आकृति के भीतर जो अनाकृत विराजमान है, उसे दिखायी न पड़े। ऐसे अंधे को शूद्र कहते हैं।
सभी अंधे पैदा होते हैं। सभी शूद्र पैदा होते हैं। ब्राह्मण तो कोई पराक्रम से बनता है। ब्राह्मण उपलब्धि है। ब्राह्मण गुणवत्ता है, जो अर्जित करनी होती है। मुफ्त नहीं होता कोई ब्राह्मण। जन्म से हो जाओ, तो मुफ्त हो गए। जन्म से हो जाओ, तो संयोग से हो गए। जन्म से हो जाओ, तो तुम्हारी कौन सी उपलब्धि है?
और ब्राह्मण का अर्थ यह भी नहीं होता कि जो शास्त्रों को जानता हो। क्योंकि शास्त्रों को तो शूद्र भी जान ले सकता है। इसी डर से कि कहीं शूद्र शास्त्रों को न जान ले, सदियों तक शूद्र को शास्त्र पढ़ने से रोका गया। नहीं तो फिर ब्राह्मण और शूद्र में भेद क्या करोगे? भेद कुछ है भी नहीं। उतना ही भेद है कि ब्राह्मण शास्त्र जानता है। तथाकथित ब्राह्मण, जो जन्म से ब्राह्मण है, उसमें और तथाकथित शूद्र में भेद क्या है? इतना ही भेद है कि ब्राह्मण वेद को जानता है; शूद्र वेद को नहीं जानता है। इसलिए हिंदुओं ने शूद्र को वेद नहीं पढ़ने दिया, नहीं तो ब्राह्मण की प्रतिष्ठा क्या रहेगी? शूद्र भी अगर पढ़े, तो ब्राह्मण हो गया!
अगर शास्त्र को जानना ही एकमात्र ब्राह्मण होने की परिभाषा है, तो जो शास्त्र को जान लेगा, वही ब्राह्मण हो गया। डाक्टर अंबेडकर को ब्राह्मण कहोगे कि नहीं? अगर शास्त्र को जानना ही परिभाषा हो, तो डाक्टर अंबेडकर ब्राह्मणों से ज्यादा बेहतर ब्राह्मण हैं। तभी तो इस देश का विधान बनाते समय ब्राह्मणों को नहीं बुलाया गया। अंबेडकर को निमंत्रित किया गया। अंबेडकर विधि का, शास्त्र का ज्ञाता था। भारतीय संस्कृति की अपूर्व पकड़ थी, समझ थी। बड़े-बड़े ब्राह्मण थे, उन्हें न बुलाकर एक शूद्र से भारत का विधान निर्मित करवाना किस बात की सूचना है?

शास्त्र पढ़ने का मौका हो, शास्त्र कोई जान ले, तो फिर कौन शूद्र? कौन ब्राह्मण? यह बात बिगड़ जाएगी, इस डर से ब्राह्मणों ने शूद्र को जानने ही नहीं दिया शास्त्र को।
स्त्रियों को भी नहीं जानने दिया; क्योंकि पुरुष की अकड़ का फिर कोई कारण न रह जाएगा। और जब तुम जानने ही न दोगे... ।
अब यह बड़े मजे की बात है। यह कैसा अन्याय है! जब शूद्र पढ़ ही न सकेगा, पढ़ने ही न दोगे, वह अज्ञानी रह जाएगा, फिर कहोगे कि शूद्र अज्ञानी होते हैं! ब्राह्मण ज्ञानी, शूद्र अज्ञानी! और यह शूद्र का अज्ञान तुम्हारे ही द्वारा नियोजित, आयोजित अज्ञान है।
न कोई शूद्र है, न कोई ब्राह्मण। पढ़ने से कुछ भेद तय नहीं होता। अगर भेद तय होगा, तो कोई अंतर-क्रांति से तय होगा।
बुद्ध किसको ब्राह्मण कहते हैं? बुद्ध उसको ब्राह्मण कहते हैं, जिसने ब्रह्म को जाना। लेकिन ब्रह्म को जन्म से कैसे जानोगे? ब्रह्म को जानने के लिए तो सारा जीवन दांव पर लगाना होगा। पराक्रम से जानोगे। ब्रह्म उपलब्धि है। अथक चेष्टा से... । शायद एक जन्म भी काम न आए। अनेक जन्मों में श्रम करके, समथा को साधकर, समाधि को उपलब्ध करके, अंतर के च्रु खुलेंगे; ब्रह्म का दर्शन होगा--तब तुम ब्राह्मण होओगे।
यह घटना कहती हैः वक्कलि स्थविर श्रावस्ती में ब्राह्मण-कुल में उत्पन्न हुए थे। लेकिन रहे होंगे शूद्र। रूप पर अटक गए। शरीर पर अटक गए। बुद्ध में भी उत्सुक हुए, तो उनके देह-सौंदर्य के कारण! बुद्ध में उत्सुक हुए, तो सिर्फ बाहरी छटा को देखकर! बुद्ध के पास आकर भी बुद्धत्व के दर्शन न हुए। वहां भी देह ही दिखी।
हम वही देख सकते हैं, जो देखने की हममें क्षमता होती है। तुमने देखा, चमार रास्ते पर बैठता है! वह तुम्हारा चेहरा नहीं देखता, तुम्हारा जूता देखता है। दिनभर देखता रहता है लोगों के जूते। फिर धीरे-धीरे चमार इतना पारंगत हो जाता है जूतों को देखने में कि जूते को देखकर तुम्हारे संबंध में सब जानकारी कर लेता है। अगर जूते की हालत खराब है, तो जानता है कि तुम्हारी जेब खाली है। जूते की हालत खराब है, तो जानता है कि तुम्हारी हालत कुटी-पिटी है, जैसी तुम्हारे जूते की हालत है। जूते पर चमक है, रौनक है, तो जानता है कि तुम्हारे चेहरे पर भी चमक और रौनक होगी। चेहरे को देखने की जरूरत क्या? उसके हाथ में जूता है। जूते से तुम्हारे संबंध में सारा तर्क फैला लेता है। जूते से तुम्हारे संबंध में सूचनाएं ले लेता है। दर्जी कपड़े देखता है; आदमी नहीं देखता।
और तुम भी विचार करनाः तुम क्या देखते हो? तुम भी क्षुद्र को ही देखते होओगे। जो क्षुद्र को देखे, वह शूद्र है। जो क्षुद्र को हटा दे और भीतर छिपे विराट से संबंध बनाए, वही ब्राह्मण है।
तो साधारण लोगों में तुम सौंदर्य देखो, यह चल जाएगा। लेकिन बुद्ध के पास आकर भी चूक जाओगे! जहां ज्योति भीतर की ऐसी जलती है कि चांद-तारे फीके हैं! कि सूरज शरमाए! जहां भीतर की ज्योति ऐसी जलती कि अंधे को दिख जाए, वहां भी वक्कलि को क्या दिखा? वक्कलि को दिखा बुद्ध का देह-सौंदर्य! ब्राह्मण-कुल में उत्पन्न हुआ था, लेकिन शूद्र था।
वक्कलि तरुणाई के समय भिक्षाटन करते हुए तथागत के सुंदर रूप को देखकर अति मोहित हो गए।
यह एक तरह की कामुकता थी! इससे क्या फर्क पड़ता है कि तुम बुद्ध के रूप-सौंदर्य पर मोहित हुए कि किसी और के रूप-सौंदर्य पर मोहित हुए। रूप पर जो मोहित हुआ, वह कामुक है।
उसने बाहर की परिधि को ही पहचाना। वह तिजोड़ी के प्रेम में गिर गया। तिजोड़ी के भीतर हीरे रखे हैं, उसकी उसे चिंता ही नहीं है। और देह कितनी ही सुंदर हो, अंततः देह है तो हड्डी-मांस-मज्जा। देह कितनी ही सुंदर हो, अंततः तो मृत्यु में चली जाएगी। अंततः तो कब्र में सड़ेगी या चिता पर जलेगी। देह कितनी ही सुंदर हो, आज नहीं कल कीड़े-मकोड़ों का भोजन बनेगी। देह कितनी ही सुंदर हो, सब मिट्टी में मिल जाएगा। जो देह के प्रेम में पड़ा, वह मिट्टी के प्रेम में पड़ गया। वह घड़े के प्रेम में पड़ गया और घड़े के भीतर अमृत भरा था!

बुद्ध के पास खड़े होकर भी इस आदमी ने अमृत न देखा; इसने घड़ा देखा। घड़ा सुंदर था। घड़े पर कारीगिरी थी। घड़े पर बड़ी मेहनत की गयी होगी। यह घड़े के मोह में पड़ गया। यह घड़े को ही छाती से लगा लिया! और यह भूल ही गया कि घड़े के भीतर ऐसा अमृत है कि पीओ, तो सदा-सदा के लिए तृप्त हो जाओ, कि सारी क्षुधा मिट जाए, कि सारी भूख मिट जाए, कृतकृत्य हो जाओ। परम अर्थ विराजमान था।... शूद्र का यही अर्थ है। वक्कलि शूद्र था, जैसे कि सभी लोग शूद्र होते हैं।
ध्यान में ले लेना। ऐसा मत सोचना कि वक्कलि शूद्र था और तुम शूद्र नहीं हो। हम सब शूद्र की तरह ही पैदा होते हैं। और कोई पैदा होने का उपाय नहीं है। बड़े से बड़ा ब्राह्मण--बुद्ध भी--शूद्र की तरह ही पैदा होते हैं। थोड़े से धन्यभागी, जहां पैदा होते हैं, उससे आगे बढ़ते हैं। अधिक अभागे, जहां पैदा होते हैं, वहीं अटके रह जाते हैं। जो जन्म पर ही अटककर रह गया है, वह जीवन से, जानने से वंचित ही रहा। बहुत कम लोग हैं, जो जन्म के बाद बढ़ते हैं। जन्म के बाद बढ़ना चाहिए। जन्म तो सिर्फ शुरुआत है, अंत नहीं है। जन्म तो यात्रा का पहला कदम है, मंजिल नहीं है। जन्म तो सिर्फ अवसर है जीने का, जीवन को जानने का। इस अवसर को लेकर ही मत बैठ जाना।
जन्म तो कोरी किताब है। लिखोगे कब इस पर? तुम्हारा गीत कब फैलेगा इस पर? तुम्हारे चित्र कब बनेंगे इस पर?
जन्म तो ऐसे है, जैसे अनगढ़ पत्थर। छेनी कब उठाओगे? इस पत्थर को मूर्ति
कब बनाओगे? इस पत्थर में प्राण कब डालोगे? अधिक लोग अनगढ़ पत्थर की तरह पैदा होते, अनगढ़ पत्थर की तरह मर जाते। उनकी मूर्ति निखर ही नहीं पाती। उनके भीतर जो छिपा था, छिपा ही रह जाता है। जो गीत गाया जाना था, बिन गाया चला जाता। जो नृत्य होना था, नहीं हो पाता।
जो अपना गीत गा लेता है, वही बुद्ध है। जो अपना नाच नाच लेता है, वही बुद्ध है। जो अपनी भीतर छिपी हुई संभावनाओं को अभिव्यक्त कर देता है, अभिव्यंजित कर देता है, गुनगुना लेता है, वही बुद्ध है। और वही कृतकार्य है। वही फल को, फूल को उपलब्ध हुआ।
अधिक लोग बीज की तरह मर जाते हैं। कुछ थोड़े से लोग अंकुरित होते हैं
और मर जाते हैं। कुछ थोड़े से लोग वृक्ष भी बन जाते हैं, लेकिन उनमें कभी फूल नहीं लगते, फल नहीं लगते और मर जाते हैं। जब फूल खिलता है तुम्हारे जीवन का, जब तुम्हारी चेतना सहस्रदल कमल बनती, तभी जानना कि ब्राह्मण हुए-- तभी जानना कि ब्राह्मण हुए।
इसे ऐसा समझो कि सभी लोग शूद्र की तरह पैदा होते हैं, फिर शूद्र के बाद दूसरा कदम है वैश्य का। कुछ लोग वैश्य बन जाते हैं। वैश्य का मतलब है, पौधा पैदा हुआ; बीज फूटा, कुछ अंकुर निकले।
शूद्र बिल्कुल ही देह में जीता है। मन का भी उसे पता नहीं; आत्मा की तो बात ही दूर। परमात्मा का तो सवाल ही कहां उठता है! तुम सोचते हो कि शूद्र वह है, जो मल-मूत्र ढोता है। तो तुम गलत हो। शूद्र वह है, जो मल-मूत्र में जीता है। ढोने से क्या होता है? बड़ी उलटी बात समझ ली।
जो आदमी पाखाने साफ करता है, मरे जानवरों को ढोकर ले जाता है--इसको शूद्र कहते हो? यह शुद्धि कर रहा है; स्वच्छता ला रहा है। इसको शूद्र कहते हो? शूद्र तुम हो। मल-मूत्र पैदा किया। यह बेचारा ढोकर साफ कर रहा है--इसको शूद्र कहते हो? इसकी तुम्हारे ऊपर बड़ी कृपा है। अनुकंपा है। इसके चरण छुओ। इसका धन्यवाद मानो।
जरा सोचो कि इस नगर में शूद्र एक सात दिन के लिए निर्णय कर लें कि अब नहीं सफाई करनी है, तब तुमको पता चलेगा कि शूद्र क्या कर रहा था। तुम्हारे सुंदर घर भयंकर बदबू से भर जाएंगे! तब तुम्हें पता चलेगा कि शूद्र कौन है! यह मल-मूत्र में जो जी रहा है, जिसका जीवन मल-मूत्र के पार नहीं गया है, जिसे पता ही नहीं देह के बाहर कुछ। भोजन कर लेता है; मल-मूत्र से निष्कासित कर देता है; फिर भोजन कर लेता है। ऐसा ही जिसका जीवन है। इंद्रियों से पार जिसे कुछ पता नहीं है, ऐसा आदमी शूद्र है। मल-मूत्र की सफाई करने वाला शूद्र नहीं है। मल-मूत्र को ही जीवन समझ लेने वाला शूद्र है।

इससे थोड़ा कोई ऊपर उठता है, तो अंकुर फूटता है; वैश्य बनता है। वैश्य
को शूद्र से थोड़ी सी ज्यादा समझ है। उसके भीतर मन में थोड़ी उमंगें उठनी शुरू होती हैंः पद, प्रतिष्ठा, धन, सम्मान, सत्कार। भोजन और कामवासना--इतने ही पर वैश्य समाप्त नहीं होता। वैश्य जीवन के व्यवसाय में लगता है। कुछ और भी मूल्यवान है।
लेकिन वैश्य भी सिर्फ अंकुरित हुआ। जो वैश्य की तरह मर जाए, वह भी कुछ बहुत दूर नहीं गया शूद्र से।
फिर होता है क्षत्रिय। क्षत्रिय का अर्थ होता हैः योद्धा, संकल्पवान। जीवन को अब वैसा ही नहीं जी लेता, जैसा जन्म से पाया है। युद्ध करता है जीवन को निखारने का। उठाता है तलवार। काट देता है, जो गलत है। मिटा देता है, जो व्यर्थ है। सार्थक की तलाश में लगता है। संघर्षरत होता है। जीवन उसके लिए एक चुनौती है, व्यवसाय नहीं।
शूद्र के लिए जीवन क्षुद्र का भोग है। वैश्य के लिए क्षुद्र से थोड़े ऊपर उठना है, लेकिन जीवन की दिशा व्यवसाय की दिशा है, संघर्ष की नहीं। थोड़ा छीन-झपट लो। चोरी कर लो। धोखा दे दो।
क्षत्रिय का आयाम संघर्ष का आयाम है, चुनौती का आयाम है। चाहे सब गंवाना पड़े, लेकिन दांव लगाओ। क्षत्रिय जुआरी है, व्यवसायी नहीं है। क्षत्रिय वृक्ष बन जाता है। जब जूझता है, तो ही कोई वृक्ष बनता है।
ये वृक्ष भी जूझते हैं, तो ही ऊपर उठ पाते हैं। इनकी बड़ी संघर्ष की कथा है। जब एक वृक्ष बनना शुरू होता है, तो कितना संघर्ष है उसके सामने! नीचे जमीन में पड़े पत्थर हैं, जिनको तोड़कर जड़ें पहुंचानी हैं। कठोर भूमि है, जिसमें रास्ता बनाना है; जल-स्रोत खोजने हैं। फिर अकेला ही नहीं खोज रहा है; और बहुत से वृक्ष खोज रहे हैं। इसके पहले कि दूसरे जल-स्रोत तक पहुंच जाएं, इस वृक्ष को अपनी जड़ें वहां पहुंचा देनी हैं; नहीं तो दूसरे कब्जा कर लेंगे। फिर आकाश की तरफ उठना है। फिर अकेले ही नहीं हैं, और वृक्ष पहले से आकाश की तरफ उठे खड़े हैं। अगर आकाश की तरफ न उठेगा, तो सूरज की रोशनी न मिलेगी, शुद्ध हवाएं न मिलेंगी। संघर्ष है। संकल्प है।
संकल्प और संघर्ष से कोई ऊपर जाता है। लेकिन संकल्प की सीमा है। अपने हाथ से लड़ना कितनी दूर तक हो सकता है? हमारे हाथ ही बहुत छोटे हैं। क्षत्रिय अपने पर भरोसा करता है, इसलिए जाता है, वैश्य से आगे जाता है। लेकिन अपने भरोसे की सीमा है। तुम्हारी सामर्थ्य कितनी? एक दिन संकल्प थक जाएगा। क्षत्रिय गिरेगा; जैसे तूफान आया और बड़ा वृक्ष गिर गया। लड़ता रहा था अब तक, लेकिन तूफानों से कैसे लड़ेगा? छोटी-मोटी हवाएं आती थीं, निपट लेता था। आज भयंकर चक्रवात आया। आज तांडव नृत्य करती हुई हवाएं आयीं। आज नहीं होगा। संघर्ष की सीमा है। अपने से जब तक बना, लड़ लिया; अब गिरेगा और टूटेगा। और जब बड़े वृक्ष गिरते हैं, तो दुबारा नहीं उठते। उठ ही नहीं सकते। उठने का कोई उपाय नहीं है। इसके पार ब्राह्मण है।
ब्राह्मण का अर्थ हैः समर्पण। क्षत्रिय का अर्थ हैः संकल्प। क्षत्रिय लड़ता है; जीतने की चेष्टा करता है, लेकिन एक न एक दिन हारेगा। क्योंकि व्यक्ति की सीमा चुक जाएगी। समष्टि के सामने व्यक्ति का क्या मुकाबला है! जितनी दूर तक व्यक्ति की ऊर्जा जा सकती है, जाएगा; फिर ठहर जाएगा।
वहीं से ब्राह्मण शुरू होता है। अपनी सारी सामर्थ्य लगा दी, तब उसे पता चलता है कि मुझसे भी बड़ा कोई है। मैं लडूं क्यों! उसका सहारा क्यों न ले लूं! मैं नदी से संघर्ष क्यों करूं? मैं नदी के साथ बहने क्यों न लगूं? समर्पण शुरू होता है। ब्राह्मण की दशा समर्पण की दशा है। वह परमात्मा के साथ अपना संबंध जोड़ लेता है।
जब कोई किसी गुरु से अपना संबंध जोड़ता है, तो ब्राह्मण होने की शुरुआत हुई। इस आदमी को यह बात दिखायी पड़ गयी कि मेरे हाथ से जितना हो सकता था, मैंने कर लिया; अब मुझे विराट का प्रसाद चाहिए। अब मुझे परमात्मा का सहारा चाहिए। अब मुझे अपनी असहाय अवस्था का बोध होता है। इस स्थिति में व्यक्ति ब्राह्मण बनना शुरू होता है।

और जब समग्र समर्पण हो जाता है, जब सब भांति व्यक्ति अपने को विसर्जित
कर देता है असीम में; सीमाएं खो जाती हैं; जैसे बूंद सागर में गिर जाए, ऐसे जब कोई विराट में गिर जाता है; और उस गिरने में ही जानता है विराट के स्वाद को--तब पूरा ब्राह्मण हुआ। तब फूल लगे; फल लगे। तब सुगंध बिखरी। तब कोई कृत-संकल्प हुआ, कृतकार्य हुआ। तब पहुंच गया वहां, जहां पहुंचना था। नियति उपलब्ध हुई। तभी तृप्ति है। उसके पूर्व कोई तृप्ति नहीं है।
वक्कलि स्थविर श्रावस्ती में ब्राह्मण-कुल में उत्पन्न हुए थे। वे तरुणाई के समय भिक्षाटन करते हुए तथागत के सुंदर रूप को देखकर अति मोहित हो गए। फिर ऐसा सोचकर कि यदि मैं इनके पास भिक्षु हो जाऊंगा, तो सदा इन्हें देख पाऊंगा, प्रव्रजित भी हो गए।
आदमी कभी-कभी ठीक काम भी गलत कारणों से करता है। और कभी-कभी गलत काम भी ठीक कारणों से करता है! और स्मरण रखना इस सूत्र को कि गलत आकांक्षा से किया गया ठीक काम भी गलत हो जाता है। और ठीक आकांक्षा से किया गया गलत काम भी ठीक हो जाता है। अंततः निर्णायक तुम्हारी आकांक्षा है।
परसों की कहानी तुमने देखी! नंगलकुल बड़ी गलत आकांक्षा से वृक्ष पर टांग आए अपने नंगल को, अपने हल को देखने जाता था। नंगल को देखने जाता था। नंगल में क्या हो सकता है! हल में क्या हो सकता है? कुछ भी नहीं। लेकिन हल को देखते-देखते ज्ञान को उपलब्ध हो गया!
यहां बात बिल्कुल उलटी हो रही है! यहां कोई आदमी बुद्ध के पास आ गया है
और फिर भी चूकेगा। चूकेगा, क्योंकि बुद्ध से भी उसने जो संबंध जोड़े हैं, वे बड़ी शूद्र की चित्तदशा से उमगे हैं।
इस आदमी ने न तो बुद्ध के वचन सुने हैं; इस आदमी ने न बुद्ध के भीतर की महिमा देखी। इस आदमी ने, जो बुद्ध का सबसे ज्यादा बाहरी हिस्सा था, वही देखा। बुद्ध की देह देखी। यह शूद्र है।
अगर यह बुद्ध का मन देख ले, तो वैश्य है। अगर यह बुद्ध की आत्मा देख ले,
तो क्षत्रिय है। अगर यह बुद्ध के भीतर का परमात्मा देख ले, तो ब्राह्मण है। ये दृष्टियों के नाम हैं; शूद्र, ब्राह्मण।
शूद्र करीब-करीब देखता ही नहीं, टटोलता है। जैसे अंधा आदमी।
तुमने हेलेन केलर के संबंध में सुना है? वह अंधी है, बहरी है। अब उसके पास एक ही उपाय है किसी को जानने का कि उसके चेहरे पर हाथ फेरे। जब उसने पंडित जवाहरलाल नेहरू को देखा पहली दफा, तो उसने उनके चेहरे पर हाथ फेरा और बहुत खुश हुई। उसने कहाः मैं खुश हूं। तुम्हारा चेहरा बड़ा सुंदर है! जवाहरलाल को तो भरोसा नहीं हुआ कि यह अंधी स्त्री चेहरे पर हाथ फेरकर चेहरे के सौंदर्य को कैसे समझ लेगी! उन्होंने कहा कि मुझे भरोसा नहीं आता। उसने कहा कि तुम्हारा चेहरा ठीक वैसा है, जैसा मैंने यूनान में मूर्तियों का देखा; संगमर्मर की मूर्तियां... । जब मैंने उन पर हाथ फेरा, तो मुझे जैसा भाव हुआ, वैसा तुम्हारे चेहरे को देखकर हुआ।
जवाहरलाल के पास प्यारा चेहरा था। संगमर्मर की मूर्तियों जैसा चेहरा था। लेकिन अंधा आदमी देख तो नहीं सकता; टटोल सकता है।
हेलेन केलर सिर्फ चेहरे की आकृति को अनुभव कर सकती है हाथ फेरकर। अधिक लोग ऐसे ही जीवन को टटोल रहे हैं--अंधे की भांति!
ऐसे वक्कलि आया। अंधा तो नहीं था। कम से कम ऊपर से तो नहीं था। आंखें खुली थीं। मगर अटक गया रूप में। जो आंखों ने दिखाया, उसमें ही भटक गया। ठीक आदमी के पास आया, गलत आकांक्षा ने सब खराब कर दिया।
सोचाः भिक्षु हो जाऊं। अब भिक्षु होने का हेतु देखते हैं! संन्यस्त होना चाहता है, लेकिन संन्यस्त होने के पीछे कारण क्या है? कारण है कि सदा इनके पास रहूंगा फिर। सदा इनका रूप देखता रहूंगा।
भिक्षु हो भी गया। लेकिन जिस दिन संन्यास लिया, उसी दिन से न तो ध्यान किया, न भावना की कोई।
बुद्ध दो तरह की बातें लोगों को कहते। जैसे मैं तुमसे कहता हूं, भक्ति
और ध्यान। जो लोग ध्यान कर सकते, उनको ध्यान में लगाते। जो नहीं कर सकते, उनको भावना में लगाते। भावना यानी भक्ति।

बुद्ध भक्ति का उपयोग नहीं करते, क्योंकि वे किसी परमात्मा को नहीं मानते जो आकाश में बैठा है, जिसकी भक्ति की जाए। फिर भावना... । उन्होंने एक नयी प्रक्रिया खोजी, जो भक्ति का ही रूप है बिना भगवान के। भगवान से मुक्त भक्ति के रूप का नाम भावना।
भगवान के चरणों में लगायी गयी जो दृष्टि है, वह भी भावना है। लेकिन उसमें पता है किसी का। तुमने प्रार्थना की। तुमने कहाः हे कृष्ण। या तुमने राम को पुकारा। तुमने आकाश की तरफ देखा। तुम्हारे मन में कोई धारणा है, रूप है। और तुमने जो भाव प्रगट किया, उसमें पता है। तुमने जो पाती लिखी, उसमें पता है राम का। यह भक्ति।
बुद्ध ने कहाः सिर्फ झुको। कोई नहीं है, जिसके सामने झुकना है। झुकना
ही काफी है। बिना पता झुक जाओ। राम के सामने नहीं। कृष्ण के सामने नहीं। किसी के सामने का सवाल नहीं है; झुक जाओ। जाओ एकांत में और झुक जाओ। और झुकने की कला सीखो।
अब इसको भक्ति नहीं कह सकते। हालांकि परिणाम वही होगा। इससे क्या फर्क पड़ता है कि तुम राम का नाम लेकर झुके कि कृष्ण का नाम लेकर झुके? किसका नाम लेकर झुके, इससे क्या फर्क पड़ता है! नाम तो बहाने थे झुकने के। बुद्ध ने बहाने हटा दिए।
बुद्ध ने कहाः बहानों में झंझट होती है; बहानों में झगड़ा खड़ा होता है।
जो राम के सामने झुकता है, वह उससे लड़ने लगता है, जो कृष्ण के सामने झुकता है। झुकना-वुकना तो भूल जाते हैं; एक-दूसरे के सिर फोड़ने में लग जाते हैं! तुम सिर्फ झुको!
इसको उन्होंने भक्ति नहीं कहा, इसलिए भावना कहा। इसको उन्होंने ठीक शब्द दियाः ब्रह्म-भावना। परमात्मा बाहर नहीं है; परमात्मा तुम्हारे भीतर है। तुम भावना कर लो; तुम्हारे भीतर प्रगट हो जाए। भावना की छेनी से तुम अपने भीतर की मूर्ति को निखार लो। किसी और मंदिर में फूल नहीं चढ़ाने हैं।
लेकिन न तो वक्कलि ने ध्यान किया, न भावना की। वह आया ही नहीं था ध्यान करने या भावना करने। उसकी नजर तो कुछ और ही थी। उसकी दृष्टि तो कुछ और ही थी।
यहां सूफी नृत्य होता है। अनीता बड़ी परेशान रहती है; जो सूफी नृत्य को नेतृत्व देती है। उसकी परेशानी यह है कि अधिकतम भारतीय, जो सूफी नृत्य में आते हैं, उनकी नजर स्त्रियों पर होती है। वह बड़ी परेशान है। सभी नहीं, लेकिन अधिकतम। वे आते ही इसलिए हैं। उन्हें सूफी नृत्य से कुछ लेना-देना नहीं है। लेकिन सूफी नृत्य में स्त्रियां नाच रही हैं और उनका हाथ छूने का मौका मिलेगा--उनकी नजर उस पर होती है! उस पर नजर होने के कारण सूफी नृत्य की जो महिमा है, वह खो ही जाती है। और ऐसे एक-दो आदमी भी वहां हों, तो वे विघ्न-बाधा खड़ी कर देते हैं।
उसकी परेशानी बढ़ती गयी। मैं कोशिश करता रहा कल तक कि किसी तरह सम्हालो। लेकिन वह बढ़ती ही जाती है बात। तो अब मजबूरी में यह तय करना पड़ा कि सूफी नृत्य में भारतीय सम्मिलित नहीं हो सकेंगे। इसमें मैं जानता हूं, कुछ लोग अकारण वंचित रह जाएंगे। लेकिन कोई और उपाय दिखता नहीं।
कोई गलत कारण से भी ध्यान करने आ सकता है।
भारतीयों के मन में कामवासना बड़ी दबी पड़ी है, भयंकर रूप से दबी पड़ी है। सदियों का बोझ है उनके ऊपर। एक चीज को इतना दबा लिया है कि वह उनके रग-रग में समा गयी है! उनके खून में प्रविष्ट हो गयी है। वे और कुछ सोच ही नहीं सकते। हालांकि वे सोचते हैं कि धार्मिक लोग हैं! उनकी धार्मिकता में यह सारा अधर्म समाया हुआ है। वे सोचते हैं कि हम धार्मिक हैं! लेकिन जैसे ही वे स्त्री को देखते हैं, उनके भीतर बड़े विकार उठने लगते हैं। उन विकारों को वे दबाए जाते हैं। क्योंकि दबाना उन्हें सिखाया गया है।
लेकिन दबाए गए विकारों से कभी मुक्ति नहीं होती। मुक्ति समझ से होती है; दबाने से नहीं होती। दमन से तो घाव छिप जाते हैं। उनमें मवाद पड़ने लगती है। ऐसे भारतीय मनुष्य के मन में बड़ी मवाद पड़ गयी है। और वह मवाद बढ़ती चली

जाती है, क्योंकि तुम्हारे साधु-महात्मा उसी मवाद को बढ़ाने का काम करते हैं।
मुक्ति चाहिए कामवासना से--निश्चित मुक्ति चाहिए। लेकिन दमन से मुक्ति नहीं होती।
अब यह वक्कलि कैसे ध्यान करे! कैसे भावना करे! यह तो बुद्ध के रूप पर मोहित होकर आ गया है। इसने तो भिक्षु का वेश भी स्वीकार कर लिया है। इसने तो सब संसार भी छोड़ दिया। यह दीवाना है उनके रूप पर।
तथागत को यह बात दिखायी पड़ रही है--पहले दिन से ही दिखायी पड़ रही है; जब
यह भिक्षु बना होगा, तब से दिखायी पड़ रही है--कि इसके भीतर बड़ी कामुकता भरी पड़ी है। यह शूद्र है।
लेकिन बुद्ध जैसे व्यक्ति में महाकरुणा होती है।
उन्होंने सोचाः अभी कहना ठीक नहीं है। थोड़ी देर देखने दो। या तो इसे खुद ही समझ आ जाएगी। शायद देखते-देखते, देखते-देखते भीतर का भी कुछ दिखायी पड़ जाए। शायद देखते-देखते मैं जो कहता हूं, वह सुनायी पड़ जाए! शायद देखते- देखते यहां इतने लोग धारणा-ध्यान कर रहे हैं, इतने लोग भावना कर रहे हैं, इनकी तरंगों का थोड़ा परिणाम हो जाए! सत्संग का असर होता है। जैसे लोगों के साथ होते हो, वैसे हो जाते हो। शायद कुछ हो जाए। थोड़ी प्रौढ़ता आने दो।
तो देखते थे कि यह सिर्फ मेरी तरफ देखता है और इसकी आंखों में मेरी तलाश नहीं है। सिर्फ चमड़े पर अटक जाती हैं आंखें। यह चमार है। फिर भी चुप रहे। उसकी अपरिपक्वता को देखते हुए कुछ भी नहीं कहे।
फिर एक दिन ठीक घड़ी जान... ।
कहना भी तभी होता है, जब ठीक घड़ी आ जाए। बुद्धपुरुष तभी कहते हैं, जब ठीक घड़ी आ जाए। क्योंकि चोट तभी करनी चाहिए, जब लोहा गरम हो। और बात तभी कहनी चाहिए, जब प्रवेश कर सके। किसी के द्वार तभी ठकठकाने चाहिए, जब खुलने की थोड़ी संभावना हो। पुकार तभी देनी चाहिए, जब किसी की नींद टूटने के करीब ही हो। कोई भयंकर नींद में खोया हो, तो पुकार भी न सुनेगा।
तो बुद्ध प्रतीक्षा करते थे ठीक क्षण की। कभी जब जरा इसकी शूद्रता कम होगी, कभी जब इसके भीतर ब्राह्मण-भाव का थोड़ा सा प्रवाह होगा।
और ध्यान रखनाः चौबीस घंटे कोई भी शूद्र नहीं होता; और चौबीस घंटे कोई
भी ब्राह्मण नहीं होता। बड़े से बड़ा ब्राह्मण कभी-कभी बिल्कुल छोटे से छोटा शूद्र हो जाता है। और कभी-कभी क्षुद्र से क्षुद्र शूद्र भी ब्राह्मण होने की तरंगों से आंदोलित होता है। जीवन प्रवाह है।
तुमने अपने भीतर भी यह प्रवाह देखा होगाः कभी तुम ब्राह्मण होते हो; कभी तुम शूद्र; कभी क्षत्रिय, कभी वैश्य। क्योंकि ये स्थितियां बदलती रहती हैं। ये तो मौसम हैं। अभी बादल घिरे हैं, तो एक बात। अभी सूरज निकल आया, तो दूसरी बात। अभी किसी ने आकर तुम्हारी निंदा कर दी, तो तुम्हारे चित्त की दशा कुछ हो गयी। और किसी ने आकर तुम्हारी प्रशंसा कर दी, तो तुम्हारे चित्त की दशा कुछ हो गयी। राह पर चलते थे; रुपए की थैली मिल गयी, तो तुम्हारा चित्त बदल गया। पैर में कांटा गड़ गया, तो तुम्हारा चित्त बदल गया। किसी ने एक गाली दे दी; कोई अपमान कर गया; कि कोई हंसने लगा देखकर--कि तुम्हारा चित्त बदल गया।
तुम्हारा चित्त तो छुई-मुई है; जरा-जरा में बदलता है! जब न बदले, तो तुम बुद्ध हो गए। जब न बदले, तो स्थितप्रज्ञ हुए। जब न बदले, तो स्थिरधी हुए। जब न बदले, तो भगवत्ता प्रगट हुई।
लेकिन यह मन तो बदलता रहता है। यह मन तो गिरगिट है; यह तो रंग बदलता रहता है! इसलिए तुम यह मत सोचना कि कोई शूद्र है, तो चौबीस घंटे शूद्र है। इसी कारण सारे दुनिया के धर्मों ने कुछ समय खोज निकाले हैं, जब प्रार्थना करनी चाहिए। जैसे ठीक सुबह ब्रह्म-मुहूर्त में। उसको ब्रह्म-मुहूर्त क्यों कहते हैं? क्योंकि उस वक्त आदमी के ब्राह्मण-भाव के उदय होने की संभावना ज्यादा है।
क्यों? रातभर सोए। विश्राम किया। कम से कम आठ घंटे के लिए दुनिया भूल गयी। तो दुनिया का जाल आठ घंटे के लिए टूट गया। सुबह जब आंख खुलती है, नींद की गहरी ताजगी के बाद, विश्राम के बाद, तुम्हारे भीतर थोड़ी देर के लिए

ब्राह्मण का जन्म होता है। उस क्षण तुम्हारे भीतर दया होती, करुणा होती, प्रेम होता, उल्लास होता, उत्साह होता। जीवन फिर जागा। फिर तुम ताजे हो गए हो। फिर हवाएं बहीं। फिर सूरज निकला। फिर पक्षियों ने गीत गाए। फिर फूल खिले। तुम्हारे भीतर भी फूल खिला। तुम्हारे भीतर भी हवाएं बहीं। तुम्हारे भीतर भी सूरज निकला। तुम्हारे भीतर का पक्षी भी गीत गाने लगा। सुबह होती है, तो सारा जगत आह्लाद से भरता है। रातभर के विश्राम के बाद यह आह्लाद स्वाभाविक है। तुम कैसे वंचित रहोगे!
इसलिए धर्मों ने निरंतर कहा है कि जल्दी जाग जाओ। वह जो आदमी आठ-नौ-दस बजे उठेगा, वह चूक गया अपने ब्रह्म होने के क्षण को, ब्राह्मण होने के क्षण को। वह उठते से ही शूद्र होगा।
तुमने देखा, जो आदमी दस बजे तक पड़ा रहेगा, जब वह उठे तो उसके चेहरे पर तुम्हें शूद्र दिखायी पड़ेगा! जो सुबह ब्रह्म-मुहूर्त में उठ आया है सूरज के साथ-साथ, जो प्रकृति के साथ-साथ उठ आया है, उसके भीतर तुम एक तरंग पाओगे, एक ताजगी पाओगे। उसकी आंखों में एक शांति पाओगे। चाहे वह शांति ज्यादा देर न टिके, क्योंकि जिंदगी कठिन है। जल्दी ही उपद्रव शुरू हो जाएगा। दुकान खोलेगा, ग्राहक आएंगे। दफ्तर जाएगा; पत्नी उठेगी; बच्चे होंगे। सब उपद्रव शुरू अभी हो जाने को है। लेकिन इसके पहले कि उपद्रव शुरू हो, सभी धर्मों ने कहा है, प्रार्थना कर लेना।
प्रार्थना का अर्थ हैः यह जो क्षण मिला है, यह जो झरोखा खुला है थोड़ी देर के लिए, इस पर सवार हो जाना, इसका फायदा उठा लेना। इस क्षण को परमात्मा के चरणों में समर्पित कर देना। इस क्षण को अगर तुमने परमात्मा की पुकार में, परमात्मा की प्रार्थना में लगा दिया, तो बहुत संभावना है कि यह क्षण थोड़ा लंबा जाएगा। अगर वैसे कुछ देर रहता, अब शायद थोड़ी ज्यादा देर टिकेगा। यह भी हो सकता है कि अगर तुम ठीक से प्रार्थना कर लो, तो यह दिनभर पर फैल जाए। इसका रंग दिनभर मौजूद रह जाए।
फिर धर्मों ने कहाः रात के अंतिम समय में, जब तुम थक गए दिनभर के उपद्रव से, ऊब गए, तब फिर प्रार्थना कर लेना। उसका क्या अर्थ होगा? यह बात तो विरोधाभासी लगती है! सुबह तो ठीक कि सब ताजा था। रात क्यों, जब कि सब बासा हो गया?
उसके पीछे भी कारण है। जब दिनभर का तुम संसार देख चुके, तो एक विराग की भावदशा अपने आप पैदा होती है। लगता हैः सब फिजूल है। दिनभर देखने के बाद नहीं लगे जिसको, वह आदमी बिल्कुल वज्र बहरा है। सब फिजूल है! कोई सार नहीं! ऐसी जो भावदशा है, इसका भी उपयोग कर लेना। इसके ऊपर भी सवार हो जाना। इसका घोड़ा बना लेना। और प्रभु की प्रार्थना करते-करते ही नींद में उतर जाना। उसका भी लाभ है। क्योंकि प्रभु की प्रार्थना करते-करते अगर नींद में उतर गए, तो नींद पर फैल जाएगी प्रभु की छाया।
ऐसे जीवन के इन दो क्षणों को सभी धर्मों ने स्वीकार किया है। इन दो क्षणों को प्रभु पर समर्पित करना।
फिर ऐसा नहीं कि इन दो ही क्षणों में यह बात घटती है। दिन में कई दफे तुम्हारा मौसम बदलता है। तुम जरा निरीक्षण करोगे, तो तुम समझने लगोगे कि कब मौसम बदलता है। और अगर तुम निरीक्षण ठीक से करो, तो अदभुत परिणाम ला सकते हो। तुम एक अपने जीवन की व्यवस्था भी खोज सकते हो।
एक बार तीन महीने तक डायरी रखो। हर रोज, सोमवार से लेकर रविवार तक, अपनी डायरी में लिखते रहो--कब तुम्हारे भीतर ब्राह्मण-क्षण होता है; कब शूद्र-क्षण होता है; कब क्षत्रिय-क्षण होता है; कब वैश्य का क्षण होता है। तीन महीने तक नोट करते रहो। धोखा मत देना; क्योंकि धोखा किसको दोगे? तुम अपने को ही दोगे। जबर्दस्ती मत लिख लेना कि नहीं है ब्राह्मण-क्षण, लेकिन दिखाना तो चाहिए कि एक ब्राह्मण-क्षण... ! न हो, तो नहीं लिखना। जब हो, तो ही लिखना।
अगर तुम एक तीन महीने तक अपने भीतर का सारा ब्यौरा लिख लो, तुम चकित हो जाओगे। तुम चकित इसलिए हो जाओगे कि तुम तीन महीने के बाद पाओगे कि करीब-करीब तुम्हारे भीतर जो बदलाहटें होती हैं, वे सुनिश्चित हैं। अगर सोमवार

को सुबह तुम्हें आनंदित मालूम हुआ है, तो तुम चकित होओगे जानकर कि हर सोमवार को ऐसा होता है!
तुम्हारे भीतर एक वर्तुल है, जैसे गाड़ी का चाक घूमता है। अगर हर शनिवार को तुम्हारे भीतर क्रोध का जन्म होता है, क्रोध की छाया होती है; तुम कुछ न कुछ झंझट खड़ी कर लेते हो; कोई झगड़े में पड़ जाते हो; किसी को मार देते हो। तो तुम चकित होओगे तीन महीने के बाद कि यह करीब-करीब हर शनिवार को होता है कम-ज्यादा। और एक बार तुम्हारी जिंदगी का चार्ट तुम्हारे सामने हो जाए, तो बहुत लाभ का है। फिर तो तुम अपने दरवाजे पर लिखकर टांग सकते हो-- कि सोमवार, मुझसे सावधान! कि मंगलवार, आपका स्वागत है! और फिर तुम उसके अनुसार जी भी सकते हो।
अगर तुम्हारा सोमवार बुरा दिन है... । और तुम्हें अनजाने इसका अनुभव
भी होता है। लोग जानते भी हैं कि फलां दिन मेरा बुरा दिन है। हालांकि उन्हें साफ नहीं होता कि मामला क्या है! क्यों बुरा दिन है? ज्योतिषी से पूछने जाने की जरूरत नहीं है। ज्योतिषी को क्या पता? उसको अपना पता नहीं है; तुम्हारा क्या खाक पता होगा!
एक ज्योतिषी को एक बार मेरे पास लाया गया जयपुर में। उसकी एक हजार रुपए फीस एक बार हाथ देखने की! उसने कहाः एक हजार रुपए मेरी फीस है हाथ देखने की। मैंने कहाः तुम बेफिक्री से देखो। उसने हाथ देख लिया। बड़ा खुश था कि एक हजार रुपए मिलते हैं। जब हाथ देख लिया, उसने कहाः मेरी फीस? मैंने कहाः वह तो मैं पहले से ही तय था कि नहीं दूंगा। तुम्हें इतना भी पता नहीं है? तुम घर से अपना हाथ देखकर तो चला करो! तुम मुझे देखकर यह भी न समझ सके कि यह आदमी एक हजार रुपए नहीं देगा। और मैं जोर से यह दोहरा रहा था अपने भीतर, ताकि तुम्हें सुनायी पड़ जाए। अगर तुममें थोड़ा भी ज्योतिष हो, तो समझ में आ जाए कि भाई! दूंगा नहीं! यह मैं कह ही रहा था भीतर बार-बार। तुम जब हाथ पकड़े बैठे थे, तब मैं दोहराता ही रहा कि हजार रुपए दूंगा नहीं, दूंगा नहीं। मेरी तरफ से तुम्हें मैंने धोखा नहीं दिया है। लेकिन तुम ज्योतिषी कैसे!
उसकी हालत तो बड़ी खस्ता हो गयी! अब वह क्या कहे!
ज्योतिषी को तो अपना पता नहीं है।
मैंने तो यह भी सुना हैः एक गांव में दो ज्योतिषी थे। वे दोनों सुबह निकलते अपने-अपने घर से, बाजार जाते धंधा करने। तो एक-दूसरे का हाथ देखते रास्ते में--भई! आज कैसा धंधा चलेगा?
अपना ही पता नहीं है; तुम्हें दूसरे का क्या पता होगा फिर!
नहीं; ज्योतिष से नहीं पता चलता। तुम्हें अपने जीवन का निरीक्षण करना होगा, तो पता चलेगा। और एक बार तुम्हें पता हो जाए कि सोमवार या शनिवार या रविवार मेरा खराब दिन है; इस दिन कुछ न कुछ दुर्घटना होती है, तो उस दिन छुट्टी ले लो। वह तुम्हारा छुट्टी का दिन होना चाहिए।
रविवार की छुट्टी नहीं मिलनी चाहिए। दुनिया अगर व्यवस्थित हो विज्ञान से, तो आदमी को उस दिन छुट्टी मिलनी चाहिए जो उसका बुरा दिन है, ताकि वह लोगों के संपर्क में न आए। ताकि वह अपने घर में चादर ओढ़कर सो जाए। मौन रखे। बाहर न निकले। दरवाजा बंद रखे। अगर क्रोध उठे भी, तो तकिया पीट ले; मगर बाहर न जाए। हां, उसका जो अच्छा दिन है, उस दिन वह संपर्क बनाए; लोगों से मिले-जुले। खिले! फूले!
और तुम इस तरह के परिवर्तन अपने भीतर पकड़ ले सकते हो। और वे करीब-करीब गाड़ी के चाक की तरह घूमते हैं। उनमें ज्यादा भेद नहीं होता। जिंदगीभर ऐसा होता है। जैसे स्त्रियों का मासिक-धर्म होता है अट्ठाइस दिन के बाद, फिर और-और लौट आता है। ठीक ऐसा ही वर्तुल है तुम्हारे भीतर भी।
और तुम यह जानकर भी हैरान होओगे कि पुरुषों का भी मासिक-धर्म होता है;
और हर अट्ठाइस दिन के बाद होता है। सिर्फ स्त्रियों के शरीर से खून बाहर जाता है, इसलिए दिखायी पड़ता है। पुरुषों के शरीर से खून बाहर नहीं जाता; लेकिन उनके भीतर चार-पांच दिन के लिए उसी तरह की उथल-पुथल हो जाती है, जैसी स्त्रियों के भीतर होती है। सूक्ष्म उथल-पुथल।

तुमने देखाः जब स्त्रियों का मासिक-धर्म होता है, तो वे ज्यादा खिन्न, उदास, चिड़चिड़ी हो जाती हैं। ठीक ऐसे ही पुरुषों का मासिक-धर्म होता है।
चार दिन के लिए वे भी बड़े चिड़चिड़े और बड़े उदास और बड़े उपद्रवी हो जाते हैं। मगर उनको तो पता भी नहीं होता।
इस देश में जो स्त्रियों को हम चार दिन के लिए बिल्कुल छुट्टी दे देते थे, उसका कारण यह नहीं था--कारण तुमने गलत समझा है--कि स्त्रियां अपवित्र हो जाती हैं। वह कारण नहीं है। अपवित्र क्या होंगी! खून भीतर है, तब अपवित्र नहीं हैं! बाहर जा रहा है, तब तो पवित्र हो रही हैं, अपवित्र कैसे होंगी? और खून अगर अपवित्र है, तो सारा शरीर ही अपवित्र है। अब इसमें और क्या अपवित्रता हो सकती है!
नहीं; उसका कारण मनोवैज्ञानिक था। चार दिन के लिए, जब स्त्री का मासिक-धर्म चलता है, तब वह खिन्न होती, उदास होती, नकारात्मक होती। अगर वह खाना भी बनाएगी, तो उसकी नकारात्मकता उस खाने में विष घोल देगी। मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि किसी ने क्रोध से खाना बनाया हो, तो मत खाना। क्योंकि हाथों से प्रतिपल तरंगें जा रही हैं। हाथों से विद्युत-प्रवाह जा रहा है। इसलिए तो जो तुम्हें प्रेम करता है, गहन प्रेम करता है, उसके हाथ की बनी रूखी-सूखी रोटी भी अदभुत होती है।
होटल में कितना ही अच्छा खाना हो, कुछ कमी होती है। कुछ चूका-चूका होता है। खाना लाश जैसा होता है; उसमें आत्मा नहीं होती। लाश कितनी ही सुंदर हो, और लिपस्टिक लगा हो, और पावडर लगा हो और सब तरह की सुगंध छिड़की हो, मगर लाश आखिर लाश है। तुम्हें इस लाश में से शायद शरीर के लिए तो भोजन मिल जाएगा, लेकिन आत्मा का भोजन चूक जाएगा।
और जैसे तुम्हारे भीतर शरीर और आत्मा है, ऐसे ही भोजन के भीतर भी शरीर
और आत्मा है। आत्मा प्रेम से पड़ती है।
तो जब स्त्री उद्विग्न हो, उदास हो, खिन्न हो, नाराज हो, नकार से भरी हो, तब उसका खाना बनाना उचित नहीं है। तब उसके हाथ से जहर जाएगा। और तब अच्छा है कि वह एकांत में, एक कमरे में बैठ जाए। चार दिन बिल्कुल विश्राम कर ले। ये चार दिन ऐसी हो जाए, जैसे मर ही गयी। दुनिया से उसका कोई नाता न रहे।
यह बड़ी मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया थी। लेकिन चूंकि हमने इसको भी गलत ढंग
दे दिया था... । हालांकि हम गलत ढंग इसलिए दे देते हैं कि शब्दों को समझ नहीं पाते।
जब स्त्री मासिक-धर्म में होती है, तो पुराने शास्त्र कहते हैंः वह शूद्र हो गयी। मगर शूद्र होने का मतलब ही यह होता है कि नकार हो गया। उसको छूना मत; शूद्र हो गयी। मगर पुरुष भी इसी तरह शूद्र होते हैं। शास्त्र चूंकि पुरुषों ने लिखे हैं, इसलिए पुरुषों के चार दिन नहीं लिखे गए। लेकिन अब विज्ञान की खोजों ने यह साफ कर दिया है कि पुरुष भी चार दिन इसी तरह शूद्र हो जाते हैं। और तुम अपने वे चार दिन भी खोज ले सकते हो। और तुम चकित होओगेः हर महीने ठीक वर्तुल में वे चार दिन आते हैं। उनकी तारीखें तय हैं। उन चार दिनों में तुमसे हमेशा बुराई होती है। झगड़ा हो जाता है। मार-पीट हो जाती है। उन चार दिनों में तुमसे चूकें होती हैं। कार चलाओगे, एक्सीडेंट हो जाएगा। उन चार दिनों में हाथ से चीजें छूट जाएंगी, गिर जाएंगी, टूट जाएंगी। उन चार दिनों में तुमसे ऐसे वचन निकल जाएंगे, जो तुम नहीं कहना चाहते थे; और फिर पीछे पछताओगे। उन चार दिनों में तुम अपने में नहीं हो। उन चार दिनों में तुम्हारा शूद्र पूरी तरह तुम्हारे ऊपर हावी हो गया है।
और जैसे चार दिन शूद्र के होते हैं, ऐसे ही चार दिन ब्राह्मण के भी होते हैं, क्योंकि आदमी अतियों में डोलता है। एक अति से दूसरी अति--जैसे घड़ी का पेंडुलम डोलता है।
तो बुद्ध ने प्रतीक्षा की कि जरा परिपक्व हो जाए। इसकी कोई प्रौढ़ घड़ी, कोई सम्यक घड़ी देखकर कहूंगा।

फिर एक दिन थोड़ी प्रौढ़ता की भावना को देखकर भगवान ने कहाः वक्कलि! इस अपवित्र शरीर को देखने से क्या लाभ? वक्कलि, जो धर्म को देखता है, वह मुझे देखता है।
तो तू ध्यान कर और धर्म को देख। धर्म को देख सकेगा--धर्म यानी तेरा स्वभाव--जब तू अपने स्वभाव को देख सकेगा, तो तूने मुझे देखा। तभी जानना कि तूने मुझे देखा। मैं अगर कुछ हूं, तो धर्म हूं। मैं अगर कुछ हूं, तो ध्यान हूं। मैं अगर कुछ हूं, तो समाधि हूं। तू समाधिस्थ हो, तो मुझसे जुड़ेगा। इन चमड़े की आंखों से मेरे चमड़े को देखते-देखते समय मत गंवा। ये आंखें भी कल मिट्टी में गिर जाएंगी, यह देह भी कल मिट्टी में गिर जाएगी। इसके पहले कि यह देह मिट्टी में गिर जाए, इस देह के भीतर जो ज्योति प्रज्वलित हुई है, उसे देख। मगर उसे तू तभी देख सकेगा, जब तू धर्म को देखने में कुशल हो जाए। नहीं तो नहीं देख सकेगा। तो ध्यान में लग; समाधि में उतर।
फिर भी वक्कलि को सुध न आयी।
सुध इतनी आसानी से आती ही कहां है! सुध ही आ जाए, तो फिर और क्या बचा? वक्कलि ने सुन लिया होगा। शायद सुना भी न हो! जब बुद्ध यह कह रहे थे, तब वह उनकी भाव-भंगिमा देखता हो; हाथ को देखता हो; मुद्रा देखता हो; चेहरा देखता हो। शायद सुना ही न हो। जब तुम किसी एक चीज में अटके होते हो, तो तुम्हें कुछ और दिखायी ही नहीं पड़ता।
या उसने कहाः ऐसा तो बुद्ध रोज ही कहते रहते हैं! यह तो कई दफे सुन लिया। यह तो इनके प्रवचन में रोज ही आता है। इसमें कौन सी खास बात है! वह अपने में ही लीन रहा होगा। अपनी ही भावदशा में तल्लीन रहा होगा। उसे सुध न आयी।
वह शास्ता का साथ छोड़कर कहीं जाता भी न था। शास्ता के कहने पर भी नहीं।
ऐसी घटनाएं यहां घट जाती हैं। मेरी एक संन्यासिनी है--कुसुम। वह जब पहली दफा आयी, मेरे चरणों में सिर रखकर कहा कि सब समर्पित करती हूं। बस, अब मेरे जीवन के सूत्रधार आप हैं। जो आप कहेंगे, वही करूंगी। और मुझे यहीं रहना है। मुझे कहीं जाना नहीं है। मैंने उससे कहाः देख, मैं तुझ से कहता हूं कि तू अभी जा वापस घर। तेरे माता-पिता दुखी होंगे, परेशान होंगे। कुछ दिन तू ध्यान कर। उसने कहाः मैं जाने वाली नहीं। मैंने उससे कहाः देख, तू कहती है कि आप जो कहेंगे! मैं कह रहा हूं कि जा! उसने कहाः आप जो कहेंगे, वह करूंगी। लेकिन मैं जाने वाली नहीं! नहीं गयी! पूरी हठयोगिनी है।
यह वक्कलि ऐसा ही आदमी रहा होगा, जैसी कुसुम। बुद्ध उसको कभी-कभी भेजना चाहते कहीं--कि जा! दूसरे गांव जाकर कुछ काम करके आ। वह कहताः आप जो कहेंगे, करूंगा। मगर कहीं जा नहीं सकता। रहूंगा तो यहीं। एक दिन को भी आपको बिना देखे नहीं रह सकता। उसके मोह को तोड़ने को कहते होंगे कि जा। मगर जिद्दी था।
मन बड़ा जिद्दी है। सुनता ही नहीं। उनकी भी नहीं सुनता, जिनकी सुनकर क्रांति घट सकती है।
शास्ता के कहने पर भी नहीं जाता था। उसका मोह छूटता ही नहीं था। एक दिन बिना देखे कैसे रह जाऊंगा! और देखता क्या था? देखता था नाक-नक्श।
देखने योग्य जो था, वह तो देखता नहीं था।
तब शास्ता ने सोचाः यह ऐसे मानने वाला नहीं है। इस पर तो बड़ी चोट करनी पड़ेगी।
और ध्यान रखनाः अगर कभी बुद्ध जैसे व्यक्ति चोट करते हैं, तो सिर्फ अनुकंपा के कारण, करुणा के कारण। इस पर दया आती होगी कि बेचारा, मेरे पास आकर भी चूका जाता है! इतने पास रहकर चूका जाता है। सरोवर के इतने पास--और प्यासा!
फिर किसी महोत्सव के समय, जब बहुत भिक्षु इकट्ठे हुए, हजारों भिक्षुओं के सामने उन्होंने निश्चित ही कठोर चोट की। कहाः हट जा वक्कलि! वह बैठा होगा सामने ही। वह देख रहा होगा। वह लगा होगा अपने ही काम में। वह रस पी रहा होगा अपना ही। यद्यपि वह रस ऐसा ही है, जैसे कोई नालियों से रस पीए।

देह में और क्या हो सकता है! बुद्ध की देह में भी नहीं कुछ हो सकता है। किसी की देह में नहीं होता। देह तो एक जैसी है। अज्ञानी की हो कि ज्ञानी की हो, भेद देह में जरा भी नहीं है। भेद है, तो भीतर है। भेद है, तो जागरण का और सोने का है।
हट जा वक्कलि! हट जा वक्कलि! मेरे सामने से हट जा। ऐसा बुद्ध ने कहा ही नहीं; उसे हटवा भी दिया।
वक्कलि को स्वभावतः गहरी चोट लगी। लेकिन अज्ञानी आदमी करुणापूर्ण कृत्यों की भी अपनी ही व्याख्या करता है। उसने सोचा कि ठीक है। तो बुद्ध मुझ पर क्रुद्ध हो गए हैं। तो अब जीने से क्या सार! अब मर जाने में ही सार है।
तब भी जो बुद्ध चाहते थे, वह नहीं समझा। अगर बुद्ध की सुनकर हट गया होता सामने से; चला गया होता दूर पहाड़ी पर; बैठ गया होता आंख बंद करके; कि बुद्ध नाराज हैं, क्योंकि मैं ध्यान नहीं कर रहा हूं; बुद्ध नाराज हैं, क्योंकि मैं समाधि में नहीं उतर रहा हूं। उनकी महाकरुणा कि उन्होंने मुझे हटवाया है, ताकि मैं जाऊं और समाधि में उतरूं। तो ठीक समझा होता। ठीक व्याख्या की होती। मगर गलत व्याख्या कर ली।
ऐसी गलत व्याख्या तुम भी करते चले जाते हो। मैं कुछ कहता हूं; तुम व्याख्या कर लेते हो अपनी। तुम सोच लेते होः इसका मतलब ऐसा! मतलब तुम निकाल लेते हो। शिष्य को चाहिए कि अपना मतलब न डाले। जल्दी न करे मतलब डालने की। मौन बैठे। जो कहा गया है, उस शब्द को अपने भीतर उतरने दे। मतलब करने की जल्दी न करे। तुमने अर्थ निकाला, अनर्थ हो जाएगा।
अब उसने क्या समझा? कि बुद्ध कहते हैं कि अब तू किसी सार का नहीं; असार है। तू योग्य नहीं है; अपात्र है। मर जा। तेरे जिंदा रहने में कोई मतलब नहीं है। भारी अपमान हो गया मेरा--सोचा होगा। हजारों भिक्षुओं के सामने मुझ ब्राह्मण-पुत्र को इस तरह दुत्कारा! कि हट जा वक्कलि। हटाया ही नहीं, इतना भारी अपमान किया! अकेले में कह देते।
हालांकि अकेले में वे बहुत बार कह चुके थे और इसने सुना नहीं था। उसने सोचाः अब मेरे जीने से क्या लाभ? जीने में तो एक ही अर्थ था उसके और वह अर्थ थाः बुद्ध की देह को देखते रहना!
जब मैं सामने ही न बैठ सकूंगा उनके, तो अब मर जाना उचित है। ऐसा सोच वह गृद्धकूट पर्वत पर चढ़ाः पर्वत से कूदकर आत्मघात के लिए। अंतिम क्षण में-- बस जब कि वह कूदने को ही था--अंधेरी रात में कोई हाथ पीछे से उसके कंधे पर आया।
बुद्ध का हाथ है ही इसीलिए कि जब तुम अंधेरे में होओ, और जब तुम जीवन
के प्रति इतने उदास, इतने खिन्न हो जाओ, कि अपने को मिटाने को तत्पर हो जाओ, तब बुद्ध का हाथ है ही इसलिए कि तुम्हारे कंधे पर आए।
गुरु का अर्थ ही यही है कि वह तुम्हें तलाशे। जब तुम्हें जरूरत हो, तब उसका हाथ पहुंच ही जाना चाहिए। तुम्हारी जरूरत हो और उसका हाथ न पहुंचे, तो फिर गुरु गुरु नहीं है। तुम कितने ही दूर होओ, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। तुम हजारों मील दूर होओ, इससे भी कोई फर्क नहीं पड़ता। जब तुम्हारी वास्तविक जरूरत होगी, गुरु का हाथ तुम्हारे पास पहुंचेगा ही। पहुंचना ही चाहिए। वही तो अनुबंध है--शिष्य और गुरु के बीच। वही तो गांठ है--शिष्य और गुरु के बीच। वही तो सगाई है--शिष्य और गुरु के बीच।
कोई हाथ पीछे से कंधे पर आया। उसने लौटकर देखा। भगवान सामने खड़े थे। मगर यह देह नहीं थी। यह भगवान की देह नहीं थी। यह भगवान का वही रूप नहीं था, जो अब तक देखता रहा था। आज कुछ अभिनव घटित हुआ था। इस मृत्यु के क्षण में... ।
अक्सर ऐसा हो जाता है। जब आदमी मरने ही जा रहा है, जब मरने के लिए आखिरी कदम उठा लिया है--एक क्षण और, और समाप्त हो जाएगा--तो मन अपने आप रुक जाता है, अवरुद्ध हो जाता है। ऐसी घड़ियों में मन को चलने की सुविधा ही नहीं रहती। मन को चलने के लिए भविष्य चाहिए।

इसे समझ लेना। जब कोई आदमी मरने जा रहा है, तो भविष्य तो बचा ही नहीं। बात खतम हो गयी। अब मन को चलने को क्या रहा? मन को चलने को जगह चाहिए। आगे दीवाल आ गयी--मौत आ गयी।
इसीलिए तो बूढ़ा आदमी पीछे लौट-लौटकर सोचने लगता है। आगे तो दीवाल है, वहां सोचने की जगह नहीं है। जवान सोचता हैः कल बड़ा मकान बनाऊंगा। सुंदर स्त्री लाऊंगा। ऐसा होगा, वैसा होगा। वह भविष्य की सोचता है। मन आगे की तरफ दौड़ता है।
बूढ़ा आदमी एक दिन देखता हैः आगे तो अब कुछ भी नहीं है। आगे तो मौत है।
अब आगे क्या सोचना? वह मौत से बचने के लिए मौत की तरफ पीठ कर लेता है, पीछे की तरफ सोचने लगता है। वह कहता हैः क्या जमाने थे! राम-राज्य था। स्वर्णयुग था। बीत गया। अब कैसा भ्रष्ट युग आ गया! दूध इस भाव बिकता था। घी इस भाव बिकता था! गेहूं इस भाव बिकता था! वह इन बातों को सोचने लगता है। वह अपने पचास, साठ या अस्सी साल पहले जो स्थितियां थीं, उनका विचार करने लगता है। कैसे सुंदर दिन थे? कैसे अच्छे लोग थे!
ये ही लोग थे। ये ही दिन थे। कुछ फर्क नहीं पड़ता दुनिया में बाहर। दुनिया वही की वही है। वैसी की वैसी है। लेकिन बूढ़ा रंग भरने लगता है अपने अतीत में। सब बूढ़े भरते हैं।
लेकिन अगर कोई आत्मघात करने जाए, तब तो पीछे भी लौटकर नहीं सोच सकता।
अब तो सोचना ही समाप्त हुआ। आखिरी घड़ी आ गयी। अपने हाथ से मिटने जा रहा है।
अब विचार के लिए उपाय नहीं है; सपने के लिए उपाय नहीं है।
तो मन न रहा होगा मौजूद! और इस अंधेरी रात में किसी हाथ का कंधे पर पड़ना। एकदम चौंका होगा! यहां कौन? लौटकर देखा होगा। ज्योतिर्मय रूप था।
जिसको बुद्ध देखने के लिए कह रहे थे बार-बार--कि तू उसे देख, जो मैं वस्तुतः हूं--आज इस मृत्यु की घड़ी में सामने खड़ा हो गया था।
यह बुद्ध की पार्थिव देह नहीं थी। बौद्धशास्त्र गलत कहते हैं। बौद्धशास्त्र कहते हैं कि बुद्ध खुद ही वहां आकाश-मार्ग से उड़कर खड़े हो गए थे। नहीं; यह बुद्ध की अंतर्देह थी। यह बुद्ध की अंतरात्मा थी। यह बुद्ध का बुद्धत्व था, जो वहां खड़ा हुआ था। अगर चमड़े की ही देह खड़ी होती, तो मैं तुमसे पक्का कहता हूंः वक्कलि फिर चूक जाता।
आज उसने शास्ता को वैसा नहीं देखा, जैसा वह सदा देखता था; पर ऐसा देखा जैसा शास्ता चाहते थे कि देखे। आज उसने शास्ता की देह नहीं, शास्ता को देखा। आज उसने धर्म को जीवंत सामने खड़ा पाया। वह महाकरुणा बरसती हुई; वह प्रसाद, वह शीतल बरसा; वह अमृत का मेघ! एक नयी प्रीति उसमें उमगी--ऐसी प्रीति जो बांधती नहीं, मुक्त करती है।
प्रेम दो तरह के होते हैं। जब प्रेम शूद्र जैसा प्रेम होता है, शूद्र
का प्रेम होता है, तो बांधता है। क्षुद्र का प्रेम बांधता है, क्योंकि क्षुद्र का प्रेम तुम्हें भी क्षुद्र बना देगा। जैसा प्रेम करोगे, जिससे प्रेम करोगे, जिस ढंग से करोगे, वैसे हो जाओगे।
प्रेम बड़ी कीमिया है, सोच-समझकर करना। प्रेम करना हो, तो विराट से करना। प्रेम करना हो, तो आकाश से करना। प्रेम करना हो, तो असीम से करना। क्योंकि जिससे तुम प्रेम करोगे, वैसे ही तुम हो जाओगे। क्षुद्र से करोगे, क्षुद्र हो जाओगे। ख्याल रखना, प्रेम रूपांतरकारी है। प्रेम एकमात्र रसायन है।
आज एक नयी प्रीति उमड़ी। अब तक जो प्रीति जानी थी, देह की थी। शूद्र मन
की थी। आज ब्राह्मण पैदा हुआ। वक्कलि आज ब्राह्मण हुआ। ब्राह्मण-कुल में पैदा हुआ था, उस समय नहीं। आज बुद्ध के कुल में पैदा होकर ब्राह्मण हुआ। आज बुद्ध-कुल में जन्मा। आज नया जन्म हुआ। द्विज हुआ।
इसलिए तो ब्राह्मण को द्विज कहते हैं। लेकिन सभी ब्राह्मण द्विज नहीं होते। सभी द्विज जरूर ब्राह्मण होते हैं। फिर द्विज चाहे जीसस हों, चाहे मोहम्मद--सभी द्विज ब्राह्मण होते हैं।
लेकिन आमतौर से लोग समझते हैं कि सभी ब्राह्मण द्विज हैं। ब्राह्मण
को द्विज कहते हैं। गलत। द्विज को ब्राह्मण कहो। द्विज का अर्थ हैः जो दुबारा जन्मा। एक जन्म मां-बाप से मिला। फिर दूसरा जन्म गुरु से मिला।

आज वक्कलि द्विज हुआ, ब्राह्मण हुआ। आज बुद्ध के कुल में जन्मा। एक नयी प्रीति उमड़ी। विराट को सामने खड़े देखा। उस विराट में शून्य हो गया होगा। लीन हो गया होगा। वे किरणें उसे धो गयीं; साफ कर गयीं; स्वच्छ कर गयीं। वह नया हो आया। नए मनुष्य का जन्म हुआ, जिस पर पुराने की अब छाया भी नहीं, धूल भी नहीं। पुराने से इसका कोई संबंध भी नहीं है। यह पुराने से असंबंधित है।
ऐसी घड़ी में भगवान ने ये सूत्र कहे थेः

छिंद सोतं परक्कम्म कामे पनुद ब्राह्मण।
खयंांत्वा अकतांंसि ब्राह्मण।।

"हे ब्राह्मण, पराक्रम से तृष्णा के स्रोत को काट दे और कामनाओं को दूर कर दे। हे ब्राह्मण, संस्कारों के क्षय को जानकर तुम अकृत--निर्वाण--का साक्षात्कार कर लोगे।"
बुद्ध ने कहाः जैसा मैं हूं, ऐसा ही तू भी हो सकता है। बस, अब कामनाओं
को एक झटके में काट दे। अब दुबारा कामना न करना। फिर शूद्र मत हो जाना। इस घड़ी को ठीक परख ले, पहचान ले, पकड़ ले। अब यह घड़ी तेरी जिंदगी बने। अब यह घड़ी तेरी पूरी जिंदगी का सार हो जाए। इसी के केंद्र पर तेरे जीवन का चाक घूमे। "हे ब्राह्मण... ।"
सुनते हैं फर्क? अभी कुछ ही देर पहले, कुछ ही घंटों पहले कहा थाः वक्कलि हट! हट जा। हट जा वक्कलि! हटवा दिया था। इसके पहले कभी बुद्ध ने उसको ब्राह्मण कहकर संबोधन नहीं किया था। वक्कलि। आज पहली दफा कहाः हे ब्राह्मण! आज वह ब्राह्मण हुआ है।

छिंद सोतं परक्कम्म कामे पनुद ब्राह्मण।

इस घड़ी को पहचान, इस घड़ी को पकड़। कामनाओं को काट; तृष्णाओं को उच्छेद
कर दे; संस्कारों का क्षय हो जाने दे। अब यह जो शून्य तेरे भीतर घड़ीभर को उतरा है, यही तेरी नियति हो जाए, यही तेरा स्वभाव हो जाए, तो तू अकृत को जान लेगा।
अकृत अर्थात निर्वाण। अकृत--जो किए से नहीं होता। अकृत--जो करने से कभी हुआ नहीं; जो सब करना छोड़ देने से होता है। जो समर्पण में होता है, संकल्प से नहीं होता।
"जब ब्राह्मण दो धर्मों में पारंगत हो जाता है... ।"
कौन से दो धर्म? एक धर्म है, समथ। और दूसरा धर्म है, विपस्सना।
"तब उस जानकार के सभी संयोग--बंधन--अस्त हो जाते हैं।"
इन दोनों शब्दों को समझ लेना जरूरी है।
बुद्ध ने दो तरह की समाधि कही हैः समथ समाधि और विपस्सना समाधि। समथ समाधि का अर्थ होता हैः लौकिक समाधि। और विपस्सना समाधि का अर्थ होता हैः अलौकिक समाधि। समथ समाधि का अर्थ होता हैः संकल्प से पायी गयी समाधि--योग से, विधि से, विधान से, चेष्टा से, यत्न से। और विपस्सना का अर्थ होता हैः सहज समाधि। चेष्टा से नहीं, यत्न से नहीं, योग से नहीं, विधि से नहीं--बोध से, सिर्फ समझ से। विपस्सना शब्द का अर्थ होता हैः अंतर्दृष्टि।
फर्क समझना। तुमने सुना कि क्रोध बुरा है। तो तुमने क्रोध को रोक लिया। अब तुम क्रोध नहीं करते हो। तो तुम्हारे चेहरे पर एक तरह की शांति आ जाएगी। लेकिन चेहरे पर ही। भीतर तो क्रोध कहीं पड़ा ही रहेगा। क्योंकि तुमने दबा दिया है सुनकर। अगर तुम्हारी समझ में आ गया कि क्रोध गलत है-- शास्त्र कहते हैं, इसलिए नहीं; बुद्ध कहते हैं, इसलिए नहीं; मैं कहता हूं, इसलिए नहीं--तुमने जाना अपने जीवंत अनुभव से, बार-बार क्रोध करके कि क्रोध व्यर्थ है। यह प्रतीति तुम्हारी गहन हो गयी; इतनी गहन हो गयी कि इस प्रतीति के कारण ही क्रोध असंभव हो गया; तुम्हें दबाना न पड़ा। तुम्हें विधि-विधान न करना पड़ा। तुम्हें अनुशासन आरोपित न करना पड़ा। तो दूसरी दशा घटेगी। तब तुम्हारे भीतर भी शांति होगी, बाहर भी शांति होगी।

समथ समाधि में बाहर से तो सब हो जाता है, भीतर कुछ चूक जाता है। विपस्सना समाधि पूरी समाधि है। बाहर भीतर एक जैसा होता है; एकरस हो जाता है।
जैसे एक आदमी योगासन साधकर बैठ गया। अगर वर्षों अभ्यास कर लोगे, तो कसरत की तरह योगासन सध जाएगा। योगासन तो साधकर बैठ गए बिल्कुल पत्थर की मूर्ति की तरह। हिलते ही नहीं! चींटी चढ़ती है; पता उसका लेते ही नहीं। मच्छड़ काटता है; फिक्र नहीं है। बैठे, तो बैठे। घंटों बैठे हैं! लेकिन भीतर मन चल रहा है।
अभ्यास कर लिया। अब मच्छड़ का भी अगर रोज-रोज अभ्यास करोगे... । काटने दो--काटने दो--काटने दो। धीरे-धीरे, धीरे-धीरे तुम्हारी चमड़ी संवेदना खो देगी। चींटी चढ़ती रहेगी, काटती रहेगी, तुम्हें पता नहीं चलेगा। चमड़ी कठोर हो गयी अभ्यास से।
बाहर से तो तुम मूर्ति बन गए, लेकिन भीतर? भीतर बाजार भरा है।
फिर एक और तरह का आसन है। वही असली आसन है। तुम्हारा मन थिर हो गया। चूंकि मन थिर हो गया, इसलिए शरीर नहीं कंपता। तुम्हारा मन शांत है, इसलिए शरीर को कंपाने की कोई जरूरत नहीं है। तब तुम शांत बैठे--यह और ही बात हो गयी।
इसलिए पहली को बुद्ध ने लौकिक कहा, दूसरी को अलौकिक। पहली से तुम ब्राह्मण तक नहीं पहुंच पाओगे। पहली से क्षत्रिय तक। संकल्प; जूझते हुए; लड़ते हुए; प्रयास से। दूसरी से तुम ब्राह्मण होओगे। प्रसाद से।
इसलिए बुद्ध ने कहाः जो दो धर्मों को जान लेता, समथ और विपस्सना, वह पहुंच गया।
पहले आदमी को समथ से जाना पड़ता है। फिर समथ की हार पर विपस्सना का जन्म होता है।
ऐसा ही बुद्ध को हुआ। छह वर्ष तक उन्होंने जो साधा, वह समथ समाधि थी। फिर छह वर्ष के बाद, उस आखिरी रात जो घटा, वह विपस्सना समाधि थी।
"जिसके पार, अपार और पारापार नहीं है, जो वीतभय और असंग है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूं।"
किसे ब्राह्मण कहता हूं? उसे जो तीन चीजों से दूर निकल गया है। पार का अर्थ होता है स्थूल; आंख, कान, नाक से जो देखा जाता है; जिसकी सीमा है--पार। अपार का अर्थ होता है जिसकी सीमा नहीं है; जो बड़ा है; सूक्ष्म है, स्थूल नहीं है। रूप, रस, गंध से, जो इंद्रियों से नहीं जाना जाता है, मगर मन से जाना जाता है।
जैसे तुमने एक फूल देखा। इंद्रियां सिर्फ इतना ही कह सकती हैं कि लाल है। बड़ा है। सुगंधित है। ये इंद्रियां कह रही हैं। यह पार है। जब तुम कहते होः सुंदर है, तो कोई इंद्रिय तुम्हारे पास नहीं है सुंदर कहने वाली। सुंदर कहने वाला मन है। कोई इंद्रिय नहीं बता सकती तुमको कि फूल सुंदर है। कैसे बताएगी? इंद्रिय तो सिर्फ खबर दे देती है। इंद्रिय तो ऐसे है, जैसे कैमरा। कैमरा यह नहीं कह सकता कि सुंदर है, कि असुंदर। कैमरा तो उतार देता है, जो है। सामने गुलाब का फूल है; इंद्रिय खबर दे देती है। आंखें कहती हैं कि लाल फूल है; गुलाब का है। नाक कहती हैः सुगंधित है। मगर सुंदर! जब तुम सुंदर कहते हो--तो अपार।
तो रस, रूप, गंध, सौंदर्य--ये जो हैं, ये सूक्ष्म अनुभव हैं मन के। इंद्रियों के अनुभव--पार। मन के अनुभव--जो कि आत्मा और इंद्रिय के मध्य में है--अपार। और फिर पारापार। पार और अपार दोनों से भी पार, दोनों के आगे--फिर आत्मा का अनुभव है।
और जो इन तीनों से पार हो जाता है... । वह आत्मा का अनुभव क्या है? मैं
का अनुभव--अत्ता। इसलिए बुद्ध ने कहाः आत्मा नहीं--अनत्ता। मैं को भी जाने दो। इंद्रियां गयीं; मन गया; मैं को भी जाने दो। पार से पार; अपार से पार; पार-अपार दोनों से पार। फिर जो शेष रह जाता है शून्य; वहां मैं का भाव भी नहीं है। उसे जो जान लेता है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूं।
और जो उसे जान लेता है, स्वभावतः वीतभय हो जाता है। फिर उसे क्या भय!
अब उसके पास कुछ बचा नहीं, जिसे छीन लोगे। उसने सब स्वयं ही छोड़ दिया है।

अब तो शून्य बचा, जिसे कोई छीन नहीं सकता; जिसे छीनने का कोई उपाय नहीं है।
अब तो वही बचा, जिसकी मृत्यु नहीं हो सकती। इसलिए भय कैसा! वह अभय को उपलब्ध हो जाता है।
और असंग हो जाता है। अब उसको किसी के साथ की जरूरत नहीं रह जाती। साथ
की जरूरत भय के कारण है। समझ लेना।
इसीलिए बुद्ध ने कहाः वीतभय और असंग।
तुम साथ क्यों खोजते हो? इसलिए कि अकेले में डर लगता है। पत्नी डरती
है अकेले में। पति डरता है अकेले में। अकेले में डर लगता है। अकेले में याद आने लगती है मौत की; घबड़ाहट होती है। कोई दूसरा रहता है, मन भरा रहता है।
तुमने कभी देखा! अकेली गली से गुजरते हो रात। सीटी बजाने लगते हो! कुछ करते नहीं बनता, तो सीटी बजाओ! फिल्मी गाना गाने लगते हो। फिल्मी गाना नहीं; अगर धार्मिक किस्म के आदमी हो, तो राम-राम या हनुमान-चालीसा पढ़ने लगे! सब एक ही है। कुछ फर्क नहीं है।
मगर क्यों? सीटी की आवाज, अपनी ही आवाज है। लेकिन उसको सुनकर ऐसा लगता
है कि चलो, कुछ तो हो रहा है! कुछ है। हालांकि सीटी की आवाज से कोई भूत-प्रेत भागेंगे नहीं। भूत-प्रेत हैं नहीं कि जो भागें। मगर सीटी की आवाज से तुमको ऐसा लगता है कि चलो, सब ठीक है। कुछ कर तो रहे हैं! गाना गाने लगे जोर से। अपनी ही आवाज सुनकर ऐसा लगता है, जैसे कोई और मौजूद है। भूल गए।
आदमी अपने को भुला रहा है। इसलिए संग-साथ खोज रहा है।
बुद्ध ने कहाः वही ब्राह्मण है, जिसे संग-साथ की कोई जरूरत नहीं रही;
जो असंग है। और जो वीतभय है।
"जो ध्यानी, निर्मल, आसनबद्ध, कृतकृत्य, आस्रवरहित है, जिसने उत्तमार्थ को पा लिया है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूं।"
जो ध्यान में डूब रहा है। ध्यान यानी निर्विचार। जो निर्मल हो रहा है। निर्विचारता निर्मलता लाती है। विचार चालाकी है।
तुमने देखा! जितना आदमी पढ़ा-लिखा हो जाता है, उतना चालाक, धोखेबाज, पाखंडी हो जाता है। जितने विचार बढ़ जाते हैं, उतना आदमी बेईमान हो जाता है। पढ़ा-लिखा आदमी और बेईमान न हो, जरा कठिन है।
और हम सोचते हैं, बड़ी उलटी बात हो रही है। हम कहते हैं कि यह मामला क्या है? विश्वविद्यालय से लोग आते हैं पढ़-लिख करके और इनमें सिवाय बेईमानी और धूर्तता के कुछ भी नहीं होता।
लेकिन विश्वविद्यालय सिखाते यही हैं। तुमने जो शिक्षा विकसित की है,
वह धूर्तता की है। निर्विचार की तो वहां कोई शिक्षा ही नहीं है। कोई विश्वविद्यालय ध्यान की क्षमता नहीं देता, निर्मलता नहीं देता, सरलता नहीं देता। चालबाजी सिखाता है। गणित सिखाता है। तर्क सिखाता है। कैसे लूट लो दूसरों से ज्यादा, यह सिखाता है। बिना कुछ किए कैसे संपत्ति मिल जाए, यह सिखाता है!
सिखाते तुम यह हो और फिर जो सिखाने वाले हैं, वे भी परेशान हैं। जब उनके विद्यार्थी उन्हीं को धोखा देने लगते हैं, उन्हीं की जेब काटने लगते हैं, तो वे कहते हैंः यह मामला क्या है? गुरु के प्रति कोई श्रद्धा नहीं है!
लेकिन तुम इनको सिखा क्या रहे हो? श्रद्धा तुमने कभी इनको सिखायी? तुमने सिखाया तर्क, संदेह; और जब ये तुम पर ही तर्क करते हैं और तुम्हारे साथ ही संदेह करते हैं, और तुम्हारे साथ ही चालबाजियां... । अभ्यास कहां करेंगे? यह होमवर्क है! फिर दुनिया में जाएंगे, फिर वहां असली काम करना पड़ेगा! ये तैयारी कर रहे हैं।
यह जो विश्वविद्यालयों में इतनी रुग्णता दिखायी पड़ती है--हड़ताल, घिराव--इस सबके लिए जिम्मेवार शिक्षा है; विद्यार्थी नहीं। तुम्हारी शिक्षा इसी के लिए है। तुम्हारी शिक्षा हिंसा सिखाती है और चालबाजी सिखाती है। और जब कोई आदमी चालबाज हो जाता है, हिंसक हो जाता है, तो उसका अभ्यास करना चाहता है--स्वभावतः। कहां अभ्यास करे? विश्वविद्यालय में ही अभ्यास करेगा।

तुम्हारे विश्वविद्यालय राजनीति सिखाते हैं। अभ्यास कहां करे? फिर वहीं चुनाव लड़ना सीखता है। विद्यार्थी यूनियन का चुनाव--और तुम देखोगे, जैसे कि पार्लियामेंट का चुनाव हो रहा है! वह अभ्यास कर रहा है। वह छिछले पानी में तैरना सीख रहा है। फिर कल वह पार्लियामेंट में भी जाएगा।
और पार्लियामेंट में भी वही होता है। जरा बड़े पैमाने पर। वही मूढ़ता। वही धूर्तता। वही गुंडागर्दी। कोई फर्क नहीं!
इसके पीछे कारण है। ध्यान न हो, तो निर्मलता नहीं होती।
बुद्ध ने कहाः ध्यानी, निर्मल, आसनबद्ध... ।
जब भीतर निर्मलता होती है, तो शरीर के व्यर्थ हलन-चलन अपने आप विलीन
हो जाते हैं। शरीर में एक तरह की थिरता आ जाती है। एक तरह की शांति आ जाती है।
कृतकृत्य... और स्वभावतः फूल जब ध्यान के खिलते हैं, तभी पता लगता है
कि मिल गया, जो मिलना था; पा लिया, जो पाना था। पाने योग्य पा लिया। अब कुछ और पाने योग्य नहीं है। आखिरी संपदा मिल गयी। कृतकृत्य।
आस्रवरहित... और जो ध्यान को उपलब्ध हो गया, उसके भीतर व्यर्थ चीजें नहीं आ सकतीं। ध्यान उसका रक्षक हो जाता है। जो ध्यान को उपलब्ध हो गया, उसको क्रोध नहीं आएगा। जो ध्यान को उपलब्ध हो गया, उसको लोभ नहीं आएगा। जो ध्यान को उपलब्ध हो गया, उसको मोह नहीं आएगा।
क्यों? उसके घर अब दीया जल गया है। और दीया जला हो, तो अंधेरा भीतर नहीं आता। और उसके भीतर पहरेदार जग गया है। और पहरेदार जगा हो, तो चोर नहीं आते।
आस्रवरहित... । अब शत्रु भीतर प्रवेश नहीं कर सकते।
और जिसने उत्तमार्थ को पा लिया है... । दुनिया में दो अर्थ हैं। एक अर्थ शरीर का है, और एक अर्थ आत्मा का। आत्मा का अर्थ है--उत्तमार्थ। परमार्थ। आखिरी अर्थ जिसने पा लिया है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूं। दूसरा दृश्यः

भगवान के मिगारमातु-प्रसाद में विहार करते समय एक दिन आनंद स्थविर ने भगवान को प्रणाम करके कहाः भंते! आज मैं यह जानकर धन्य हुआ हूं कि सब प्रकाशों में आपका प्रकाश ही बस प्रकाश है। और प्रकाश तो नाममात्र को ही प्रकाश कहे जाते हैं। आपके प्रकाश के समक्ष वे सब अंधेरे जैसे मालूम हो रहे हैं। भंते! मैं आज ही आपको और आपकी अलौकिक ज्योतिर्मयता को देख पाया हूं, दर्शन कर पाया हूं। और अब मैं कह सकता हूं कि मैं अंधा नहीं हूं। शास्ता ने यह सुन आनंद की आंखों में देर तक झांका। और और-और आलोक उसके ऊपर फेंका।
आनंद डूबने लगा होगा उस प्रसाद में, उस प्रकाश में, उस प्रशांति में।
और फिर उन्होंने कहाः हां, आनंद, ऐसा ही है। लेकिन इसमें मेरा कुछ भी नहीं है। मैं तो हूं ही नहीं, इसीलिए प्रकाश है। यह बुद्धत्व का प्रकाश है, मेरा नहीं। यह समाधि की ज्योति है, मेरी नहीं। मैं मिटा, तभी यह ज्योति प्रगट हुई है। मेरी राख पर यह ज्योति प्रगट हुई है।
तब यह सूत्र उन्होंने आनंद को कहाः

दिवा तपति आदिच्चो रत्तिं आभाति चन्दिमा।
सन्नद्धो खत्तियो तपति झायी तपति ब्राह्मणो।
अथ सब्बमहोरत्तिं बुद्धो तपति तेजसा।।

"दिन में केवल सूरज तपता है; दिन में केवल सूरज प्रकाश देता है। रात में चंद्रमा तपता है; रात में चंद्रमा प्रकाश देता है। अलंकृत होने पर राजा तपता है।"
जब खूब स्वर्ण सिंहासनों पर राजा बैठता है, बहुमूल्य वस्त्रों को पहनकर, हीरे-जवाहरातों के आभूषणों में, हीरे-जवाहरातों का ताज पहनता--तब राजा प्रकाशित होता है।
"ध्यानी होने पर ब्राह्मण तपता है।"

और जब ध्यान की पहली झलकें आनी शुरू होती हैं, तो एक ज्योति आनी शुरू होती है ब्राह्मण से, ध्यानी से।
"और बुद्ध दिन-रात तपते हैं।"
अकारण तपते हैं। बिन बाती बिन तेल।
फर्क समझना। सूरज की सीमा है, दिन में तपता है। चांद की सीमा है, रात तपता है। फिर सूरज एक दिन बुझ जाएगा। और चांद के पास तो अपनी कोई रोशनी नहीं है, उधार है। वह सूरज की रोशनी लेकर तपता है। जिस दिन सूरज बुझ जाएगा, उसी दिन चांद भी बुझ जाएगा। चांद तो दर्पण जैसा है। वह तो सिर्फ सूरज की रोशनी को प्रतिफलित करता है। सूरज गया, तो चांद गया।
सूरज की सीमा है; हालांकि सीमा बहुत बड़ी है। करोड़ों-करोड़ों वर्ष से तप रहा है। लेकिन वैज्ञानिक कहते हैंः एक दिन बुझेगा। क्योंकि यह बिन बाती बिन तेल नहीं है। इसका ईंधन समाप्त हो रहा है, रोज-रोज समाप्त हो रहा है। बड़ा ईंधन है इसके पास, लेकिन रोज सूरज ठंडा होता जा रहा है। उसकी गर्मी कम होती जा रही है। गर्मी फिंकती जा रही है; खर्च होती जा रही है।
एक दिन सूरज चुक जाएगा। यह प्रकाश सीमित है। तुम्हारे घर में जला हुआ दीया तो सीमित है ही। क्या है उसकी सीमा? उसका तेल। रातभर जलेगा; तेल चुक जाएगा; बाती भी जल जाएगी फिर। फिर दीया पड़ा रह जाएगा।
ऐसे ही सूरज भी जलेगा--करोड़ों-करोड़ों वर्षों तक। लेकिन उसकी सीमा है।
और चांद में तो प्रतिफलन है केवल।
"अलंकृत होने पर राजा तपता है।"
राजा की जो प्रतिष्ठा होती है, प्रकाश होता है, वह अपना नहीं होता; उधार होता है।
देखते तुम, एक आदमी जब गद्दी पर बैठता है, तो दिखायी पड़ता है सारी दुनिया को; नहीं तो उसका पता ही नहीं चलता किसी को। कोई आदमी मिनिस्टर हो गया, तब तुम्हें पता चलता है कि अरे! आप भी दुनिया में थे! फिर वह एकदम दिखायी पड़ने लगता है। सब अखबारों में दिखायी पड़ने लगता है। प्रथम पृष्ठ पर दिखायी पड़ने लगता है। सब तरफ शोरगुल होने लगता है।
फिर एक दिन पद चला गया। फिर वह कहां खो जाता है, पता ही नहीं चलता! फिर तुम उसे खोजने निकलो, तो पता न चले!
यह उधार है, यह प्रतिष्ठा उधार है। यह ज्योति अपनी नहीं है। यह अपनी नहीं है; यह पद की है।
अगर तुम्हें राजा मिल जाए साधारण वस्त्रों में, तुम पहचान न सकोगे। तभी पहचानोगे, जब वह अपने मुकुट को बांधकर और अपने सिंहासन पर बैठेगा। तब पहचानोगे। नहीं तो नहीं पहचान सकोगे। राजा में कुछ और होता ही नहीं। तुम्हारे जैसा ही आदमी है। इस बात को प्रतिष्ठित करने के लिए ही तो इतने हीरे-जवाहरातों की जरूरत पड़ती है।
जब नेपोलियन हार गया, और उसके महलों की छानबीन की गयी, तो बड़े चकित हुए लोग। उसने जो सिंहासन बनवाया था, वह इस ढंग से बनवाया था; उसमें एक यंत्र लगाया हुआ था पीछे कि जब वह सिंहासन पर बैठता, तो सिंहासन अपने आप धीरे- धीरे ऊपर उठ जाता! चमत्कृत हो जाते थे लोग कि सिंहासन अपने आप ऊपर उठ रहा है!
वह यह दिखाने के लिए उसने लगवाया था कि सिंहासन की वजह से मैं प्रतिष्ठित नहीं; मेरी वजह से सिंहासन प्रतिष्ठित है। देखो, मेरे बैठते ही... ! पीछे इंतजाम था। जैसे ही वह बैठता, आदमी वहां बटनें दबाते; मशीन काम करती। वह ऊपर उठ जाता। वह दुनिया में अकेला सिंहासन था। लोग सोचते थेः चमत्कार है।
इसलिए तो लोग राजा को सदा भगवान का अवतार मानते रहे कि राजा भगवान का प्रतिनिधि है पृथ्वी पर। ऐसा कुछ भी नहीं है। वह आदमियों तक का प्रतिनिधि नहीं है। भगवान का तो प्रतिनिधि क्या होगा? उसके पास अपना कुछ नहीं है। सब उधार है। उसकी तलवार में उसकी ज्योति है। उसके सैनिकों में उसकी ज्योति है। उसके धन में उसकी ज्योति है! हीरे-जवाहरातों में ज्योति है। उसकी ज्योति अपनी नहीं है। राजनीति उधार ज्योति है।
इसलिए बुद्ध कहते हैंः "अलंकृत होने पर राजा तपता है।"

जब नेपोलियन को बंद कर दिया गया सेंट हेलेना के द्वीप में, तो वह सुबह घूमने निकला अपने डाक्टर के साथ पहले ही दिन। अब तो कैदी है, सम्राट नहीं रहा। हार गया सब। एक घास वाली औरत, जिस पगडंडी पर वह घूमने गया, घास का गट्ठर लिए आ रही है। नेपोलियन का साथी जो डाक्टर है, जो उसके पास रखा गया है उसकी सेवा इत्यादि के लिए, वह चिल्लाकर कहता हैः घसियारिन, रास्ता छोड़! उसकी बात सुनता है नेपोलियन और उसे याद आता है कि अब तो मैं एक कैदी हूं। वह हाथ पकड़ लेता है डाक्टर का। पगडंडी से नीचे उतर जाता है। डाक्टर कहता है, क्यों? वह कहता हैः वह जमाना गया, जब मैं कहता पहाड़ों से कि हट जाओ मैं आता हूं, तो पहाड़ हट जाते। अब घसियारिन भी नहीं हटेगी। हम ही को हट जाना चाहिए। वे दिन गए!
नेपोलियन जैसा शक्तिशाली आदमी भी एकदम नपुंसक हो जाता है। पद गया कि
सब गया। धन गया कि सब गया।
तो बुद्ध कहते हैंः राजा भी तपता है, लेकिन अलंकृत होने से।
"ध्यानी होने पर ब्राह्मण तपता है।"
राजा से बेहतर ब्राह्मण है। उसके भीतर की संपदा प्रगट होनी शुरू हुई। ध्यान उमगा। लेकिन ध्यान ऐसा हैः कभी होगा; कभी चूक जाएगा। ब्राह्मण, ध्यानी-- कभी-कभी बिजली जैसे कौंधे--ऐसी दशा है। बिजली कौंध जाती है; सब तरफ रोशनी हो जाती है। फिर बिजली चली गयी, तो सब तरफ अंधेरा हो जाता है। ध्यान का अर्थ हैः समाधि की कौंध। और जब ध्यान इतना गहरा हो जाता है
कि अब समाधि की तरह निश्चिंत हो गया, ठहर गया; अब जाता नहीं, आता नहीं। जब रोशनी थिर हो गयी, तो बुद्धत्व।
बुद्धत्व ब्राह्मण की पराकाष्ठा है। ध्यान है झलक, समाधि है उपलब्धि। "ध्यानी होने पर ब्राह्मण तपता है। बुद्ध रात-दिन अपने तेज से तपते हैं।"
और बुद्ध...

अथ सब्बमहोरत्तिं बुद्धो तपति तेजसा।

... उन पर कोई सीमा नहीं है। न तो ऐसी सीमा है, जैसी चांद-तारों पर। न ऐसी सीमा है, जैसे अलंकृत राजा पर। न ऐसी सीमा है, जैसे ध्यानी ब्राह्मण पर। उनकी सब सीमाएं समाप्त हो गयीं। वे प्रकाशमय हो गए हैं। वे प्रकाश ही हो गए हैं। वे तो मिट गए हैं, प्रकाश ही रह गया है।
यही दिशा होनी चाहिए। यही खोज होनी चाहिए। ऐसी ज्योति तुम्हारे भीतर प्रगट हो, जो दिन-रात जले; जीवन में जले, मृत्यु में जले; देह में जले; जब देह से मुक्त हो जाओ, तो भी जले। और ऐसी ज्योति, जो ईंधन पर निर्भर न हो, किसी तरह के ईंधन पर निर्भर न हो। जो निर्भर ही न हो। ऐसी ज्योति, जिसको संतों ने कहा--बिन बाती बिन तेल।
आज इतना ही।

एस धम्मो सनंतनो, भाग 12
एक सौ अठारह प्रवचन

समग्र संस्कृति का सृजन

पहला प्रश्नः पूर्व के और खासकर भारत के संदर्भ में एक प्रश्न बहुत समय से मेरा पीछा कर रहा है। वह यह कि जिन लोगों ने कभी दर्शन और चिंतन के, धर्म और ध्यान के गौरीशंकर को लांघा था, वे ही कालांतर में इतने ध्वस्त, और पतित, और विपन्न कैसे हो गए? ओशो, इस प्रश्न पर कुछ प्रकाश डालने की अनुकंपा करें।

यह स्वाभाविक ही था। अस्वाभाविक कभी होता भी नहीं। जो होता है, स्वाभाविक है। यह अनिवार्य था। यह होकर ही रहता। क्योंकि जब भी कोई जाति, कोई समाज एक अति पर चला जाता है, तो अति से लौटना पड़ेगा दूसरी अति पर। जीवन संतुलन में है, अतियों में नहीं। जीवन मध्य में है और आदमी का मन डोलता है पेंडुलम की भांति। एक अति से दूसरी अति पर चला जाता है। भोगी योगी हो जाते हैं; योगी भोगी हो जाते हैं। और दोनों जीवन से चूक जाते हैं।
जीवन है मध्य में, जहां योग और भोग का मिलन होता है; जहां योग और भोग गले लगते हैं। जो शरीर को ही मानता है, वह आज नहीं कल अध्यात्म की तरफ यात्रा शुरू कर देगा। पश्चिम में अध्यात्म की बड़ी प्रतिष्ठा होती जा रही है रोज। कारण? कारण वही है--शाश्वत कारण।
तीन सौ वर्षों से निरंतर पश्चिम पदार्थवादी है। पदार्थ के अतिरिक्त
और कुछ भी नहीं है। आत्मा नहीं है; परमात्मा नहीं है। देह सब कुछ है। इन तीन सौ साल की इस धारणा ने एक अति पर पश्चिम को पहुंचा दिया; पदार्थवाद की आखिरी ऊंचाई पर पहुंचा दिया। धन है; विज्ञान है; सुख-सुविधाएं हैं।
लेकिन अति पर जब आदमी जाता है, तो उसकी आत्मा का गला घुटने लगा। शरीर
तो सब तरह से संपन्न है; आत्मा विपन्न होने लगी। और कितनी देर तक तुम आत्मा की विपन्नता को झेल पाओगे? आज नहीं कल आत्मा बगावत करेगी और तुम्हें दूसरी दिशा में मुड़ना ही पड़ेगा।
इसलिए अगर पश्चिम पूरब की तरफ आ रहा है, तो तुम यह मत सोचना कि यह पूरब
की कोई खूबी है। ऐसा तुम्हारे तथाकथित महात्मा समझते हैं। तुम्हारे राजनेता भी यही बकवास करते रहते हैं। वे सोचते हैंः पश्चिम के लोग पूरब की तरफ आ रहे हैं; देखो, हमारी महिमा!
तुम्हारी महिमा का इससे कोई संबंध नहीं है। पश्चिम अगर पूरब की तरफ आ रहा है, तो पदार्थवाद की अति के कारण आ रहा है। एक अति देख ली; वहां कुछ पाया नहीं। वहां शरीर तो ठीक रहा, आत्मा घुट गयी।
और आदमी दोनों का जोड़ है। आदमी दोनों का मिलन है। आदमी न तो शरीर है, न आत्मा है। आदमी, दोनों के बीच जो स्वर पैदा होता है, वही है। दोनों के बीच जो लयबद्धता है, वही है। शरीर और आत्मा का नाच है आदमी। साथ-साथ दोनों नाच रहे हैं। उस नृत्य का नाम आदमी है। और जब नृत्य पूरा होता है, शरीर और आत्मा दोनों संयुक्त होते हैं, तब तृप्ति है।
ऐसा ही पूरब में घटा। आत्मा--आत्मा--आत्मा। संसार माया है, झूठ है, असत्य है। शरीर है ही नहीं, सपना है। एक अति पैदा कर दी। तो आत्मा की ऊंचाई को तो छुआ, लेकिन शरीर तड़फने लगा, जैसी मछली तड़फती है प्यासी--धूप में, रेत पर--ऐसी भारत की देह घुटने लगी। उस देह की घुटन का यह परिणाम हुआ, जो आज सामने है।
तो आदमी का संतुलन जब भी टूटेगा, तब विपरीत दिशा की तरफ यात्रा शुरू
हो जाती है।
इसलिए फिर दोहराता हूंः यहां योगी भोगी हो जाते हैं; भोगी योगी हो जाते हैं। दोनों चूक जाते हैं। क्योंकि दोनों रोगी हैं। रोग का मतलब--अति। योगी आत्मा की अति से पीड़ित है। भोगी शरीर की अति से पीड़ित है। दोनों में भेद नहीं है। दोनों अतियों से पीड़ित हैं। एक ने शरीर को घोंट डाला है; एक ने आत्मा को घोंट डाला है। लेकिन दोनों ने जीवन की परिपूर्णता को अंगीकार नहीं किया है।

मैं तुम्हें वही सिखा रहा हूं कि जीवन की परिपूर्णता को अंगीकार करो। इनकार मत करना कुछ। तुम देह भी हो; तुम आत्मा भी हो। और तुम दोनों नहीं भी हो। तुम्हें दोनों में रहना है और दोनों में रहकर दोनों के पार भी जाना है। तुम न तो भौतिकवादी बनना, न अध्यात्मवादी बनना। दोनों भूलें बहुत हो चुकीं हैं। जमीन काफी तड़फ चुकी है। तुम अब दोनों का समन्वय साधना; दोनों के बीच संगीत उठाना। दोनों का मिलन बहुत प्यारा है। दोनों के मिलन को मैं धर्म कहता हूं।
ये तीन शब्द समझोः भौतिकवादी--नास्तिक। तथाकथित आत्मवादी-- आस्तिक। दोनों के मध्य में, जहां न तो तुम आस्तिक हो, न तो नास्तिक; जहां हां और ना का मिलन हो रहा है--जैसे दिन और रात मिलते हैं संध्या में; जैसे सुबह रात और दिन मिलते हैं--ऐसे जहां हां और ना का मिलन हो रहा है; जहां तुम नास्तिक भी हो, आस्तिक भी, क्योंकि तुम जानते होः तुम दोनों का जोड़ हो। देह को इनकार करोगे, आज नहीं कल देह बगावत करेगी। आत्मा को इनकार करोगे, आत्मा बगावत करेगी। और बगावत ही पतन का कारण होता है।
प्रश्न सार्थक है। पूरब ने बड़ी ऊंचाइयां पायीं, लेकिन ऊंचाइयां अपंग थीं। जैसे कोई पक्षी एक ही पंख से आकाश में बहुत ऊपर उड़ गया। कितने ऊपर जा सकेगा? और कितनी दूर जा सकेगा एक ही पंख से? शायद थोड़ा तड़फ ले। थोड़ा हवाओं के रुख पर चढ़ जाए। शायद थोड़ी दूर तक अपने को खींच ले। लेकिन यह ज्यादा देर नहीं होने वाला है। तुम एक पंख देखकर ही कह सकते हो कि यह पक्षी गिरेगा। इसका गिरना अनिवार्य है।
उड़ान होती है दो पंखों पर। लंगड़ा आदमी भी चल लेता है। मगर उसका चलना
और दो पैर से चलने में बड़ा फर्क है। लंगड़े आदमी का चलना कष्टपूर्ण है।
लंगड़ा आदमी मजबूरी में चलता है। और जिसके पास दोनों पैर हैं और स्वस्थ हैं, वह कभी-कभी बिना कारण के दौड़ता है; नाचता है। कहीं जाना नहीं है, तो भी घूमने के लिए निकलता है।
उन दो पैरों के मिलन में जो आनंद है, वह आनंद अपने आप में परिपूर्ण है। इसलिए मैं अपने संन्यासी को संसार छोड़ने को नहीं कह रहा हूं। संसार छोड़कर देख लिया गया। जिन्होंने संसार छोड़ा वे बड़ी बुरी तरह गिरे, मुंह के बल गिरे। मैं अपने संन्यासी को संसार ही सब कुछ है, ऐसा भी नहीं कह रहा हूं। जिन्होंने संसार को सब कुछ माना, वे भी बुरी तरह गिरे।
मैं तुमसे कहता हूंः संसार और संन्यास दोनों के बीच एक लयबद्धता बनाओ। घर में रहो, और ऐसे जैसे मंदिर में हो। दुकान पर बैठो, ऐसे जैसे पूजागृह में। बाजार में और ऐसे जैसे हिमालय पर हो। भीड़ में और अकेले। चलो संसार में और संसार का पानी तुम्हें छुए भी नहीं, ऐसे चलो। ऐसे होशपूर्वक चलो। तब स्वास्थ्य पैदा होता है।
परमात्मा ने तुम्हें शरीर और आत्मा दोनों बनाया है। और तुम्हारे महात्मा तुम्हें समझा रहे हैं कि तुम सिर्फ आत्मा हो! लाख तुम्हारे महात्मा समझाते रहें कि तुम सिर्फ आत्मा हो, कैसे झुठलाओगे इस सत्य को जो परमात्मा ने तुम्हें दिया है कि तुम देह भी हो!
तुम्हारा महात्मा भी इसको नहीं झुठला पाता। जब भूख लगती है, तब वह नहीं कहता कि मैं देह नहीं हूं। तब चला भिक्षा मांगने! उससे कहो कि संसार माया है, कहां जा रहे हो? वहां है कौन भिक्षा देने वाला? भिक्षा की जरूरत क्या है? आप तो देह हैं ही नहीं। शिवोऽहं--आप तो शिव हैं; आप कहां जा रहे हैं? देह है कहां? देह तो सपना है।
अगर महात्मा से यह कहोगे, तब तुम्हें पता चलेगा। महात्मा को भी भिक्षा मांगने जाना पड़ता है। भोजन जुटाना पड़ता है। सर्दी लगती है, तो कंबल ओढ़ना पड़ता है। और सब माया है! शरीर माया! कंबल माया! गर्मी लगती है, तो पसीना आता है, प्यास लगती है। बीमारी होती है, तो औषधि की जरूरत होती है। यह महात्मा किस झूठ में जी रहा है जो कहता है कि शरीर माया है? इससे बड़ा और झूठ क्या होगा?
और फिर दूसरी तरफ लोग हैं, जो कहते हैं कि शरीर ही सब कुछ है, आत्मा कुछ
भी नहीं है। इनसे जरा पूछो कि जब कोई तुम्हें गाली दे देता है, तो तकलीफ क्यों होती है? पत्थर को गाली दो, पत्थर को कोई तकलीफ नहीं होती है। और जब

कोई वीणा पर संगीत छेड़ देता है, तब तुम प्रफुल्लित और मग्न क्यों हो जाते हो? पत्थर तो नहीं होता मग्न और प्रफुल्लित!
तुम्हारे भीतर कुछ होना चाहिए, जो पत्थर में नहीं है, जो प्रफुल्लित होता है, मग्न होता है। सुबह सूरज को देखकर जो आह्लादित होता है। रात आकाश में चांद-तारों को देखकर जिसके भीतर एक अपूर्व शांति छा जाती है।
यह कौन है? देह के तो ये लक्षण नहीं हैं। देह को तो पता भी नहीं चलता, कहां चांद; कहां सूरज! कहां सौंदर्य; कहां शांति!
तुम्हारे भीतर एक और आयाम भी है। तुम्हारे भीतर कुछ और भी है।
ऐसा समझोः चट्टान है। यह बाहर ही बाहर है। इसके भीतर कुछ भी नहीं है।
तुम इसको कितना ही खोदो, इसके भीतर नहीं जा सकोगे। इसके भीतर जैसी चीज है ही नहीं। चट्टान तो बस बाहर ही बाहर है।
फिर चट्टान के बाद गुलाब का फूल है। गुलाब में थोड़ा भीतर कुछ है।
पखुड़ी ही पखुड़ी नहीं है। पखुड़ियों से ज्यादा कुछ है। जब तुम चट्टान को देखते हो, तो चट्टान साफ-सुथरी है। सीधी-साफ है। एकांगी है। जब तुम गुलाब के फूल को देखते हो, तो वह इतना एकांगी नहीं है। कुछ और है। जीवन की झलक है। सौंदर्य है। एक सरगम है।
फिर तुम एक पक्षी को उड़ते देखते हो। इसमें कुछ और ज्यादा है। पक्षी अगर तुम्हारे पास आ जाएगा, तो तुम पाओगेः इसमें कुछ और ज्यादा है। ज्यादा पास आने में डरता है। गुलाब का फूल नहीं डरता। तुम पकड़ने की कोशिश करो, पक्षी उड़ जाता है। गुलाब का फूल नहीं उड़ जाता। पक्षी की आंखें तुम्हारी तरफ देखती हैं, तो तुम जानते हो, इसके भीतर कुछ है, कोई है।
फिर एक मनुष्य है। जब तुम एक मनुष्य को देखते हो, तो तुम जानते होः देह
ही सब कुछ नहीं है। भीतर गहराई है। इसकी आंखों में झांको, तो तुम्हें पता चलता हैः देह ही नहीं है; आत्मा है।
और फिर कभी एक बुद्ध जैसा व्यक्ति है, जिसके भीतर अनंत गहराई है--कि तुम झांकते जाओ, झांकते जाओ और पार नहीं है। चट्टान में कुछ भी भीतर नहीं है। बुद्ध में भीतर--और भीतर--और भीतर। इस भीतर का नाम ही आत्मा है। यह जो भीतर का आयाम है, इसका नाम ही आत्मा है।
जो कहता हैः मैं सिर्फ शरीर हूं, वह अपनी गहराई को इनकार कर रहा है। वह परेशानी में पड़ेगा। जो कहता हैः मैं सिर्फ आत्मा हूं, वह अपने बाहर को इनकार कर रहा है। यह परेशानी में पड़ेगा। तुम बाहर-भीतर का मेल हो। और अपूर्व मेल घट रहा है तुम्हारे भीतर।
यही तो रहस्य है इस जगत का कि यहां विरोधाभास मिल जाते हैं; एक-दूसरे में डूब जाते हैं। यहां विरोधाभास आलिंगन करते हैं।
भारत नष्ट हुआ; होना ही था। अमरीका भी नष्ट हो रहा है; होना ही है।
क्योंकि अब तक मनुष्य समग्र संस्कृति पैदा नहीं कर पाया। अब तक मनुष्य पूर्ण संस्कृति पैदा नहीं कर पाया--ऐसी संस्कृति जहां सब स्वीकार हो।
जहां प्रेम भी स्वीकार हो और ध्यान भी स्वीकार हो।
ख्याल रखनाः ध्यान यानी आत्मा; ध्यान यानी भीतर जाने का मार्ग। और प्रेम यानी बाहर जाने का मार्ग। जब तुम प्रेम करते हो, तो किसी से करते हो। और जब ध्यान करते हो, तो सबसे टूट जाते हो; अकेले हो जाते हो। ध्यान यानी एकांत। जब तुम ध्यान में हो, तब तुम आंख बंद कर लेते हो। तुम बाहर को भूल जाते हो। तुम अपनी देह को भी विस्मृत कर देते हो। संसार गया। तुम अपने भीतर जीते हो; भीतर धड़कते हो। चैतन्य में और गहरे उतरते जाते हो।
जब तुम प्रेम में उतरते हो, तो अपने को भूल जाते हो; तब दूसरे पर आंख टिक जाती है। तुम्हारी प्रेयसी या तुम्हारा प्रेमी, तुम्हारा बेटा या तुम्हारी मां, तुम्हारा मित्र, जिससे तुम प्रेम करते हो, वही सब कुछ हो जाता है। सारी आंख उस पर टिक जाती है। तुम अपने को विस्मृत कर देते हो। स्व को भूल जाते हो, पर को याद करते हो प्रेम में। ध्यान में पर को भूल जाते हो; स्व को याद करते हो।
पूरब ने ध्यान की ऊंचाई पायी, प्रेम में चूक गया। प्रेम में चूक गया,
तो पतन होना निश्चित था। क्योंकि प्रेम भोजन है, अत्यंत जरूरी; अत्यंत पौष्टिक भोजन है। उसके बिना कोई नहीं जी सकता।

प्रेम ऐसे ही है, जैसे सांस लेना। बाहर से ही लोगे न सांस! और तो कोई उपाय नहीं है। अगर बाहर से सांस लेना बंद कर दोगे, तो शरीर घुट जाएगा। और बाहर से प्रेम आना बंद हो जाएगा और जाना बंद हो जाएगा, तो आत्मा घुट जाएगी। भारत की आत्मा घुट गयी प्रेम के अभाव में।
पश्चिम ने प्रेम को तो खूब फैलाया है, लेकिन ध्यान का उसे कुछ पता नहीं है। इसलिए प्रेम छिछला है, उथला है। उसमें कोई गहराई नहीं है। उसमें गहराई हो ही नहीं सकती, क्योंकि आदमी स्वीकार ही नहीं करता है कि हमारे भीतर कोई गहराई है। तो प्रेम ऐसे ही है, जैसे और सारे छोटे-मोटे काम हैं। एक मनोरंजन है; शरीर का थोड़ा विश्राम; उलझनों से थोड़ा छुटकारा। लेकिन कोई गहराई की संभावना नहीं है; आंतरिकता नहीं है।
दो प्रेमी बस एक-दूसरे की शारीरिक जरूरत पूरी कर रहे हैं; आत्मिक कोई जरूरत है ही नहीं। तो जिस दिन शरीर की जरूरतें पूरी हो गयीं या शरीर थक गया, तो एक-दूसरे से अलग हो जाने के सिवाय कोई उपाय नहीं है। क्योंकि भीतर तो कोई जोड़ हुआ ही नहीं था। आत्माएं तो कभी मिली नहीं थीं। आत्माएं तो स्वीकृत ही नहीं हैं। तो बस, हड्डी-मांस-मज्जा का मिलन है। गहरा नहीं हो सकता।
पश्चिम ने ध्यान को छोड़ा है, तो प्रेम उथला है। पश्चिम भी गिरेगा; गिर रहा है। गिरना शुरू हो गया है। एक शिखर छू लिया अति का, अब भवन खंडहर हो रहा है। यह अति का परिणाम है।
मैं तुम्हें चाहूंगा कि तुम जानो कि तुम्हारे भीतर ध्यान की क्षमता
हो और तुम्हारे भीतर प्रेम की क्षमता हो। ध्यान तुम्हें अपने में ले जाए; प्रेम तुम्हें दूसरे में ले जाए। और जितना ध्यान तुम्हारा अपने भीतर गहरा होगा, उतनी तुम्हारी प्रेम की पात्रता बढ़ जाएगी, योग्यता बढ़ जाएगी। और जितनी तुम्हारी प्रेम की पात्रता और योग्यता बढ़ेगी, उतना ही तुम पाओगेः तुम्हारा ध्यान में और गहरे जाने का उपाय हो गया। इन दोनों पंखों से उड़ो, तो परमात्मा दूर नहीं है।
अब तक कोई संस्कृति नहीं बन सकी, दुर्भाग्य से, जो दोनों को स्वीकार करती हो। नहीं बनी; नहीं बनाने का उपाय हुआ, उसका भी कारण है। क्योंकि दोनों को मिलाने के लिए मुझ जैसा पागल आदमी चाहिए!
दोनों विरोधी हैं। दोनों तर्क में बैठते नहीं हैं! एक के साथ तर्क बिल्कुल ठीक बैठ जाता है। एक को चुनो तो बात बिल्कुल रेखाबद्ध, साफ-सुथरी मालूम होती है। दोनों को चुनो, तो दोनों विपरीत हैं, तो फिर व्यवस्था नहीं बनती; दर्शनशास्त्र निर्मित नहीं होता।
इसलिए मैं कोई दर्शनशास्त्र निर्मित नहीं कर रहा हूं। मैं सिर्फ जीवन
को एक छंद दे रहा हूं--दर्शनशास्त्र नहीं। मैं जीवन को एक काव्य दे रहा हूं--दर्शनशास्त्र नहीं। मैं जीवन को प्रेम करता हूं--सिद्धांतों को नहीं। अगर सिद्धांतों में मेरा रस हो, तो मुझे भी उसी जाल में पड़ना पड़ेगा, जिस जाल में पहले सारे लोग पड़ चुके हैं। क्योंकि सिद्धांत की अपनी एक व्यवस्था है।
सिद्धांत कहता हैः शरीर है, तो आत्मा नहीं हो सकती। क्योंकि तब सिद्धांत के ऊपर शरीर की सीमा आरोपित हो जाती है। तब सिद्धांत कहता हैः अगर आत्मा भी हो, तो शरीर जैसी ही होनी चाहिए। कहां है? दिखायी नहीं पड़ती, जैसा शरीर दिखायी पड़ता है। कहां है? शरीर का तो वजन तौला जा सकता है, आत्मा किसी तराजू पर तुलती नहीं। कहां है तुम्हारी आत्मा? हम शरीर को छिन्न-भिन्न करके देख डालते हैं, हमें कहीं उसका पता नहीं चलता।
जिसने कहा शरीर है, उसने एक तर्क स्वीकार कर लिया कि जो भी होगा, वह शरीर जैसा होना चाहिए, तो ही हो सकता है। अब आत्मा नहीं हो सकती, क्योंकि आत्मा बिल्कुल भिन्न है, विपरीत है।
जिसने मान लिया कि आत्मा है, वह भी इसी झंझट में पड़ता है। जब आत्मा को मान लिया, कहाः अदृश्य सत्य है, तो फिर दृश्य झूठ हो जाएगा।
तर्क को सुव्यवस्थित करने की ये अनिवार्यताएं हैं। अगर अदृश्य सत्य है, असीम सत्य है, तो फिर सीमित का क्या होगा? फिर जो दिखायी पड़ता है, दृश्य

है, उसका क्या होगा? जो छुआ जा सकता है, स्पर्श किया जा सकता है, उसका क्या होगा? तुमने अगर अदृश्य को स्वीकार किया, तो दृश्य को इनकार करना ही होगा। इसलिए तुम यह बात जानकर चौंकोगे कि कार्ल मार्क्स और शंकराचार्य में बहुत भेद नहीं है। कार्ल मार्क्स कहता हैः शरीर है केवल। और शंकराचार्य कहते हैंः आत्मा है केवल! दोनों में कुछ भेद नहीं है। दोनों का तर्क एक ही है कि एक ही हो सकता है। दोनों अद्वैतवादी हैं। दोनों की तर्क-सरणी में जरा भी भेद नहीं है। यद्यपि दोनों एक-दूसरे से विपरीत बात कह रहे हैं, लेकिन मेरे हिसाब से दोनों एक ही स्कूल के हिस्से हैं; एक ही संप्रदाय के हिस्से हैं। क्यों? क्योंकि दोनों ने एक बात स्वीकार कर ली है कि एक ही हो सकता है। और जब एक हो सकता है, तो उससे विपरीत कैसे होगा?
और मैं तुमसे यह कहना चाहता हूं कि जीवन विपरीत पर खड़ा है। जैसे कि राज जब मकान बनाता है, तो दरवाजों में देखा है, ईंटें चुनता है; दोनों तरफ से विपरीत ईंटें लगाता है। विपरीत ईंटों को लगाकर ही दरवाजा बनता है। नहीं तो बन ही नहीं सकता। अगर एक ही दिशा में सब ईंटें लगा दी जाएं, मकान गिरेगा। खड़ा नहीं रह सकेगा। विपरीत ईंटें एक-दूसरे को सम्हाल लेती हैं। एक-दूसरे की चुनौती, एक-दूसरे का तनाव ही उनकी शक्ति है।
जीवन को तुम सब तरफ से देखो, हर जगह द्वंद्व पाओगे। स्त्री है और पुरुष है। द्वंद्व है। उन दोनों के बीच ही बच्चे का जन्म है। नया जीवन उन्हीं के बीच बहता है। जैसे नदी दो किनारों के बीच बहती है। ऐसे स्त्री- पुरुष के किनारों के बीच जीवन की नयी धारा बहती रहती है।
परमात्मा को अकल होती, तो पुरुष ही पुरुष बनाता! अकल होती, तो स्त्रियां ही स्त्रियां बनाता। अगर शंकराचार्य को बनाना पड़े, तो वे एक ही बनाएंगे। मार्क्स को बनाना पड़े, वह भी एक ही बनाएंगे। ये दोनों अद्वैतवादी हैं। दोनों में कुछ भेद नहीं है। एक घोषणा करता हैः परमात्मा माया है; संसार सत्य है। एक घोषणा करता हैः परमात्मा सत्य है; संसार माया है। मगर तर्क एक ही है।
जीवन को देखो जरा। यहां सब द्वंद्व पर खड़ा है। जन्म और मृत्यु साथ-साथ हैं। जुड़े हैं। उलटे हैं और जुड़े हैं! रात और दिन साथ-साथ हैं। गर्मी और सर्दी साथ-साथ हैं। उलटे हैं और जुड़े हैं! यहां तुम जहां भी जीवन को खोजोगे, वहीं तुम पाओगेः द्वंद्व मौजूद है। जीवन द्वंद्वात्मक है, डायलेक्टिकल है।
मैं जीवन का पक्षपाती हूं। जीवन जैसा है, वैसा तुम्हें खोलकर कह देता हूं। मुझे कोई जीवन पर सिद्धांत नहीं थोपना है। सिद्धांत हो, तो आदमी हमेशा ही सिद्धांत का पक्षपाती होता है। उसके सिद्धांत के अनुकूल जो पड़ता है, वह चुन लेता है; जो अनुकूल नहीं पड़ता, वह छोड़ देता है।
मेरा कोई सिद्धांत नहीं है। मेरी आंख कोरी है। मैं कुछ तय करके नहीं चला हूं कि ऐसा होना चाहिए। मेरे पास कोई तर्क नहीं है, कोई तराजू नहीं है। जीवन जैसा है, वैसा का वैसा तुमसे कह रहा हूं। और जीवन विरोधाभासी है, इसलिए मैं विरोधाभासी हूं। इसलिए मेरे वक्तव्य सब विरोधाभासी हैं। मैंने जीवन को झलकाया है। मैंने दर्पण का काम किया है।
अब तक समग्र संस्कृति पैदा नहीं हो सकी, क्योंकि दार्शनिकों के हाथ
से संस्कृतियां पैदा हुई हैं। संस्कृति पैदा होनी चाहिए कवियों के द्वारा; और तब उनमें एक समग्रता होगी। सिद्धांतवादी कभी समग्र नहीं हो सकते।
इसलिए मैं समस्त सिद्धांतों के त्याग का पक्षपाती हूं। छोड़ो सिद्धांतों को; जीवन को देखो। और जैसा जीवन है, वैसा जीवन है; इसको अंगीकार करो। इसी अंगीकार में गति है, विकास है। और इसी अंगीकार में तुम्हारे भीतर परम घटेगा। और वह परम दरिद्र नहीं होगा, दीन नहीं होगा।
शंकराचार्य का परम दरिद्र है। उसमें पदार्थ को झेलने की क्षमता नहीं है। वह पदार्थ को इनकार करता है। मार्क्स का परम भी गरीब है, दीन है, दरिद्र है। उसमें आत्मा को स्थान नहीं है।
मेरा परम, परम समृद्ध है। मैं इसीलिए उसे ईश्वर कहता हूं। ईश्वर से मेरा मतलब हैः ऐश्वर्यवान। परम समृद्ध है। सब द्वंद्वों का मेल है।

ईश्वर इकतारा नहीं है; जैसा कि तुम्हारे साधु-संन्यासी इकतारा लिए घूमते हैं! उसका कारण है, इकतारा रखने का। एक की खबर देने के लिए एक तार रखते हैं। ईश्वर बहुतारा है। उसके बहुत तार हैं। बड़े रंग, बड़े रूप हैं। ईश्वर सतरंगा है, इंद्रधनुषी है। तुम अपने एकांगी आग्रहों को अगर न थोपो, तो तुम्हें जीवन में इतने रंग दिखायी पड़ेंगे! इतनी विविधता है जीवन में कि जिसका हिसाब नहीं। और इस विविधता में ही ऐश्वर्य है। इस विविधता में ही ईश्वर छिपा है।
अगर ईश्वर इकतारा हो, तो उबाने वाला होगा। ऊब पैदा करेगा। रस चुकता ही कहां है जीवन का! कभी नहीं चुकता। ऊब कभी पैदा होती ही नहीं जीवन से। जिसको हो जाती है, उसने कुछ इकतारा ले रखा होगा। जिसने खुली आंखें रखीं और जीवन के सतरंगे रूप देखे; सब रूप देखे--शुभ और अशुभ, अच्छा और बुरा, प्रीतिकर-अप्रीतिकर--सब अंगीकार किया; मधुशाला से लेकर मंदिर तक जिसे सब स्वीकार है, ऐसा व्यक्ति ईश्वर के इंद्रधनुष को देखने में समर्थ हो पाता है। शराबी से लेकर साधु तक जिसे सब स्वीकार है... ।
क्योंकि हैं तो सब उसी के रूप। वह जो शराबी जा रहा है लड़खड़ाता हुआ, वह
भी उसी का रूप है। और वह जो साधु बैठा है वृक्ष के शांत, मौन, एकांत में, वह भी उसी का रूप है। महावीर भी उसी के रूप हैं; और मजनू में भी वही छिपा है। इतनी विराट दृष्टि हो, तो समग्र संस्कृति पैदा हो सकती है।
इसीलिए तो यहां जो एकांगी संस्कृति के लोग हैं, वे आ जाते हैं, उनको बड़ी अड़चन होती है। कभी-कभी कोई कम्युनिस्ट आ जाता है। वह मुझसे कहता हैः और तो सब बात ठीक है, लेकिन आप अगर आत्मा, ईश्वर की बात न करें... । और सब बात ठीक है। ये उत्सव, ये नृत्य, ये सब ठीक हैं; मगर ईश्वर, परमात्मा को क्यों बीच में लाते हैं? अगर ये आप बीच में न लाएं, तो हम भी आ सकते हैं।
पुराने ढब का साधु-संन्यासी भी कभी-कभी आ जाता है। वह कहता हैः और सब
तो ठीक है; आप ईश्वर-आत्मा की जो बात करते हैं, वह बिल्कुल जमती है। मगर यह नृत्य-गान, यह प्रेम की हवा, यह माहौल; ये युवक-युवतियां हाथ में हाथ डाले हुए चलते हुए, नाचते हुए, यह जरा जंचता नहीं! अगर यह आप बंद करवा दें, तो हम सब आपके शिष्य होने को तैयार हैं।
ये एकांगी लोग हैं। इनमें से दोनों का मुझसे कोई संबंध नहीं बन सकता।
यह जो प्रयास यहां हो रहा है, आज तुम्हें इसकी गरिमा समझ में नहीं आएगी। हजारों साल लग जाते हैं किसी बात को समझने के लिए।
यह जो प्रयोग यहां चल रहा है, अगर यह सफल हुआ, जिसकी संभावना बहुत कम है; क्योंकि वे एकांगी लोग काफी शक्तिशाली हैं। उनकी भीड़ है। और सदियां उनके पीछे खड़ी हैं। अगर यह प्रयोग सफल हुआ, तो हजारों साल लगेंगे, तब कहीं तुम्हें दिखायी पड़ेगा कि क्या मैं कर रहा था! जब यह पूरा भवन खड़ा होगा... । अभी तो नींव भी नहीं भरी गयी है। मुझे दिखायी पड़ता है पूरा भवन कि अगर बन जाएगा, तो कैसा होगा। तुम्हें तो सिर्फ इतना ही दिख पाता है कि कुछ गड्ढे खोदे जा रहे हैं; कुछ नींवें भरी जा रही हैं; कुछ ईंटें लायी जा रही हैं।
तुम्हें कुछ और दिखायी नहीं पड़ता। हजारों साल लगते हैं।
लेकिन समय आ गया है।
विक्टर ह्यूगो का एक प्रसिद्ध वचन हैः जब किसी विचार के लिए समय आ जाता है, तो दुनिया की कोई शक्ति उसे रोक नहीं सकती। समय की बात है।
वसंत आ गया है इस फूल के खिलने का। दुनिया थक गयी है प्रयोग कर-करके एकांगी। और हर बार एकांगी प्रयोग असफल हुआ है। अब हमें बहुरंगी प्रयोग कर लेना चाहिए। अब हम ऐसा संन्यासी पैदा करें, जो संसारी हो। और ऐसा संसारी पैदा करें, जो संन्यासी हो।
अब हम ऐसे ध्यानी पैदा करें, जो प्रेम कर सकें। और ऐसे प्रेमी पैदा करें, जो ध्यान कर सकें।

दूसरा प्रश्नः क्या मैं शूद्र होकर भी आपका शिष्य हो सकता हूं? क्या मुझ एकलव्य को आप स्वीकार करेंगे?

पहली तो बातः मैं द्रोणाचार्य नहीं हूं। द्रोणाचार्य, मेरे लिए, थोड़े
से गंदे नामों में से एक है। और गंदा इसीलिए नाम हो गया--एकलव्य को अस्वीकार करने के कारण।
द्रोणाचार्य को गुरु भी नहीं कहना चाहिए। और अगर वे गुरु रहे होंगे,
तो उसी अर्थों में जिस तरह स्कूल के मास्टर को हम गुरु कहते हैं। उनमें कुछ गुरुत्व नहीं था। शुद्ध राजनीति थी।
एकलव्य को इनकार कर दिया, क्योंकि वह शूद्र था। लेकिन उससे भी ज्यादा भीतर राजनीति थी। वह थी कि वह अर्जुन से आगे निकल सकता था, ऐसी क्षमता थी उसकी। राजपुत्र से कोई आगे निकल जाए, और शूद्र आगे निकल जाए क्षत्रिय से-- यह द्रोणाचार्य के ब्राह्मण को बर्दाश्त न था।
फिर नौकर थे राजा के। उसके बेटे को ही दुनिया में सबसे बड़ा धनुर्धर बनाना था। जिसका नमक खाया, उसकी बजानी थी। गुलाम थे। एकलव्य को इनकार किया--यह देखकर कि इस युवक की क्षमता दिखायी पड़ती थी कि यह अर्जुन को पानी पिला दे! इसने पानी पिलाया होता। इसने वैसे भी पानी पिला दिया। इनकार करने के बाद भी पिला दिया पानी!
तो इनकार कर दिया। यह तो बहाना था कि शूद्र हो। इस बहाने के पीछे गहरा राजनैतिक दांव था। वह यह था कि मेरा विशिष्ट शिष्य अर्जुन दुनिया में सर्वाधिक प्रथम हो। सबसे ऊपर हो।
फिर राजपुत्र ऊपर हो, तो मुझे कुछ लाभ है। यह शूद्र अगर ऊपर भी हो गया,
तो इससे मिलना क्या है? इनकार कर दिया।
लेकिन एकलव्य अदभुत था। द्रोणाचार्य, मेरे लिए गंदे नामों में से एक है। एकलव्य, मुझे बहुत प्यारे नामों में से एक है। अपूर्व शिष्य था, शिष्य जैसे होने चाहिए। द्रोणाचार्य ऐसे गुरु, जैसे गुरु नहीं होने चाहिए। एकलव्य ऐसा शिष्य, जैसे शिष्य होने चाहिए।
कोई फिकर न की। मन में शिकायत भी न लाया। यह राजनीति दिखायी भी पड़ गयी होगी। लेकिन जिसको गुरु स्वीकार कर लिया, उसके संबंध में क्या शिकायत करनी! जाकर मूर्ति बना ली जंगल में। मूर्ति के सामने ही कर लूंगा।...
जरा भी शिकायत नहीं है! क्रोध नहीं है। जिसको गुरु स्वीकार कर लिया, स्वीकार कर लिया। अगर गुरु अस्वीकार कर दे, तो भी शिष्य कैसे अस्वीकार कर सकता है? शिष्य ने तो सोचा होगाः शायद इसमें ही मेरा हित है! इसीलिए उन्होंने अस्वीकार कर दिया।
गुरु राजनीतिज्ञ था। शिष्य धार्मिक था। उसने सोचाः मेरा इनकार किया,
तो जरूर मेरा हित ही होगा। इससे कुछ लाभ ही होने वाला होगा। नहीं तो वे क्यों इनकार करते!
मूर्ति बनाकर मूर्ति की पूजा करने लगा और मूर्ति के सामने ही धनुर्विद्या का अभ्यास शुरू कर दिया। इतनी भावना हो, ऐसी आस्था, ऐसी श्रद्धा हो, तो गुरु की जरूरत भी क्या है? श्रद्धा की कमी है, इसलिए गुरु की जरूरत है।
तो बिना गुरु के भी पहुंच गया। मूर्ति से भी पहुंच गया। श्रद्धा हो,
तो मूर्ति जीवंत हो जाती है। और श्रद्धा न हो, तो जीवित गुरु भी मूर्ति ही रह जाता है। सब तुम्हारी श्रद्धा पर निर्भर है।
इस मूर्ति को ही मान लिया कि यही गुरु है। तुम देखते रहना--मूर्ति को कहता होगा--मैं अभ्यास करता हूं; कहीं भूल-चूक हो, तो चेता देना। कहीं जरूरत पड़े, तो रोक देना।
इस अपूर्व प्रक्रिया में वह उस जगह पहुंच गया, जहां अर्जुन फीका पड़ गया। खबरें उड़ने लगीं कि एकलव्य का निशाना अचूक हो गया है। ऐसा अचूक निशाना कभी किसी का देखा नहीं!
ऐसी श्रद्धा हो, तो निशाना अचूक होगा ही। यह श्रद्धा का निशाना है, यह चूक ही कैसे सकता है? और जिसको मूर्ति पर इतनी श्रद्धा है, स्वभावतः उसे अपने पर इतनी ही श्रद्धा है।
तुम्हारी श्रद्धा दूसरे पर तभी होती है, जब तुम्हें आत्म-श्रद्धा होती है। तुम्हारी श्रद्धा उतनी ही होती है दूसरे पर, जितनी तुम्हारे भीतर होती है; जितनी तुम्हें स्वयं पर होती है। जिस आदमी को अपने पर

श्रद्धा नहीं है, उसको अपनी श्रद्धा पर भी कैसे श्रद्धा होगी? जिस आदमी को अपने पर श्रद्धा है, वही अपनी श्रद्धा पर श्रद्धा कर सकेगा। वहीं से सब चीजें शुरू होंगी। श्रद्धा पहले भीतर होनी चाहिए।
एकलव्य अपूर्व रहा होगा। इसी श्रद्धा को देखकर ही तो द्रोण चौंके होंगे कि यह आदमी खतरनाक सिद्ध हो सकता है। इसकी आंखों में उन्हें झलक दिखायी पड़ी होगी, लपट दिखायी पड़ी होगी।
लेकिन वे भूल में थे। जिसमें इतनी आत्म-श्रद्धा हो, उसे गुरु इनकार कर दे, तो भी वह पहुंच जाता है। और जिसमें इतनी आत्म-श्रद्धा न हो, गुरु लाख स्वीकार करे, तो भी कहां पहुंचेगा!
एकलव्य की खबरें आने लगीं कि एकलव्य पहुंच गया; पा लिया उसने अपने गंतव्य को। जिस गुरु ने एकलव्य को शिष्य बनाने से इनकार कर दिया था, वह दक्षिणा लेने पहुंच गया!
बेईमानी की भी एक सीमा होती है! शर्म भी न खायी। चुल्लूभर पानी में डूब मरना चाहिए था द्रोण को। ऐसे शिष्य के पैर जाकर छूने चाहिए थे। लेकिन फिर राजनीति आती है; फिर चालबाजी आती है।
अब वे यह इरादा करके गए हैं कि जाकर उसके दाएं हाथ का अंगूठा मांग लूंगा। वे जानते हैं कि वह देगा। उसकी आंखों में उन्होंने वह झलक देखी है कि वह जान दे दे उन लोगों में से है। उसको शूद्र कहना तो बिल्कुल गलत है। वह अर्जुन से ज्यादा क्षत्रिय है। वह इनकार नहीं करेगा, जो मांगूंगा। अगर गरदन मांगूंगा, तो गरदन दे देगा। क्योंकि खबरें आती थीं कि उसने आपकी मूर्ति बना ली है। मूर्ति के सामने अभ्यास करता है।
द्रोण पहुंच गए। देखी उसकी निशानेबाजी, छाती कंप गयी। उनके सारे शिष्य फीके थे। वे खुद फीके थे। इस एकलव्य के मुकाबले वे कहीं नहीं थे। खुद भी नहीं थे। तो उनके शिष्य अर्जुन इत्यादि तो कहां होंगे! बहुत भय आ गया होगा। उससे कहा कि ठीक, तू सीख गया। मैं तेरा गुरु। मैं गुरु-दक्षिणा लेने आया।
एकलव्य की आंखों में आंसू आ गए होंगे। उसके पास देने को कुछ भी नहीं है। गरीब आदमी है। उसने कहाः आप जो मांगें; जो मेरे पास हो, ले लें। ऐसे मेरे पास देने को क्या है!
एकलव्य इसलिए भी अदभुत है कि जिस गुरु ने इनकार किया था, उस गुरु को दक्षिणा देने को तैयार है। और जो मांगे--बेशर्त!
गुरु चालबाज है। कूटनीतिज्ञ है। शिष्य बिल्कुल सरल और भोला है। और द्रोणाचार्य ने उसका अंगूठा मांग लिया--दाएं हाथ का अंगूठा। क्योंकि अंगूठा कट गया, तो फिर कभी वह धनुर्विद नहीं हो सकेगा। उसकी धनुर्विद्या को नष्ट करने के लिए अंगूठा मांग लिया।
उसने अंगूठा दे भी दिया। यह अपूर्व व्यक्ति था। यह क्षत्रिय था, जब आया था। शूद्र इसको मैं नहीं कह सकता। यह क्षत्रिय था, जब यह आया था गुरु के पास। अंगूठा देकर ब्राह्मण हो गया। समर्पण अपूर्व है! जानता है कि यह अंगूठा गया कि मैंने जो वर्षों मेहनत करके धनुर्विद्या सीखी है, उस पर पानी फिर गया। लेकिन यह सवाल ही कहां है? यह सवाल ही नहीं उठा उसे। एक दफा भी संदेह नहीं उठा मन में कि यह तो बात जरा चालबाजी की हो गयी!
तो मैं द्रोण नहीं हूं, तुमसे कह दूं।
तुम पूछते होः "क्या मैं शूद्र होकर भी आपका शिष्य हो सकता हूं?"
शूद्र सभी हैं। शूद्र की तरह ही सभी पैदा होते हैं। और जिस शूद्र में शिष्य बनने की कल्पना उठने लगी, वह बाहर निकलने लगा शूद्रता से। उसकी यात्रा शुरू हो गयी। इस भाव के साथ ही क्रांति की शुरुआत है। चिनगारी पड़ी। तुम शिष्य बनना चाहो और मैं तुम्हें अस्वीकार करूं, यह असंभव है। मैं
तो कभी-कभी उनको भी स्वीकार कर लेता हूं, जो शिष्य नहीं बनना चाहते। ऐसे ही भूल-चूक से कह देते हैं कि शिष्य बनना है। उनको भी स्वीकार कर लेता हूं। द्रोण ने एकलव्य को अस्वीकार किया। मैं उनको भी स्वीकार कर लेता हूं, जिनमें एकलव्य से ठीक विपरीत दशा है; जो हजार संदेहों से भरे हैं; हजार रोगों से भरे हैं; हजार शिकायतों से भरे हैं; जिन ने कभी प्रार्थना का कोई

स्वर नहीं सुना और श्रद्धा का जिनके भीतर कोई अंकुर नहीं फूटा है कभी। जो जानते नहीं कि श्रद्धा शब्द का अर्थ क्या होता है।
नास्तिकों को भी मैं स्वीकार कर लेता हूं। मैं इसलिए स्वीकार कर लेता हूं, कि जो किसी भी कारण से सही, शिष्य बनने को उत्सुक हुआ है, चलो, एक खिड़की खुली। फिर बाकी द्वार-दरवाजे भी खोल लेंगे। एक रंध्र मिली। जरा सा भी छिद्र मुझे तुममें मिल जाए, तो मैं वहीं से प्रविष्ट हो जाऊंगा। जरा सा रंध्र मिल जाए, तो सूरज की किरण यह थोड़े ही कहेगी कि दरवाजे खोलो, तब मैं भीतर आऊंगी। जरा खपड़ों में जगह खाली रह जाती है, सूरज की किरण वहीं से प्रवेश कर जाती है।
तुम्हारी खोपड़ी के खपड़ों में कहीं जरा सी भी संध मिल गयी, तो मैं वहीं
से आने को तैयार हूं। मैं तुमसे सामने के दरवाजे खोलने को नहीं कहता। मैं तुमसे बैंड-बाजे बजाने को भी नहीं कहता। तुम बड़ी उदघोषणा करो, इसकी भी चिंता नहीं करता। तुम किसी भी क्षण में, किसी ब्राह्मण-क्षण में... ।
अब यह प्रश्न किसी ब्राह्मण-क्षण में उठा होगा। शूद्र को तो यह उठता
ही नहीं। शूद्र तो यहां आता ही कैसे? शूद्र तो मेरे खिलाफ है। तुम यहां आ गए, यह किसी ब्रह्म-मुहूर्त, किसी ब्राह्मण-क्षण में हुआ होगा।
तुम्हारे मन में शिष्य होने का भाव भी उठा--अच्छा है।
द्रोण मैं नहीं हूं। और तुमसे मैं चाहूंगा कि तुम अगर एकलव्य होना चाहो, तो उस पुराने एकलव्य की सारी हालात समझकर होना। क्योंकि नए एकलव्य बड़ी उलटी बातें कर रहे हैं!
मैंने सुना हैः
कलियुग के
शिष्यों ने गुरुभक्ति को
ऐसा मोड़ दिया,
कि नकल करते हुए
एकलव्य ने,
द्रोणाचार्य का ही
अंगूठा तोड़ दिया!
तुम आधुनिक एकलव्य नहीं बनना। जमाना बदल गया है। अब शिष्य, द्रोणाचार्य का अंगूठा तोड़ देते हैं!
न मैं द्रोण हूं, न तुम्हें एकलव्य--कम से कम आधुनिक एकलव्य--बनने की कोई जरूरत है। और चूंकि मैं द्रोण नहीं हूं, इसलिए तुम्हें इनकार नहीं करूंगा। और तुम्हें जंगल में कोई मूर्ति बनाकर धनुर्विद्या नहीं सीखनी होगी। मैं ही तुम्हें सिखाऊंगा।
और जो मेरे पास है, वह बांटने से घटता नहीं। इसलिए क्या कंजूसी करनी!
कि इसको बनाएंगे शिष्य; उसको नहीं बनाएंगे! क्या शर्तें लगानी! नदी के तट पर तुम जाते हो, तो नदी नहीं कहती कि तुम्हें नहीं पानी पीने दूंगी। जो आए, पीए। नदी राह देखती है कि कोई आए, पीए।
फूल जब खिलता है, तब यह नहीं कहता कि तुम्हारी तरफ न बहूंगा। तुम्हारी तरफ गंध को न बहने दूंगा। शूद्र! तू दूर हट मार्ग से! मैं तो सिर्फ ब्राह्मणों के लिए हूं। जब फूल खिलता है, तो सुगंध सबके लिए है। और जब सूरज निकलता है, तो सूरज यह भी नहीं कहता कि पापियों पर नहीं गिरूंगा; पुण्यात्माओं के घर पर बरसूंगा। पुण्यात्माओं के घर और पापियों के घर में सूरज को कोई भेद नहीं है।
और जब मेघ घिरते हैं और वर्षा होती है, तो महात्माओं के खेतों में ही नहीं होती; सभी के खेतों में हो जाती है।
तुम मुझे एक मेघ समझो। तुम अगर लेने को तैयार हो, तो तुम्हें कोई नहीं रोक सकता। और यह कुछ संपदा ऐसी है कि देने से घटती नहीं, बढ़ती है। जितना तुम लोगे, उतना शुभ है। नए स्रोत खुलेंगे। नए द्वार से और ऊर्जा बहेगी। लो! लूटो!
आदि है अशेष और दूर अभी अंत
फागुनी वितान तले तैरता वसंत।
तरु-तरु के कंधों पर कोंपलें खड़ी हुयीं

नव पल्लव वेश, खिले लतियों के चेहरे नीले-पीले-लाल-श्वेत सुमन गहनों में वन देवी गांव-गांव गाती है सेहरे। सहमी-सी शकुन, आ पहुंचा दुष्यंत फागुनी वितान तले तैरता वसंत।
रूप की दुपहरी में, वसुधा संवर रही कसी हुई देह किंतु वसन तनिक ढीले पनघट पर यौवन के आमंत्रित सब ही
छलका सौंदर्य-कलश, जो चाहे पी ले।
साक्षी आकाश और दर्शक दिगंत
फागुनी वितान तले तैरता वसंत।
पनघट पर यौवन के आमंत्रित सब ही
छलका सौंदर्य-कलश, जो चाहे पी ले।
तुम यह पूछो ही मत कि तुम कौन हो, क्या हो। मैं भी नहीं पूछता।
तुम्हारे भीतर प्यास है, बस, काफी योग्यता है।
पी लो! जो कलश छलक रहा है, अंजुलि भर लो!

तीसरा प्रश्नः कल आपने शूद्र और ब्राह्मण की परिभाषा की। कृपया समझाएं कि मन शूद्र है अथवा ब्राह्मण।

देह शूद्र है। मन वैश्य है। आत्मा क्षत्रिय है। परमात्मा ब्राह्मण। इसलिए ब्रह्म परमात्मा का नाम है। ब्रह्म से ही ब्राह्मण बना है।
देह शूद्र है। क्यों? क्योंकि देह में कुछ और है भी नहीं। देह की दौड़ कितनी है? खा लो; पी लो; भोग कर लो; सो जाओ। जीओ और मर जाओ। देह की दौड़ कितनी है! शूद्र की सीमा है यही। जो देह में जीता है, वह शूद्र है। शूद्र का अर्थ हुआः देह के साथ तादात्म्य। मैं देह हूं, ऐसी भावदशाः शूद्र।
मन वैश्य है। मन खाने-पीने से ही राजी नहीं होता। कुछ और चाहिए। मन यानी और चाहिए। शूद्र में एक तरह की सरलता होती है। देह में बड़ी सरलता है। देह कुछ ज्यादा मांगें नहीं करती। दो रोटी मिल जाएं। सोने के लिए छप्पर मिल जाए। बिस्तर मिल जाए। जल मिल जाए। कोई प्रेम करने को मिल जाए। प्रेम देने-लेने को मिल जाए। बस, शरीर की मांगें सीधी-साफ हैं; थोड़ी हैं; सीमित हैं। देह की मांगें सीमित हैं। देह कुछ ऐसी बातें नहीं मांगती, जो असंभव है। देह को असंभव में कुछ रस नहीं है। देह बिल्कुल प्राकृतिक है।
इसलिए मैं कहता हूं कि सभी शूद्र की तरह पैदा होते हैं, क्योंकि सभी देह की तरह पैदा होते हैं। जब और-और की वासना उठती है, तो वैश्य। वैश्य का मतलब हैः और धन चाहिए।
फोर्ड अपने बुढ़ापे तक--हेनरी फोर्ड--और नए धंधे खोलता चला गया। किसी
ने उसकी अत्यंत वृद्धावस्था में, मरने के कुछ दिन पहले ही पूछा उससे कि आप अभी भी धंधे खोलते चले जा रहे हैं! आप के पास इतना है; इतने और नए धंधे खोलने का क्या कारण है?
वह नए उद्योग खोलने की योजनाएं बना रहा था। बिस्तर पर पड़ा हुआ भी! मरता हुआ भी! हेनरी फोर्ड ने क्या कहा, मालूम? हेनरी फोर्ड ने कहाः मैं नहीं जानता कि कैसे रुकूं। मैं रुकना नहीं जानता। मैं जब तक मर ही न जाऊं, मैं रुक नहीं सकता।
यह वैश्य की दशा है। वह कहता है, और। इतना है, तो और। ऐसा मकान है, तो और थोड़ा बड़ा। इतना धन है, तो और थोड़ा ज्यादा धन।
देह शूद्र है, और सरल है। शूद्र सदा ही सरल होते हैं। मन बहुत चालबाज, चालाक, होशियार, हिसाब बिठाने वाला है। मन की सब दौड़ें हैं। मन किसी चीज से राजी नहीं है। मन व्यवसायी है। वह फैलाए चला जाता है। वह जानता ही नहीं, कहां रुकना। वह अपनी दुकान बड़ी किए चला जाता है! बड़ी करते-करते ही मर जाता है।
आत्मा क्षत्रिय है। क्यों? क्योंकि क्षत्रिय को न तो इस बात की बहुत चिंता है कि शरीर की जरूरतें पूरी हो जाएं; जरूरत पड़े तो वह शरीर की सब

जरूरतें छोड़ने को राजी है। और क्षत्रिय को इस बात की भी चिंता नहीं है कि और-और। अगर क्षत्रिय को इस बात की चिंता हो, तो जानना कि वह वैश्य है; क्षत्रिय नहीं है।
क्षत्रिय का मतलब ही यह होता हैः संकल्प का आविर्भाव। प्रबल संकल्प
का आविर्भाव। महा संकल्प का आविर्भाव। और महा संकल्प या प्रबल संकल्प के लिए एक ही चुनौती है, वह है कि मैं कौन हूं, इसे जान लूं।
शूद्र शरीर को जानना चाहता है। उतने में ही जी लेता है। वैश्य मन के साथ दौड़ता है। मन को पहचानना चाहता है। क्षत्रिय, मैं कौन हूं, इसे जानना चाहता है। जिस दिन तुम्हारे भीतर यह सवाल उठ आए कि मैं कौन हूं, तुम क्षत्रिय होने लगे। अब तुम्हारी धन इत्यादि दौड़ों में कोई उत्सुकता नहीं रही। एक नयी यात्रा शुरू हुई--अंतर्यात्रा शुरू हुई।
तुम यह जानते हो कि इस देश में जो बड़े से बड़े ज्ञानी हुए--सब क्षत्रिय थे। बुद्ध, जैनों के चौबीस तीर्थंकर, राम, कृष्ण--सब क्षत्रिय थे! क्यों? होना चाहिए सब ब्राह्मण, मगर थे सब क्षत्रिय। क्योंकि ब्राह्मण होने के पहले क्षत्रिय होना जरूरी है। जिसने जन्म के साथ अपने को ब्राह्मण समझ लिया, वह चूक गया। उसे पता ही नहीं चलेगा कि बात क्या है!
और जो जन्म से ही अपने को ब्राह्मण समझ लिया और सोच लिया कि पहुंच गया, क्योंकि जन्म उसका ब्राह्मण घर में हुआ है, उसे संकल्प की यात्रा करने का अवसर ही नहीं मिला, चुनौती नहीं मिली।
इस देश के महाज्ञानी क्षत्रिय थे। हिंदुओं के अवतार, जैनों के तीर्थंकर, बौद्धों के बुद्ध--सब क्षत्रिय थे। इसके पीछे कुछ कारण है। सिर्फ एक परशुराम को छोड़कर, कोई ब्राह्मण अवतार नहीं है। और परशुराम बिल्कुल ब्राह्मण नहीं हैं। उनसे ज्यादा क्षत्रिय आदमी कहां खोजोगे! उन्होंने क्षत्रियों से खाली कर दिया पृथ्वी को कई दफे काट-काटकर। वे काम ही जिंदगीभर काटने का करते रहे। उनका नाम ही परशुराम पड़ गया, क्योंकि वे फरसा लिए घूमते रहे। हत्या करने के लिए परशु लेकर घूमते रहे। परशु वाले राम--ऐसा उनका नाम है।
वे क्षत्रिय ही थे। उनको भी ब्राह्मण कहना बिल्कुल ठीक नहीं है, जरा
भी ठीक नहीं है। उनसे बड़ा क्षत्रिय खोजना मुश्किल है! जिसने सारे क्षत्रियों को पृथ्वी से कई दफे मार डाला और हटा दिया, अब उससे बड़ा क्षत्रिय और कौन होगा?
संकल्प यानी क्षत्रिय।
ऐसा समझो कि भोग यानी शूद्र। तृष्णा यानी वैश्य। संकल्प यानी क्षत्रिय। और जब संकल्प पूरा हो जाए, तभी समर्पण की संभावना है। तब समर्पण यानी ब्राह्मण। जब तुम अपना सब कर लो, तभी तुम झुकोगे। उसी झुकने में असलियत होगी। जब तक तुम्हें लगता हैः मेरे किए हो जाएगा, तब तक तुम झुक नहीं सकते। तुम्हारा झुकना धोखे का होगा; झूठा होगा; मिथ्या होगा।
अपना सारा दौड़ना दौड़ लिए, अपना करना सब कर लिए और पाया कि नहीं, अंतिम चीज हाथ नहीं आती, नहीं आती, नहीं आती; चूकती चली जाती है। तब एक असहाय अवस्था में आदमी गिर पड़ता है। जब तुम घुटने टेककर प्रार्थना करते हो, तब असली प्रार्थना नहीं है। जब एक दिन ऐसा आता है कि तुम अचानक पाते हो कि घुटने टिके जा रहे हैं पृथ्वी पर। अपने टिका रहे हो--ऐसा नहीं; झुक रहे हो-- ऐसा नहीं; झुके जा रहे हो। अब कोई और उपाय नहीं रहा। जिस दिन झुकना सहज फलित होता है, उस दिन समर्पण।
समर्पण यानी ब्राह्मण। समर्पण यानी ब्रह्म। जो मिटा, उसने ब्रह्म को जाना।
ये चारों पर्तें तुम्हारे भीतर हैं। यह तुम्हारे ऊपर है कि तुम किस
पर ध्यान देते हो। ऐसा ही समझो कि जैसे तुम्हारे रेडियो में चार स्टेशन हैं। तुम कहां अपने रेडियो की कुंजी को लगा देते हो; किस स्टेशन पर रेडियो के कांटे को ठहरा देते हो, यह तुम पर निर्भर है।
ये चारों तुम्हारे भीतर हैं। देह तुम्हारे भीतर है। मन तुम्हारे भीतर है। आत्मा तुम्हारे भीतर। परमात्मा तुम्हारे भीतर।
अगर तुमने अपने ध्यान को देह पर लगा दिया, तो तुम शूद्र हो गए।

स्वभावतः, बच्चे सभी शूद्र होते हैं। क्योंकि बच्चों से यह आशा नहीं
की जा सकती कि वे देह से ज्यादा गहरे में जा सकेंगे। मगर बूढ़े अगर शूद्र हों, तो अपमानजनक है। बच्चों के लिए स्वाभाविक है। अभी जिंदगी जानी नहीं, तो जो पहली पर्त है, उसी को पहचानते हैं। लेकिन बूढ़ा अगर शूद्र की तरह मर जाए, तो निंदा-योग्य है। सब शूद्र की तरह पैदा होते हैं, लेकिन किसी को शूद्र की तरह मरने की आवश्यकता नहीं है।
अगर तुमने अपने रेडियो को वैश्य के स्टेशन पर लगा दिया; तुमने अपने ध्यान को वासना-तृष्णा में लगा दिया, लोभ में लगा दिया, तो तुम वैश्य हो जाओगे। तुमने अगर अपने ध्यान को संकल्प पर लगा दिया, तो क्षत्रिय हो जाओगे। तुमने अपने ध्यान को अगर समर्पण में डुबा दिया, तो तुम ब्राह्मण हो जाओगे।
ध्यान कुंजी है। कुछ भी बनो, ध्यान कुंजी है। शूद्र के पास भी एक तरह
का ध्यान है। उसने सारा ध्यान शरीर पर लगा दिया। अब जो स्त्री दर्पण के सामने घंटों खड़ी रहती है--बाल संवारती है; धोती संवारती है; पावडर लगाती है--यह शूद्र है। ये जो दो-तीन घंटे दर्पण के सामने गए, ये शूद्रता में गए। इसने सारा ध्यान शरीर पर लगा दिया है। यह राह पर चलती भी है, तो शरीर पर ही इसका ध्यान है। यह दूसरों को भी देखती है, तो शरीर पर ही इसका ध्यान होगा। जब यह अपने शरीर को ही देखती है, तो दूसरे के शरीर को ही देखेगी। और कुछ नहीं देख पाएगी। यह अगर अपनी साड़ी को घंटों पहनने में रस लेती है, तो बाहर निकलेगी, तो इसको हर स्त्री की साड़ी दिखायी पड़ेगी और कुछ दिखायी नहीं पड़ेगा।
जो व्यक्ति बैठा-बैठा सोचता है कि एक बड़ा मकान होता; एक बड़ी कार होती; बैंक में इतना धन होता--क्या करूं? कैसे करूं? वह अपने ध्यान को वैश्य पर लगा रहा है। धीरे-धीरे ध्यान वहीं ठहर जाएगा। और अक्सर ऐसा हो जाता है कि अगर तुम एक ही रेडियो में एक ही स्टेशन सदा सुनते हो, तो धीरे-धीरे तुम्हारे रेडियो का कांटा उसी स्टेशन पर ठहर जाएगा; जड़ हो जाएगा। अगर तुम दूसरे स्टेशन को कभी सुने ही नहीं हो और आज अचानक सुनना भी चाहो, तो शायद पकड़ न सकोगे। क्योंकि हम जिस चीज का उपयोग करते हैं, वह जीवित रहती है। और जिसका उपयोग नहीं करते, वह मर जाती है।
इसलिए कभी-कभी जब सुविधा बने शूद्र से छूटने की, तो छूट जाना। वैश्य
से छूटने की, तो छूट जाना। जब सुविधा मिले, तो कम से कम--ब्राह्मण दूर--कम से कम थोड़ी देर को क्षत्रिय होना; संकल्प को जगाना। और कभी-कभी मौके जब आ जाएं, चित्त प्रसन्न हो, प्रमुदित हो, प्रफुल्लित हो, तो कभी-कभी क्षणभर को ब्राह्मण हो जाना। सब समर्पित कर देना। लेट जाना पृथ्वी पर चारों हाथ-पैर फैलाकर, जैसे मिट्टी में मिल गए, एक हो गए। झुक जाना सूरज के सामने या वृक्षों के सामने। झुकना मूल्यवान है; कहां झुकते हो, इससे कुछ मतलब नहीं है। उसी झुकने में थोड़ी देर के लिए ब्रह्म का आविर्भाव होगा।
ऐसे धीरे-धीरे, धीरे-धीरे अनुभूति बढ़ती चली जाए, तो हर व्यक्ति अंततः मरते-मरते ब्राह्मण हो जाता है।
जन्म तो शूद्र की तरह हुआ है, ध्यान रखना, मरते समय ब्राह्मण कम से कम
हो जाना। मगर एकदम मत सोचना कि हो सकोगे।
कई लोग ऐसा सोचते हैं कि बस, आखिरी घड़ी में हो जाएंगे। जिसने जिंदगीभर अभ्यास नहीं किया, वह मरते वक्त आखिरी घड़ी में रेडियो टटोलेगा; स्टेशन नहीं लगेगा फिर! पता ही नहीं होगा कि कहां है! और मौत इतनी अचानक आती है कि सुविधा नहीं देती। पहले से खबर नहीं भेजती कि कल आने वाली हूं। अचानक आ जाती है। आयी कि आयी! कि तुम गए! एक क्षण नहीं लगता। उस घड़ी में तुम सोचो कि राम को याद कर लेंगे, तो तुम गलती में हो। तुमने अगर जिंदगीभर कुछ और याद किया है, तो उसकी ही याद आएगी।
इसलिए तैयारी करते रहो; साधते रहो। जब सुविधा मिल जाए, ब्राह्मण होने
का मजा लो। उससे बड़ा कोई मजा नहीं है। वही आनंद की चरम सीमा है।

चौथा प्रश्नः आप गांधीवाद की आलोचना करते हैं। लेकिन क्या गांधीवाद
का सादगी का सिद्धांत सही नहीं है?

सिद्धांत कोई सही नहीं होते। सादगी सही है; सिद्धांत सही नहीं है। फर्क क्या होगा?
जब भी तुम सिद्धांत के कारण कोई चीज साधते हो, वह सादी तो हो ही नहीं सकती। सिद्धांत के कारण ही जटिल हो जाती है। सिद्धांत से पाखंड पैदा होता है, सादगी पैदा नहीं होती।
इसलिए गांधी ने जितने पाखंडी इस देश में पैदा किए, किसी और ने नहीं।
और जिनको तुम जानते हो, उनकी मैं बात नहीं कर रहा हूं, जिनको तुम जानते हो कि हां, ये पाखंडी हैं। मैं उनकी तुमसे बात करना चाहूंगा, जिनको तुम जानते नहीं कि पाखंडी हैं, वे भी पाखंडी हैं। जिनको बिल्कुल त्याग की और सादगी की प्रतिमा समझा जाता है, वे भी पाखंडी हैं।
उदाहरण के लिए डाक्टर राजेंद्र प्रसाद को लो। अब उनसे सादा आदमी कौन मिलेगा! एकदम सादे आदमी हैं और गांधी के निकटतम अनुयायियों में से हैं। इसलिए तो गांधी ने उन्हें भारत के प्रथम राष्ट्रपति होने के लिए चुना। नेहरू की इच्छा नहीं थी। नेहरू तो राजगोपालाचारी को चाहते थे। नेहरू तो चाहते थे कि कोई आदमी, जो कूटनीति समझता हो। नेहरू का मन राजेंद्र प्रसाद के लिए नहीं था। लेकिन गांधी जिद्द पर थे कि राजेंद्र प्रसाद! तो राजेंद्र प्रसाद प्रथम राष्ट्रपति बने।
तुम्हें पता है, पहला काम राजेंद्र प्रसाद ने क्या किया राष्ट्रपति भवन में जाकर? जिंदगीभर गांधी के पास बैठकर मंत्र दोहराया--अल्लाह ईश्वर तेरे नाम, सबको सन्मति दे भगवान। और पहला काम क्या किया, तुम्हें पता है! राष्ट्रपति भवन में जितने मुसलमान नौकर थे, सब अलग कर दिए! यह गांधीवादी सादगी है!
ये बातें लिखी नहीं जातीं, क्योंकि यहां तो प्रशंसा चलती है। बस, प्रशंसा का हिसाब है। अब ये बातें खबर देती हैं आदमी की असलियत का। क्यों मुसलमान नौकर अलग कर दिए गए? मुसलमान नौकर अलग किए गए और उनकी जगह बुलाए कौन गए? राष्ट्रपति भवन में बंदरों के आने की मनाही थी और उनको सिपाही भगा देते थे, क्योंकि बंदर उपद्रव करते; कूद-फांद मचाते।
अब ये राजेंद्र प्रसाद तो... शुद्ध हिंदूवाद इनके भीतर है। हनुमान जी
के तो शिष्य हैं ये बंदर; उनकी संतान। दूसरा काम उन्होंने जो किया, बड़ा महान कार्य, वह यह कि बंदरों को कोई रोक नहीं सकता। बंदर राष्ट्रपति भवन में मजे से घूमने लगे। बच्चों पर हमला करने लगे। स्त्रियों पर हमला करने लगे! और एक दिन तो वे नेहरू के कमरे में भी घुस गए। बामुश्किल उनको निकाला जा सका। और जाते-जाते एक बंदर, नेहरू का एक पेपरवेट, जो किसी ने भेंट किया था, वह ले गया। नेहरू ने सिर पर हाथ मार लिया और कहा, यह राजेंद्र बाबू की करतूत!
तुम जानकर हैरान होओगे कि राजेंद्र बाबू यह भी चाहते थे... विधान सभा
के भी वे अध्यक्ष थे, उसमें भी उन्होंने दो दान किए विधान को। भारत को जो उन्होंने विधान दिया, उसमें जो विधान परिषद का अध्यक्ष था, उसकी देन दो। एकः गौ माता; और दूसरा बंदर वे चाहते थे। वह स्वीकार नहीं हुआ। गौ माता की रक्षा होनी चाहिए--यह भारत का असली सवाल! और यहां कोई सवाल नहीं है। दुनिया हंसती है इस देश की मूढ़ता पर। यहां इतने बड़े सवाल खड़े हैं! और जिस आदमी को विधान परिषद का अध्यक्ष बनाया, उसकी खोपड़ी में कुल इतना आया, ये दो बातेंः कि एक तो गौ माता की रक्षा होनी चाहिए और दूसरे, हनुमान के वंशज बंदरों की रक्षा होनी चाहिए!
गौ माता को तो किसी तरह दूसरों ने भी कहा कि चलो, ठीक है, रख लो। इनका आग्रह। मगर बंदर तो जरा बर्दाश्त के बाहर है। अच्छा हुआ कि उन्होंने बंदर को विधान में नहीं जगह दी, नहीं तो दुनिया और हंसती। वैसे ही हम पर हंसती है।
राजेंद्र प्रसाद की सादगी की बड़ी चर्चा की जाती है कि वे राष्ट्रपति भवन में भी रहे, लेकिन ऐसे रहे, जैसे कि गरीब आदमी को रहना चाहिए। मैंने उनका कमरा देखा, जहां वे राष्ट्रपति भवन में रहे। उन्होंने क्या किया था!

उसमें चारों तरफ चटाई चढ़वा दी थी अंदर। संगमरमर की दीवालों पर चटाई लगवा दी! महल के भीतर झोपड़ा बना लिया। अब मजे से उसमें रहने लगे। यह सादगी! तुम्हें झोपड़े में रहना हो, तो झोपड़ों की कोई कमी है इस देश में? फिर राष्ट्रपति भवन में किसलिए रह रहे हो? लेकिन आदमी बहुत पाखंडी है। रहना तो महल में है, मगर झोपड़े में रहने की सादगी भी नहीं छोड़ी जाती!
और इसकी भी प्रशंसा की जाती है कि कैसी अदभुत सादगी!
तुम जानकर हैरान होओगे कि जो सुविधाएं गवर्नर जनरल और वायसराय को मिलती थीं, वही सब राष्ट्रपति को मिली थीं। उसमें सबसे बड़ी सुविधा थीः हजारों रुपये महीने मनोरंजन पर राष्ट्रपति खर्च कर सकता था। लेकिन राष्ट्रपति राजेंद्र प्रसाद ने दो सौ, ढाई सौ रुपये महीने से ज्यादा कभी मनोरंजन पर खर्च नहीं किया। तो अखबारों में खबरें निकली थीं तब--कि कैसी सादगी! जब हजारों रुपये खर्च करने की सुविधा है, तब भी दो-ढाई सौ रुपये खर्च किए मनोरंजन पर। इसको कहते हैं गांधीवादी सादगी!
लेकिन असलियत का तुम्हें पता है? असलियत का पता कभी अखबारों तक नहीं आ पाता। क्योंकि जो लोग शक्ति में होते हैं, अखबार उनका गुणगान करने में लगे रहते हैं। असलियत यह थी कि उन्होंने जो हजारों रुपये मनोरंजन पर खर्च करने थे, मनोरंजन पर तो दो-ढाई सौ रुपये महीने खर्च किए; वे हजारों रुपये उन्होंने अपने नाती-पोतों के नाम कर दिए--जो कि बिल्कुल गैर-कानूनी है। वह मनोरंजन पर खर्च होने के लिए थी संपत्ति। अतिथि आते हैं राष्ट्रपति के, उनके स्वागत-सत्कार में खर्च होती। उसमें तो खर्च नहीं की; नाती-पोतों के नाम कर दिया।
सालभर बाद नेहरू को पता चला। वे तो चकित हो गए कि यह तो हद्द हो गयी! यह
तो बिल्कुल गैर-कानूनी है। लेकिन अखबारों तक खबर यही पहुंची कि कैसी सादगी! दो-ढाई सौ रुपये महीने खर्च किए, जब कि करने की सुविधा हजारों थी। वे सब हजारों रुपये नाती-पोतों के नाम बैंक में चले गए! इसकी कोई चर्चा नहीं उठती।
सिद्धांतवादी सादगी ऐसी ही चालाक होती है; ऊपर-ऊपर होती है।
नेहरू को जाकर समझाना पड़ा राजेंद्र प्रसाद को कि यह तो बात बिल्कुल
ही गलत है। यह तो किसी वायसराय ने कभी नहीं की! मनोरंजन पर खर्च करते--ठीक था। उस पर तो खर्चा आपने किया नहीं। ठीक है; नहीं करना है, तो मत करिए। मगर यह तो हद्द हो गयी बात की। यह किस हिसाब से आपके नाती-पोतों के पास पहुंच गया पैसा? यह अब दुबारा नहीं होना चाहिए।
कहते हैं कि राजेंद्र प्रसाद इसके लिए कई दिन तक नेहरू पर नाराज रहे। क्योंकि वह नाती-पोतों की जो बैंक में थैली बड़ी होती जाती थी, वह बंद हो गयी।
अब तुम क्या कहोगे, यह सादगी की वजह से दो-ढाई सौ रुपया खर्च किया था?
यह बचाने के लिए। यह कंजूसी थी। और यह चोरी भी थी। यह गांधीवादी सादगी है! सिद्धांत से सादगी जब भी आएगी, चालबाज होगी, चालाक होगी।
तुमने शायद सरोजिनी नायडू का प्रसिद्ध वचन न सुना हो! सरोजिनी नायडू गांधी के निकटतम लोगों में एक थी; अत्यंत आत्मीय लोगों में एक थी। एक वचन बहुत प्रसिद्ध है सरोजिनी नायडू का--कि लोगों को पता नहीं है कि इस बूढ़े आदमी को गरीब रखने के लिए हमें कितना खर्च करना पड़ता है!
गांधी की गरीबी बड़ी महंगी गरीबी थी! वे दूध तो बकरी का पीते थे, लेकिन बकरी का भोजन तुम्हें पता है? काजू-किशमिश! ऊपर से दिखता है, बकरी का दूध पीते हैं बेचारे। वे चलते तो थर्ड क्लास रेल के डब्बे में थे, लेकिन पूरा डब्बा उनके लिए रिजर्व होता था। इससे फर्स्ट क्लास में चलना सस्ता है। जहां सत्तर आदमी चलते, वहां एक आदमी चल रहा है! यह सत्तर गुना खर्च हो गया! थर्ड क्लास से फर्स्ट क्लास में चार गुना फर्क होगा।
यह सादगी-वादगी नहीं है। यह बड़ा होशियार हिसाब है। यह सब सिद्धांत की बातचीतें हैं। इन सिद्धांतों के कारण ऊपर से चीजें और दिखायी पड़ती हैं; भीतर कुछ और होती हैं।

सरोजिनी नायडू ने सही कहा है। सरोजिनी नायडू ने कहा है कि अमीर से अमीर आदमी जितना खर्च करे, गांधी की गरीबी पर उससे ज्यादा खर्च करना पड़ता है! वह गरीबी महंगी है।
मैं तुमसे सादगी को तो निश्चित ही कहूंगा कि अदभुत बात है सादगी। लेकिन सादगी सादी होनी चाहिए। सादगी चालबाज, गणित और तर्क और सिद्धांत पर खड़ी नहीं होनी चाहिए, नहीं तो महंगी हो जाएगी।
फिर यह भी हो सकता है कि सादगी आर्थिक रूप से महंगी न हो। लेकिन अगर तुम्हारे भीतर किसी गणित पर खड़ी है, तो सादगी फिर भी नहीं हो सकती। जैसे जैन मुनि की सादगी सादगी नहीं है। क्योंकि वह यह सोच रहा है कि इस तरह सादे रहने से ही मोक्ष के सुख मिलेंगे।
यह कोई सादगी न हुई। यह तो सौदा हुआ; सादगी कहां हुई! यह आदमी सादा रहने में आनंदित नहीं है। सादगी में इसका आनंद नहीं है। सादगी तो सिर्फ कुछ दिन की बात है, फिर तो स्वर्ग में मजा लेना है। जैन-शास्त्र कहते हैंः मोक्ष-रमणी का भोग करना है। मोक्ष-रमणी! मोक्ष में परम पद पर विराजमान होना है, इसलिए सादगी चल रही है! इसको तुम सादगी कहोगे?
मैं उसको सादगी कहता हूं, जिसका आनंद उसमें ही हो। तुम्हें आनंदित लगता है नग्न होना, कोई आगे का मोक्ष नहीं। आगे का मोक्ष तो वणिक का हिसाब है; मन का हिसाब है--और! और! तुम्हें नग्न होना अच्छा लगता है... ।
तो मैं तुमसे यह कहना चाहता हूं--तुम्हें बहुत चौंक होगी इस बात से--कि अमरीका के समुद्र तटों पर अगर कोई नग्न स्नान कर रहा है, वह ज्यादा सादा है, बजाय तुम्हारे नग्न दिगंबर मुनि के। क्यों? क्योंकि वह नग्नता में आनंद ले रहा है। और तुम्हारा जैन मुनि नग्नता में सिर्फ पुण्य कमा रहा है, ताकि आगे मोक्ष में जाकर आनंद ले। इसके भीतर जाल है गणित का। वह जो अमरीका के समुद्र तट पर नहाने वाला पुरुष या स्त्री नग्न होकर आनंद ले रहा है धूप का, समुद्र की लहरों का, हवा का--वह ज्यादा सादा है; वह ज्यादा सीधा है; वह ज्यादा साधु है।
तुम्हें मेरी बात अड़चन में डाल देती है, क्योंकि तुम्हारे पास बंधी हुई धारणाएं हैं। तुम कहते होः यह तो हद्द हो गयी! तो आप ये जो नग्न क्लब हैं पश्चिम में, इनकी सादगी को ज्यादा मानते हैं, बजाय बेचारे दिगंबर मुनि की इतनी कठोर तपश्चर्या के!
कठोर तपश्चर्या है, इसीलिए सादा नहीं मानता। उसके पीछे हिसाब है।
वह जो नंगा दौड़ रहा है, वृक्षों के साथ खेल रहा है, पशुओं के साथ... । सादा है। छोटे बच्चे जैसा है। सादगी होनी चाहिए छोटे बच्चे जैसी।
भतीजा बोलाः चाची जी, जन्मदिवस पर आपने जो भेंट दी थी, उसके लिए बहुत-बहुत धन्यवाद।
चाची जी ने कहाः बेटे, उसमें धन्यवाद की क्या बात है!
भतीजे ने कहाः वैसे मेरी भी यही राय है। लेकिन मम्मी ने कहा, फिर भी धन्यवाद तो देना ही चाहिए।
यह सादगी। यह सीधा-सादापन है।
रात्रि के भोजन के समय घर आए विशिष्ट मेहमानों के साथ मेजबान दंपत्ति
भी अपने आठ वर्षीय पुत्र के साथ भोजन कर रहे थे कि उनके पुत्र ने कमीज की बांह से अपनी नाक पोंछी।
सुबह नाश्ते के समय मैंने तुमसे कुछ कहा था बेटे? याद है न? मेजबान महिला ने बच्चे का ध्यान नाक पोंछने के गलत तरीके की ओर दिलाया।
हां, मम्मी! याद है। बच्चे ने कहा।
क्या कहा था? मम्मी ने पूछा।
बच्चा मेहमानों की ओर देखते हुए बोलाः आपने कहा था कि इन कमबख्तों को
भी आज ही मरना था।
यह सादगी। इसमें कोई गणित नहीं, कोई हिसाब नहीं; जैसा है, वैसा है।
सादगी होनी चाहिए छोटे बच्चों जैसी। और ऐसी सादगी ही साधुता है। जब तुम वैसे ही हो बाहर, जैसे तुम भीतर हो।
अब यह हो सकता है कि माता जी गांधीवादी रही हों। तो मेहमानों का तो स्वागत किया होगा। मेहमानों का लोग स्वागत करते हैं कि भले आए। धन्यभाग।

कितने दिन राह दिखायी! आंखें थक गयीं। पलक-पांवड़े बिछाए रहे। आओ, पधारो। और सुबह कहा हो बेटे के सामने कि इन कमबख्तों को भी आज ही मरना था? जैसे-जैसे तुम बड़े होते हो, तुम चालबाज होते जाते हो। उसी चालबाजी में सादगी खो जाती है। और सादगी का बड़ा अदभुत आनंद है। लेकिन मैं यह नहीं कह रहा हूं कि सादगी से स्वर्ग मिलेगा। मैं कह रहा हूंः सादगी स्वर्ग है। गांधी की सादगी सादगी नहीं है। बहुत नपा-तुला राजनैतिक कदम है। नपा- तुला! गांधी का महात्मापन नपा-तुला कूटनीतिक कदम है।
मैं सिद्धांतों का पक्षपाती नहीं हूं। जीवन जैसा है, उसे जीओ। उसे निष्कपट भाव से जीओ। उसे भविष्य की आकांक्षा से नहीं, उसे अतीत की आदत से नहीं; उसे कुछ पाने के हेतु से नहीं--जैसा है, उसे चुपचाप जीओ।
शायद दुनिया तुम्हें महात्मा न भी कहे। क्योंकि महात्मा धोखेबाजों
को कहती है दुनिया। शायद दुनिया तुम्हें महात्मा न कहे, क्योंकि तुम पाखंडी नहीं होओगे। पाखंडियों को महात्मा कहती है दुनिया। शायद दुनिया तुम्हें गिने ही नहीं किसी गिनती में। मगर गिनवाना ही क्या है! गिनवाना क्यों?
तुम वही कहो, जो तुम्हारे हृदय में उठता है। और तुम वैसे ही जीयो, जैसा तुम्हारे हृदय में उठता है। ऐसी बच्चों जैसी सादगी में सिद्धांत नहीं होता सादगी का।
एक महिला ने मुझे कहा कि वह कृष्णमूर्ति के एक शिविर में भाग लेने हालैंड गयी। सांझ का वक्त था; वह बाजार में घूमने निकली थी कि बड़ी हैरान हो गयी। आध्यात्मिक महिला है। अब तो कई लोग उस महिला के शिष्य भी हैं। उसे तो बड़ा धक्का लगा। धक्का इस बात से लगा कि कृष्णमूर्ति एक कपड़ों की दुकान में टाई खरीद रहे थे। अब महात्मा और टाई खरीदें! यह तो भारतीय-बुद्धि को जंच ही नहीं सकता। और न केवल टाई खरीद रहे थे, बल्कि उन्होंने सारी दुकान की टाई बिखेर रखी थीं! ये नहीं जंच रही; ये नहीं जंच रही--गले से लगा-लगाकर सबको देख रहे थे।
वह महिला थोड़ी देर खड़ी देखती रही। उसका तो सारा भ्रम टूट गया कि यह आदमी तो बिल्कुल सांसारिक आदमी है! सांसारिकों से भी गया-बीता है! उसने तो शिविर में--शिविर के लिए ही हालैंड गयी थी--बिना भाग लिए वापस लौट आयी। वापस लौटी थी, ताजी ही क्रुद्ध; मुझसे मिलना हो गया। उसने कहा कि हद्द
हो गयी! आप कृष्णमूर्ति की ऐसी प्रशंसा करते हैं! मैंने अपनी आंख से जो देखा है, वह आपसे कहती हूं--कि वे एक टाई की दुकान पर टाई खरीद रहे थे। और न केवल खरीद रहे थे, उन्होंने सारी टाई फैला रखी थीं। और बिल्कुल तल्लीन थे! मैं खड़ी रही वहां पंद्रह मिनट। वे बिल्कुल लीन थे।
मैंने कहाः वे सरल हैं। मगर यह सादगी महात्मा गांधी वाली सादगी नहीं है--वह महिला महात्मा गांधी की भक्त है--यह सरलता है।
मैंने उस महिला को कहाः तुम इतना तो मानोगी कि कृष्णमूर्ति में उतनी
तो बुद्धि होगी ही, जितनी तुममें है? इतना तो मानती हो? उनको भी घर से चलते वक्त यह ख्याल आ सकता था कि मैं, इतना प्रतिष्ठित ज्ञानी, प्रबुद्ध पुरुष, टाई खरीदने जाऊंगा; लोग क्या सोचेंगे! और अगर रुक गए होते, तो वह चालबाजी होती; वह पाखंड होता। फिर उस दुकान में भरे बाजार में खड़े थे, कोई चोर की तरह कहीं किसी स्मगलर के घर में घुसकर तो टाई नहीं खरीद रहे थे। बीच बाजार में खरीद रहे थे। छोटा सा गांव, वहां कम से कम छह हजार लोग इकट्ठे हुए थे कृष्णमूर्ति को सुनने; वे सब वहीं थे गांव में। इन सब भक्तों के सामने खरीद रहे थे! इतना ख्याल नहीं आया होगा कि यहां छह हजार मेरे भक्त ठहरे हैं; लोग देखेंगे तो क्या कहेंगे कि मैं टाई खरीद रहा हूं! घर भी बुला ले सकते थे। बंद दरवाजा करके टाई चुन ले सकते थे। उधर आईना भी होता; सुविधा भी होती। भक्त भी न खोते; कोई नुकसान भी न होता! मगर यह न किया। सरलता, सादगी... ।
और यह जो तल्लीनता छोटे बच्चे की तरह; जैसे छोटा बच्चा खिलौनों में खो जाए, ऐसे टाई में खो गए! यह सहजता, और तू वापस लौट आयी! तू नदी के किनारे से वापस लौट आयी?

तू महात्मा गांधी की सादगी जानती है; वही अड़चन है। वह नपी-तुली सादगी थी। गांधी एक-एक काम करते थे, तो नपा-तुला करते थे; उसका परिणाम क्या होगा, यह सोचकर करते थे। यह सादगी नहीं है, जहां परिणाम का हिसाब है। क्या कहूं? कौन से शब्द का उपयोग करूं? पत्र कैसा लिखा जाए? क्या लिखा जाए? इस पर भारी विचार करते थे! कई दफा पत्र को सुधारते थे; बदलते थे। जो वक्तव्य दे देते थे, उसमें भी बदलाहट कर लेते थे।
उनके एक भक्त स्वामी आनंद ने मुझे कहा... । एक रात मेरे पास रुक गए। फिर
तो मुझसे इतना घबड़ा गए कि फिर कभी आए नहीं। उन्होंने कहा कि... । ऐसी ही बात चली। वे गांधी के पुराने भक्त। शुरू-शुरू गांधी जब भारत आए, तब से उनके साथ थे। तो उन्होंने मुझसे कहा कि मुझ पर तो ऐसी छाप पहले ही दिन पड़ गयी गांधी की कि उनका हो गया सदा के लिए। मैंने कहाः हुआ क्या?
गांधी अफ्रीका से आए थे और अहमदाबाद में पहली दफा बोले। और उन्होंने अंग्रेजों को गालियां दीं। लुच्चे, लफंगे--इस तरह के कुछ शब्द उपयोग किए होंगे। और मैं रिपोर्टर था किसी पत्र का। तो मैंने सोचाः ये शब्द देने ठीक नहीं हैं। क्योंकि इससे गांधी की प्रतिष्ठा को नुकसान पड़ेगा। तो मैंने वे सब शब्द अलग कर दिए। और वक्तव्य ठीक साफ-सुथरा करके छापा।
दूसरे दिन गांधी ने मुझे बुलाया। मेरे कंधे को ठोंका और कहाः पत्रकार तुम जैसा होना चाहिए। यही पत्रकारिता है। अब मुझसे जो निकल गया था क्रोध में, उसको छापने की कोई जरूरत ही नहीं थी। तुमने ठीक किया। इतना बोध होना चाहिए पत्रकार को।
बोलने वाले को बोध नहीं है; पत्रकार को बोध होना चाहिए!
और स्वभावतः स्वामी आनंद का दिल गदगद हो गया--जब उन्होंने कंधा ठोंका
और कहा कि तुम महान पत्रकार हो।
मैंने कहाः तुमने कभी दूसरा काम किया? उन्होंने कहाः क्या? कि गांधी
ने गाली न दी हो और तुमने गाली जोड़ दी होती। क्योंकि पहली बात भी गलत है; उतनी ही गलत, जितनी दूसरी गलत है। जो कहा था, वह वैसा का वैसा छपना चाहिए था। यह तो तुमने झूठ किया! इसमें से तुमने गालियां निकाल दीं; गांधी खुश हुए। गालियां जोड़ देते, तो गांधी नाराज होते। गांधी ने बेहोशी की।
यह सादगी नहीं है। यह नपी-तुली राजनीति है। और तुम प्रभावित हो गए, क्योंकि तुम्हें बहुत... तुम्हारे अहंकार को बड़ी तृप्ति मिली कि गांधी जैसे व्यक्ति ने और कहा कि तुम महान पत्रकार हो; ऐसा ही पत्रकार होना चाहिए। फिर तुम उनके भक्त हो गए। फिर तुमने इसी तरह की काट-छांट जिंदगीभर की होगी!
उन्होंने कहाः बात तो ठीक है।
फिर दुबारा मुझे नहीं मिले! फिर मुझसे नाराज हो गए होंगे, क्योंकि मैंने सीधी बात कह दी। जैसी थी, वैसी की वैसी कह दी कि तुम्हारे अहंकार को गांधी ने मक्खन लगा दिया। उन्होंने तुम्हें खरीद लिया। मैं अगर उनकी जगह होता, तो मैं तुमसे कहता कि तुम ठीक पत्रकार नहीं हो। क्योंकि मैंने जो गालियां दी थीं, उनका क्या हुआ?
इस तरह झूठी प्रतिमाएं खड़ी होती हैं। अब दुनिया कभी नहीं जानेगी कि गांधी ने गालियां दी थीं। अब गांधी की जो प्रतिमा लोगों की नजर में रहेगी, वह झूठी प्रतिमा होगी।
गांधी ने तो ऐसे ही कहा होगा--गुजराती थे; इससे ज्यादा वजनी गाली दे नहीं सकते--लेकिन रामकृष्ण तो मां-बहन की गाली देते थे! मगर किताबों में उल्लेख नहीं है। मगर वे सीधे-सादे आदमी थे, गांव के जैसे आदमी होते हैं। किताबें नहीं लिखतीं उनको; क्योंकि किताबें कैसे लिखें उनको! नहीं तो परमहंस का क्या होगा?
लेकिन मैं तुमसे कहता हूं कि वे गाली देने के कारण ही परमहंस थे। सरल थे। अब जो आदमी उनको जैसा लगा, उसको उन्होंने वैसा ही कहा। उसमें फिर रत्तीभर फर्क नहीं किया। वे परिष्कृत साधु नहीं थे--परमहंस थे। मर्यादित साधु नहीं थे--परमहंस थे। अब कोई आदमी चोर है, तो उसको उन्होंने चोर कहा। और कोई आदमी उनके सामने बैठा था और पास में बैठी स्त्रियों को देख रहा था, तो उसको उन्होंने गंदी गाली दी। उसको उन्होंने कहा कि तू जो कर रहा है... ।

मैं इसको सरलता कहता हूं; सादगी कहता हूं। मैं तुमसे यह नहीं कह रहा हूं कि तुम गालियां देना शुरू कर दो। क्योंकि वह तो फिर नपी-तुली बात होगी। अब परमहंस होने लगे! इसलिए गालियां देने लगो कि इससे परमहंस हो जाएंगे, तो फिर चूक गए। फिर सादगी से चूक गए।
मैं तुमसे इतनी ही बात कह रहा हूं कि जैसा है, सरलता से... । तुम जैसे हो, अच्छे-बुरे, गोरे-काले, ऐसा ही खोल दो अपने को। इससे अन्यथा दिखलाने की चेष्टा नहीं होनी चाहिए। मैं जैसा हूं, दुनिया मुझे वैसा ही जाने। इसका नाम सादगी।
सादगी गैर-नपी-तुली दशा है। सिद्धांत का उससे कुछ लेना-देना नहीं है।

पांचवां प्रश्नः मैं आपसे कुछ भी पूछते डरता हूं, क्योंकि लोग अगर मेरे प्रश्न सुनेंगे, तो हंसेंगे।

जब प्रश्न ही पूछने की हिम्मत नहीं, तो उत्तर कैसे झेल पाओगे! और पूछोगे नहीं, तो उत्तर कैसे पाओगे? और लोग हंसेंगे, तो हंसने दो। इतनी सादगी तो जीवन में लाओ!
प्रश्न तुम्हारे भीतर है; जैसा भी है। लोग हंसेंगे ही न, तो हंसने दो। मैं तुमसे कहता हूंः जो समझदार हैं, वे समझेंगे। जो नासमझ हैं, वे हंसेंगे। लाओत्सू का प्रसिद्ध वचन है कि जो समझदार हैं, वे समझेंगे। जो नासमझ हैं, वे हंसेंगे।
क्यों? समझदार क्यों समझेगा? क्योंकि समझदार समझेगा कि यह प्रश्न तुम्हारा ही थोड़े ही है, उसका भी है। वह भी नहीं पूछ पाया है। वह भी रोके रखा बैठा रहा है। वह तो तुम्हें धन्यवाद देगा कि जो मैं नहीं पूछ सका, तुमने पूछ लिया। मैं डरा रहा, तुमने पूछ लिया।
जो नासमझ है, मूढ़ है, वही हंसेगा। क्योंकि मूढ़ को यह पता नहीं है कि यही प्रश्न उसका भी है। आदमी आदमी के प्रश्नों में बहुत भेद थोड़े ही है। आदमी आदमी की तकलीफों में, परेशानियों में भेद थोड़े ही है!
क्या तुम पूछ सकते हो, जो दूसरे आदमी का सवाल नहीं होगा? मैंने हजारों सवालों के जवाब दिए हैं। मैंने हर सवाल को हर आदमी का सवाल समझा है। अब तक मुझे ऐसा कभी नहीं दिखायी पड़ा कि यह सवाल किसी एक का विशिष्ट है। मुश्किल है, संभव ही नहीं है।
क्या पूछोगे? एक से तो रोग हैं। काम है; लोभ है; क्रोध है; मोह है। एक
से तो रोग हैं, तो एक से ही प्रश्न होंगे। थोड़ा मात्राओं का भेद होगा। किसी में लोभ की मात्रा थोड़ी ज्यादा; और किसी में क्रोध की मात्रा थोड़ी कम; और किसी में मोह की मात्रा थोड़ी ज्यादा; और किसी में राग की मात्रा थोड़ी कम। ये मात्राओं के भेद हैं। मगर मौलिक भेद कहां होंगे? मौलिक भेद होते ही नहीं। आदमी आदमी सब एक जैसे हैं। और जब तुम किसी दूसरे का प्रश्न सुनते हो, तो ख्याल करना, किसी न किसी अर्थों में यह तुम्हारा प्रश्न भी है।
तो जो समझदार हैं, वे समझेंगे और तुम्हें धन्यवाद देंगे। और जो नासमझ हैं... । नासमझों का क्या? हंसने दो। एक समझदार भी समझ ले, तो काफी है। और हजार नासमझ हंसते रहें, तो किसी मूल्य के नहीं हैं।
और तुम अगर ऐसे डरे तो बड़ी मुश्किल में पड़ोगे। तुम्हारी हालत तो ऐसी
हो जाएगी, कल मैं एक गीत पढ़ता था--
जो मुझ पे बीती है
उसकी तफसील मैं किसी से न कह सकूंगा
जो दुख उठाए हैं
जिन गुनाहों का बोझ सीने में ले के फिरता हूं
उनको कहने का मुझमें यारा नहीं है
मैं दूसरों की लिखी हुई किताबों में दास्तां अपनी ढूंढता हूं
जहां-जहां सरगुजश्त मेरी है
ऐसी सतरों को मैं मिटाता हूं
रौशनाई से काट देता हूं

मुझको लगता है कि लोग उनको अगर पढ़ेंगे
तो राह चलते में टोककर मुझसे जाने क्या पूछने लगेंगे!
मतलब समझे? यह आदमी कह रहा है कि जो मुझ पे बीती है, उसकी तफसील मैं किसी से न कह सकूंगा; उसका विवरण, ब्यौरा मैं किसी को न बता सकूंगा। मुझ पर ऐसा बीता। लेकिन तुम समझो, जो तुम पर बीता है, वह हजारों पर बीता है। जो तुम पर बीता है, वह हजारों पर बीत रहा है। तुम भिन्न नहीं हो। तुम कोई द्वीप नहीं हो अलग-थलग। तुम संयुक्त हो।
जो मुझ पे बीती है
उसकी तफसील मैं किसी से न कह सकूंगा
जो दुख उठाए हैं
जिन गुनाहों का बोझ सीने में ले के फिरता हूं
उनको कहने का मुझमें यारा नहीं है।
मुझमें शक्ति नहीं है। दुखों की और अपराधों की, जो मैंने किए हैं... ।
सब, और भी, ऐसे ही कमजोर हैं। तुमने ही अपराध किए हैं, ऐसा नहीं। सब ने अपराध किए हैं। यहां कौन है जो अपराधी नहीं है! तुमने ही पाप किए हैं, ऐसा नहीं। यहां सब ने पाप किए हैं। यहां कौन है जो पापी नहीं है! पाप से ऊपर उठना है। पाप के पार जाना है। लेकिन कौन है जो पापी नहीं है!
पुरानी कहावत है कि हर पुण्यात्मा कभी पापी रहा है। और हर पापी कभी पुण्यात्मा हो जाएगा। संत का अतीत है; पापी का भविष्य है। मगर भेद क्या है?
इसलिए जो पहुंचे हैं, उन्होंने कभी तुम्हारी किसी एक बात पर भी तुम्हारी निंदा नहीं की। क्योंकि वे जानते हैं कि यही भूलें उनसे भी हुईं। इन्हीं गड्ढों में वे भी गिरे हैं। और जब तक तुम्हें ऐसा कोई करुणावान न मिल जाए, तब तक जाननाः गुरु नहीं मिला।
अगर तुम किसी के सामने जाकर कहो कि मैं क्या करूं? मेरे मन में चोरी का सवाल उठता है। और वह आदमी एकदम डंडा उठा ले--कि तुम महापापी हो; नर्क में सड़ोगे। तो तुम समझ लेना कि इस आदमी में अभी अनुभव ही नहीं है। इसे करुणा ही नहीं है। इसे याद ही नहीं है। या शायद इसे याद है और दबा रहा है--कि इसने भी यही सोचा है। कि इसने भी इसी तरह के विचारों को कभी अपने मन में संजोया है। और इसका डंडा उठाना यह बता रहा है कि ये विचार इसके भीतर अभी भी जिंदा हैं; मिटे नहीं हैं। यह डंडा तुम्हारे लिए नहीं उठा रहा है। यह डंडा अपने लिए उठा रहा है। यह असल में यह कह रहा है कि मत छेड़ो मुझे। मत उकसाओ मुझे। किसी तरह राख जम गयी है अंगारे पर, मत फूंक मारो। अन्यथा मेरी राख उड़ गयी, तो यह अंगारा मेरे भीतर भी है। तुम जाओ यहां से। नर्क जाओ। तुम कहीं भी जाओ; मगर यहां मत आओ। यह कहां की बातें ले आए!
जब कोई संत तुम्हारी निंदा करे, तो समझ लेना कि अभी संत का जन्म नहीं हुआ है। संत वही है, जो तुम्हें स्वीकार करे। तुम्हारे गहनतम अपराधों में भी स्वीकार करे। तुम्हारा गहनतम अपराध भी संत के मन में तुम्हारे प्रति निंदा न लाए, तो ही संत है। जो समझे। जो कहे कि ठीक है। यही तो मैंने भी किया है। यही तो मुझसे भी हुआ है। घबड़ाओ मत। जो तुमसे हो रहा है, वह मुझसे हुआ है। और जो मुझसे हो रहा है, वह तुमसे भी हो सकता है। क्योंकि हम दोनों अलग नहीं हैं। जो मेरा अतीत है, वह तुम्हारा भविष्य है। हम संयुक्त हैं। हम अलग नहीं हैं। हम एक-दूसरे से ब्यौरा ले-दे सकते हैं।
जिन गुनाहों का बोझ सीने में ले के फिरता हूं
उनको कहने का मुझमें यारा नहीं है।
तो शक्ति जुटाओ। शक्ति बिना जुटाए कुछ भी न होगा।
मैं दूसरों की लिखी हुई किताबों में
दास्तां अपनी ढूंढता हूं
जहां-जहां सरगुजश्त मेरी है
और कहीं अगर किसी उपन्यास को पढ़ते वक्त--यह आदमी कह रहा है--मुझे अगर ऐसी कोई बात मिल जाती है, जिसमें मेरी झलक आती है, तो मैं डरता हूं कि कहीं कोई पढ़कर यह समझ न ले कि यह इस आदमी के बाबत है।
दास्तां अपनी ढूंढता हूं

जहां-जहां सरगुजश्त मेरी है
ऐसी सतरों को मैं मिटाता हूं
रौशनाई से काट देता हूं
मुझको लगता है कि लोग उनको अगर पढ़ेंगे
तो राह चलते में टोककर मुझसे जाने क्या पूछने लगेंगे!
लोगों का भय खतरनाक है। इसी से पक्षाघात पैदा हो जाता है; इसी से तुम्हें लकवा मार जाता है।
यहां तुम फिक्र छोड़ो। क्योंकि यहां मेरे पास प्यारे लोग इकट्ठे हैं; ऐसे लोग इकट्ठे हैं, जो समझेंगे। ऐसे लोग इकट्ठे हैं, जिनको तुम पर निंदा का ख्याल न आएगा। जो तुम्हें धन्यवाद देंगे। जो कहेंगेः हमारी बात तुमने कह दी। हम छिपाए बैठे थे। हमारा घाव तुमने खोल दिया। तुम्हारे घाव के खोलने के बहाने हमें भी औषधि का पता चला।
यहां मेरे पास पुराने ढंग के महात्मा, साधु-संत नहीं हैं। यहां एक नए ढंग का मनुष्य जन्म ले रहा है; एक नया संन्यास पैदा हो रहा है। यहां तुम भय छोड़ सकते हो।
हां, तुमसे मैं कहूंगा कि किसी जैन मुनि के सामने जाकर मत कहना। किसी शंकराचार्य के सामने जाकर मत कहना। वहां तुम्हारी भयंकर निंदा होगी। वहां ऐसी छोटी-छोटी बातों पर निंदा हो जाती है, जिसका हिसाब नहीं है। मैंने सुनाः पुरी के शंकराचार्य दिल्ली में ठहरे हुए थे। और एक आदमी
ने खड़े होकर उनसे जिज्ञासा की कि मैं खोजी हूं। मगर ईश्वर पर मुझे भरोसा नहीं आता; विश्वास नहीं होता। मुझे भरोसा दिलवाइए। कुछ ऐसा प्रमाण दीजिए कि ईश्वर है।
और पता है, शंकराचार्य ने क्या कहा! शंकराचार्य ने उस आदमी की तरफ क्रोध से देखा और पूछा कि तुमने पतलून क्यों पहन रखी है?
वह बेचारा ईश्वर की जिज्ञासा कर रहा है! वे पूछते हैंः तुमने पतलून क्यों पहन रखी है? और वहां बैठे होंगे चुटैयाधारी और भी लोग। क्योंकि पुरी के शंकराचार्य के पास और कौन जाएगा! मूढ़ों की जमात होगी वहां। वे सब हंसने लगे। और यह बेचारा एकदम दीन-हीन हो गया। पतलून पहने हुए खड़ा हुआ है! होगा दिल्ली के किसी दफ्तर में क्लर्क।
तुमने पतलून क्यों पहन रखी है? भारतीय संस्कृति का क्या हुआ? तुम्हारी चोटी कहां है?
वह बेचारा ईश्वर का प्रमाण लेने आया है! अब उसकी चोटी भी नहीं है। गया नर्क में। गया काम से। और पतलून पहन रखी है!
और फिर बात यहीं खतम नहीं हो गयी। वे लोग और हंसने लगे। वह तो थोड़ा चिंता में पड़ गया होगा कि यह मैं कैसा प्रश्न पूछ बैठा! यहां चार आदमी के सामने फजीहत हो गयी।
जो उन्होंने और आगे बात की, वह तो बहुत गजब की है--ब्रह्म-ज्ञान की! उन्होंने कहा कि तुम पतलून ही पहनकर पेशाब भी करते हो? तो तुम अशुद्ध हो। खड़े होकर पेशाब करते हो? क्योंकि पतलून पहने हो, तो बैठकर कैसे करोगे?
यह ब्रह्म-ज्ञान चल रहा है! और वे सारे लोग हंसने लगे। उस आदमी की तरफ किसी का ख्याल नहीं है। और उसने एक ऐसी बात पूछी थी, जो सभी के भीतर है।
और यह मैंने शंकराचार्य की पत्रिका में ही पढ़ा। तो मतलब जिसने छापा है, वे शंकराचार्य की पत्रिका वाले लोग इसको बड़े गौरव से छापे हैं कि देखो, शंकराचार्य ने कैसा नास्तिक को ठीक किया!
किसी को ठीक कर रहे हो कि किसी को सहारा देना है! और जो आदमी ऐसी बातें
कह रहा है, यह शंकराचार्य, इससे ऊंचाई पर नहीं हो सकता; इससे ज्यादा ऊंचाई पर नहीं हो सकता।
इस आदमी के अपमान में पूरी मनुष्य जाति का अपमान कर दिया गया। और जो आदमी यह कर रहा है, वह गहन प्रकार से दंभ का रोगी है।
इन्हीं शंकराचार्य के साथ एक दफा पटना में मेरा मिलना हो गया--एक ही मंच पर। मैत्रेय जी तुम्हें पूरी कहानी बता सकेंगे। संयोजकों ने मुझे भी बुला लिया; उनको भी बुला लिया। उन्होंने मुझे देखते ही से संयोजकों को कहा कि अगर ये सज्जन यहां बोलेंगे, तो मैं यहां नहीं बोल सकता!

अब संयोजक बड़ी मुश्किल में पड़ गए कि अब करना क्या? अड़चन खड़ी हो गयी। मुझे निमंत्रित किया है; दूर से मुझे बुलाया है। और ये कहते हैं कि अगर मैं बोला, तो वे नहीं बोलेंगे!
मैंने संयोजकों को कहा कि उनको कहो कि पहले मैं बोल देता हूं। फिर पीछे वे बोलें। और दिल भरकर जो आलोचना करनी हो, वह कर लें। यह बात उन्हें जंची।
फिर वे मुश्किल में पड़ गए। वे तो इतने क्रोध में आ गए कि आलोचना करना
तो मुश्किल ही हो गया। आलोचना के लिए भी तो थोड़ी शांति तो चाहिए। वे तो एकदम ज्वरग्रस्त हो गए। वे तो सन्निपात में हो गए। तो कुछ का कुछ बकने लगे। बूढ़े आदमी, इतना जोश-खरोश; पैर खिसक गया; मंच से गिर गए।
इस तरह के महात्माओं के पास जाओ, तो तुम्हारा कहना ठीक है; डरना। पहले
तो जाना ही मत। चले जाओ, तो दिल की मत कहना। वहां झूठे प्रश्न पूछना। वहां अगर श्रद्धा न हो, तो कहनाः बड़ी श्रद्धा है भीतर--तो ठीक होगा। नास्तिक हो, तो कहनाः आस्तिक हूं। चोटी न भी हो, तो भी टोपी लगाकर जाना और कहना कि चोटी है। और पतलून भी पहने हो, तो ऊपर से धोती पहन लेना। और इसके पहले कि ऐसे महात्मा तुमसे कहें कि खड़े होकर पेशाब करते हो कि बैठकर; तुम ही बता देना कि हम बैठकर ही पेशाब करते हैं।
वहां डरना। मेरे पास डरने की कोई भी जरूरत नहीं है। तुम्हारा जैसा प्रश्न हो। मैं अगर कुछ हूं, तो चिकित्सक हूं। तुम मुझसे अपनी बीमारी न कहोगे, तो कैसे होगा! और ध्यान रखनाः मैं पशु-चिकित्सक नहीं हूं। आदमियों का चिकित्सक हूं।
एक सज्जन मेरे पास आए। उन्होंने कहा कि फलां डाक्टर बड़ा गजब का डाक्टर है। उससे कहो ही मत; वह नाड़ी पर हाथ रखकर सब बीमारियां बता देता है। तो मैंने कहा कि वह आदमियों का डाक्टर है कि पशुओं का? वे बोलेः नहीं; आदमियों का डाक्टर है। मैंने कहाः आदमी तो बोल सकता है! पशुओं का सवाल है कि नाड़ियों पर हाथ रखो। अब पशु तो बोल नहीं सकता, तो अब नाड़ी पकड़कर देखो कि क्या बीमारी है। आदमी बोल सकता है। इसमें गुणवत्ता क्या है? इसमें कोई गुणवत्ता नहीं है।
मैं चाहता हूं कि तुम अपनी बीमारी मुझसे कहो। तुम्हारे कहने में ही आधी बीमारी हल होती है। मैं तुम्हारे बिना कहे भी जान सकता हूं। लेकिन मेरे जानने से उतना लाभ नहीं होगा, जितना तुम कहोगे तो होगा।
एक तो कहने के लिए तुमने जो साहस जुटाया, वही बड़ी बात हो गयी। कहने के लिए तुमने जो भय छोड़ा, वही बड़ी बात हो गयी। कहने के लिए तुमने जो सोचा- विचारा, विश्लेषण किया, परखा अपने भीतर--क्या है मेरा रोग--उसी में तुम्हारा ध्यान बढ़ा; तुम्हारा होश बढ़ा।
ठीक से प्रश्न पूछ लेना, आधा उत्तर पा जाना है। ठीक से अपना प्रश्न पकड़ लेना, आधा उत्तर पा जाना है। आधा काम तुम करो; आधा काम मैं करूं। क्योंकि तुम अगर बिल्कुल कुछ न करो, तो तुम्हें लाभ नहीं होगा। पूरा काम अगर मुझे करना पड़े, तो तुम्हें लाभ नहीं होगा।
मैं तुम्हें इशारा दे सकता हूं; काम तुम्हें करना है।

आखिरी प्रश्नः
कहते हैं लोग, आती है बहार भी कभी
लेकिन हमें खिजां के सिवा कुछ नहीं पता।
मुड़ते हवा के साथ रहे जो सदा, उन्हें
क्यों और कब, कहां के सिवा कुछ नहीं पता।
माथा पकड़ के आज तक रोते रहे ये लोग
इनको गलत निशां के सिवा कुछ नहीं पता।
खंजर नहीं उठा सको, तेवर ही बदल लो
तुमको तो मेहरबां के सिवा कुछ नहीं पता।
वो क्या करेंगे रोशनी घर में कभी, जिन्हें बुझती हुई शमां के सिवा कुछ नहीं पता।
जन्नत भी कहीं होती है, ये कहती है किताब

लेकिन हमें यहां के सिवा कुछ नहीं पता।

किताब की मानना भी मत। तुम्हें पता चल सकता है। जन्नत का पता लगाने की जरूरत भी नहीं है। क्योंकि जन्नत तुम्हारे भीतर है, कहीं और नहीं। जन्नत का कोई भूगोल नहीं है; जन्नत का सिर्फ अध्यात्म है। जन्नत यहां है--इन वृक्षों में, इस आकाश में, इन चांद-तारों में, इन लोगों में--जन्नत कहीं और नहीं है। किताबें तुम्हें किसी जन्नत की बात करती हैं, जो कहीं दूर आकाशों में, सात आसमानों के पार है। वह जन्नत झूठी है। जिन्होंने वे किताबें लिखी हैं, उनको भी पता नहीं है।
मैं तुम्हें जन्नत यहां दे रहा हूं। इस जन्नत को पाने के लिए किताबों में जाने की जरूरत नहीं है; अपने में जाने की जरूरत है। तुम ही हो वह किताब, जिसको तुम वेद में खोजते हो, कुरान में, बाइबिल में, धम्मपद में। तुम ही हो वह किताब, जिसे पढ़ा जाना है। कौन पढ़ेगा तुम्हारे अलावा?
तुम्हारे भीतर सारे वेद पड़े हैं, सारे कुरान, सारे उपनिषद छिपे हैं।
जब किसी ऋषि से उपनिषद पैदा हुआ, तो उसका अर्थ यही है कि हर आदमी में पड़ा है। जब भी कोई जागेगा, उसी से उपनिषद पैदा हो जाएगा। जब किसी से वेद की ऋचाएं निकलीं और कुरान की अपूर्व आयतें आयीं--वे इतनी ही खबर देती हैं कि हर आदमी के अचेतन गर्त में यह सब पड़ा है। अगर मोहम्मद में उठ सका, तो तुम में भी उठ सकेगा।
मैं तुम्हें तुम्हारी याद दिलाता हूं। किसी किताब में जाने की जरूरत नहीं है। तुम ही हो वह किताब। और जन्नत कहीं दूर नहीं है, आगे नहीं है, जन्नत यहां है और अभी है। जन्नत जीवन को जीने का ढंग है। नर्क भी जीवन को जीने का ढंग है। एक गलत, एक सही। बस, उतना ही भेद है।
नर्क का अर्थ होता है कि तुम इस ढंग से जी रहे हो कि दुख पैदा होता है। तुम इस ढंग से जी रहे हो कि चिंता पैदा होती है। तुम इस ढंग से जी रहे हो कि बेचैनी रहती है। तुम इस ढंग से जी रहे हो कि खिंचे-खिंचे रहते हो।
जन्नत का अर्थ क्या है? जन्नत या स्वर्ग का अर्थ हैः तुम्हें राज हाथ
लग गया। तुम इस ढंग से जीने लगे कि सुख की छाया बनी रहती है; शांति बनी रहती है भीतर। तनाव गया, चिंता गयी, फिक्र गयी। भविष्य गया, अतीत गया; यही क्षण सब कुछ है। तुम इसी में नाचते; इसी में खाते, इसी में पीते; इसी में सोते, इसी में जागते।
यह क्षण सब कुछ है--वर्तमान। अतीत जाए, भविष्य जाए। स्वर्ग का द्वार यहीं खुल जाता है। इस क्षण में है स्वर्ग का द्वार।
"कहते हैं लोग, आती है बहार भी कभी
लेकिन हमें खिजां के सिवा कुछ नहीं पता।"
बहार बाहर से नहीं आती। और खिजां भी बाहर से नहीं आती। वसंत भी भीतर
से आता है; पतझड़ भी भीतर से आता है। तुम गलत ढंग से जी रहे हो, इसलिए तुम्हें पतझड़ के सिवा कुछ भी पता नहीं है। तुम ठीक से जीयो।
ठीक से जीने के दो सूत्र हैंः ध्यान और प्रेम। ये दो जड़ें हैं; अगर ये मजबूती से तुम्हारे भीतर जम जाएं, तो तुम पाओगे, वसंत आ गया। वसंत आया ही हुआ था। वसंत सदा से आया हुआ है। अस्तित्व वसंत के सिवा और कुछ जानता ही नहीं।
आज इतना ही।

एस धम्मो सनंतनो, भाग 12
एक सौ उन्नीस प्रवचन

ब्राह्मणत्व के शिखर--बुद्ध

न ब्राह्मणस्सेतदकिंच सेय्यो
यदा निसेधो मनसो पियेहि।
यतो यतो हिंसमनो निवत्तति
ततो ततो सम्मति एव दुक्खं।। 318।।

न जटाहि न गोत्तेहि न जच्चा होति ब्राह्मणो।
यम्हि सच्चंच धम्मो च सो सुची सो च ब्राह्मणो।। 319।।

किं ते जटाहि दुम्मेध! किं ते अजिनसाटिया।
अब्भन्तरं ते गहनं वाहिरं परिमज्जसि।। 320।।

सब्बसांंजनं छेत्त्वा यो वे न परितस्सति।
संगातिगं विसांंत्तं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं।। 321।।

छेत्त्वा नन्दिं वरत्तंच सन्दामं सहनुक्कमं।
उक्खित्तपलिघं बुद्धं तमहं बू्रमि ब्राह्मणं।। 322।।

अक्कोसं बधबन्धंच अदुट्ठो यो तितिक्खति।
खन्तिबलं बलानीकं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं।। 323।।

रूह देखी है कभी, रूह को महसूस किया है?
जागते जीते हुए दूधिया कोहरे से लिपटकर
सांस लेते हुए इस कोहरे को महसूस किया है?
या शिकारे में किसी झील पे जब रात बसर हो
और पानी के छपाकों में बजा करती हों टलियां सुबकियां लेती हवाओं के वह बैन सुने हैं? चौदहवीं रात के बरफाब-से इस चांद को जब ढेर-से साए जब पकड़ने के लिए भागते हैं
तुमने साहिल पे खड़े गिरजे की दीवार से लगकर
अपनी गहनाई हुई कोख को महसूस किया है?
जिस्म सौ बार जले फिर भी वही मिट्टी का ढेला
रूह इक बार जलेगी तो वह कुंदन होगी
रूह देखी है कभी, रूह को महसूस किया है?
जो रूह को महसूस कर ले, वही ब्राह्मण है। जो इस अस्तित्व की अंतरात्मा
को पहचान ले, वही ब्राह्मण है। जो पदार्थ में परमात्मा को देख ले, वही ब्राह्मण है। जिसके लिए स्थूल और सूक्ष्म एक हो जाएं, वही ब्राह्मण है। बाहर और भीतर जिसके भेद न रहे, वही ब्राह्मण है।
बुद्ध ने बहुत-बहुत सूत्रों में ब्राह्मण की परिभाषा की है। ब्राह्मण शब्द परम दशा का सूचक है। इसकी सूक्ष्म व्याख्या होनी जरूरी है। इसकी गलत व्याख्या होती रही है। मनु की व्याख्या गलत है--कि जन्म से कोई ब्राह्मण होता है। महावीर की व्याख्या थोड़ी ऊपर जाती है मनु से--कि कर्म से कोई ब्राह्मण होता है। बुद्ध की व्याख्या और भी ऊपर जाती है--आत्म-अनुभव से। न जन्म से, न ऊपर के आचरण से, बल्कि भीतर जो छिपा है, उसके साक्षात्कार से कोई ब्राह्मण होता है। बुद्ध ही केवल ब्राह्मण होता है। जो जाग गया अपने में, वही ब्राह्मण होता है।
बुद्ध की भाषा में ब्राह्मण और बुद्ध पर्यायवाची हैं।
इसके पहले कि हम सूत्रों में चलें, सूत्रों की परिस्थिति समझें।

पहला दृश्यः

श्रावस्ती नगरवासी बहुत से मनुष्य एकत्र होकर सारिपुत्र स्थविर के अनेक गुणों की प्रशंसा कर रहे थे। एक बुद्ध-विरोधी ब्राह्मण भी यह सुन रहा था और ईर्ष्या और क्रोध से जला जा रहा था। तभी भीड़ में से किसी ने कहाः हमारे आर्य ऐसे सहनशील हैं कि आक्रोशन करने वालों या मारने वालों पर भी क्रोध नहीं करते हैं। यह बात मिथ्या-दृष्टि ब्राह्मण की आग में घी का काम कर गयी। वह बोलाः उन्हें कोई क्रोधित करना जानता ही न होगा। देखो, मैं क्रोधित करता हूं।
नगरवासी हंसे और उन्होंने कहाः यदि तुम उन्हें क्रोधित कर सकते हो,
तो करो।
वह ब्राह्मण दोपहर में सारिपुत्र को भिक्षाटन करते देख, पीछे से जाकर लात से पीठ पर मारा।
लेकिन स्थविर ने पीछे लौटकर देखा भी नहीं। वे ध्यान में जागे, ध्यान
के दीए को सम्हाले चल रहे थे, सो वैसे ही चलते रहे। उलटे, मन ही मन वे प्रसन्न भी हुए, क्योंकि साधारणतः ऐसी स्थिति में मन डांवाडोल हो उठे, यह स्वाभाविक ही है। लेकिन मन नहीं डोला था और ध्यान की ज्योति और भी थिर हो उठी थी। उनके भीतर इस भांति लात मारने वाले के प्रति आभार के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं था।
इस घटना ने अंधे ब्राह्मण को तो जैसे आंखें दे दीं। वह सारिपुत्र के चरणों में गिर पड़ा। और उन्हें घर ले जाकर भोजन कराया। उसकी आंखें पश्चात्ताप के आंसुओं से भरी थीं और वे आंसू उसके सारे कल्मष को बहाकर उसकी आत्मा को निर्मल कर रहे थे।
इस तरह सारिपुत्र के निमित्त उस पर पहली बार बुद्ध की किरण पड़ी थी।
लेकिन भिक्षुओं को सारिपुत्र का व्यवहार नहीं जंचा। उन्होंने भगवान
से कहाः आयुष्मान सारिपुत्र ने अच्छा नहीं किया, जो कि मारने वाले ब्राह्मण के घर जाकर भोजन भी किया। अब किसे वह बिना मारे छोड़ेगा! वह तो भिक्षुओं को मारने की आदत बना लेगा। अब तो वह भिक्षुओं को मारता हुआ ही विचरण करेगा।
शास्ता ने भिक्षुओं से कहाः भिक्षुओ! ब्राह्मण को मारने वाला ब्राह्मण नहीं है। गृहस्थ-ब्राह्मण द्वारा श्रमण-ब्राह्मण मारा गया होगा। और सारिपुत्र ने वही किया है, जो कि ब्राह्मण के योग्य है। फिर तुम्हें पता भी नहीं है कि सारिपुत्र के ध्यानपूर्ण व्यवहार ने एक अंधे आदमी को आंखें प्रदान कर दी हैं।
और तभी उन्होंने ये गाथाएं कहींः

न ब्राह्मणस्सेतदकिंच सेय्यो यदा निसेधो मनसो पियेहि।
यतो यतो हिंसमनो निवत्तति ततो ततो सम्मति एव दुक्खं।।

"ब्राह्मण के लिए यह कम श्रेयस्कर नहीं है कि वह प्रिय पदार्थों से मन
को हटा लेता है। जहां-जहां मन हिंसा से निवृत्त होता है, वहां-वहां दुख शांत हो जाता है।"

न जटाहि न गोत्तेहि न जच्चा होति ब्राह्मणो।
यम्हि सच्चंच धम्मो च सो सुची सो च ब्राह्मणो।।

"न जटा से, न गोत्र से, न जन्म से ब्राह्मण होता है। जिसमें सत्य और धर्म है, वही शुचि है और वही ब्राह्मण है।"

किं ते जटाहि दुम्मेध! किं ते अजिनसाटिया।
अब्भन्तरं ते गहनं वाहिरं परिमज्जसि।।

"हे दुर्बुद्धि, जटाओं से तेरा क्या बनेगा? मृगचर्म पहनने से तेरा क्या होगा? तेरा अंतर तो विकारों से भरा है, बाहर क्या धोता है?"

सब्बसांंजनं छेत्त्वा यो वे न परितस्सति।
संगातिगं विसांंत्तं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं।।

"जो सारे संयोजनों को काटकर भयरहित हो जाता है, उस संग और आसक्ति से विरत को मैं ब्राह्मण कहता हूं।"
श्रावस्ती नगरवासी--सीधे-सादे लोग--एकत्र होकर सारिपुत्र के गुणों की प्रशंसा कर रहे थे।
सारिपुत्र बुद्ध के प्रमुख शिष्यों में एक। जिन्होंने बुद्ध के जीते
जी बुद्धत्व प्राप्त किया--उनमें से एक। सारिपुत्र स्वयं भी कभी बहुत बड़ा पंडित था। जब पहली बार बुद्ध के पास आया था, तो बुद्ध से विवाद करने आया था। पांच सौ अपने शिष्यों को साथ लाया था। लेकिन बुद्ध के पास आकर विवाद का मौका नहीं बना। विवाद के पहले हार हो गयी। बुद्ध को देखते ही हार हो गयी।
बड़ा संवेदनशील रहा होगा। पांडित्य तो था, लेकिन पांडित्य पर बहुत पकड़
न रही होगी। पांडित्य तो था, लेकिन पांडित्य से हटकर देखने की क्षमता रही होगी। इसलिए बुद्ध को देखते ही रूपांतरित हो गया। शिष्यों से अपने कहा था, भूल जाओ विवाद की बात। यह आदमी विवाद करने योग्य नहीं है। यह आदमी लड़ने योग्य नहीं है। यह आदमी ऐसा है, जिसके चरणों में हम बैठें। मैं तो बुद्ध का शिष्यत्व स्वीकार करता हूं। तुम मेरे शिष्य हो; अगर तुम मुझे समझे हो, तो मेरे साथ झुक जाओ। खुद दीक्षित हुआ; अपने पांच सौ शिष्यों को भी दीक्षित किया।
बुद्ध के पास हजारों शिष्य थे, उनमें सारिपुत्र सबसे बड़ा बौद्धिक व्यक्ति था--लेकिन बुद्धि में सीमित नहीं। और जल्दी ही उसमें फूल खिलने शुरू हो गए। जल्दी ही उसमें सुवास आनी शुरू हो गयी। जो झुकने को इतना तत्पर हो! आया था विवाद करने और निर्विवाद झुक गया! जिसके पास ऐसी सरल दृष्टि हो; ऐसा सहज भाव हो, अगर जल्दी ही वह बुद्धत्व को उपलब्ध हो गया, तो कुछ आश्चर्य नहीं है।
श्रावस्ती के भोले-भाले लोग, सीधे-सादे लोग सारिपुत्र के गुणों की प्रशंसा कर रहे थे।
ऐसे गुण थे ही सारिपुत्र में जिनकी प्रशंसा की जाए। यही देखते होः विवाद करने आया हो और बिना एक प्रश्न उठाए झुक जाए और शिष्यत्व स्वीकार कर ले! बड़े पांडित्य के बोझ से दबा हो, शास्त्रों का ज्ञाता हो, और शास्त्रों को ऐसे हटा दे, जैसे कोई दर्पण से धूल को हटा देता है! इतनी सुगमता से, इतनी सरलता से, बिना दंभ के, बिना अहंकार के, बिना अकड़ के। न केवल खुद झुका, बल्कि अपने पांच सौ शिष्यों को भी झुका दिया।
सारिपुत्र ने बुद्ध से कभी कोई प्रश्न ही नहीं पूछा फिर। आया था उत्तर देने; प्रश्न ही नहीं पूछा। उनकी छाया हो गया। उनमें लीन हो गया। गुण खूब थे सारिपुत्र में; गुणी था। गांव के लोग ठीक ही प्रशंसा करते थे। लेकिन एक बुद्ध-विरोधी ब्राह्मण भी यह सुन रहा था और ईर्ष्या और क्रोध से जला जा रहा था। तभी भीड़ में से किसी ने कहाः हमारे आर्य ऐसे सहनशील हैं कि आक्रोशन करने वालों या मारने वालों पर भी क्रोध नहीं करते हैं। यह बात मिथ्या-दृष्टि ब्राह्मण की आग में घी का काम कर गयी।
मिथ्या-दृष्टि का अर्थ होता हैः जिसे उलटा देखने की आदत पड़ गयी है। उलटी खोपड़ी! सीधी बात को भी जो उलटा करके देखेगा। जो सीधा देख ही नहीं सकता। जिसकी दृष्टि में बड़ी गहरी भ्रांति बैठ गयी है।
सारिपुत्र की प्रशंसा हो रही है; उसे प्रशंसा से आग लग रही है।
ऐसे बहुत लोग हैं, जो किसी की भी प्रशंसा नहीं सुन सकते। जो केवल निंदा सुन सकते हैं। इसीलिए तो लोग ज्यादातर निंदा करते हैं। क्योंकि निंदा ही सुनने वाले लोग हैं। जहां दो-चार आदमी मिले कि निंदा शुरू हो जाती है!
प्रशंसा करना भी अपने आप में एक गुणवत्ता है। क्योंकि प्रशंसा वही कर सकता है, जिसके पास सम्यक दृष्टि हो। प्रशंसा के लिए सबसे बड़ा गुण जरूरी

है कि जो अपने को हटाकर दूसरे को देख सके। जो दूसरे के बड़प्पन में पीड़ित न हो जाए; जिसके अहंकार को चोट न लगे; जो दूसरे की भव्य प्रतिमा को देखकर क्रोध से न भर जाए--कि यह कौन है, जो मुझसे ज्यादा भव्य है? यह कौन है, जो मुझसे ज्यादा दिव्य है? यह कौन है, जो मुझसे ज्यादा श्रेष्ठ है? मुझसे ज्यादा श्रेष्ठ कोई भी नहीं हो सकता--ऐसी पीड़ा जिसे पैदा हो जाती है, वह मिथ्या-दृष्टि है।
मिथ्या-दृष्टि किसी की प्रशंसा बर्दाश्त नहीं कर सकता, क्योंकि वह किसी की प्रशंसा को अपनी निंदा मानता है। दूसरा बड़ा है, तो मैं छोटा हो गया--यह उसका तर्क है। दूसरा सुंदर है, तो मैं कुरूप हो गया--यह उसका तर्क है। दूसरा चरित्रवान है तो फिर मेरा क्या!
मिथ्या-दृष्टि दूसरे की निंदा सुन सकता है। क्यों? क्योंकि दूसरे की निंदा से उसके अहंकार को भरण-पोषण मिलता है। तो वह कहता हैः अच्छा! तो यह भी चरित्रहीन है! इससे तो हम ही भले हैं!
तुम ध्यान रखना, निंदा का एक मनोविज्ञान है। क्यों लोग निंदा पसंद करते हैं? तुम अगर किसी से कहो कि अ नाम का आदमी संत हो गया है; कोई मानेगा नहीं। पच्चीस दलीलें लोग लाएंगे--कि नहीं; संत नहीं है। सब धोखा-धड़ी है। सब पाखंड है। और तुम किसी के संबंध में कहो कि फलां आदमी चोर हो गया है; तो कोई विवाद न करेगा। वह कहेगाः हमें पहले से ही पता है। वह चोर है ही। क्या हमें बता रहे हो! वह महाचोर है। तुम्हें अब पता चला! तुम्हारी आंखें अंधी थीं। तुमने कभी देखाः निंदा जब तुम किसी की करो, तो कोई प्रमाण नहीं मांगता। और प्रशंसा जब करो, तो हजार प्रमाण मांगे जाते हैं। और, और भी एक कठिनाई है कि प्रशंसा जिन चीजों की होती है, उनके लिए प्रमाण नहीं होते। और निंदा जिन चीजों की होती है, उनके लिए प्रमाण होते हैं। क्योंकि निंदा तो क्षुद्र जगत की बात है, उसके लिए प्रमाण हो सकते हैं।
समझो किसी आदमी की तुम निंदा कर रहे हो कि उसने चोरी की। तो चार आदमी गवाह की तरह खड़े किए जा सकते हैं कि इन्होंने उसे चोरी करते देखा। लेकिन तुम कहते हो कि कोई आदमी जाग गया, प्रबुद्ध हो गया; इसके लिए कहां गवाह खोजोगे! कहां से गवाह मौजूद करोगे? कौन कहेगा कि हां, मैंने इसको बुद्ध होते देखा! यह बात तो देखने की नहीं है। यह तो बुद्ध ही कोई हो, तो देख सके; जो स्वयं बुद्ध हो, वह देख सके। दूसरा तो कोई इसका गवाह नहीं हो सकता।
मजे की बात देखना। जो प्रशंसा-योग्य तत्व हैं, उनके लिए प्रमाण नहीं होते। और उनके लिए लोग प्रमाण पूछते हैं। और जो निंदा है, उसके लिए हजार प्रमाण होते हैं, लेकिन कोई प्रमाण पूछता ही नहीं। प्रमाण के बिना ही स्वीकार कर लेते हैं लोग। लोग निंदा स्वीकार करना चाहते हैं। लोग तैयार ही हैं कि निंदा करो।
तुम्हारे अखबार निंदा से भरे होते हैं। तुम अखबार पढ़ते ही इसीलिए हो
कि आज किस-किस की बखिया उधेड़ी गयी। अखबार में जिस दिन निंदा नहीं होती, उस दिन तुम उसे उदासी से सरकाकर एक तरफ रख देते हो--कि कुछ खास बात ही नहीं है। जब अखबार में हत्या की खबर होती है, चोरी की, किसी की स्त्री के भगाने की, तलाक की, आत्महत्या की, तब तुम एकदम चश्मा ठीक करके एकदम अखबार पर झुक जाते हो कि एक शब्द चूक न जाए! इसलिए बेचारा अखबार छापने वाला आदमी निंदा की तलाश में घूमता रहता है।
पत्रकारों की दृष्टि ही मिथ्या हो जाती है, क्योंकि उनका धंधा ही खराब है। उनके धंधे का मतलब ही यह है कि जनता जो चाहती है, वह लाओ खोजबीन कर। अच्छे से अच्छे आदमी में कुछ बुरा खोजो। सुंदर से सुंदर में कोई दाग खोजो। चांद की फिकर छोड़ो। चांद पर वह जो काला धब्बा है, उसकी चर्चा करो। क्योंकि लोग धब्बे में उत्सुक हैं, चांद में उत्सुक नहीं हैं। चांद की बात करो, तो कोई अखबार खरीदेगा ही नहीं।
इसलिए जो पत्रकारिता है, वह मूलतः निंदा के रस की ही कला है। कैसे खोज लो--कहीं से भी कुछ गलत कैसे खोज लो! और जब तुम खोजने का तय ही किए बैठे हो, तो जरूर खोज लोगे। क्योंकि जो आदमी जो खोजने निकला है, उसे मिल जाएगा।
यह दुनिया विराट है। इसमें अंधेरी रातें हैं और उजाले दिन हैं। इसमें गुलाब के फूल हैं और गुलाब के कांटे हैं। जो आदमी निंदा खोजने निकला है, वह

कहेगा कि दुनिया बड़ी बुरी है। यहां दो रातों के बीच में एक छोटा सा दिन है। दो अंधेरी रातें, और बीच में छोटा सा दिन! और जो प्रशंसा खोजने निकला है, वह कहेगा कि दुनिया बड़ी प्यारी है। परमात्मा ने कैसी गजब की दुनिया बनायी हैः दो उजाले दिन; बीच में एक अंधेरी रात!
जो आदमी निंदा खोजने निकला है, वह गुलाब की झाड़ी में कांटों की गिनती
कर लेगा। और स्वभावतः कांटों की गिनती जब तुम करोगे, तो कोई न कोई कांटा हाथ में गड़ जाएगा। तुम और क्रोधाग्नि से भर जाओगे। अगर कांटा हाथ में गड़ गया और खून निकल आया, तो तुम्हें जो एकाध फूल खिला है झाड़ी पर, वह दिखायी ही नहीं पड़ेगा। तुम अपनी पीड़ा से दब जाओगे। तुम गालियां देते हुए लौटोगे। जो आदमी फूल को देखने निकला है, वह फूल से ऐसा भर जाएगा कि उसे कांटे
भी प्यारे मालूम पड़ेंगे। वह फूल से ऐसा रस-विमुग्ध हो जाएगा कि उसे यह बात दिखायी पड़ेगी कि कांटे जरूर भगवान ने इसीलिए बनाए होंगे कि फूलों की रक्षा हो सके। ये फूलों के पहरेदार हैं।
सब तुम पर निर्भर है; कैसे तुम देखते हो; क्या तुम देखने चले हो।
यह बुद्ध-विरोधी ब्राह्मण था। इसने तय ही कर रखा था। न यह कभी बुद्ध
के पास गया था... ।
यह बड़े आश्चर्य की बात है कि विरोधी पास जाते ही नहीं। विरोधी दूर-दूर रहते हैं। विरोध करने के लिए यह जरूरी है कि वे दूर-दूर रहें। पास आएं तो खतरा है। पास आएं तो डर है कि कहीं ऐसा न हो कि हमारा विरोध गल जाए। तो विरोधी पीठ किए खड़ा रहता है; दूर-दूर रहता है। सुनी-सुनायी बातों में से चुनता है। फिर उन चुनी हुई बातों को भी बिगाड़ता है; अपना रंग देता है। फिर उनको विकृत करता है; विकृति को बढ़ाता है। फिर उस विकृति में जीता है और सोचता है कि मुझे तथ्यों का पता है।
ध्यान रखना, इस जगत में तथ्य होते ही नहीं। तथ्य झूठ बात है। इस जगत में सब व्याख्याएं हैं; तथ्य नहीं होते।
एक बड़ा इतिहासकार एडमंड बर्क विश्व का इतिहास लिख रहा था। उसने कोई तीस साल उस पर मेहनत की थी। और वह चाहता था कि दुनिया का ऐसा इतिहास लिखे, जैसा पहले कभी नहीं लिखा गया। तीस साल लंबा समय था। आधा जीवन उसने गंवा दिया था।
एक दिन उसके घर के पीछे एक हत्या हो गयी। वह भागा हुआ पहुंचा। भीड़ खड़ी थी। लाश पड़ी थी। हत्यारा पकड़ लिया गया था रंगे हाथों। उसने लोगों से पूछा कि क्या हुआ? लेकिन जितने लोग थे, उतनी बातें! जितने मुंह, उतनी बातें! कोई हत्यारे के पक्ष में था। कोई जिसकी हत्या की गयी उसके पक्ष में था। कोई इसका कसूर बता रहा था; कोई उसका कसूर बता रहा था।
एडमंड बर्क तो हैरान हो गया। उसके घर के पीछे हत्या हुई है; अभी हत्यारा मौजूद है; अभी लाश पड़ी है; अभी खून बह रहा है सड़क पर। अभी सब ताजा है और नया है। अभी खून सूखा भी नहीं है। लोग मौजूद हैं, जो चश्मदीद गवाह हैं। लेकिन कोई दो चश्मदीद गवाह की बात एक सी नहीं है।
वह लौटकर आया और उसने तीस साल में जो इतिहास लिखा था, उसको आग लगा दी। उसने कहा कि मैं इतिहास लिखने बैठा हूं दुनिया का! बुद्ध के समय में क्या हुआ; और सिकंदर के समय में क्या हुआ; और कृष्ण के समय में क्या हुआ? यह मैं क्या कर रहा हूं! मेरे घर के पीछे एक हत्या हो जाए; मैं भागकर पहुंचूं। रंगे हाथ हत्यारा पकड़ा गया हो। चश्मदीद गवाह मौजूद हों। और निर्णय करना मुश्किल है कि क्या हुआ! तो मैं तीन हजार और पांच हजार साल पहले क्या हुआ-- यह कैसे तय कर पाऊंगा! सब अफवाहें हैं और सब व्याख्याएं हैं।
व्याख्या व्याख्या की बात है। तुम कैसे व्याख्या करते हो, इस पर सब निर्भर करता है।
मेरे एक संन्यासी ने--उमानाथ ने--नेपाल से मुझे पत्र लिखा है कि दक्षिण भारत में लोग राम को जलाकर क्या पाएंगे? जब मैं उनका पत्र पढ़ रहा था, तब मैंने सोचा कि जब ये उमानाथ आएंगे, तो मैं उनसे पूछूंगाः तुमने उत्तर में रावण को जलाकर क्या पाया? उस पर संदेह नहीं है उन्हें। उत्तर के हैं। उस पर संदेह नहीं है कि रावण को जलाने में कोई हर्जा है! रावण को तो जलाना ही चाहिए हर साल! लेकिन ये राम के पक्ष में जिन्होंने किताबें लिखी

हैं, उनकी व्याख्या है। रावण के पक्ष में किताबें लिखी जा सकती हैं, तब व्याख्या बिल्कुल बदल जाएगी। घटना वही है, लेकिन व्याख्या बदल जाएगी। क्या सच है--मैं नहीं कह रहा हूं। मैं तुमसे यह कह रहा हूं कि तथ्यों में सच होता ही नहीं; सब व्याख्या होती है। तय ही नहीं हो पाता दुनिया में। इतने युद्ध हो गए हैं, लेकिन कभी तय नहीं हुआ कि किसने हमला किया। तय हो ही नहीं सकता। क्योंकि एक पक्ष कहे चला जाता है कि दूसरे ने हमला किया। दूसरा पक्ष कहे जाता है कि उसने हमला किया। फिर जो जीत जाता है, वह इतिहास की किताबें लिखता है। जो जीत जाता है, वह अपने पक्ष को किताबों में डाल देता है।
जब स्टैलिन रूस का तानाशाह बना, तो उसने सारा इतिहास बदल दिया रूस का। सारा इतिहास बदल दिया! अपने विरोधियों की तस्वीरें निकाल दीं। अपने विरोधियों के नाम निकाल दिए। जहां तस्वीरें खुद की नहीं थीं, वहां फोटोग्राफी की कलाबाजी से अपनी तस्वीरें डलवा दीं। सब जगह अपना नाम डाल दिया; अपने पक्षपातियों का नाम डाल दिया।
जब तक स्टैलिन सत्ता में रहा, वही इतिहास रूस में चला। बच्चों ने वही पढ़ा। स्टैलिन के मरते ही बात बदल गयी। स्टैलिन के विरोधियों ने स्टैलिन का नाम फिर पोंछ दिया।
यही तो अभी हो रहा है दिल्ली में। कैप्सूल खोदा जा रहा है। इंदिरा ने
एक कैप्सूल रखा था; वह एक व्याख्या है। स्वभावतः, उसमें कुछ नाम नहीं होंगे। जैसे सुभाष का नाम नहीं होगा। या होगा, तो कहीं टिप्पणी में होगा, पाद-टिप्पणी में। किसी मूल्य का नहीं होगा। स्वभावतः, उसमें सरदार पटेल का नाम नहीं होगा। या होगा भी, तो गौण होगा। और निश्चित ही उसमें मोरारजी भाई का नाम नहीं है।
उसे निकालना पड़ेगा। निकाला जा रहा है। खोदा जा रहा है। फिर से टाइम कैप्सूल बनाया जाएगा। उसमें इंदिरा विदा हो जाएगी। उसमें नेहरू सिकुड़कर छोटे हो जाएंगे। उसमें वल्लभभाई फैलकर कुप्पा हो जाएंगे! उसमें मोरारजी भाई बिल्कुल बीच में विराजमान हो जाएंगे। उसमें जगजीवनराम और चरणसिंह--सब बैठ जाएंगे।
लेकिन कितनी देर यह चलेगा? दो-चार-पांच साल बाद फिर कोई सत्ता में आएगा। फिर टाइम कैप्सूल उखाड़ना पड़ेगा! ऐसा सदा होता रहा है। शायद नया टाइम कैप्सूल जो मोरारजी भाई बनवाएं, उसमें राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की भी गुण-गाथा हो। और शायद उसमें कहा जाए कि नाथूराम गोडसे राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का अंग नहीं था। और गांधी की हत्या में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का कोई हाथ नहीं है। उसमें चीजें बदलेंगी, क्योंकि मोरारजी भाई राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के बल पर खड़े हैं। टाइम कैप्सूल उसके ही बल पर लिखा जाएगा। सारा इतिहास बदलेगा।
पूना में ऐसे लोग हैं, जो नाथूराम गोडसे को महात्मा नाथूराम गोडसे कहते हैं! जन्म-तिथि मनाते हैं। मिठाइयां बांटते हैं। अगर कल कभी आर.एस.एस. के हाथ में इस मुल्क की शक्ति आ गयी, तो महात्मा गांधी विदा हो जाएंगे। उनकी मूर्तियां चौराहों से हटा ली जाएंगी; वहां गुरु गोलवलकर, नाथूराम गोडसे--महात्मा नाथूराम गोडसे--की मूर्तियां खड़ी हो जाएंगी। और तुम उससे भी राजी हो जाओगे! क्योंकि जिसके हाथ में सत्ता है, तुम उससे राजी हो जाते हो।
आदमी तथ्यों की व्याख्याएं कर लेता है। जैसी करना चाहता है, वैसी कर लेता है।
बुद्ध किसको सम्यक-दृष्टि कहते हैं? किसको मिथ्या-दृष्टि कहते हैं? बुद्ध कहते हैंः जो व्याख्या करता है, वह मिथ्या-दृष्टि है। जो व्याख्या नहीं करता, जो विचारशून्य होकर, निर्विचार होकर देखता है, वह सम्यक-दृष्टि है। अगर विचार पहले से ही तुम्हारे भीतर है, तो तुम तथ्य को कैसे देखोगे? तुम्हारा विचार तथ्य को रंग देगा। तथ्य को वैसा बना देगा, जैसा तुम्हारा विचार चाहता है। तुम वही देख लोगे, जो तुम देखना चाहते थे या जो तुमने देखने का तय ही कर रखा था।

एक आदमी ने एक किताब लिखी है कि तेरह का आंकड़ा बहुत बुरा है। हजार पृष्ठ की किताब है। सारी दुनिया से उसने हजारों प्रमाण इकट्ठे किए हैं।
पढ़ोगे, तो तुम्हें भी भरोसा आ जाएगा कि तेरह का आंकड़ा खराब है।
अमरीका में ऐसी धारणा है कि तेरह का आंकड़ा खराब है। बड़े होटलों में तेरहवीं मंजिल नहीं होती, क्योंकि तेरहवीं पर कोई रुकना नहीं चाहता।
बारहवीं के बाद सीधी चौदहवीं मंजिल आती है। तेरहवीं मंजिल होती ही नहीं।
नहीं तो कोई रुके ही नहीं तेरहवीं मंजिल में। तेरह नंबर का कमरा लोग बरदाश्त नहीं करते। तेरह नंबर से बचते हैं। तेरह तारीख को सम्हलकर चलते हैं।
तो इस आदमी ने सब इकट्ठा किया हैः कि तेरह तारीख को कितने लोग आत्महत्या करते हैं; तेरह तारीख को कितने लोग पागल होते हैं; तेरहवीं मंजिल से कितने लोग गिरकर मर जाते हैं। तेरहवें नंबर की बस में चलने वालों में कितनी दुर्घटनाएं होती हैं। उसने सारे आंकड़े इकट्ठे किए हैं--तेरह से संबंधित सब।
एक मित्र मेरे पास उसको लेकर आए थे। मैंने कहा उनसे कि तुम ऐसा करो कि तुम चौदह तारीख के संबंध में खोजबीन करो। इतने ही लोग चौदह को भी मरते हैं; और चौदहवीं मंजिल से भी गिरते हैं; और चौदह नंबर की बस भी टकराती है। और चौदह नंबर की कार भी पहाड़ से गिर जाती है। तुम चौदह के पीछे पड़ जाओ, तो तुम चौदह के लिए भी इतने ही आंकड़े जुड़ा लोगे। आंकड़े जुड़ाने में कुछ अड़चन नहीं है।
जिंदगी बहुत बड़ी है। उसमें अगर हमने कुछ तय ही कर रखा है, तो हम वही चुन लेते हैं। तुमने अगर मान रखा है कि सुबह से इस आदमी की शक्ल देखने से सब खराब हो जाएगा, तो खराब नहीं होता; किसी की शक्ल देखने से क्या खराब होना है! लेकिन तुमने अगर मान रखा है और वे सज्जन सुबह से मिल गए रास्ते पर घूमते; तुमने कहाः मारे गए! ये महाराज के दर्शन हो गए; आज दिन खराब होगा। अब आज दिन में जो-जो खराबी होंगी, वे होने ही वाली थीं। मगर सब इन्हीं
के ऊपर जाएंगी। पैर में कांटा गड़ गया; तुम कहोगेः उस दुष्ट का सुबह चेहरा देखा था। हाथ से प्याला गिरकर टूट गया; उस दुष्ट का सुबह चेहरा देखा था! अब तुम दिनभर याद करते रहोगे उस दुष्ट का चेहरा, और तुम्हें पचास कारण मिल जाएंगे। रास्ते पर केले के छिलके पर फिसलकर गिर पड़े; उस दुष्ट का चेहरा देखा था! और तब तुम और आश्वस्त हो गए कि इस आदमी का चेहरा बड़ा खतरनाक है। अब दुबारा इससे बचना है। कहीं दुबारा फिर न दिखायी पड़ जाए! दुबारा दिखायी पड़ेगा, तो और अड़चन हो जाएगी। तुम्हारी धारणा मजबूत होती चली जाएगी।
यह आदमी बुद्ध-विरोधी है। बुद्ध के पास कभी गया नहीं है। मिथ्या- दृष्टि ब्राह्मण। इसने एक बात तय कर रखी है कि बुद्ध गलत हैं। बुद्ध गलत हैं, तो उनके शिष्य भी गलत ही होंगे--स्वभावतः। तो सारिपुत्र गलत होना ही चाहिए।
उसने कहाः छोड़ो बकवास। तुम कहते हो, उन्हें कोई क्रोधित नहीं कर पाता, इसमें उनकी कोई गुणवत्ता नहीं है। सच बात यह है कि उन्हें कोई क्रोधित करना न जानता होगा; ठीक बटन दबाना न आता होगा। मुझ पर छोड़ो यह काम। मैं उन्हें क्रुद्ध करके बता दूंगा।
देख रहे हैं, उसकी एक दृष्टि है। वह यह मानने को तैयार ही नहीं है कि कोई आदमी ऐसा हो सकता है, जो क्रोधित न हो। कम से कम बुद्ध का शिष्य तो ऐसा नहीं हो सकता। तो फिर एक ही बात हो सकती है कि जिन लोगों के द्वारा सारिपुत्र क्रोधित नहीं किए जा सके हैं, उन्हें क्रोधित करना न आता होगा। उन्होंने ठीक रग न पकड़ी होगी। उसने कहाः मुझ पर छोड़ो यह काम। उन्हें कोई क्रोधित करना जानता न होगा। देखो, मैं क्रोधित करता हूं।
नगरवासी हंसे। कभी-कभी भोले-भाले लोग ज्यादा समझदार सिद्ध होते हैं, बजाय पंडितों के। वे हंसे। उन्होंने कहा कि यह पागलपन की बात है कि तुम सारिपुत्र को क्रोधित कर लोगे। फिर भी, तुम क्रोधित कर सको, तो करके देखो। उस ब्राह्मण ने दोपहर में स्थविर को भिक्षाटन करते देख पीछे से जाकर लात से पीठ पर मारा।

इन छोटी-छोटी कथाओं में एक-एक बात अर्थपूर्ण है। अक्सर बुद्धपुरुषों
पर जो लातें मारी जाती हैं, वे सदा पीछे से ही मारी जाती हैं। सामने से तो हिम्मत नहीं होती। सामने से तो घबड़ाहट लगेगी। क्योंकि वे आंखें, वह चेहरा, वह प्रसाद कहीं रोक दे; कहीं झिझक आ जाए; कहीं हिचक आ जाए। इसलिए बुद्धों की जो निंदा होती है, वह पीछे से होती है; सामने से नहीं होती है।
और ध्यान रखना, जो पीछे निंदा करता है, वह कायर है। उसे अपनी निंदा पर
भी भरोसा नहीं है; अपने पर भी भरोसा नहीं है।
इस आदमी ने आकर पीछे से सारिपुत्र को लात मारी। लेकिन स्थविर ने पीछे लौटकर नहीं देखा।
निष्प्रयोजन! बुद्ध ने कहा है अपने शिष्यों को कि जिसमें प्रयोजन न हो, उसमें जरा भी ऊर्जा मत डालना। अब कोई आदमी पीछे से लात मार रहा है, तो इसमें प्रयोजन क्या है! पीछे देखने से सार क्या है? इसमें उलझने की जरूरत क्या है? यह पागल होगा; कि मूढ़ होगा; कि मिथ्या-दृष्टि होगा। इसमें इतना भी रस लेने की जरूरत नहीं है कि पीछे लौटकर देखो। क्योंकि गलत को देखना भी अनावश्यक है। व्यर्थ को देखना भी उचित नहीं है। क्योंकि जिसे हम देखते हैं, उसकी छाप हमारी आंख पर पड़ती है।
तो बुद्ध ने कहा है कि व्यर्थ को देखना ही मत। व्यर्थ को सुनना ही मत। व्यर्थ का विचार ही मत करना। क्योंकि जितनी देर तुम व्यर्थ को देखने में लगाओगे, जितना समय और जितनी शक्ति व्यर्थ पर व्यय करोगे, उतनी ही सार्थक की तरफ जाने में रुकावट पड़ जाएगी।
तो बुद्ध ने कहा है कि जब जाना है एक यात्रा पर, और एक मंजिल पर, तो सारी ऊर्जा उसी तरफ बहे। यहां-वहां छांटना मत; बांटना मत।
तो सारिपुत्र ने पीछे लौटकर भी नहीं देखा। लात तो लगी। लात तो जैसी तुम्हें लगती है, उससे ज्यादा लगेगी सारिपुत्र को। क्योंकि जितना संवेदनशील व्यक्ति होगा, जितना जागरूक व्यक्ति होगा, उतना ही उसका बोध भी प्रगाढ़ होता है।
शराबी को लात मार दो, तो शायद लगे भी नहीं। पता भी न चले। दूसरे दिन तुम पूछो कि भई, रात तुम जा रहे थे रास्ते पर और हमने लात मारी थी। वह कहेगाः हमें पता नहीं। कैसी रात! कैसे तुम! कैसे हम! रात का कहां किसको पता है! जरा ज्यादा पी गए थे। शराबी को पता ही नहीं चलता, क्योंकि शराबी मूर्च्छित है।
तुम घर भागे आ रहे हो। किसी ने कह दिया है कि तुम्हारे घर में आग लग गयी है! और तुम भागे हो बाजार से दुकान बंद करके बेतहाशा। और किसी ने तुम्हें पीछे से लात आकर मार दी। तुम्हें शायद पता भी न चले। क्योंकि तुम्हारा मन तो सारा का सारा तुमसे पहले भाग गया है। वह वहां पहुंच गया है, जहां मकान में आग लगी है। वह तो लपटों को देख रहा है। तुम वहां हो ही नहीं। तुम करीब-करीब मूर्च्छित हो। वहां तो शरीर ही है मात्र; तुम्हारी आत्मा तो पंख पसारकर उड़ गयी है। तुम्हें याद भी न रहे; पता भी न चले।
लेकिन सारिपुत्र जैसे सम्यकरूप से जाग्रत व्यक्ति को कोई लात मारे,
तो पूरा-पूरा पता चलेगा। रत्तीभर नहीं चूकेगा। लेकिन सारिपुत्र ने पीछे लौटकर नहीं देखा। बुद्ध की अनुशासना यही थी कि व्यर्थ को मत देखना।
वे ध्यान में जागे, ध्यान के दीए को सम्हाले चल रहे थे।
और बुद्ध ने कहा है कि सदा ऐसे चलो, जैसे तुम्हारे हाथ में एक दीया है,
जो जरा भी कंपे तो बुझ जाएगा। जिस पर हजार हवाओं के हमले हो रहे हैं। यह लात भी हवा का एक झोंका है। दीए को उन्होंने और सम्हाल लिया होगा कि कहीं यह लात का झोंका दीए को बुझा न दे। कहीं दीए की लौ कंप न जाए।
जिसको इस भीतर के दीए की लौ को सम्हालने का मजा आ गया है, जो इसमें रसलीन हो गया है, उसे फिर सारी दुनिया की बातें व्यर्थ हैं। फिर वह फिकर नहीं करता कि कोई लात मार गया। उसकी फिकर कुछ और है। वह भीतर की संपदा को सम्हालता है--कि कहीं इस लात मारने से उद्विग्न न हो जाऊं। कहीं क्रोध न आ जाए। कहीं उत्तेजना में कुछ कर न बैठूं। क्योंकि कुछ भी कर लोगे उत्तेजना में--दीए से हाथ छूट जाएगा। दीया चूक जाएगा। और जिसको वर्षों में सम्हाला है, वह क्षण में खोया जा सकता है।

जब आदमी पहाड़ की ऊंचाइयों पर चढ़ता है, तो जैसे-जैसे ऊंचाई बढ़ने लगती है, वैसे-वैसे सम्हलने लगता है, क्योंकि अब गिरने में बहुत खतरा है। ध्यान रखना, सपाट जमीन पर चलने वाला आदमी गिर सकता है; कोई बड़ी अड़चन नहीं है। खरोंच-वरोंच लगेगी थोड़ी। मलहम-पट्टी कर लेगा। ठीक हो जाएगी। लेकिन जैसे- जैसे पहाड़ की ऊंचाई पर पहुंचने लगता है... ।
अब तुम गौरीशंकर के शिखर पर इस तरह नहीं चल सकते, जैसे तुम पूना की सड़क
पर चलते हो। तुम्हें एक-एक श्वास सम्हालकर लेनी पड़ेगी। और एक-एक पैर जमाकर चलना होगा। क्योंकि वहां से गिरे, तो गए। वहां से गिरे, तो फिर सदा को गए। खरोंच नहीं लगेगी; सब समाप्त ही हो जाएगा।
ऐसी ही अंतरदशा ध्यान में भी आती है। ध्यान के शिखरों पर जब तुम चलने लगते हो, तब बहुत सम्हलकर चलना होता है।
सारिपुत्र उन ध्यान के शिखरों पर है, जहां से गिरा हुआ आदमी बुरी तरह भटक जाता है जन्मों-जन्मों के लिए। अब कोई लात मार गया; इसमें कुछ मूल्य ही नहीं है। इसका कोई अर्थ ही नहीं है। ऐसी घड़ी में उद्विग्न नहीं हुआ जा सकता।
तुम जल्दी से उद्विग्न हो जाते हो, क्योंकि तुम्हारे पास खोने को कुछ नहीं है। याद रखना, तुम इसीलिए उद्विग्न हो जाते हो। तुम्हारे पास खोने को कुछ नहीं है। उद्विग्न होने में तुम्हारा कुछ हर्जा नहीं है। खरोंच लगेगी थोड़ी-बहुत। ठीक है। लेकिन सारिपुत्र के लिए महंगा सौदा है। खरोंच ही नहीं लगेगी; सब खो जाएगा। जन्मों-जन्मों की संपदा खो जाएगी। हाथ आते-आते खजाना खो जाएगा।
वे ध्यान में जागे, ध्यान के दीए को सम्हाले चल रहे थे, सो वैसे ही चलते रहे। उलटे मन ही मन वे प्रसन्न भी हुए, क्योंकि साधारणतः ऐसी स्थिति में मन डांवाडोल हो उठे, यह स्वाभाविक है। और देखा कि मन डांवाडोल नहीं हुआ है। लात लगी--और नहीं लगी। चोट पड़ी--और चोट नहीं हुई। हवा का झोंका आया और गुजर गया। अकंप थी ज्योति, अकंप ही रही। प्रमुदित हो गए होंगे; प्रफुल्लित हो गए होंगे। हृदय-कमल खुल गया होगा। कहा होगाः अहोभाग्य! स्वाभाविक था--वह नहीं हुआ। जिस दिन स्वाभाविक जिसको हम कहते हैं, वह
न हो, उस दिन परम स्वभाव के द्वार खुलते हैं।
दो तरह की स्थितियां हैं। एकः जिसको प्राकृतिक कहें। किसी को चोट की। लौटकर देखेगा। नाराज होगा। और किसी को चोट की, और लौटकर भी न देखा; नाराज भी न हुआ--जैसा था, वैसा रहा; जरा भी कंपन न आया; लहर न उठी। यह दूसरी प्रकृति में प्रवेश हो गया।
एक प्रकृति है देह की; एक प्रकृति है आत्मा की। देह की प्रकृति में पहली बात घटेगी। आत्मा की प्रकृति में जो उतरने लगा, उसे दूसरी बात घटेगी। तो प्रसन्न भी हुए। अब यह बात उलटी हो गयी। और यहीं से बुद्धत्व की शुरुआत है। दुखी तो नहीं हुए। नाराज तो नहीं हुए। बड़े राजी हुए। बड़े प्रसन्न हुए। कि यह तो अदभुत हुआ। मन नहीं डोला था। और ध्यान की ज्योति और भी थिर हो उठी थी।
जितनी बड़ी चुनौती हो, उतनी ध्यान की ज्योति थिर होती है। चूके, तो बुरी तरह गिरोगे। नहीं चूके, तो अदभुत रूप से सम्हल जाओगे। दोनों संभावनाएं हैं। पहाड़ से गिरे, तो गए। और पहाड़ पर थोड़े और सम्हले, तो शिखर तुम्हारा हुआ; कि तुम शिखर हुए।
उनके भीतर इस भांति लात मारने वाले के लिए आभार के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं था।
वे भीतर ही भीतर कह रहे होंगेः धन्य है ब्राह्मण! तूने भला किया। तूने
एक अवसर दिया। मुझे पता ही नहीं था कि ज्योति इतनी भी थिर हो सकती है! तूने चुनौती दी। तू हवा का झोंका क्या लाया, मेरी परीक्षा ले ली। मैं तेरा अनुगृहीत हूं।
इस घटना ने अंधे ब्राह्मण को तो जैसे आंखें दे दीं।
यह लौटकर न देखना; यह उसी मस्ती से चलते जाना, जैसे चल रहे थे; जैसे कुछ हुआ ही नहीं। लात तो पीछे से मारी थी। दौड़कर आगे आया और चरणों में गिर पड़ा।

ख्याल रखनाः निंदा पीछे से की जाती है। केवल प्रशंसा करते समय ही तुम सामने खड़े हो सकते हो। लात पीछे से मारी जा सकती है; लेकिन चरण पीछे से नहीं छुए जाते; कभी नहीं छुए जाते। चरण सामने से छूने होते हैं। जो झुक सकता है, वही ऐसे पुरुषों के सामने आ सकता है--सारिपुत्र जैसे पुरुषों के। और यह बड़ी अदभुत बात लगती है कि यह आदमी--ऐसा मिथ्या-दृष्टि, ऐसा क्रोधी; ऐसा दुष्ट प्रकृति का, अकारण लात मारी--यह इतने जल्दी बदल गया! अक्सर ऐसा होता है। जो जितना कठोर हो सकता है, वह उतना ही कोमल भी हो सकता है। जो जितना विरोध में हो सकता है, उतना ही पक्ष में भी हो सकता है।
जो जितनी घृणा से भरा होता है, वह उतने ही प्रेम से भी भर सकता है। बदलाहट केवल उनके ही जीवन में नहीं होती, जो कुनकुने जीते हैं।
एक यहूदी फकीर ने देश के सबसे बड़े धर्मगुरु को अपनी लिखी किताब भेजी।
जिस शिष्य के हाथ भेजी, उसने कहाः आप गलत कर रहे हैं। न भेजें, तो अच्छा।
क्योंकि वे आपके विरोध में हैं। वे आपको शत्रु मानते हैं।
यह फकीर पहुंचा हुआ व्यक्ति था। लेकिन स्वभावतः धर्मगुरु इसको दुश्मन माने, यह स्वाभाविक है। क्योंकि जब भी कोई पहुंचा हुआ फकीर होगा, तथाकथित धर्म, तथाकथित धर्मगुरु, तथाकथित पुरोहित-पंडे, स्थिति-स्थापक-- सब उसके विरोध में हो जाएंगे।
वह सबसे बड़ा धर्मगुरु था और उसके मन में बड़ा क्रोध था इस आदमी के प्रति, क्योंकि यह आदमी पहुंच गया था। यही अड़चन थी। यही जलन थी।
लेकिन फकीर ने कहा अपने शिष्य कोः तू जा। तू सिर्फ देखना; ठीक-ठीक देखना कि क्या वहां होता है और ठीक-ठीक मुझे आकर बता देना।
वह किताब लेकर गया। फकीर का शिष्य जब पहुंचा धर्मगुरु के बगीचे में, धर्मगुरु अपनी पत्नी के साथ बैठा बगीचे में गपशप कर रहा था। इसने किताब उसके हाथ में दी। उसने किताब पर नाम देखा, उसी वक्त किताब को फेंक दिया। और कहा कि तुमने मेरे हाथ अपवित्र कर दिए; मुझे स्नान करना होगा। निकल जाओ बाहर यहां से!
शिष्य तो जानता था--यह होगा।
तभी पत्नी बोलीः इतने कठोर होने की भी क्या जरूरत है! तुम्हारे पास इतनी किताबें हैं तुम्हारे पुस्तकालय में, इसको भी रख देते किसी कोने में। न पढ़ना था, न पढ़ते। लेकिन इतना कठोर होने की क्या जरूरत है! और फिर अगर फेंकना ही था, तो इस आदमी को चले जाने देते, फिर फेंक देते। इसी के सामने इतना अशिष्ट व्यवहार करने की क्या जरूरत है!
शिष्य ने यह सब सुना; अपने गुरु को आकर कहा। कहा कि पत्नी बड़ी भली है। उसने कहाः किताब को पुस्तकालय में रख देते। हजारों पुस्तकें हैं; यह भी पड़ी रहती। उसने कहा कि अगर फेंकना ही था, तो जब यह आदमी चला जाता, तब फेंक देते। इसी के सामने यह दुर्व्यवहार करने की क्या जरूरत थी! लेकिन धर्मगुरु बड़ा दुष्ट आदमी है। उसने किताब को ऐसे फेंका, जैसे जहर हो; जैसे मैंने सांप-बिच्छू उसके हाथ में दे दिया हो।
तुम्हें पता है, उस यहूदी फकीर ने क्या कहा! उसने अपने शिष्य को कहाः तुझे कुछ पता नहीं है। धर्मगुरु आज नहीं कल मेरे पक्ष में हो सकता है। लेकिन उसकी पत्नी कभी नहीं होगी।
यह बड़ी मनोवैज्ञानिक दृष्टि है।
पत्नी व्यावहारिक है--न प्रेम, न घृणा। एक तरह की उपेक्षा है--कि ठीक, पड़ी रहती किताब। या फेंकना था, बाद में फेंक देते। उपेक्षा है। न पक्ष है, न विपक्ष है। जो विपक्ष में ही नहीं है, वह पक्ष में कभी न हो सकेगा।
उस यहूदी फकीर ने ठीक कहा कि पत्नी पर मेरा कोई वश नहीं चल सकेगा। यह धर्मगुरु तो आज नहीं कल मेरे पक्ष में होगा। और यही हुआ।
जैसे ही शिष्य चला गया, वह धर्मगुरु थोड़ा शांत हुआ; फिर उसे भी लगा कि उसने दुर्व्यवहार किया। आखिर फकीर ने अपनी किताब भेजी थी इतने सम्मान से, तो यह मेरी तरफ से अच्छा नहीं हुआ। उठा; किताब को झाड़ा-पोंछा। अब पश्चात्ताप के कारण किताब को पढ़ा--कि अब ठीक है; जो हो गयी भूल, हो गयी। लेकिन देखूं भी तो कि इसमें क्या लिखा है!

पढ़ा--तो बदला। पढ़ा--तो देखा कि ये तो परम सत्य हैं इस किताब में। वही सत्य हैं, जो सदा से कहे गए हैं। एस धम्मो सनंतनो। वही सनातन धर्म, सदा से कहा गया धर्म इसमें है। अभी किताब फेंकी थी; घड़ीभर बाद झुककर उस किताब को नमस्कार भी किया।
उस यहूदी फकीर ने ठीक ही कहा कि धर्मगुरु पर तो अपना वश चलेगा कभी न कभी। लेकिन उसकी पत्नी पर अपना कोई वश नहीं है। उसकी पत्नी को हम न बदल सकेंगे।
इसलिए अक्सर ऐसा हो जाता है। मनोविज्ञान की बड़ी जटिल राहें हैं।
इस घटना ने अंधे को आंखें दे दीं। वह सारिपुत्र के चरणों में गिर पड़ा
और प्रार्थना की कि मेरे घर चलें। भोजन करें। मेरा स्वागत-सत्कार स्वीकार करें। उसकी आंखें पश्चात्ताप के आंसुओं से भरी थीं। और वे आंसू उसके सारे कल्मष को बहाकर उसकी आत्मा को निर्मल कर रहे थे।
आंखें आंसुओं से भर जाएं, तो और इससे बड़ी निर्मल करने वाली कोई और विधि नहीं है। पश्चात्ताप उमड़ आए, तो सब पाप धुल जाते हैं। पश्चात्ताप सघन हो जाए, तो तुम्हारे भीतर जो भी कूड़ा-करकट है, पश्चात्ताप की सघन अग्नि में जल जाता है। इसलिए जीसस ने तो पश्चात्ताप को, रिपेंटेंस को धर्म की सबसे बड़ी कीमिया कहा है। बाइबिल में जगह-जगह वे दोहराते हैं, रिपेंट! पश्चात्ताप करो। डूबो पश्चात्ताप में। जितने डूब जाओगे पश्चात्ताप में, उतने ही ताजे होकर निकलोगे। पश्चात्ताप में स्नान हो जाता है। पश्चात्ताप में पाप विसर्जित हो जाते हैं। गंगा में नहाने से शायद न हों, लेकिन पश्चात्ताप में नहाने से निश्चित हो जाते हैं।
उसकी आंखें पश्चात्ताप के आंसुओं से भरी थीं। और वे आंसू उसके सारे कल्मष को बहाकर उसकी आत्मा को निर्मल कर रहे थे।
इस तरह सारिपुत्र के निमित्त उस पर पहली बार बुद्ध की किरण पड़ी।
जो बुद्ध के शिष्य से मिल गया, वह बुद्ध से भी मिल गया। बुद्ध अगर सूर्य हैं, तो उनके शिष्य सूर्य की किरणें हैं। सारिपुत्र के निमित्त यह बात घट गयी। यह ब्राह्मण बुद्ध का हो गया। सारिपुत्र जब ऐसा है, तो बुद्ध कैसे होंगे!
लेकिन भिक्षुओं को सारिपुत्र का व्यवहार नहीं जंचा। उन्होंने भगवान
से कहाः आयुष्मान सारिपुत्र ने अच्छा नहीं किया, जो कि मारने वाले ब्राह्मण के घर भी भोजन किया। वह अब किसे बिना मारे छोड़ेगा! वह तो भिक्षुओं को मारते ही विचरण करेगा।
यह सामान्य आदमी का तर्क है। इस तर्क के पार जाना जरूरी है।
शास्ता ने भिक्षुओं से कहाः भिक्षुओ! ब्राह्मण को मारने वाला ब्राह्मण नहीं हो सकता। पहली बात। गृहस्थ-ब्राह्मण द्वारा श्रमण-ब्राह्मण मारा गया होगा। झूठे ब्राह्मण द्वारा सच्चा ब्राह्मण मारा गया होगा। लेकिन जो मारता है अकारण, बिना कुछ वजह के, वह ब्राह्मण नहीं हो सकता। और सारिपुत्र ने वही किया, जो ब्राह्मण के योग्य है। फिर तुम्हें पता भी नहीं है कि सारिपुत्र के ध्यानपूर्ण व्यवहार ने एक अंधे आदमी को आंखें प्रदान कर दी हैं।
तब उन्होंने ये सूत्र कहे हैं।
"ब्राह्मण के लिए यह कम श्रेयस्कर नहीं है कि वह प्रिय पदार्थों को मन
से हटा लेता है। जहां-जहां मन हिंसा से निवृत्त होता है, वहां-वहां दुख शांत होता है।"
समझना। तुम्हारे मन में हिंसा क्यों उठती है? कब उठती है? तभी उठती है, जब तुमसे तुम्हारा कोई प्रिय पदार्थ छीना जाता है। तभी उठती है, जब कोई तुम्हारे और तुम्हारे प्रिय पदार्थ के बीच में आ जाता है।
समझो, अगर सारिपुत्र को अपनी देह से बहुत मोह होता, तो यह लात कारगर हो गयी होती। ब्राह्मण जीत गया होता; मारने वाला ब्राह्मण जीत गया होता। अगर देह से बहुत मोह होता, तो फिर असंभव था कि बिना लौटे देखे और सारिपुत्र आगे बढ़ जाए। फिर असंभव था कि ध्यान का दीया जला रह जाए। फिर असंभव था कि सारिपुत्र क्षुब्ध न होता। हजार तरंगें उठ आतीं। वे नहीं उठीं। क्यों? क्योंकि देह से कोई मोह नहीं है; देह से कोई तादात्म्य नहीं है।

तुम तभी नाराज होते हो, जब तुमसे कोई तुम्हारी प्रिय वस्तु छीनता है
या प्रिय वस्तु नष्ट करता है।
बुद्ध के एक शिष्य थे पूर्णकाश्यप। वे ज्ञान को उपलब्ध हो गए; बुद्धत्व पा लिया। तो बुद्ध ने कहाः पूर्ण! अब तू बुद्धत्व को उपलब्ध हो गया, अब तू जा और जो तूने पाया है, उसे बांट। अब तू दूर-दूर जा, दूर-दूर देश। और जहां-जहां खबर पहुंचा सके, पहुंचा।
पूर्ण राजी हुआ। उसने कहाः आपकी आज्ञा है, तो मैं जाता हूं।
बुद्ध ने पूछाः किस तरफ जाएगा? कहां जाएगा?
तो उसने कहाः एक प्रदेश है बिहार का--सूखा प्रदेश, वहां कोई भिक्षु कभी नहीं गया। मुझे आप वहीं जाने की आज्ञा दें। क्या वहां के लोग आपसे वंचित ही रह जाएंगे!
बुद्ध ने कहाः सुन पूर्ण! वहां कोई इसीलिए नहीं गया कि वहां के लोग बड़े दुष्ट हैं। तू वहां जाएगा, तो गालियां खानी पड़ेंगी। लांछन सहने पड़ेंगे। हजार तरह की निंदा। उनका व्यवहार बड़ा असभ्य है।
पूर्ण ने कहाः फिर भी उनके लिए किसी की जरूरत है। उनके लिए आपकी जरूरत है। उनको भी जरूरत है कि बुद्ध की किरण वहां पहुंचे। मैं वहां जाऊंगा। बुद्ध ने कहाः तो फिर तू कुछ सवालों के जवाब दे दे। एक, अगर वे गालियां देंगे, तो तुझे क्या होगा?
तो पूर्ण ने कहाः क्यों आप पूछते हैं! आप जानते हैं, मुझे क्या होगा। मुझे वही होगा, जो आपको होगा। क्योंकि अब मैं आपसे भिन्न नहीं हूं। फिर भी आप पूछते हैं, तो मैं कहता हूं। मुझे ऐसा होगा कि ये लोग कितने भले हैं। सिर्फ गालियां ही देते हैं, मारते नहीं। मार भी सकते थे।
बुद्ध ने कहाः दूसरा सवाल। और अगर वे मारें, तो तुझे क्या होगा?
पूर्ण ने कहाः मुझे यही होगा कि लोग बड़े भले हैं कि मारते हैं, मार ही नहीं डालते! मार डाल भी सकते थे।
बुद्ध ने कहाः तीसरा और आखिरी सवाल कि अगर वे मार ही डालें, तो आखिरी क्षण में सांस टूटते वक्त तुझे क्या होगा?
पूर्ण ने कहाः यही होगा कि लोग बड़े भले हैं; उस जीवन से छुटकारा दिलवा दिया, जिसमें कोई भूल-चूक हो सकती थी।
"ब्राह्मण के लिए यह कम श्रेयस्कर नहीं है कि वह प्रिय पदार्थों को मन
से हटा लेता है। जहां-जहां मन हिंसा से निवृत्त होता है, वहां-वहां दुख शांत हो जाता है।"
"न जटा से, न गोत्र से, न जन्म से कोई ब्राह्मण होता है। जिसमें सत्य और धर्म है, वही शुचि और ब्राह्मण है।"
धर्म कहने से ही काम चलना चाहिए था, लेकिन बुद्ध ने दो शब्द उपयोग किए--सत्य और धर्म।

यम्हि सच्चंच धम्मो च सो सुची सो च ब्राह्मणो।

क्यों? धर्म सबके पास है। धर्म यानी तुम्हारा अंतरतम स्वभाव; तुम्हारा अंतरतम; तुम जो अपनी मूल प्रकृति में हो, वही है धर्म। धर्म सबके भीतर है। जिसे पता हो जाता है, उसके भीतर सत्य भी होता है।
धर्म तो सबके भीतर है। धर्म को जिसने जागकर देख लिया, वह सत्य को उपलब्ध हो गया।
ब्राह्मण सभी हैं, लेकिन बीज में हैं। जब बीज फूटकर वृक्ष बन जाता है,
तो सत्य। स्वभाव को जान लिया, पहचान लिया भर आंख। आमने-सामने खड़े होकर देख लिया; साक्षात कर लिया स्वभाव का, तो सत्य।
इसलिए बुद्ध ने दो शब्दों का उपयोग किया, "जिसमें सत्य और धर्म है... ।" धर्म तो सबमें है। उतना ही तुममें है, जितना बुद्ध में है। लेकिन तुममें सत्य नहीं है। तुम्हें सत्य का पता नहीं है। तुमने अभी धर्म का साक्षात्कार नहीं किया है। धर्म को जागकर जान लेने का नाम सत्य का साक्षात्कार है। ऐसे साक्षात्कार से शुचिता पैदा होती है, स्वच्छता पैदा होती है। वही शुचिता ब्राह्मणत्व है।

"हे दुर्बुद्धि, जटाओं से तेरा क्या बनेगा? मृगचर्म पहनने से तेरा क्या होगा? तेरा अंतर तो विकारों से भरा है, बाहर क्या धोता है?"
लोग बाहर ही धोने में लगे हैं! ऐसा नहीं कि बाहर धोना कुछ बुरा है। धोना तो सदा अच्छा है। कुछ न धोने से बाहर धोना भी अच्छा है। लेकिन बाहर धोने में ही समाप्त हो जाना अच्छा नहीं है। भीतर भी बहुत कुछ धोने को है। जब तुम गंगा में स्नान करते हो, तो बाहर ही साफ होते हो; भीतर नहीं हो सकते। जब तक ध्यान की गंगा में स्नान न करो, तब तक भीतर साफ न हो सकोगे। ऊपर-ऊपर साफ कर लोगे। बुराई कुछ नहीं है इसमें; लेकिन भलाई भी कुछ खास नहीं है। भीतर कैसे कोई साफ होता है? भीतर किस जल से कोई साफ होता है? ध्यान के
जल से। भीतर का विकार क्या है? विचार भीतर का विकार है। भीतर मल का मूल कारण विचार है। जितने ज्यादा विचार, उतना ही भीतर चित्त मलग्रस्त होता है। जब विचार क्षीण होते, विचार शांत हो जाते, कोई विचार नहीं रह जाता, भीतर सन्नाटा छा जाता है, उसी सन्नाटे का नाम है--भीतर धोना। और जो भीतर अपने को धो लेता है, वही ब्राह्मण है।
"जो सारे संयोजनों को काटकर भयरहित हो जाता है, और संग और आसक्ति से विरत हो जाता है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूं।"
"जो सारे संयोजनों को काटकर... ।"
हमने जीवन को जो बना रखा है, वह सब संयोजन है। किसी को पत्नी मान लिया है--यह एक संयोजन है। कोई तुम्हारी पत्नी है नहीं; न कोई तुम्हारा पति है। कैसे कोई पति-पत्नी होगा? तुम कहते होः नहीं, आप भी क्या बात कहते हैं! पुरोहित के सामने, अग्नि की साक्षी में सात फेरे लिए हैं! सात नहीं, तुम सत्तर लो; फेरे लेने से कोई पति-पत्नी होता है?
एक सज्जन अपनी पत्नी से छूटना चाहते थे। वे मेरे पास आए थे। वे कहने लगेः कैसे छूटूं! सात फेरे लिए हैं। मैंने कहाः उलटे सात फेरे ले लो। और क्या करोगे! छूटना ही हो तो छूट जाओ।
फेरे से कोई कैसे बंधेगा? यह सब संयोजन है। यह तरकीब है। ये फेरे, यह आग, ये मंत्र, यह पंडित, यह पुरोहित, यह भीड़-भाड़, यह बारात, यह घोड़े पर बैठना, ये बैंड-बाजे--ये सब तरकीबें हैं, ये संयोजन हैं तुम्हारे मन में यह बात गहरी बिठाने के लिए कि अब तुम पति हो गए; यह पत्नी हो गयी।
मगर ये सब संयोजन हैं।
"जो सारे संयोजनों को काटकर भयरहित हो जाता है... ।"
संयोजन कटें, तभी कोई भयरहित होता है। नहीं तो मेरी पत्नी है, कहीं चली न जाए; मेरा पति है, कहीं छोड़ न दे; मेरा बेटा है, कहीं बिगड़ न जाए--तो हजार चिंताएं और हजार भय उठते हैं। मेरा शरीर है, कहीं मौत न आ जाए; कहीं मैं ब.ूढा न हो जाऊं!
यहां कुछ भी मेरा नहीं है। जिसने सारे मेरे के संबंध तोड़ दिए, जिसने जाना कि यहां मेरा कुछ भी नहीं है, उसे एक और बात पता चलती है कि मैं भी नहीं हूं। मैं मेरे का जोड़ है। हजार मेरे को जुड़कर मैं बनता है। जैसे छोटे- छोटे धागों को बुनते जाओ, बुनते जाओ, मोटी रस्सी बन जाती है। ऐसे मेरे के धागे जोड़ते जाओ, जोड़ते जाओ, उन्हीं धागों से मैं की मोटी रस्सी बन जाती है। सब संयोजनों को जो छोड़ देता है, उसका पहले मेरे का भाव छूट जाता है, ममत्व। और एक दिन अचानक पाता है कि मैं तो अपने आप मर गया! एक-एक धागा निकालते गए रस्सी से। रस्सी दुबली-पतली होती चली गयी।
निकालते-निकालते एक दिन जब आखिरी धागा निकल जाएगा, रस्सी नहीं बचेगी। फिर कोई भय नहीं है। मरने के पहले मर ही गए! फिर भय क्या? मैं हूं ही नहीं-- इस भाव-अवस्था को बुद्ध ने अनत्ता कहा है। यह जान लेना कि मैं नहीं हूं, शून्य है--यही निर्वाण है।
बुद्ध कहते हैंः ऐसे निर्वाण को जो उपलब्ध हुआ--संग, आसक्ति से मुक्त, भयरहित--उसे मैं ब्राह्मण कहता हूं।
ब्राह्मण की जैसी प्यारी परिभाषा बुद्ध ने की है, वैसी किसी ने भी नहीं की है। ब्राह्मणों ने भी नहीं की है! ब्राह्मणों के शास्त्रों में भी ब्राह्मण की ऐसी अदभुत परिभाषा नहीं है। वहां तो बड़ी क्षुद्र परिभाषा है-- कि जो ब्राह्मण के घर में पैदा हुआ!

ब्राह्मण के घर में पैदा होने से क्या होगा? इतना आसान नहीं है ब्राह्मण होना!

ब्राह्मण होना बड़ी गहन उपलब्धि है। महान उपलब्धि है। निखार से होती है। जिंदगी को संवारने से होती है; स्वच्छ, शुद्ध करने से होती है। जिंदगी को आग में डालने से होती है; तपश्चर्या से होती है; साधना से होती है। ब्राह्मणत्व सिद्धि है; ऐसे जन्म में मुफ्त नहीं मिलती है।

दूसरा दृश्यः

राजगृह में धनंजाति नाम की एक ब्राह्मणी स्रोतापत्ति-फल प्राप्त करने के समय से, किसी भी बहाने हो, सदा नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मासंबुद्धस्स कहती रहती थी।

यह बुद्ध की प्रार्थना है। यह बुद्ध की अर्चना है। यह बुद्ध की उपासना का भाव है। नमो तस्स भगवतो--नमस्कार हो उन भगवान को; नमस्कार हो उन अर्हत को; नमस्कार हो उन सम्यकरूप से संबोधि प्राप्त को। यह बुद्ध के प्रति नमस्कार है। नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मासंबुद्धस्स।

कोई भी बहाना मिले तो वह चूकती नहीं थी ब्राह्मणी धनंजाति नाम की। छींक आ जाए, खांसी आ जाए, फिसलकर गिर पड़े, तो वह तत्क्षण कहतीः नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मासंबुद्धस्स।

एक दिन उसके घर भोज था। काम की भागा-भागी में उसका पैर फिसल गया। ब्राह्मणी थी; भोज में सारे ब्राह्मण इकट्ठे थे। सारा परिवार इकट्ठा था। पति था, पति के सब भाई थे; रिश्तेदार थे। सम्हलते ही उसने तत्क्षण भगवान की वंदना कीः नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मासंबुद्धस्स--नमस्कार हो उन भगवान को, नमस्कार हो उन अर्हत को, नमस्कार हो उन सम्मासंबुद्धस्स को।

इसे सुनकर उसके पति के भाई भारद्वाज ने उसे बहुत डांटाः नष्ट हो दुष्टा! जहां नहीं, वहां ही उस मुंडे श्रमण की प्रशंसा करती है। और फिर बोलाः आज मैं तेरे उस श्रमण गौतम के साथ शास्त्रार्थ करूंगा और सदा के लिए उसे समाप्त करूंगा; उसे हराकर लौटूंगा।

ब्राह्मणी हंसी और बोलीः नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मासंबुद्धस्स। नमस्कार हो उन भगवान को, नमस्कार हो उन अर्हत को, नमस्कार हो उन सम्यक संबोधि प्राप्त को। जाओ ब्राह्मण, शास्त्रार्थ करो। यद्यपि उन भगवान के साथ शास्त्रार्थ करने में कौन समर्थ है! फिर भी तुम जाओ। इससे कुछ लाभ ही होगा।

ब्राह्मण क्रोध और अहंकार और विजय की महत्वाकांक्षा में जलता हुआ बुद्ध के पास पहुंचा। वह ऐसे था, जैसे साक्षात ज्वर आया हो। उसका सब जल रहा था। लपटें ही लपटें उसमें उठ रही थीं। लेकिन भगवान को देखते ही शीतल वर्षा हो गयी। उनकी उपस्थिति में क्रोध बुझ गया। उनकी आंखों को देख, उस व्यक्ति को जीतने की नहीं, उस व्यक्ति से हारने की आकांक्षा पैदा हो गयी। उसका मन रूपांतरित हुआ। उसने कुछ प्रश्न पूछे--विवाद के लिए नहीं, मुमुक्षा से। और भगवान के उत्तरों को पा वह समाधान को उपलब्ध हुआ। समाधि लग गयी। फिर घर नहीं लौटा। बुद्ध का ही हो गया। बुद्ध में ही खो गया। वह उसी दिन प्रव्रजित हुआ और उसी दिन अर्हत्व को उपलब्ध हुआ।

ऐसी घटना बहुत कम घटी है कि उसी दिन संन्यस्त हुआ और उसी दिन समाधिस्थ हो गया। उसी दिन संन्यस्त हुआ और उसी दिन बुद्धत्व को उपलब्ध हुआ। ऐसी घटना बहुत मुश्किल से घटती है। जन्मों-जन्मों में भी बुद्धत्व फल जाए, तो भी जल्दी फल गया। यह तो चमत्कार हुआ।

फिर उसके भाई, ब्राह्मणी के पति को भी बुद्ध पर भयंकर क्रोध आया, जब उसे खबर लगी कि उसका छोटा भाई संन्यस्त हो गया। वह भी भगवान को नाना प्रकार से आक्रोशन करता हुआ, गाली देता हुआ, असभ्य शब्दों को बोलता हुआ वेणुवन गया। और वह भी भगवान के पास जा ऐसे बुझ गया, जैसे जलता अंगारा जल में गिरकर बुझ जाता है।

ऐसा ही उसके दो अन्य भाइयों के साथ भी हुआ।

भिक्षु भगवान का चमत्कार देख चकित थे। वे आपस में कहने लगेः आवुसो! बुद्ध-गुण में बड़ा चमत्कार है। ऐसे दुष्ट, अहंकारी और क्रोधी व्यक्ति भी शांतचित्त हो संन्यस्त हो गए हैं और ब्राह्मण-धर्म को छोड़ दिए हैं। भगवान ने यह सुना तो कहाः भिक्षुओ! भूल न करो। उन्होंने ब्राह्मण धर्म नहीं छोड़ा है। वस्तुतः पहले वे ब्राह्मण नहीं थे और अब ब्राह्मण हुए हैं।
तब बुद्ध ने ये सूत्र कहे हैंः

छेत्त्वा नन्दिं वरत्तंच सन्दामं सहनुक्कमं।
उक्खित्तपलिघं बुद्धं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं।।
अक्कोसं बधबन्धंच अदुट्ठो यो तितिक्खति।
खन्तिबलं बलानीकं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं।।

"जिसने नद्धा, रस्सी, सांकल को काटकर खूंटे को भी उखाड़ फेंका है, उस बुद्धपुरुष को मैं ब्राह्मण कहता हूं।"
"जो बिना दूषित चित्त किए गाली, वध और बंधन को सह लेता है, क्षमा-बल ही जिसके बल का सेनापति है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूं।"
समझो इस परिस्थिति को जिसमें इन सूत्रों का जन्म हुआ।
राजगृह में धनंजाति नाम की ब्राह्मणी स्रोतापत्ति-फल प्राप्त करने
के समय से ही, किसी बहाने हो, भगवान की वंदना किया करती थी। स्रोतापत्ति-फल का अर्थ होता हैः जो बुद्ध की धारा में प्रविष्ट हो गया; स्रोत में आपन्न हो गया; जो बुद्ध की नदी में उतर गया। और जिसने कहाः नदी, अब मुझे ले चल। जो बुद्ध की धारा में सम्मिलित हो गया और बुद्ध के साथ बहने लगा, उसको कहते हैं--स्रोतापत्ति-फल।
और अक्सर ऐसा हो गया हैः जहां पुरुष दंभ में अकड़े खड़े रह जाते हैं, वहां स्त्रियां छलांग लगा जाती हैं। सारा परिवार बुद्ध-विरोधी था, और यह ब्राह्मणी स्रोतापत्ति-फल को उत्पन्न हो गयी। यह गयी और बुद्ध के चरणों में झुक गयी। क्योंकि स्त्रियां विचार से नहीं जीतीं, भाव से जीती हैं। और भाव से संबंध जुड़ना आसान होता है, विचार की बजाय। विचार दंभी है, अहंकारी है। भाव सदा समर्पित होने को तत्पर है।
स्त्री का हृदय बुद्धों से जल्दी जुड़ जाता है, बजाय पुरुषों के मस्तिष्क के। पुरुष जीता है मस्तिष्क में; स्त्रियां धड़कती हैं हृदय में। इसलिए अक्सर ऐसा हो गया है कि पुरुष अहंकार में अकड़े रहे हैं, स्त्रियां उनके पहले झुक गयी हैं।
तो यह स्रोतापत्ति-फल को प्राप्त जिस दिन से हुई थी, उसी दिन से इसका स्मरण एक था, इसका जाप एक था; उठते-बैठते-सोते, हर जगह एक ही बात कहती थीः नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मासंबुद्धस्स।
इस मंत्र को भी समझ लेना। नमस्कार हो उन भगवान को, उन सम्यक संबोधि प्राप्त को, उन अर्हत को।
अर्हत का अर्थ होता हैः जिसके भीतर के सारे शत्रु मर गए। काम, क्रोध, लोभ, मोह--ये अरि कहे गए हैं। अरि यानी शत्रु। सब अरि हत हो गए; सब अरि मर गए। जिसके भीतर अब काम, क्रोध, लोभ, मोह, कुछ भी नहीं बचे; जो निर्विकार हुआ, वह है अर्हत। अर्हत कैसे निर्विकार होता है? सम्यक संबोधि से, ठीक-ठीक समाधि से।
ठीक-ठीक समाधि क्या है? तुम कहोगेः समाधि भी क्या गैर-ठीक और ठीक होती है? गैर-ठीक भी होती है; और ठीक भी होती है। गैर-ठीक समाधि का अर्थ होता हैः मूर्च्छित समाधि; एक तरह की निद्रा, एक तरह की सुषुप्ति। आदमी मूर्च्छित हो जाता है समाधि में, तो गैर-ठीक समाधि।
तुमने सुना होगाः कोई योगी बैठ जाता है जमीन पर और महीनेभर बैठा रहता
है, कि सप्ताहभर बैठा रहता है। वह क्या करता है वहां? वह मूर्च्छित हो जाता है। वह सांस को अवरुद्ध करके अपनी चेतना खो देता है। जितनी देर चेतना खोयी रहती है, उतनी देर तक वह जमीन के नीचे रह सकता है।

यह असम्यक समाधि है। यह जबर्दस्ती है। इस योगी में तुम कोई गुण न देखोगे। यह योगी तुम्हें रास्ते पर चलता मिल जाएगा, तो तुम इसे साधारण आदमी पाओगे। और हो सकता है कि यह चमत्कार जो इसने दिखाया, कुछ पैसे के लिए दिखा दिया हो। तुम इसमें बिल्कुल सामान्य आदमी देखोगे। इसमें कुछ विशिष्टता नहीं होगी। इसने केवल विधि सीख ली है। इसने अपने को आत्म-सम्मोहित करना सीख लिया है। यह किसी तरह अपने को गहरी मूर्च्छा में उतारने की कला जान गया है। इसको समाधि नहीं कहना चाहिए। मगर इसको लोग समाधि कहते हैं।
इसलिए बुद्ध को समाधि में भेद करना पड़ा। बुद्ध ने कहाः समाधि तो वही
है कि होश बढ़े, घटे नहीं। समाधि तो वही है कि पूरी चैतन्य की अवस्था हो; अपूर्व चैतन्य का प्रकाश हो। और उस चैतन्य के प्रकाश में ही कोई सत्य को जाने।
ऐसी मूर्च्छा में, गड्ढे में बैठकर कोई सत्य को थोड़े ही जान लेगा। यह
तो एक तरह की मादकता है। जैसे कोई क्लोरोफार्म में पड़ जाता है। क्लोरोफार्म में पड़ जाता है, तो फिर उसका आपरेशन करने में कठिनाई नहीं आती। क्योंकि उसे कुछ पता नहीं चलता।
कोई चाहे तो इसी तरह की क्लोरोफार्म की दशा योग की प्रक्रियाओं से पैदा कर सकता है। श्वास का ठीक-ठीक अभ्यास कर लेने पर, प्राणायाम का अभ्यास कर लेने पर, अगर कोई श्वास को बाहर रोकने में समर्थ हो जाए, तो मूर्च्छित हो जाएगा। और इस मूर्च्छा को एक विधि से चलाया जाता है। वह कहकर मूर्च्छित होगा कि मैं सात दिन तक मूर्च्छित रहूं। तो सात दिन के बाद मूर्च्छा अपने से टूट जाएगी।
जैसे तुमने अगर कभी कोशिश की हो कि रात तय करके सोए कि सुबह पांच बजे नींद खुल जाए; अगर तुम ठीक से तय करके सोए, तो सुबह पांच बजे नींद खुल जाएगी।
हां, अगर ठीक से तय नहीं किया, तो ही अड़चन होगी। तय करते वक्त ही सोचते रहे कि अरे! कहां खुलती है? ये सब बातें हैं। अगर ऐसे पांच बजे कहने से नींद खुलती होती, तो फिर अलार्म घड़ी की जरूरत क्या थी! और मेरी नींद तो ऐसी है कि अलार्म से भी नहीं खुलती। पत्नी घसीटती है, खींचती है, तब भी नहीं खुलती। ऐसे सोचने से कहीं खुलने वाली है! लेकिन चलो, कहते हैं, तो देखें प्रयोग करके। सोच लिया कि पांच बजे नींद खुल जाएगी। नहीं खुलेगी। क्योंकि तुमने सोचा ही नहीं; भाव ही नहीं किया।
कभी शुद्ध मन से, साफ मन से भाव कर लो, तुम चकित हो जाओगे। ठीक पांच बजे--न मिनट इधर, न मिनट उधर।
मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि तुम्हारे भीतर भी एक घड़ी है--बायोलाजिकल क्लाक--जो भीतर चल रही है। उसी घड़ी के हिसाब से तो हर अट्ठाइसवें दिन स्त्री को मासिक-धर्म हो जाता है। नहीं तो कैसे पता चले कि अट्ठाइस दिन हो गए! उसी घड़ी के अनुसार तो नौ महीने में बच्चा पैदा हो जाता है। नहीं तो कैसे पता चले कि नौ महीने पूरे हो गए? उसी घड़ी के अनुसार तो तुम्हें ठीक वक्त रोज भूख लग आती है; नहीं तो पता कैसे चले कि अब बारह बज गए और भूख लगने का समय हो गया! वही घड़ी काम कर रही है। उस घड़ी का तुम उपयोग सीख जाओ, तो नींद समय पर खुल जाएगी; अलार्म की जरूरत नहीं होगी। और नींद समय पर आ जाएगी। कोई तंत्र-मंत्र करने की जरूरत नहीं होगी। भूख समय पर लग आएगी। सब समय पर होने लगेगा।
बाहर की घड़ी ने एक बड़ा नुकसान किया है कि भीतर की घड़ी विस्मृत हो गयी है। तुमने देखाः गांव में, जंगलों में लोगों को--घड़ी नहीं है लेकिन--समय का बड़ा बोध होता है। वे चार बजे रात उठकर बता सकते हैं कि कितनी देर और लगेगी सुबह होने में। आधी रात बता सकते हैं कि आधी रात बीत गयी। लेकिन जो आदमी घड़ी पर निर्भर हो गया है--हाथ में बंधी घड़ी पर--उसकी हाथ की घड़ी खो जाए, फिर उसे कुछ पता नहीं चलता कि कितना बजा है, या क्या मामला है। भीतर की घड़ी धीरे-धीरे अवरुद्ध हो गयी है।
यह जो असम्यक समाधि है, इसमें तीन काम हो रहे हैं। एक तो श्वास की प्रक्रिया; दूसरीः सम्मोहित करने की प्रक्रिया। और तीसरी बातः भीतर की

घड़ी का उपयोग। लेकिन इससे कोई बुद्ध नहीं होता। इस तरह के हठयोगी सामान्यजन होते हैं। उनके जीवन में कोई भेद नहीं होता तुम्हारे जीवन से।
तो बुद्ध ने सम्यक समाधि कहा है उसको, जिसमें कोई जबर्दस्ती न हो; बिना जबर्दस्ती थोपे, जो समझपूर्वक, बोधपूर्वक फलित हो।
इस मंत्र का अर्थ हैः जिसने अपने भीतर के शत्रुओं को सम्यक संबोधि से नष्ट कर दिया है। और ऐसे ही व्यक्ति को बुद्ध-धर्म में भगवान कहा जाता है। तो ये तीनों शब्द बड़े सूचक हैं। अरिहत या अरिहंत--जिसने अपने भीतर के शत्रु मार डाले। कैसे? सम्यक संबोधि से, चैतन्य से, ध्यान से। और जिसके भीतर ध्यान फल गया और शत्रु मर गए, उसके भीतर जो बच रहता है, वही भगवत्ता है।
यह प्यारा मंत्र है। और इसका स्मरण जितना हो, उतना अच्छा है। तो यह ब्राह्मणी कोई भी मौका आए, चूकती नहीं थी। छींक आए तो; खांसी आए तो; फिसलकर गिर पड़े तो। कुछ भी मौका मिले, किसी भी निमित्त स्मरण करती थी भगवान का। उसके घर भोज था। उस दिन पैर फिसलकर गिर पड़ी भागा-भागी में। सामान लाती होगी; परसती होगी। सम्हलते ही उसने कहाः नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मासंबुद्धस्स।
इसे सुनकर उसके पति के भाई भारद्वाज ने उसे बहुत डांटा। सारा परिवार विरोधी था बुद्ध का।
ऐसा रोज यहां होता है। जया बैठी होगी कहीं। उसके पति ने उसे अल्टीमेटम दे दिया है कि अगर संन्यासी रहना है, तो मेरा घर बंद। अगर मेरे घर आना है, तो संन्यास की बात छोड़ दो। अब कुछ भी बिगड़ता नहीं है पति का उसके संन्यस्त होने से। लेकिन दंभ को चोट लगती होगी; अहंकार को पीड़ा होती होगी। यह बात भी बर्दाश्त नहीं की जा सकती कि मेरी पत्नी ध्यान में मुझसे आगे जा रही है; कि मुझसे ज्यादा शांत हो रही है।
पति का दंभ बड़ा भयंकर होता है। पत्नी किसी भी स्थिति में पति से आगे नहीं होनी चाहिए। इसलिए तो लोग लंबी स्त्री से शादी नहीं करते। शरीर में भी लंबी नहीं होनी चाहिए। हद्द हो गयी! पढ़ी-लिखी स्त्री को वर नहीं मिलते। क्योंकि वह कम पढ़ी-लिखी होनी चाहिए। पुरुष का अहंकार!
अगर पुरुष बी.ए. है, तो वह पीएचड़ी. लड़की से शादी नहीं करेगा। वह कहेगाः
हम चपरासी मालूम पड़ेंगे। तो लड़की कम से कम मैट्रिक हो, तो चलेगी।
इसलिए सदियों तक आदमी ने स्त्रियों को पढ़ने नहीं दिया। और इसमें कुछ आश्चर्य नहीं है कि स्त्रियों की लंबाई नीची क्यों रह गयी है। कोई कारण नहीं है। लंबाई उनकी पुरुषों जैसी हो सकती है। लेकिन कोई पुरुष शादी करने को राजी नहीं है लंबी स्त्री से। तो हर पुरुष अपने से ठिगनी स्त्री खोजता है। इसका परिणाम यह होता है कि जब बेटे पैदा होते हैं, तो वे पुरुष के अनुसार लंबे हो जाते हैं। और जब बेटी पैदा होती है, तो वह स्त्री के अनुसार छोटी हो जाती है। फिर उस बेटी को भी अपने से लंबा पति मिलेगा। और इसी तरह सदियों से चल रहा है। तो धीरे-धीरे पूरी नस्ल स्त्रियों की छोटी हो गयी है। बहुत लंबी स्त्रियों को शायद पति ही न मिले होंगे! कठिन होता है। लंबी स्त्री तुम्हारे बगल में चलती हो, कोई पूछे कि आप कौन? तो पत्नी है, कहने में जरा घबड़ाहट होती है।
पश्चिम में स्त्रियां इसका बदला लेने लगी हैं। इसलिए ऊंची ऐड़ी के जूते पहनने पड़ रहे हैं। वह सिर्फ बदला है पुरुष से--कि तुम क्या समझते हो! चलो, कोई बात नहीं। हम ऐसे लंबे नहीं हैं, तो हम लंबी ऐड़ी का जूता पहनकर तुम्हारे बराबर ऊंचाई कर लेंगे। पश्चिम में स्त्रियों की लंबाई बढ़ने लगी है। सौ, दो सौ वर्ष में पश्चिम में स्त्री-पुरुषों की लंबाई बराबर हो जाएगी।
हर बात में स्त्री छोटी होनी चाहिए। अब जया के पति को क्या कष्ट हो सकता है! पत्नी कोई शराब नहीं पीने लगी है। कोई जुआ नहीं खेलने लगी है। पत्नी सिर्फ ध्यान कर रही है। कभी-कभी भक्ति-भाव में होकर नाचती है। जया में गुण है मीरा जैसा। खिले--तो मीरा हो जाए। इसके नाच से तकलीफ है। इसके गीत से तकलीफ है। इसकी प्रसन्नता से अड़चन है। तो या संन्यास, या घर से बाहर हो जाओ। घर से बाहर निकाल दिया है उसे!

अब संन्यास जिसको फल गया है, छोड़ना असंभव है। मैं भी समझाऊं, तो वह राजी नहीं होगी। मैं भी उसे कहूं कि लौट जा वापस, तो अब वह वापस नहीं लौटेगी। क्योंकि जिसे स्वाद लग गया है, अब वह पति को छोड़ने को तैयार है, घर जाने को तैयार नहीं है।
अब समझ लेना। गाली तो मुझ पर पड़ने वाली है। क्योंकि समझा यही जाएगा कि मैंने भड़काया होगा। मैंने कहा होगा--छोड़ो। मैंने नहीं कहा है। लेकिन पति अपने आप धक्का दे रहा है। पति अपने आप अपने परिवार को बरबाद कर रहा है। फिर कहता फिरेगा कि मैंने परिवार बरबाद कर दिया है। अब बच्चे हैं; पत्नी घर से चली गयी; और जिम्मेवार खुद हैं।
ऐसे ही उस ब्राह्मणी का परिवार विरोध में रहा होगा। छिपाते होंगे इस बात को वे कि हमारे घर की ब्राह्मणी, हमारे घर की स्त्री बुद्ध के धर्म में सम्मिलित हो गयी है। छिपाकर रखते होंगे। किसी को बताते नहीं होंगे। और यह अड़चन हो गयी कि सबके सामने, मेहमानों के सामने पैर फिसलकर गिरी और उसने कह दियाः नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मासंबुद्धस्स। यह तो सारी बात खुल गयी। यह तो सबको पता चल गया कि यह ब्राह्मणी अब ब्राह्मणी नहीं रही। इसने तो बुद्ध के धर्म को अंगीकार कर लिया है।
उसके पति का छोटा भाई एकदम क्रुद्ध हो गया। उसने कहाः नष्ट हो दुष्टा। जहां नहीं, वहां ही उस मुंडे श्रमण की प्रशंसा करती है।
तुम सोच रखना, लोग मुझे ही गाली देते हैं, ऐसा नहीं। वे बुद्ध को भी गाली दे रहे थे। वे कृष्ण को भी गाली दे रहे थे। वे महावीर को भी गाली दे रहे थे। उनका काम ही गाली देना रहा है।
और फिर बोलाः आज मैं तेरे उस श्रमण गौतम के साथ शास्त्रार्थ करूंगा
और उसे हराऊंगा।
ब्राह्मणी हंसी और बोली... ।
हंसी! हंसी इसलिए कि यह अच्छा ही हुआ। चलो, इस बहाने ही तुम चले जाओ।
कभी कोई दुश्मनी के बहाने भी बुद्ध के पास आ जाए, तो भी पास तो आया। चलो, इसी बहाने सही। शायद इसी बहाने कोई किरण पकड़ ले। कोई गंध पकड़ ले। शायद इसी बहाने बुद्ध से पहचान हो जाए। कौन जाने... ।
और कभी-कभी ऐसा होता है कि जब आदमी क्रोध से उबलता होता है, तो ऐसा होता है जैसे कि आग से लाल हो रहा लोहा, उस पर चोट पड़े तो जल्दी रूपांतरण हो जाता है। ठंडे लोहे को नहीं बदला जा सकता है। गरम लोहे को बदला जाता है। इसलिए लोहार पहले लोहे को गरम करता है। गरम लोहा बदला जा सकता है।
अब यह भारद्वाज गरम लोहे की तरह चला बुद्ध की तरफ। उबल रहा है, सौ डिग्री पर उसका पारा है। भाप बन रही है उसके भीतर। ब्राह्मणी हंसी होगी और उसने कहाः नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मासंबुद्धस्स। उसने कहाः धन्य हो भगवान! खूब तरकीब निकाली। खूब मुझे गिराया और मंत्र निकलवा दिया। और अब यह मेरा देवर चला तुम्हारे चक्कर में! अच्छा हुआ। नमस्कार हो भगवान को, नमस्कार हो अर्हत को, नमस्कार हो सम्यक संबुद्ध को।
और उसने कहाः जाओ ब्राह्मण, जाओ। शास्त्रार्थ करो। यद्यपि उन भगवान
के साथ शास्त्रार्थ करने में कौन समर्थ है? फिर भी तुम जाओ; कुछ भला होगा। चलो, इस बहाने ही सही। दुश्मन की तरह ही जाओ। दोस्त की तरह न जा सके, अभागे हो। चलो, दुश्मन की तरह जाओ। यह भी भाग्य का क्षण बन सकता है।
ब्राह्मण क्रोध और अहंकार और विजय की आकांक्षा में जलता हुआ बुद्ध के पास गया। वह ऐसे था, जैसे साक्षात ज्वर हो; उसका सब जल रहा था। लेकिन भगवान को देखते ही कुछ हुआ; जैसे शीतल वर्षा हो गयी।
कभी-कभी ऐसा हो जाता है। ठीक त्वरा में कोई बात प्रवेश कर जाती है। कुनकुने आदमी नहीं बदले जा सकते। ठंडे आदमी नहीं बदले जा सकते। लेकिन गरम आदमी बदले जा सकते हैं।
जो बुद्ध के विरोध में इतना उत्तप्त हो सकता है--बिना बुद्ध को जाने, बिना बुद्ध को पहचाने; जिसने कभी उन आंखों में नहीं झांका; उस प्यारी देह को भी नहीं देखा; उस प्यारी आत्मा के दर्शन भी नहीं किए; उसके वातावरण में भी नहीं गया; उस माहौल की कुछ खबर नहीं है कि वहां क्या हो रहा है। वह इतनी

उत्तप्त दशा में आया होगा, तो जैसे जलता हुआ लोहा कोई पानी में फेंक दे, ऐसे बुद्ध की उस छाया में, उस शीतल छाया में चमत्कृत हो गया होगा।
समझना। अगर सामान्यतया आया होता; सोचता कि चलो, एक दिन चलकर देखेंः कौन है? क्या है? तो शायद परिणाम न होता। क्योंकि ठंडा-ठंडा आता। ठंडे लोहे को पानी में फेंक दो, कुछ भी न होगा। गरम लोहे को फेंको, बड़ी आवाज होगी। ठंडे लोहे को फेंको, पता भी न चलेगा। गरम लोहे को फेंको, तो गरम लोहा रूपांतरित होगा। ठंडा लोहा रूपांतरित नहीं होगा। क्योंकि ठंडा अब और क्या ठंडा होगा?
यह गरम आया था। इसलिए बुद्ध की जो थोड़ी सी बूंदें इस पर पड़ी होंगी, तत्क्षण रूपांतरकारी हो गयीं।
चाहे प्रेम में गरम जाओ, चाहे घृणा में गरम जाओ; बुद्धों के पास गरम जाना। ठंडे मत जाना।
उनकी उपस्थिति में उसका क्रोध अचानक बुझ गया, जैसे शीतल वर्षा हो गयी। उनकी आंखों को देख, उस व्यक्ति को जीतने की नहीं, उस व्यक्ति से हारने की आकांक्षा जाग उठी।
प्रेम का मतलब यही होता है--हारने की आकांक्षा। जिससे तुम हारना चाहते हो, उससे तुम्हें प्रेम है। जिससे तुम जीतना चाहते हो, उससे तुम्हें कैसे प्रेम होगा? प्रेम की कला हैः हारकर जीतना। हारने से शुरुआत है, जीतने में अंत है। प्रेमी हारता है; झुकता है; और जीत लेता है।
इस शांत बैठे आदमी को देखकर, इस प्रसादपूर्ण आदमी को देखकर... । ऐसा आदमी तो इस ब्राह्मण ने कभी देखा नहीं था। ठगा रह गया होगा। किंकर्तव्यविमूढ़ हो गया होगा एक क्षण को--अवाक, ठिठका हुआ। मन हुआः झुक जाऊं। मन हुआः इन चरणों में सिर रख दूं।
उसने कुछ प्रश्न पूछे। अब विवाद के लिए नहीं, मुमुक्षा से। और भगवान
के उत्तरों को पा वह समाधान को उपलब्ध हुआ।
जब कोई मुमुक्षा से पूछता है, तो ही उत्तर हृदय तक पहुंचता है। जब कोई विवाद के लिए पूछता है, तो उत्तर दिए जाते हैं, लेकिन पहुंचते नहीं। अगर उसने विवाद से पूछा होता, तो बुद्ध ने उत्तर दिए भी न होते। यही बुद्ध की प्रक्रिया थी।
जब कोई विवाद से पूछता, तो बुद्ध कहतेः बैठो। कुछ देर रुको। कुछ देर मेरे पास रहो। सालभर बाद पूछना। सालभर बुद्ध अपनी हवा में उसे रखते। सालभर बुद्ध औरों के प्रश्नों के उत्तर देते। न मालूम कितने प्रश्नों के उत्तर देते। और इस आदमी को चुपचाप बिठा रखते। जिस दिन इसके भीतर विवाद की भाव-दशा चली जाती, और जिस दिन इसके भीतर जिज्ञासा उठती, मुमुक्षा उठती; इसलिए पूछता कि जानना चाहता है। इसलिए नहीं कि जनाना चाहता है। इसलिए नहीं कि खंडन करने को उत्सुक है। बल्कि इसलिए कि अब रूपांतरित होने की तैयारी है।
तो जब कोई रूपांतरित होना चाहता है, तो उत्तर तत्क्षण पहुंच जाते हैं हृदय के गहनतम में। हृदय की अंतिम गहराई को छू लेते हैं; स्पंदित कर देते हैं। संवेग का उदय होता है। व्यक्ति रोमांचित हो जाता है। समाधान उपलब्ध होता है।
भगवान के उत्तरों को पा वह समाधान को उपलब्ध हुआ। समाधि लग गयी। फिर
घर नहीं लौटा।
बुद्ध के पास जाकर जो लौट आए, वह गया ही नहीं। गया होगा--फिर भी गया नहीं। गया होगा--पहुंचा नहीं। शरीर से गया होगा--मन से नहीं गया।
जो बुद्ध के पास गया, वह गया ही! सदा को गया। वह उनका ही होकर लौटेगा।
उस रंग में बिना रंगे जो लौट आए, वह गया--ऐसा मानना ही मत।
फिर घर नहीं लौटा। बुद्ध का ही हो गया। बुद्ध में ही खो गया। वह उसी दिन प्रव्रजित हुआ और उसी दिन अर्हत्व को उपलब्ध हुआ।
इतनी गरमी में जो प्रव्रजित होगा, इतनी गरमी से जो ठंडा होगा, वह रूपांतरित हो जाएगा।
उपेक्षा मत करना। धन्यभागी हो, अगर प्रेम कर सको। अगर प्रेम न कर सको,
तो दूसरा धन्यभाग--कि घृणा करना। मगर उपेक्षा मत करना।

नीत्शे ने लिखा है कि ईश्वर मर गया है। प्रमाण? प्रमाण कि अब न तो कोई ईश्वर के पक्ष में है और न कोई विपक्ष में है। सब लोग उपेक्षा से भर गए हैं। अब कोई विवाद भी नहीं करता कि ईश्वर है या नहीं।
अगर कहीं तुम विवाद भी करो, तो लोग कहते हैंः भई, होगा। उसको उस पर छोड़ो। अभी तो चाय पीयो। कि अभी रेडियो से न्यूज आ रही है, गड़बड़ बीच में न करो। ईश्वर होगा। मान लिया, होगा। झंझट कौन खड़ी करे! नाहक विवाद कौन करे! समय कौन खराब करे!
लोग उपेक्षा से जब भरते हैं, तभी ईश्वर से संबंध छूट जाता है। अच्छे
थे दिन, जब नास्तिक थे और आस्तिक थे और गहन विवाद था और गरमा-गरमी थी। अच्छे थे दिन, क्योंकि ईश्वर जिंदा था। जिंदा था अर्थात हमसे संबंध होता था; हमसे जुड़ता था।
नास्तिक कभी आस्तिक हो सकता है। लेकिन जो कहता हैः भई, होगा। सताओ न।
बेकार की बातें न उठाओ। हम कहां कहते हैं कि नहीं है। हम मंदिर जाते हैं।
गीता पर फूल भी चढ़ा देते हैं। कभी-कभी गीता उलट-पलट भी लेते हैं। होगा।
जरूर होगा। आप कहते हैं, तो होना ही चाहिए। मगर व्यर्थ की बकवास खड़ी न करो।
ऐसा जो आदमी है, इसके जीवन में ईश्वर मर गया है। ऐसे जीवन में बुद्ध से कोई संसर्ग नहीं हो सकता।
अच्छे थे वे लोग कि कम से कम उत्तप्त होते थे।
जीसस को लोगों ने सूली दी। अब अगर आएं, तो शायद उपेक्षा करें। और उपेक्षा ज्यादा बड़ी सूली हो जाएगी।
बुद्ध को लोगों ने गालियां दीं। ठीक था। गाली देने का मतलब ही यह होता
है कि तुम उद्विग्न तो हो गए। संबंध तो जुड़ने लगा। शत्रुता का सही। शत्रुता मित्रता में बदल सकती है। शत्रुता भी एक तरह की मित्रता है। उसकी खबर घर पहुंची। ब्राह्मणी के पति को भी भयंकर क्रोध आया। उसने कहाः यह तो हद्द हो गयी! मेरा भाई भी मेरे हाथ से गया। मेरी पत्नी तो पहले ही जा चुकी थी; मेरा भाई भी मेरे हाथ से गया!
वह भी भगवान को नाना प्रकार के आक्रोशन करता हुआ, रास्ते पर गालियां देता हुआ, असभ्य शब्दों को बोलता हुआ वेणुवन गया, जहां भगवान विहरते थे। और वह भी भगवान के पास जा ऐसे बुझ गया, जैसे जलता अंगार जल में गिरकर बुझ जाता है। ऐसा ही उसके अन्य दो भाइयों के साथ भी हुआ। भिक्षु भगवान का चमत्कार देख चकित थे।
चमत्कार कुछ भी नहीं है। जल में अंगारा गिरे, बुझ जाए; चमत्कार क्या है? स्वाभाविक है। अंगार का जलना स्वाभाविक है। जल का शीतल होना स्वाभाविक है। फिर अंगार का जल में गिरकर बुझ जाना स्वाभाविक है। सब स्वाभाविक है।
कहने लगेः आवुसो! बुद्ध-गुण में बड़ा चमत्कार है। ऐसे दुष्ट, अहंकारी, क्रोधी व्यक्ति भी शांतचित्त हो संन्यस्त हो गए हैं और ब्राह्मण-धर्म को छोड़ दिए हैं!
भगवान ने कहाः भिक्षुओ, भूल न करो। उन्होंने ब्राह्मण-धर्म नहीं छोड़ा है। वस्तुतः पहले वे ब्राह्मण नहीं थे और अब ब्राह्मण हुए हैं।
फिर भी बुद्ध को यह देश समझ नहीं पाया। इस देश ने यही समझा कि बुद्ध ने हिंदू-धर्म नष्ट कर दिया। बुद्ध इस पृथ्वी के सबसे बड़े हिंदू थे। उनसे बड़ा हिंदू न पहले पैदा हुआ, न पीछे पैदा हुआ। मगर हिंदू नासमझ थे और चूक गए। बुद्ध ने ब्राह्मणत्व को जो महिमा दी थी, वह किसी ने भी कभी नहीं दी है। लेकिन अक्सर यह भूल हो जाती है। अक्सर ऐसा हो जाता है।
जीसस सबसे बड़े यहूदी थे पृथ्वी के। उनसे बड़ा कोई यहूदी न पहले हुआ, न पीछे हुआ। लेकिन यहूदियों ने ही छोड़ दिया। फांसी लगा दी। बुद्ध सबसे बड़े हिंदू थे। और हिंदुओं ने ही उनका त्याग कर दिया। और हिंदुस्तान से बुद्ध-धर्म को उखाड़ फेंका। पता नहीं मनुष्य कब समझदार होगा! कब इसकी आंखें खुलेंगी! यह अपने घर में आयी संपदा को अस्वीकार करने की इसकी पुरानी आदत है।
जीसस ने कहा हैः पैगंबर अपने गांव में नहीं पूजा जाता; अपने लोगों के द्वारा नहीं पूजा जाता। इससे पैगंबर की कुछ हानि होती है, सो नहीं। पैगंबर

की क्या हानि होनी है! लेकिन वे लोग, जो सर्वाधिक लाभान्वित हो जाते, सबसे ज्यादा वंचित रह जाते हैं।
"जिसने नद्धा, रस्सी, सांकल को काटकर खूंटे को भी उखाड़ फेंका है, उस बुद्धपुरुष को मैं ब्राह्मण कहता हूं।"
नद्धा अर्थात क्रोध, सांकल अर्थात मोह, रस्सी अर्थात लोभ और खूंटा अर्थात काम। जिसने काम, क्रोध, मोह, लोभ--इन चार को उखाड़ फेंका है।
"जिसने नद्धा, रस्सी, सांकल को काटकर खूंटे को भी उखाड़ फेंका है... ।"
सबकी जड़ खूंटे में है--काम में। काम के कारण ही और सब चीजें पैदा होती हैं। इसे ख्याल रखना। इसलिए काम मूल जड़ है। शेष शाखाएं हैं वृक्ष की; फूल-पत्ते हैं। असली चीज जड़ है--काम। क्यों?
क्योंकि जब तुम्हारे काम में कोई बाधा डालता है, तो क्रोध पैदा होता है। जब तुम्हारा काम सफल होने लगता है, तो लोभ पैदा होता है। जब तुम्हारा काम सफल हो जाता है, तो मोह पैदा होता है।
समझो उदाहरण के लिए, तुम एक स्त्री को पाना चाहते हो। और एक दूसरे सज्जन प्रतियोगिता करने लगे। तो क्रोध पैदा होगा। तुम प्रतियोगी को मारने को उतारू हो जाओगे। भयंकर ईर्ष्या जगेगी। आग की लपटें उठने लगेंगी। अगर तुम स्त्री को पा लो, तो तुम चाहोगे कि जो तुम्हारी हो गयी है, वह अब सदा के लिए तुम्हारी हो। कहीं कल किसी और की न हो जाए। तो लोभ पैदा हुआ। अब तुम्हारे भीतर स्त्री को परिग्रह बना लेने की इच्छा हो गयी कि वह मेरी हो जाए। सब तरफ द्वार-दरवाजे बंद कर दोगे। दीवाल के भीतर उसे बिठा दोगे। एक पींजड़े में बिठा दोगे और ताला लगा दोगे कि अब किसी और की कभी न हो जाए। लोभ पैदा हुआ। फिर जिससे सुख मिलेगा, उससे मोह पैदा होगा। फिर उसके बिना एक क्षण न रह सकोगे। जहां जाओगे, उसी की याद आएगी। चित्त उसी के आसपास मंडराएगा। और इन सबके खूंटे में क्या है? काम है।
तो बुद्ध कहते हैंः जिसने नद्धा--क्रोध उखाड़ फेंका; सांकल तोड़ दी--मोह उखाड़ फेंका; रस्सी तोड़ दी--लोभ उखाड़ फेंका। और इतना ही नहीं; जो खूंटे को भी काटकर फेंक दिया है, उखाड़कर फेंक दिया है, उस बुद्धपुरुष को मैं ब्राह्मण कहता हूं।
जिसके भीतर काम नहीं रहा, उसके भीतर ही राम का आविर्भाव होता है। यह काम की ऊर्जा ही जब और सारे विषयों से मुक्त हो जाती है, तो राम बन जाती है। राम कुछ और ऊर्जा नहीं है; वही ऊर्जा है। हीरा जब पड़ा है कूड़े-करकट में और मिट्टी में दबा है, तो काम। और जब हीरे को निखारा गया, साफ-सुथरा किया गया और किसी जौहरी ने हीरे को पहलू दिए--तो राम।
काम और राम एक ही ऊर्जा के दो छोर हैं। काम की ही अंतिम ऊंचाई राम है।
और राम का ही सबसे नीचे गिर जाना काम है।
"जो बिना दूषित चित्त किए गाली, वध और बंधन को सह लेता है, क्षमा-बल ही जिसके बल का सेनापति है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूं।"

छेत्त्वा नन्दिं वरत्तंच सन्दामं सहनुक्कमं।
उक्खित्तपलिघं बुद्धं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं।।
अक्कोसं बधबन्धंच अदुट्ठो यो तितिक्खति।
खन्तिबलं बलानीकं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं।।

ऐसे व्यक्ति को मैं बुद्ध, ऐसे व्यक्ति को मैं ब्राह्मण कहता हूं, जिसने जीवन के सारे बंधन काट डाले हैं, जो परम स्वतंत्रता को उपलब्ध हो गया है; जिसकी ऊर्जा पर अब कोई सीमा नहीं है; जिसको पंख लग गए हैं।
नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मासंबुद्धस्स--जो भगवान हो गया है, जो अर्हत
हो गया है, जो सम्यक संबोधि को प्राप्त हो गया है, वही ब्राह्मण है।
इसलिए बुद्ध ने कहाः भिक्षुओ, ऐसी भ्रांति मत करो कि इन्होंने ब्राह्मण-धर्म छोड़ दिया। ये पहले ब्राह्मण थे ही नहीं। अब पहली दफा ब्राह्मण हुए हैं। अब पहली दफा ब्रह्म से परिचित हुए हैं। अब पहली दफा बुद्धत्व का स्वाद लगा है। मैंने इन्हें ब्राह्मण बनाया है।

काश! यह बात हिंदू समझ पाते। काश! यह बात यह देश समझ पाया होता! तो इस देश का सबसे प्यारा बेटा इस देश से निष्कासित नहीं होता। और इस देश को जो अपूर्व संपदा मिली थी, वह दूसरों के हाथ न पड़ती।
हजारों लोग चीन और जापान और थाईलैंड और बर्मा और कोरिया और लंका में बुद्ध के मार्ग पर चलकर बुद्धत्व को उपलब्ध हुए हैं। वे हजारों लोग यहां भी उपलब्ध हो सकते थे। लेकिन यहां एक भ्रांति पकड़ गयी कि बुद्ध ब्राह्मण-धर्म विरोधी हैं।
बुद्ध तथाकथित ब्राह्मणों के विरोधी थे। बुद्ध तथाकथित वेद और उपनिषदों के विरोधी थे। लेकिन असली वेद और असली उपनिषद और असली ब्राह्मण का कोई कैसे विरोधी हो सकता है!
आज इतना ही।

एस धम्मो सनंतनो, भाग 12
एक सौ बीस प्रवचन

अप्प दीपो भव!

पहला प्रश्नः मैं तुम्हीं से पूछती हूं, मुझे तुमसे प्यार क्यों है?
कभी तुम जुदा न होओगे, मुझे यह ऐतबार क्यों है?

पूछा है मा योग प्रज्ञा ने।
प्रेम के लिए कोई भी कारण नहीं होता। और जिस प्रेम का कारण बताया जा सके, वह प्रेम नहीं है। प्रेम के साथ क्यों का कोई भी संबंध नहीं है। प्रेम कोई व्यवसाय नहीं है। प्रेम के भीतर हेतु होता ही नहीं। प्रेम अकारण भाव-दशा है। न कोई शर्त है, न कोई सीमा है।
क्यों का पता चल जाए, तो प्रेम का रहस्य ही समाप्त हो गया। प्रेम का कभी भी शास्त्र नहीं बन पाता। इसीलिए नहीं बन पाता। प्रेम के गीत हो सकते हैं। प्रेम का कोई शास्त्र नहीं, कोई सिद्धांत नहीं।
प्रेम मस्तिष्क की बात नहीं है। मस्तिष्क की होती, तो क्यों का उत्तर मिल जाता। प्रेम हृदय की बात है। वहां क्यों का कभी प्रवेश ही नहीं होता। क्यों है मस्तिष्क का प्रश्न; और प्रेम है हृदय का आविर्भाव। इन दोनों का कहीं मिलना नहीं होता। इसलिए जब प्रेम होता है, तो बस होता है-- बेबूझ, रहस्यपूर्ण। अज्ञात ही नहीं--अज्ञेय। ऐसा भी नहीं कि किसी दिन जान लोगे।
इसीलिए तो जीसस ने कहा कि प्रेम परमात्मा है। इस पृथ्वी पर प्रेम एक अकेला अनुभव है, जो परमात्मा के संबंध में थोड़े इंगित करता है। ऐसा ही परमात्मा है--अकारण, अहैतुक। ऐसा ही परमात्मा है--रहस्यपूर्ण। ऐसा ही परमात्मा है, जिसका कि हम आर-पार न पा सकेंगे। प्रेम उसकी पहली झलक है। क्यों पूछो ही मत। यद्यपि मैं जानता हूं, क्यों उठता है। क्यों का उठना भी स्वाभाविक है। आदमी हर चीज का कारण खोजना चाहता है। इसी से तो विज्ञान का जन्म हुआ। क्योंकि आदमी हर चीज का कारण खोजना चाहता है कि ऐसा क्यों होता है? जब कारण मिल जाता है, तो विज्ञान बन जाता है। और जिन चीजों का कारण नहीं मिलता, उन्हीं से धर्म बनता है। धर्म और विज्ञान का यही भेद है। कारण मिल गया, तो विज्ञान निर्मित हो जाएगा।
प्रेम का विज्ञान कभी निर्मित नहीं होगा। और परमात्मा विज्ञान की प्रयोगशाला में कभी पकड़ में नहीं आएगा। जीवन में जो भी परम है--सौंदर्य, सत्य, प्रेम--उन पर विज्ञान की कोई पहुंच नहीं है। वे विज्ञान की पहुंच के बाहर हैं। जीवन में जो भी महत्वपूर्ण है, गरिमापूर्ण है, वह कुछ अज्ञात लोक से उठता है। तुम्हारे भीतर से ही उठता है। लेकिन इतने अंतरतम से आता है कि तुम्हारी परिधि उसे नहीं समझ पाती। तुम्हारे विचार करने की क्षमता परिधि पर है। और तुम्हारे प्रेम करने की क्षमता तुम्हारे केंद्र पर है। केंद्र तो परिधि को समझ सकता है। लेकिन परिधि केंद्र को नहीं समझ सकती। क्षुद्र विराट को नहीं समझ सकता; विराट क्षुद्र को समझ सकता है। छोटा बच्चा बूढ़े को नहीं समझ सकता; बूढ़ा छोटे बच्चे को समझ सकता है। प्रेम बड़ी बात है--मस्तिष्क से बहुत बड़ी। मस्तिष्क से ही क्यों--प्रेम तुमसे भी बड़ी बात है। इसीलिए तो तुम अवश हो जाते हो। प्रेम का झोंका जब आता है, तुम कहां बचते हो? प्रेम का मौसम जब आता है, तुम कहां बचते हो? प्रेम की किरण उतरती है, तुम मिट जाते हो। तुमसे भी बड़ी बात है। तो तुम कैसे समझ पाओगे? तुम तो बचते ही नहीं, जब प्रेम उतरता है। जब प्रेम नाचता हुआ आता है तुम्हारे भीतर, तुम कहां होते हो? खुदी बेखुदी हो जाती है। आत्मा अनात्मा हो जाती है। एक शून्य रह जाता है। उस शून्य में ही नाचती है किरण प्रेम की, प्रार्थना की, परमात्मा की।
नहीं; उसे तुम न समझ पाओगे। जब तुम लौटते हो, तब प्रेम जा चुका। जो समझ सकता था, जब आता है, तो जिसे समझना था, वह जा चुका। और जिसे समझना है, जब वह वहां होता है तुम्हारे भीतर, तो जो समझना चाहता है, वह मौजूद नहीं होता।

कबीर ने कहा हैः हेरत हेरत हे सखी, रह्या कबीर हेराइ। खोजने चला हूं, कबीर कहते हैं; परमात्मा को खोजने चला था। खोजते-खोजते कबीर तो खो ही गया। और जिस क्षण कबीर खोया, उसी क्षण परमात्मा से मिलन हुआ।
यह मिलन बड़ा विरोधाभासी है। खोजी तो चला गया, तब खोज पूरी हुई--खोजी के जाने पर। तो मिलन कहां? पहले कबीर था; अब परमात्मा है। मिलन कहां? कबीर तो अब नहीं है। जब तक कबीर था, तब तक परमात्मा नहीं था। अब परमात्मा है, तो कबीर नहीं है। ऐसी दशा है प्रेम की।
कबीर ने कहा हैः प्रेम गली अति सांकरी, तामे दो न समाय। इसका तुमने एक अर्थ तो सदा लिया है कि प्रेमी और प्रेयसी दो एक साथ न समा सकेंगे। उनको एक हो जाना पड़ेगा। इसका एक और गहरा अर्थ हैः प्रेम में मस्तिष्क और हृदय भी न समा सकेंगे। एक ही समा सकता है।
क्यों उठता है मस्तिष्क से। खुजलाहट है मस्तिष्क की। उसका कोई मूल्य
भी नहीं है। उठना स्वाभाविक है। लेकिन अब धीरे-धीरे स्वभाव से भी ऊपर उठो, ताकि परम स्वभाव मिले।
"मैं तुम्हीं से पूछती हूं, मुझे तुमसे प्यार क्यों है?"
नहीं, इसका कोई उत्तर नहीं हो सकता। वृक्ष हरे क्यों हैं? चांद-तारों में रोशनी क्यों है? आकाश में बादल क्यों भटकते हैं? सुबह सूरज क्यों निकलता है? पक्षी प्रभात में गीत क्यों गाते हैं?
वैज्ञानिक से पूछोगे, कुछ न कुछ उत्तर खोज लाएगा। लेकिन उस उत्तर से
भी कुछ हल नहीं होता। वैज्ञानिक से पूछोगे, वृक्ष हरे क्यों हैं? तो कहेगा, क्योंकि क्लोरोफिल वृक्षों में है। लेकिन इससे कुछ हल नहीं हुआ। यह कोई प्रश्न का उत्तर न हुआ; सिर्फ प्रश्न को टालना हुआ। फिर प्रश्न खड़ा हो जाएगा कि वृक्षों में क्लोरोफिल है क्यों? फिर अटक गयी बात। डी.एच.लारेंस ने ठीक उत्तर दिया है। एक छोटे बच्चे के साथ घूमता है लारेंस एक बगीचे में। और जैसा बच्चे पूछते हैं; बच्चे ने पूछाः वृक्ष हरे क्यों हैं? व्हाय द ट्रीज आर ग्रीन? और डी.एच.लारेंस ने कहाः दे आर ग्रीन, बिकाज दे आर ग्रीन। वृक्ष हरे हैं, क्योंकि हरे हैं। और बच्चा राजी हो गया। और बच्चा हंसा। और बच्चे को बात जंची।
बच्चे जैसे सरल हो जाओ, तो तुम्हें मेरी बात समझ में आ जाएगी; मैं जो
कह रहा हूं। बस, प्रेम है। जैसे वृक्ष हरे हैं--अकारण।
इस जगत में कारण नहीं है। कारण की खोज बड़ी क्षुद्र है। इस जगत में कारण है ही नहीं। यह जगत इसीलिए तो लीला कहा गया है। खेल है; कारण नहीं है। तुम एक मकान बना रहे हो; उसमें कारण होता है कि रहोगे। और एक छोटा बच्चा ताश के पत्तों को जमाकर मकान बना रहा है; इसमें क्या कारण है? तुम बाजार जा रहे हो। इसमें कारण है। दुकान जाना है। धंधा करना है। पैसा कमाना है। रोटी-रोजी चाहिए। छप्पर चाहिए। और एक बच्चा कमरे में चक्कर लगा रहा है। इसमें क्या कारण है?
एक आदमी सुबह घूमने निकला है। कहीं जा नहीं रहा है। इसमें कोई कारण नहीं है। कहीं से लौट आए। कहीं बैठ जाए। न जाए, तो कोई बात नहीं है।
यह जगत अकारण है। यहां इतना सब कुछ हो रहा है, लेकिन इस होने के पीछे कोई हेतु, कोई व्यवसाय नहीं है। जिसने ऐसा जाना, वह मुक्त हो गया। जिसने ऐसा पहचाना, उसके सारे बंधन गिर गए। क्योंकि फिर क्या बंधन रहे! फिर क्या चिंता रही! चिंता तभी तक हो सकती है, जब हम कुछ करने को उतारू हैं। अगर यह जगत अपने से हो ही रहा है, तो चिंता कहां रही?
तुम्हें चिंता पकड़ सकती है, अगर तुम सोचो कि मेरे शरीर के भीतर खून बह रहा है, कहीं रुक जाए रात सोते में! न बहे। फिर क्या करूंगा? हृदय धड़क रहा है और हम तो सो गए--और न धड़के। फिर मैं क्या करूंगा? श्वास तो चल रही है; रुक जाए; फिर मैं क्या करूंगा? तो तुम मुश्किल में पड़ जाओगे। तो चिंता पैदा हो जाएगी।
जब तक श्वास चल रही है, चल रही है। जब नहीं चल रही है, तब नहीं चल रही है। न चलने में कोई कारण है; न न चलने में कोई कारण है। लीला है। खेल है। इस तरह जीवन को देखो, तो तुम चिंताओं के बाहर होने लगो। और जो चिंताओं
के बाहर हुआ, वही मंदिर में प्रविष्ट होता है।

"कभी तुम जुदा न होगे, मुझे यह ऐतबार क्यों है?"
यह ऐतबार भी प्रेम का अंतरंग भाग है। जैसे फूल में सुगंध होती है, ऐसे प्रेम में ऐतबार होता है। प्रेम में श्रद्धा का दीया जलता है। प्रेम में एक भरोसा होता है। उस भरोसे का भी कोई कारण नहीं है। लेकिन बस, प्रेम में वह भरोसा पाया जाता है। जैसे फूलों में सुगंध पायी जाती है। जैसे पानी नीचे की तरफ बहता है और आग गरम है। ऐसे ही प्रेम का गुण श्रद्धा है। वह उसकी आत्मा है। प्रेम के दीए में श्रद्धा का प्रकाश होता रहता है। प्रश्न प्यारा है; मगर उत्तर मत खोजो। उत्तर को जाने दो; प्रेम को जीयो। और यह जो ऐतबार जगा है, यह जो श्रद्धा जगी है, इस पर समर्पित हो जाओ। इस पर सब न्योछावर कर दो। इसमें डुबकी मार लो। इसमें मिट जाओ। इसमें खो जाओ। और तुम सब पा लोगे।
खोना ही पाने का सूत्र है। जिसने बचाया, वह चूका। जिसने कंजूसी की, वह गरीब रह गया। जिसने लुटाया, उसने पाया। जो डूबा, वह पहुंचा। मझधार में डूबने की हिम्मत चाहिए, तो मझधार ही किनारा हो जाती है। और मझधार ही किनारा हो, तभी कुछ मजा है।

दूसरा प्रश्नः भगवान बुद्ध ने कहा हैः अपने दीए आप बनो। तो क्या सत्य
की खोज में किसी भी सहारे की कोई जरूरत नहीं है?

यह जानने को भी तो तुम्हें बुद्ध के पास जाना पड़ेगा न! --अपने दीए आप बनो। इतनी ही जरूरत है गुरु की। गुरु तुम्हारी बैसाखी नहीं बनने वाला है। जो बैसाखी बन जाए तुम्हारी, वह तुम्हारा दुश्मन है, गुरु नहीं है। क्योंकि जो बैसाखी बन जाए तुम्हारी, वह तुम्हें सदा के लिए लंगड़ा कर देगा। और अगर बैसाखी पर तुम निर्भर रहने लगे, तो तुम अपने पैरों को कब खोजोगे? अपनी गति कब खोजोगे? अपनी ऊर्जा कब खोजोगे?
जो तुम्हें हाथ पकड़कर चलाने लगे, वह गुरु तुम्हें अंधा रखेगा। जो कहेः मेरा तो दीया जला है; तुम्हें दीया जलाने की क्या जरूरत? देख लो मेरी रोशनी में। चले आओ मेरे साथ। उस पर भरोसा मत करना। क्योंकि आज नहीं कल रास्ते अलग हो जाएंगे। कब रास्ते अलग हो जाएंगे, कोई भी नहीं जानता। कब मौत आकर बीच में दीवाल बन जाएगी, कोई भी नहीं जानता। तब तुम एकदम घुप्प अंधेरे में छूट जाओगे। गुरु की रोशनी को अपनी रोशनी मत समझ लेना।
ऐसी भूल अक्सर हो जाती है।
सूफियों की कहानी है कि दो आदमी एक रास्ते पर चल रहे हैं। एक आदमी के हाथ में लालटेन है। और एक आदमी के हाथ में कोई लालटेन नहीं है। कुछ घंटों तक वे दोनों साथ-साथ चलते रहे हैं। आधी रात हो गयी। मगर जिसके हाथ में लालटेन नहीं है, उसे इस बात का ख्याल भी पैदा नहीं होता कि मेरे हाथ में लालटेन नहीं है। जरूरत क्या है? दूसरे आदमी के हाथ में लालटेन है। और रोशनी पड़ रही है। और जितना जिसके हाथ में लालटेन है उसको रोशनी मिल रही है, उतनी उसको भी मिल रही है जिसके हाथ में लालटेन नहीं है। दोनों मजे से गपशप करते चले जाते हैं। फिर वह जगह आ गयी, जहां लालटेन वाले ने कहाः अब मेरा रास्ता तुमसे अलग होता है। अलविदा। फिर घुप्प अंधेरा हो गया।
आज नहीं कल गुरु से विदा हो जाना पड़ेगा। या गुरु विदा हो जाएगा। सदगुरु वही है, जो विदा होने के पहले तुम्हारा दीया जलाने के लिए तुम्हें सचेत करे। इसलिए बुद्ध ने कहा हैः अप्प दीपो भव। अपने दीए खुद बनो। यह भी जिंदगीभर कहा, लेकिन नहीं सुना लोगों ने। जिन्होंने सुन लिया, उन्होंने तो अपने दीए जला लिए। लेकिन कुछ इसी मस्ती में रहे कि करना क्या है! बुद्ध तो हैं।
आनंद से कही है यह बात उन्होंने। आनंद भी उन्हीं नासमझों में एक था,
जो बुद्ध की रोशनी में चालीस साल तक चलता रहा। स्वभावतः, चालीस साल तक रोशनी मिलती रहे, तो लोग भूल ही जाएंगे कि अपने पास रोशनी नहीं है; कि हम अंधे हैं। चालीस साल तक किसी जागे का साथ मिलता रहे, तो स्वभावतः भूल हो जाएगी। लोग यह भरोसा ही कर लेंगे कि हम भी पहुंच ही गए। रोशनी तो सदा रहती है। भूल-चूक होती नहीं। भटकते नहीं। गड्ढों में गिरते नहीं।

और आनंद बुद्ध के सर्वाधिक निकट रहा। चालीस साल छाया की तरह साथ रहा। सुबह-सांझ, रात-दिन। चालीस साल में एक दिन भी बुद्ध को छोड़कर नहीं गया।
बुद्ध भिक्षा मांगने जाएं, तो आनंद साथ जाएगा। बुद्ध सोएं, तो आनंद साथ सोएगा। बुद्ध उठें, तो आनंद साथ उठेगा। आनंद बिल्कुल छाया था। भूल ही गया होगा। उसको हम क्षमा कर सकते हैं। चालीस साल रोशनी ही रोशनी! उठते-बैठते रोशनी। जागते-सोते रोशनी। भूल ही गया होगा।
फिर बुद्ध का अंतिम दिन आ गया। रास्ते अलग हुए। और बुद्ध ने कहा कि अब मेरी आखिरी घड़ी आ गयी। अब मैं विदा लूंगा। भिक्षुओ! किसी को कुछ पूछना हो, तो पूछ लो। बस, आज मैं आखिरी सांस लूंगा।
जिन्होंने अपने दीए जला लिए थे, वे तो शांत अपने दीए जलाए बैठे रहे परम अनुग्रह से भरे हुए--कि न मिलता बुद्ध का साथ, तो शायद हमें याद भी न आती कि हमारे भीतर दीए के जलने की संभावना है। न मिलता बुद्ध का साथ, न बुद्ध हमें चोट करते रहते बार-बार कि जागो, जागो, जलाओ अपना दीया, तो शायद हमें पता भी होता शास्त्र से पढ़कर, कि हमारे भीतर दीए के जलने की संभावना है, तो भी हमने न जलाया होता। हमें यह भी पता होता कि संभावना है, जल भी सकता है, तो विधि मालूम नहीं थी।
आखिर दीया बनाना हो, तो विधि भी तो होनी चाहिए! बाती बनानी आनी चाहिए। तेल भरना आना चाहिए। फिर दीया ऐसा होना चाहिए कि तेल बह न जाए। फिर दीए की सम्हाल भी करनी होती है। नहीं तो कभी बाती तेल में ही गिर जाएगी और दीया बुझ जाएगा। वह साज-सम्हाल भी आनी चाहिए; विधि भी आनी चाहिए। फिर चकमक पत्थर भी खोजने चाहिए। फिर आग पैदा करने की कला भी होनी चाहिए।
तो अनुग्रह से भरे थे। जिन्होंने पा लिया था, वे तो शांत, चुपचाप बैठे रहे। गहन आनंद में, गहन अहोभाव में।
आनंद दहाड़ मारकर रोने लगा। उसने कहाः यह आप क्या कह रहे हैं! यह कहो ही मत। मेरा क्या होगा?
आ गया रास्ता अलग होने का क्षण। आज उसे पता चला कि ये चालीस साल मैं तो अंधा ही था। यह रोशनी उधार थी। यह रोशनी किसी और की थी। और यह विदाई का क्षण आ गया। और विदाई का क्षण आज नहीं कल, देर-अबेर आएगा ही।
तब बुद्ध ने कहा थाः आनंद! कितनी बार मैंने तुझसे कहा है, अप्प दीपो भव! अपना दीया बन। तू सुनता नहीं। अब तू समझ। चालीस साल निरंतर कहने पर तूने नहीं सुना, इसलिए रोना पड़ रहा है। देख उनको, जिन्होंने सुना। वे दीया बने शांत अपनी जगह बैठे हैं।
बुद्ध के जाने से एक तरह का संवेग है। इस अपूर्व मनुष्य के साथ इतने दिन रहने का मौका मिला। आज अलग होने का क्षण आया। तो एक तरह की उदासी है। मगर दहाड़ मारकर नहीं रो रहे हैं। क्योंकि यह डर नहीं है कि अंधेरा हो जाएगा। अपना-अपना दीया उन्होंने जला लिया है।
तुम पूछते होः "भगवान बुद्ध ने कहा है, अपने दीए आप बनो, तो क्या सत्य
की खोज में किसी भी सहारे की कोई जरूरत नहीं है?"
यह जरा नाजुक सवाल है। नाजुक इसलिए कि एक अर्थ में जरूरत है और एक अर्थ में जरूरत नहीं है। इस अर्थ में जरूरत है कि तुम अपने से तो शायद जाग ही न सकोगे; तुम्हारी नींद बड़ी गहरी है। कोई तुम्हें जगाए।
लेकिन इस अर्थ में जरूरत नहीं है कि किसी दूसरे के जगाने से ही तुम जाग जाओगे। जब तक तुम ही न जागना चाहो, कोई तुम्हें जगा न सकेगा। और अगर तुम जागना चाहो, तो बिना किसी के जगाए भी जाग सकते हो, यह संभावना है। बिना गुरु के भी लोग पहुंचे हैं। मगर इसको जड़ सिद्धांत मत बना लेना कि बिना गुरु के कोई पहुंच गया, तो तुम भी पहुंच जाओगे।
मेरे पास लोग आ जाते हैं। वे कहते हैंः आपसे एक सलाह लेनी है। अगर गुरु न बनाएं, तो हम पहुंच सकेंगे कि नहीं? मैंने कहा कि तुम इतनी ही बात खुद नहीं सोच सकते; इसके लिए भी तुम मेरे पास आए! तुमने गुरु तो बना ही लिया!
गुरु का मतलब क्या होता है? किसी और से पूछने गए; यह भी तुम खुद न खोज पाए!

मुझसे लोग आकर पूछते हैं कि आपका गुरु कौन था? हमने तो सुना कि आपका गुरु नहीं था! जब आपने बिना गुरु के पा लिया, तो हम क्यों न पा लेंगे? मैं उनसे कहता हूंः मैं कभी किसी से यह भी पूछने नहीं गया कि बिना गुरु के मिलेगा कि नहीं!
तुम जब इतनी छोटी सी बात भी खुद निर्णय नहीं कर पाते हो, तो उस विराट सत्य के निर्णय में तुम कैसे सफल हो पाओगे?
तो एक अर्थ में गुरु की जरूरत है। और एक अर्थ में जरूरत नहीं है। अगर तुम्हारी अभीप्सा प्रगाढ़ हो, तो कोई जरूरत नहीं है। लेकिन जरूरत या गैर-जरूरत, इसकी समस्या क्यों बनाते हो? जितना मिल सके किसी से ले लो। मगर इतना ध्यान रखो कि दूसरे से लिए हुए पर थोड़े दिन काम चल जाएगा। अंततः तो अपनी समृद्धि खुद ही खोजनी चाहिए। किसी के कंधे पर सवार होकर थोड़ी देर चल लो, अंततः तो अपने पैरों का बल निर्मित करना ही चाहिए।
रास्ता सीधा-साफ है। प्रबल प्यास हो, तो अकेले भी पहुंच जाओगे। रास्ता इतना सीधा-साफ है कि इस पर किसी के भी साथ की कोई जरूरत नहीं है। लेकिन अगर अकेले पहुंचने की हिम्मत न बनती हो, तो थोड़े दिन किसी का साथ बना लेना। लेकिन साथ को बंधन मत बना लेना। फिर ऐसा मत कहना कि बिना साथ के हम जाएंगे ही नहीं। नहीं तो तुम कभी न पहुंचोगे। क्योंकि सत्य तक तो अंततः अकेले ही पहुंचना होगा। एकांत में ही घटेगी घटना। उस एकांत में तुम्हारा गुरु भी तुम्हारे साथ मौजूद नहीं होगा।
गुरु तुम्हें संसार में मुक्त होने में सहयोगी हो सकता है। लेकिन परमात्मा से मिलने में सहयोगी नहीं हो सकता। संसार से छुड़ाने में सहयोगी हो जाएगा। संसार छूट जाए, तो फिर तुम्हें एकांत में परमात्मा से मिलना होगा। वह मिलन भीड़-भाड़ में नहीं होता।
किस कदर सीधा सहल साफ है यह रस्ता देखो
न किसी शाख का साया है, न दीवार की टेक
न किसी आंख की आहट, न किसी चेहरे का शोर
न कोई दाग जहां बैठ के सुस्ताए कोई
दूर तक कोई नहीं, कोई नहीं, कोई नहीं
चंद कदमों के निशां, हां, कभी मिलते हैं कहीं
साथ चलते हैं जो कुछ दूर फकत चंद कदम
और फिर टूट के गिरते हैं यह कहते हुए
अपनी तनहाई लिए आप चलो, तन्हा, अकेले
साथ आए जो यहां कोई नहीं, कोई नहीं
किस कदर सीधा सहल साफ है यह रस्ता देखो
थोड़ी दूर किसी के कदम के साथ चल लो, ताकि चलना आ जाए। मंजिल नहीं आती इससे, सिर्फ चलने की कला आती है। थोड़ी दूर किसी के पग-चिह्नों पर चल लो, ताकि पैरों को चलने का अभ्यास हो जाए। इससे मंजिल नहीं आती; मंजिल तो तुम्हारे ही चलने से आएगी; किसी और के चलने से नहीं।

मेरी आंख से तुम कैसे देखोगे? हां, थोड़ी देर को तुम मेरी आंख में झांक सकते हो। तुम मेरे हृदय से कैसे अनुभव करोगे? हां, थोड़ी देर किसी गहन भाव की दशा में तुम मेरे हृदय के साथ धड़क सकते हो। निश्चित ही किसी प्रेम की घटना में थोड़ी देर को तुम्हारा हृदय और मेरा हृदय एक ही लय में बद्ध हो सकते हैं। उस समय क्षणभर को तुम्हें रोशनी दिखेगी। उस समय क्षणभर को आकाश खुला दिखायी पड़ेगा; सब बादल हट जाएंगे। लेकिन यह थोड़ी ही देर को होगा। अंततः तो तुम्हें अपने हृदय का सरगम खोजना ही है।
किस कदर सीधा सहल साफ है यह रस्ता देखो
न किसी शाख का साया है, न दीवार की टेक
न किसी आंख की आहट, न किसी चेहरे का शोर
न कोई दाग जहां बैठ के सुस्ताए कोई
दूर तक कोई नहीं, कोई नहीं, कोई नहीं
चंद कदमों के निशां, हां, कभी मिलते हैं कहीं साथ चलते हैं जो कुछ दूर फकत चंद कदम

और फिर टूट के गिरते हैं यह कहते हुए
अपनी तनहाई लिए आप चलो, तन्हा, अकेले
साथ आए जो यहां कोई नहीं, कोई नहीं
किस कदर सीधा सहल साफ है यह रस्ता देखो
अच्छा है कि तुम्हें परमात्मा तक अकेले ही पहुंचने की संभावना है। नहीं तो किसी पर निर्भर होना पड़ता। और निर्भरता से कभी कोई मुक्ति नहीं आती। निर्भरता तो गुलामी का ही एक अच्छा नाम है। निर्भरता तो दासता ही है। वह दासता की ही दास्तान है--नए ढंग से लिखी गयी; नए लफ्जों में, नए शब्दों में, नए रूप-रंग से; लेकिन बात वही है।
इसलिए कोई सदगुरु तुम्हें गुलाम नहीं बनाता। और जो गुलाम बना ले, वहां से भाग जाना। वहां क्षणभर मत रुकना। वहां रुकना खतरनाक है। जो तुम्हें कहे कि मेरे बिना तुम्हारा कुछ भी नहीं होगा; जो कहे कि मेरे बिना तुम कभी भी नहीं पहुंच सकोगे; जो कहेः मेरे पीछे ही चलते रहना, तो ही परमात्मा मिलेगा, नहीं तो चूक जाओगे--ऐसा जो कोई कहता हो, उससे बचना। उसे स्वयं भी अभी नहीं मिला है। क्योंकि यदि उसे स्वयं मिला होता, तो एक बात उसे साफ हो गयी होती कि परमात्मा जब मिलता है, एकांत में मिलता है; वहां कोई नहीं होता; कोई दूसरा नहीं होता।
उसे परमात्मा तो मिला ही नहीं है; उसने लोगों के शोषण करने का नया ढंग, नयी तरकीब ईजाद कर ली है। उसने एक जाल ईजाद कर लिया है, जिसमें दूसरों की गरदनें फंस जाएंगी। ऐसा आदमी धार्मिक नहीं है, राजनैतिक है। ऐसा आदमी गुरु नहीं है, नेता है। ऐसा आदमी भीड़-भाड़ को अपने पीछे खड़ा करके अहंकार का रस लेना चाहता है। इस आदमी से सावधान रहना। इस आदमी से दूर-दूर रहना। इस आदमी के पास मत आना।
जो तुमसे कहे कि मेरे बिना परमात्मा नहीं मिलेगा, वह महान से महान असत्य बोल रहा है। क्योंकि परमात्मा उतना ही तुम्हारा है, जितना उसका। हां, यह हो सकता है कि तुम जरा लड़खड़ाते हो। वह कम लड़खड़ाता है। या उसकी लड़खड़ाहट मिट गयी है और वह तुम्हें चलने का ढंग, शैली सिखा सकता है। हां, यह हो सकता है कि उसे तैरना आ गया और तुम उसे देखकर तैरना सीख ले सकते हो। लेकिन उसके कंधों का सहारा मत लेना, अन्यथा दूसरा किनारा कभी न आएगा। उसके कंधों पर निर्भर मत हो जाना, नहीं तो वही तुम्हारी बर्बादी का कारण होगा। इसी तरह तो यह देश बरबाद हुआ। यहां मिथ्या गुरुओं ने लोगों को गुलाम बना लिया। इस मुल्क को गुलामी की आदत पड़ गयी। इस मुल्क को निर्भर रहने की आदत पड़ गयी। यह जो हजार साल इस देश में गुलामी आयी, इसके पीछे और कोई कारण नहीं है। इसके पीछे न तो मुसलमान हैं, न मुगल हैं, न तुर्क हैं, न हूण हैं, न अंग्रेज हैं। इसके पीछे तुम्हारे मिथ्या गुरुओं का जाल है।
मिथ्या गुरुओं ने तुम्हें सदियों से यह सिखाया हैः निर्भर होना। उन्होंने इतना निर्भर होना सिखा दिया कि जब कोई राजनैतिक रूप से भी तुम्हारी छाती पर सवार हो गया, तुम उसी पर निर्भर हो गए। तुम जी-हुजूर उसी को कहने लगे। तुम उसी के सामने सिर झुकाकर खड़े हो गए। तुम्हें आजादी का रस ही नहीं लगा; स्वाद ही नहीं लगा।
अगर कोई मुझसे पूछे, तो तुम्हारी गुलामी की कहानी के पीछे तुम्हारे गुरुओं का हाथ है। उन्होंने तुम्हें मुक्ति नहीं सिखायी, स्वतंत्रता नहीं सिखायी।
काश! बुद्ध जैसे गुरुओं की तुमने सुनी होती, तो इस देश में गुलामी का कोई कारण नहीं था। काश! तुमने व्यक्तित्व सीखा होता, निजता सीखी होती; काश! तुमने यह सीखा होता कि मुझे मुझी होना है; मुझे किसी दूसरे की प्रतिलिपि नहीं होना है; और मुझे अपना दीया खुद बनना है, तो तुम बाहर के जगत में भी पैर जमाकर खड़े होते। यह अपमानजनक बात न घटती कि चालीस करोड़ का मुल्क मुट्ठीभर लोगों का गुलाम हो जाए! कोई भी आ जाए और यह मुल्क गुलाम हो जाए! जरूर इस मुल्क की आत्मा में गुलामी की गहरी छाप पड़ गयी। किसने डाली यह छाप? किसने यह जहर तुम्हारे खून में घोला? किसने विषाक्त की तुम्हारी आत्मा? किसने तुम्हें अंधेरे में रहने के लिए विधियां सिखायीं? तुम्हारे तथाकथित गुरुओं ने। वे गुरु नहीं थे।

गुरु तो बुद्ध जैसे व्यक्ति ही होते हैं, जो कहते हैं, अप्प दीपो भव! एकांत में ही बजेगा अंतिम संगीत। एकांत में ही उतरेगी समाधि। एकांत में ही होगा मिलन।
मुझसे इक नज्म का वादा है, मिलेगी मुझको
डूबती नब्जों में जब दर्द को नींद आने लगे
जर्द-सा चेहरा लिए चांद उफक पर पहुंचे
दिन अभी पानी में हो, रात किनारे के करीब
न अंधेरा, न उजाला हो, न यह रात, न दिन
जिस्म जब खत्म हो और रूह को जब सांस आए
मुझसे इक नज्म का वादा है, मिलेगी मुझको
एक गीत तुम्हारे भीतर घटने को है। वायदा है एक गीत का कि मैं आऊंगा; बरसूंगा तुम पर। लेकिन कब? जब सब समाप्त हो जाए।
मुझसे इक नज्म का वादा है, मिलेगी मुझको
डूबती नब्जों में जब दर्द को नींद आने लगे
जब तुम्हारे जीवन की सारी पीड़ाएं छूट जाएं; जब तुम्हारे दर्द की आदतें मिट जाएं।
जर्द-सा चेहरा लिए चांद उफक पर पहुंचे
दिन अभी पानी में हो, रात किनारे के करीब
न अंधेरा, न उजाला हो...
द्वंद्व जहां मिट जाए।
न अंधेरा, न उजाला हो, न यह रात, न दिन
इसलिए तो हम संध्या शब्द का उपयोग करते हैं प्रार्थना के लिए। क्यों संध्या का उपयोग करते हैं? संध्या का अर्थ ही प्रार्थना हो गया! लोग कहते हैंः अभी वे संध्या कर रहे हैं। संध्या का मतलब?
न अंधेरा हो, न उजाला हो, न यह रात, न दिन
मध्य में हो। सब द्वंद्व छूट जाएं। सब अतियां छूट जाएं। न इस तरफ, न उस तरफ। कोई झुकाव न रह जाए, कोई चुनाव न रह जाए, कोई विकल्प न रह जाए। न जीवन, न मृत्यु। न वसंत, न पतझड़। न सुख, न दुख। संध्या आ जाए।
दिन अभी पानी में हो, रात किनारे के करीब
न अंधेरा, न उजाला हो, न यह रात, न दिन
जिस्म जब खत्म हो...
और जिसे तुमने अब तक जाना है कि मैं हूं, जिसे तुमने माना है कि मैं हूं, वह जब मिटने लगे... ।
जिस्म जब खत्म हो और रूह को जब सांस आए
ये जो सांसें तुमने समझी हैं, जीवन है, यह तुम्हारी असली सांस नहीं है। इस सांस से तो केवल देह चलती है। एक और सांस है। जब इस सांस से तुम्हारा संबंध छूट जाता है, तब दूसरी सांस पैदा होती है।
जिस्म जब खत्म हो और रूह को जब सांस आए
मुझसे इक नज्म का वादा है, मिलेगी मुझको
वहीं वह संगीत उतरता है, जिसे समाधि कहो, सत्य कहो, सौंदर्य कहो, शिवत्व कहो, मुक्ति कहो, मोक्ष कहो, निर्वाण कहो। लेकिन उस परम एकांत में-- जहां सब छूट गया--संसार गया, और गए, मित्र गए, शत्रु गए; देह भी गयी, श्वास भी गयी; दिन और रात भी गए; सब द्वंद्व चले गए; जहां बिल्कुल निपट सन्नाटा रह गया, वहीं रूह को सांस आती है। वहीं पहली दफा तुम्हारा आत्मिक जीवन शुरू होता है। वहीं तुम्हारा पुनर्जन्म होता है।
उस घड़ी में परमात्मा से मिलन है। वह घड़ी बड़ी एकांत की घड़ी है। दूसरा
तो क्या, तुम भी वहां नहीं होते। इतना एकांत होता है कि एक भी वहां नहीं होता। दो तो मिट ही गए होते हैं। अंततः एक भी मिट गया होता है। सिर्फ विराट शून्य होता है। सब अनुपस्थित होता है। उस खाली, रिक्त स्थान में ही परमात्मा का प्रवेश है।
इसलिए बुद्ध ठीक कहते हैं, अपने दीए आप बनो। इसका यह मतलब नहीं है कि गुरु की कोई जरूरत नहीं है। इसका मतलब यह भी नहीं कि गुरु के बिना कोई पहुंच नहीं सकता।

इसलिए मैंने कहा, नाजुक सवाल है। नाजुक इसलिए कि गुरु की जरूरत है और नहीं भी है। इतनी ही जरूरत है कि तुम इशारे समझ लो और चल पड़ो।
सदा गुरु के पीछे ही चलते रहने की जरूरत नहीं है। इशारा समझ में आ जाए, फिर भीतर चलना है, फिर किसी के पीछे नहीं चलना है।
उंगलियों को मत पकड़ लेना। उंगलियां जिस तरफ इशारा करती हैं, जिस चांद
की तरफ, उसको देखना और चल पड़ना।

तीसरा प्रश्नः आप कहते हैंः मांगो मत; दो, लुटाओ। और जीसस कहते हैंः मांगो--और मिलेगा। दो बुद्धपुरुषों के वक्तव्य में इतना विरोध क्यों है?

दोनों वक्तव्य अलग-अलग घड़ियों में दिए गए वक्तव्य हैं। अलग-अलग लोगों
को दिए गए वक्तव्य हैं। विरोध जरा भी नहीं है।
समझो। जीसस ने कहा हैः मांगो--और मिलेगा। खटखटाओ--और द्वार खुलेंगे। खोजो--और पाओगे। बिल्कुल ठीक बात है। जो खोजेगा ही नहीं, वह कैसे पाएगा? जो मांगेगा ही नहीं, उसे कैसे मिलेगा? और जो द्वार पर दस्तक भी न देगा, उसके लिए द्वार कैसे खुलेंगे? सीधी-साफ बात है। यह एक तल का वक्तव्य है।
जीसस जिनसे बोल रहे थे, जिन लोगों से बोल रहे थे, इनके लिए जरूरी था। ऐसा ही वक्तव्य जरूरी था। इस वक्तव्य में ख्याल रखना वे लोग, जिनसे जीसस बोल रहे थे। ये ऐसे लोग थे, जिन्होंने जीसस को सूली पर लटकाया। इन लोगों के पास अध्यात्म जैसी कोई चित्त की दशा नहीं थी। नहीं तो ये जीसस को सूली पर लटकाते!
लाओत्सू का वचन ठीक इससे उलटा लगेगा तुम्हें; वही मेरा वचन भी है। लाओत्सू कहता हैः मांगा--और चूक जाओगे। खोजा--और भटके। खोजो मत--और पा लो। यह कुछ और तल का वक्तव्य है। यह किन्हीं और तरह के लोगों से कहा गया है। लाओत्सू पर किसी ने पत्थर भी नहीं मारा। सूली की तो बात अलग। जिनके बीच लाओत्सू रहा होगा, ये बड़े अदभुत लोग थे।
अलग-अलग कक्षाओं में ये बातें कही गयी थीं। पहली कक्षा में बच्चे को कहना पड़ता हैः ग गणेश का। अब विश्वविद्यालय की अंतिम कक्षा में भी अगर यही कहा जाए--ग गणेश का, तो मूढ़ता हो जाएगी। और दोनों जरूरी हैं।
जीसस जिनसे बोल रहे थे, वे बिल्कुल प्राथमिक कक्षा के विद्यार्थी थे।
और लाओत्सू जिनसे बोल रहा था, वह आखिरी चरम कोटि की बात बोल रहा था।
मगर फिर भी वक्तव्य विरोधी लगते हैं। तुम्हें हैरानी होगी कि मान लो
यह भी ठीक है कि पहली कक्षा में कहते हैंः ग गणेश का। तो आखिरी कक्षा में यह थोड़े ही कहते हैं कि ग गणेश का नहीं! रहता तो ग गणेश का ही है। विद्यार्थी जान गए, इसलिए अब कहना नहीं पड़ता कि ग गणेश का।
वक्तव्य फिर भी विरोधी लगते हैं। क्योंकि जितना फासला पहली कक्षा में
और विश्वविद्यालय की कक्षा में होता है, वह फासला विपरीतता का नहीं है। वह एक हीशृंखला का है। और सांसारिक व्यक्ति में और आध्यात्मिक व्यक्ति में जो फासला होता है, वह विपरीतता का है; एक हीशृंखला का नहीं है।
एक जगह जाकर इस जगत के सारे सत्य उलटे हो जाते हैं। समझने की कोशिश करोगे, तो समझ में आ जाएगा।
पहली बातः जिसने कभी खोजा ही नहीं, वह कैसे खोज पाएगा। और लाओत्सू कहता हैः जो खोजता ही रहा, वह कैसे खोज पाएगा? एक जगह आनी चाहिए, जहां खोज भी छूट जाए। नहीं तो खोज की ही चिंता, खोज की ही आपा-धापी, खोज की ही भाग-दौड़ मन को घेरे रहेगी।
एक आदमी भागा चला जा रहा है। वह कहता हैः मंजिल पर जाना है। भागूंगा नहीं, तो कैसे पहुंचूंगा? फिर यह मंजिल पर पहुंचकर भी भागता रहे, तो यह कैसे पहुंचेगा? तो इस आदमी को हमें उलटी बातें कहनी पड़ेंगी। इससे कहना पड़ेगाः जब मंजिल से दूर हो, तो मंजिल की तरफ भागो। और जब मंजिल करीब आने लगे, तो दौड़ कम करने लगो। और जब मंजिल बिल्कुल आ जाए, तो रुक जाओ। अगर मंजिल पर आकर भी भागते रहे, तो चूक जाओगे।
एक दिन भागना पड़ता है और एक दिन रुकना भी पड़ता है। एक दिन चलना पड़ता है
और एक दिन ठहरना भी पड़ता है। इनमें विपरीतता नहीं है।

एक दिन श्रम करो, प्रयास करो, योग साधो। और फिर एक दिन सब साधना को भी पानी में बहा दो। और खाली बैठे रह जाओ। तो ही पहुंचोगे। नहीं तो अक्सर यह हो जाता है कि परमात्मा को पाने की दौड़ में तुम्हारा चित्त नया संसार बना लेता है। फिर चित्त के भीतर हजार तरह के विचार उठने लगते हैं, तरंगें उठने लगती हैं।
दुकान की तरंगें हैं, मंदिर की भी तरंगें हैं। संसार की तरंगें हैं और फिर निर्वाण की भी तरंगें हैं! लेकिन तरंगों से तुम मुक्त हो जाओगे, तभी मिलेगा न निर्वाण। निर्वाण का अर्थ हैः निस्तरंग हो जाना। निर्वाण का अर्थ हैः निर्वाण पाने का विचार भी न रह जाए।
बुद्ध के जीवन में यह बात बिल्कुल साफ है। छह वर्ष तक कठोर तपश्चर्या की। और फिर छह वर्ष के बाद एक दिन तपश्चर्या का त्याग कर दिया। उसी तरह जिस तरह एक दिन राजमहल का त्याग कर दिया था, तपश्चर्या का भी त्याग कर दिया। उसी रात बुद्धत्व फलित हुआ।
अब यह सवाल सदियों से पूछा जाता रहा है कि बुद्ध को बुद्धत्व कैसे मिला? छह वर्ष की तपश्चर्या के कारण मिला या तपश्चर्या के त्याग से मिला? जो ऐसा प्रश्न पूछते हैं, उन्होंने प्रश्न को गलत ढंग दे दिया। शुरू से ही गलत ढंग दे दिया। उनको जो भी उत्तर मिलेंगे, वे गलत होंगे। अगर गलत प्रश्न पूछा, तो गलत उत्तर पा लोगे। प्रश्न ठीक होना चाहिए।
जब तुमने यह पूछ लिया कि बुद्ध को छह वर्ष की तपश्चर्या से मिला? क्योंकि मिला छह वर्ष के बाद एक रात। या उस सांझ को उन्होंने तपश्चर्या छोड़ दी थी, उसी रात घटना घटी! छह वर्ष की तपश्चर्या है और उसी रात तपश्चर्या का त्याग भी किया। मिला क्यों? मिला कैसे? क्या कारण है? तपश्चर्या कारण है या उस रात तपश्चर्या का छोड़ देना कारण है?
मैं तुमसे कहूंगा, दोनों कारण हैं। तपश्चर्या न की होती, तो छोड़ते क्या खाक! छोड़ने के पहले तपश्चर्या होनी चाहिए। जैसे कोई गरीब आदमी कहे कि सब त्याग कर दिया। इसके त्याग का क्या अर्थ होगा? हम पूछेंगेः तेरे पास था क्या? वह कहेः था तो मेरे पास कुछ नहीं। लेकिन सब त्याग कर दिया। इसके त्याग का कोई मूल्य नहीं है। कोई सम्राट त्यागे, तो मूल्य है। जब कुछ था ही नहीं, तो त्याग क्या किया है? होना चाहिए त्यागने के पहले।
बुद्ध ने तपश्चर्या छोड़ी, क्योंकि तपश्चर्या की थी। तुम ऐसे ही अपनी आराम कुर्सी पर लेट जाओ और कहो कि चलो, आज हमने तपश्चर्या छोड़ दी। हो जाए बुद्धत्व का फल! आज की रात लग जाए। फिर तुम थोड़ी देर में बैठे-बैठे थकने लगोगे कि कुछ नहीं हो रहा है! आंख खोल-खोलकर देखोगे कि अभी तक बुद्धत्व आया नहीं! करवट बदलोगे। फिर थोड़ी देर में सोचोगे कि अरे! यह सब बकवास है। ऐसे कुछ होने वाला नहीं है। हमें तो पहले ही मालूम था कि कुछ होता-जाता नहीं है। फिर भी एक प्रयोग करके देख लिया।
फिर उठकर अपना रेडियो चलाने लगोगे, या टी.वी. शुरू कर दोगे। या अखबार पढ़ने लगोगे। या चले क्लब की तरफ! कि चलो, दो हाथ जुए के खेल आएं। कि शराब ढाल लो!
वह जो छह वर्ष की तपश्चर्या है, वह अनिवार्य हिस्सा है। उसके बिना नहीं घटता। और मैं तुम्हें यह भी याद दिला दूं कि अगर बुद्ध उसी तपश्चर्या में लगे रहते साठ साल तक, तो भी नहीं घटता।
एक चरम सीमा आ जाती है करने की; जहां करने की चरम सीमा आ गयी, वहां करने
को भी छोड़ देना जरूरी है। पहले कर्म को चरम सीमा तक ले आना है; सौ डिग्री पर उबलने लगे कर्म, फिर कर्ता के भाव को भी विदा कर देना। ये दोनों बातें सच हैं।
राबिया के घर एक सूफी फकीर हसन ठहरा हुआ था। वह रोज सुबह प्रार्थना करता था। उसने सुना होगा जीसस का वचन कि खटखटाओ और द्वार तुम्हारे लिए खोल दिए जाएंगे। आस्क एंड इट शैल बी गिवेन। सीक एंड यू विल फाइंड। नाक एंड द डोर शैल बी ओपंड अनटु यू।
उसने ये वचन सुने होंगे। ये वचन उसे बहुत जंच गए थे। उसने इनकी प्रार्थना बना ली थी। वह रोज सुबह काबा की तरफ हाथ जोड़कर कहताः हे प्रभु! कितनी देर से खटखटा रहा हूं, दरवाजा खोलिए। कितनी देर हो गयी खटखटाते-

खटखटाते! कब दरवाजा खुलेगा? अपना वचन याद करो--कि खटखटाओगे और दरवाजा खुलेगा। और मैं खटखटाए जा रहा हूं! और मैं खटखटाए जा रहा हूं! दरवाजा खुलता नहीं।
राबिया ने एक दिन सुना, दो दिन सुना, तीन दिन सुना... ।
राबिया बड़ी अदभुत औरत थी। थोड़ी ही स्त्रियां दुनिया में हुई हैं राबिया की कोटि की--मीरा, सहजो, दया, लल्ला--बहुत थोड़ी सी स्त्रियां; उंगलियों पर गिनी जा सकें। राबिया उसी कोटि की स्त्री है, जिस कोटि के बुद्ध, जिस कोटि के महावीर, जिस कोटि के कृष्ण, क्राइस्ट।
एक दिन सुबह फिर हसन वही कर रहा था। हाथ फैलाए हुए। आंसू बहे जा रहे हैं आंखों से और कह रहा हैः अब खोलो प्रभु! कब से खटखटा रहा हूं।
राबिया पीछे से आयी और उसका सिर झंझोड़कर बोली कि बंद कर बकवास। दरवाजे खुले हैं। तू खटखटा क्यों रहा है! दरवाजे कभी बंद ही नहीं थे नासमझ। दरवाजे सदा से खुले हैं। उसके दरवाजे बंद कैसे हो सकते हैं! तूने यह कहां की बकवास लगा रखी है! तू जिंदगीभर यही बकता रहेगा और दरवाजा खुला है। अब परमात्मा भी क्या करे। वह भी अचकचाकर बैठा होगा कि करना क्या! दरवाजा खुला है। अब और क्या खोलना! और ये सज्जन यही कहे जा रहे हैं कि दरवाजा खोलो। खटखटा रहा हूं। दरवाजा खोलो।
राबिया ने दूसरा सत्य कहा। राबिया यह कह रही है कि बहुत खटखटा चुका।
अब खटखटाना छोड़। जरा खटखटाना छोड़कर आंख खोल। तू खटखटाने में ही उलझा है और दरवाजा खुला है! अब तू जरा आंख खोल। खटखटाने की उलझन से मुक्त हो। छोड़ यत्न, और देख--क्या है। जो है, वही मुक्तिदायी है।

इसलिए एक दिन श्रम करना पड़ता है और एक दिन श्रम छोड़ना पड़ता है।
ऐसा समझो। मैंने सुनी है एक कहानी कि कुछ लोग अमृतसर से ट्रेन में सवार हुए; हरिद्वार जा रहे थे। एक आदमी जो उस झुंड में हरिद्वार जा रहा था, तीर्थयात्रा को, बड़ा दार्शनिक था, बड़ा तार्किक था। भीड़-भाड़ बहुत थी। मेले के दिन होंगे। ट्रेन लदी थी। लोग सब तरफ भरे थे। ऊपर भी चढ़े थे। दरवाजों पर अटके थे। खिड़कियों से लोग भीतर घुसने की कोशिश में लगे थे। उस दार्शनिक को भी उसके साथी खींच रहे थे। वह यह कहता था कि भई, मेरी बात तो सुनो! इसमें से फिर उतरना तो नहीं पड़ेगा? इतनी मेहनत से चढ़ें, और फिर उतरना पड़े, तो सार क्या?
मित्रों ने कहाः तुम्हारा दर्शन बाद में। अभी गाड़ी छूटने का वक्त हुआ
जा रहा है। सीटी बजी जा रही है। उन्होंने खींच-खांचकर उसको... ।
वह पूछता ही जा रहा है कि मैं एक बात पूछना चाहता हूं। मुझे खींचो मत। इसमें से उतरना तो नहीं पड़ेगा? क्योंकि अगर उतरना ही हो, तो इतनी फजीहत क्या करवानी! तो हम पहले से ही अपने प्लेटफार्म पर खड़े हैं।
मगर उन्होंने नहीं सुना। उन्होंने खींच-खांच लिया कि यह बकवास में समय गंवा देगा। उसको खींचकर अंदर कर लिया। उसकी कमीज भी फट गयी। और हाथ की चमड़ी भी छिल गयी।
पंजाबी अब जानते ही हैं आप कि खींचातानी करें... ।
अब यह कोई गुजरात थोड़े ही है कि... । अमृतसर! उन्होंने ठीक से ही खींचातानी की होगी। खींचतानकर उसे अंदर कर लिया। वह चिल्लाता भी रहा। उन्होंने उसकी फिक्र ही नहीं की। पंजाबी और दर्शनशास्त्र की फिकर करें! बिल्कुल ही गलत बात है। और ज्यादा बकवास की होगी, तो दो-चार हाथ लगाकर उसको चुप कर दिया होगा; कि चुप बैठ।
फिर हरिद्वार आया। अब वह दार्शनिक उतरे नहीं! आखिर वह भी पंजाबी है! उसने कहाः जब एक दफे चढ़ गए, तो चढ़ गए। अब उतरना क्या? मैंने पहले ही कहा था कि मुझे चढ़ाओ मत, अगर उतारना हो।
अब वे फिर खींच रहे हैं--कि भई! हद्द हो गयी! अब हरिद्वार आ गया!
पर उसकी बात का अर्थ यह है, वह यह कह रहा है कि जब उतरना ही है, तो फिर चढ़ना क्या! जब चढ़ ही गए, तो फिर उतरना क्या? वह शुद्ध तर्क की बात कह रहा है।

ऐसा ही तुम जब मुझसे पूछते हो कि जीसस और मेरे वक्तव्य में विरोधाभास है; तो तुम भी वही तर्क की बात कर रहे हो।
एक दिन चढ़ना पड़ता है ट्रेन में; एक दिन उतरना पड़ता है। इनमें विरोध नहीं है। एक बार सीढ़ी पर चढ़ना पड़ता है, फिर सीढ़ी से उतरना भी पड़ता है। तुम छत की तरफ जा रहे हो। मैं तुमसे कहता हूंः सीढ़ियां चढ़ो। सीढ़ियों से तुम पूछते होः सीढ़ियों पर चढ़ने से हम छत पर पहुंच जाएंगे? मैं कहता हूंः जरूर पहुंच जाओगे। फिर तुम आखिरी पायदान पर पहुंचकर खड़े हो गए। तुम कहते होः अभी तक हम छत पर नहीं पहुंचे। आखिरी पायदान पर भी छत नहीं है, यह बात सच है। जैसे छत पहले पायदान पर नहीं है, वैसे ही आखिरी पायदान पर भी छत नहीं है। अभी तुम्हें आखिरी पायदान छोड़ना पड़ेगा, तब तुम छत पर प्रवेश कर पाओगे। लेकिन तुम कहते होः तो फिर चढ़ाया ही क्यों? ये सौ सीढ़ियां चढ़कर अब किसी तरह बामुश्किल तो हांफता हुआ पहुंचा। अब आप कहते हैं, छोड़ो। इतनी मेहनत से तो चढ़ा, अब कहते हो, छोड़ो! यह तो आप बड़ी विरोधाभासी बात कह रहे हैं!
पहली सीढ़ी पर कहा था, चढ़ो। जीसस पहली सीढ़ी पर बोल रहे थे। क्योंकि जीसस इस देश में आकर संदेश लेकर गए। जीसस की उम्र के तीस वर्ष सत्य की खोज में लगे। इजिप्त, और भारत, और तिब्बत--इन सारे देशों में उन्होंने भ्रमण किया। उस समय बुद्ध-धर्म अपनी प्रखरता में था। नालंदा जीवंत विश्वविद्यालय था। बहुत संभावना है कि जीसस नालंदा में आकर रहे। उन्होंने यहां के परम सत्य पहचाने, समझे, सीखे।
यही तो अड़चन हो गयी। इसलिए तो वे कुछ ऐसी बातें कहने लगे, जो यहूदियों
को बिल्कुल न जंची। क्योंकि यहूदी शास्त्रों से उनका मेल नहीं था।
जीसस कुछ ऐसी बातें ले आए, जो विदेशी थीं--यहूदी विचार-चिंतन धारा के संदर्भ में। यहूदियों को बात जंची नहीं। यहूदी एक ढंग से सोचते थे। अगर जीसस ने उसी ढंग की ही बात कही होती, उसी सिलसिले में कही होती, तो यहूदियों ने उन्हें एक पैगंबर माना होता। उनको सूली देनी पड़ी। क्योंकि वे कुछ ऐसी बातें ले आए, जो यहूदी कानों के लिए बिल्कुल अपरिचित थीं।
खास संदेश जो लेकर आए थे जीसस, वह था संदेश बुद्ध के ध्यान का, जागो! इसलिए जीसस बार-बार, हजार बार दोहराते हैं बाइबिल में--अवेक, बी अवेयर, वेक अप; जागो; उठो; होश सम्हालो; सावधान हो जाओ; चेतो।
मगर ये बातें इस देश में तो समझ में आ सकती थीं, क्योंकि बुद्ध के पहले
और हजारों बुद्धों की परंपरा इस देश में है। बुद्ध कुछ नए नहीं हैं। बुद्ध एक बड़ी लंबी धारा के हिस्से हैं; एकशृंखला के हिस्से हैं; एक कड़ी हैं। उनके पहले और बहुत बुद्ध हुए हैं। यह भाषा यहां परिचित थी।
यही भाषा जाकर यहूदियों के बीच बिल्कुल अपरिचित हो गयी।
तुम चकित होओगे यह जानकर कि जॉन द बेप्टिस्ट--जिसने जीसस को दीक्षा दी थी, जिसके शिष्य थे जीसस--वह जेलखाने में पड़ा था। और जब जीसस की शिक्षाएं शुरू हुईं, और जेलखाने तक जॉन द बेप्टिस्ट को खबरें पहुंचीं, तो उसे भी संदेह हुआ कि यह आदमी क्या बातें कर रहा है! किस तरह की बातें कर रहा है! उसने एक पत्र लिखकर भेजा जीसस के पास कि मैं यह फिर से पूछना चाहता हूं कि तुम वही हो, जिसके लिए हम यहूदी सदियों से प्रतीक्षा कर रहे थे? या तुम कोई और हो? क्या हमें फिर प्रतीक्षा करनी पड़ेगी उस मसीहा की?
यह पत्र क्यों जॉन द बेप्टिस्ट ने लिखा होगा जीसस को? इसलिए लिखा कि उसको भी समझ में नहीं पड़ा कि यह आदमी कह क्या रहा है! यह कहां की बातें ले आया है! यह कुछ बेबूझ पहेलियां ले आया है।
जीसस इस देश से संदेश लेकर गए। स्वभावतः एक नयी जाति में, जिसने यह संदेश कभी नहीं सुना था, उन्हें अ ब स से बात शुरू करनी पड़ी--ग गणेश का। पहली सीढ़ी से बात शुरू करनी पड़ी। लाओत्सू या बुद्ध जब बोलते हैं, या मैं जब तुमसे बोल रहा हूं, तो आखिरी सीढ़ी की बात बोल सकता हूं। उसके लिए पृष्ठभूमि है। जीसस के पास पृष्ठभूमि नहीं थी। मजबूरी थी।
विरोध जरा भी नहीं है। जिस सीढ़ी पर जीसस तुम्हें चढ़ा रहे हैं, उसी सीढ़ी पर मैं तुमसे दूसरा सत्य भी कह रहा हूं कि चढ़ना जरूर; उससे उतरना भी है--इसे भूल मत जाना।

तो तुमसे कहता हूंः मांगो। बिना मांगे कैसे मिलेगा! और तुमसे यह भी कहता हूं कि मांगना छोड़ो। मांगने से कभी मिला है! तुमसे कहता हूंः खटखटाओ, तो द्वार खुलेंगे। और तुमसे यह भी कहता हूंः अब खटखटाना बहुत हो गया। अब खटखटाना रोको। देखो, द्वार खुले ही हैं।

चौथा प्रश्नः मैं मृत्यु से इतना नहीं डरता हूं, लेकिन दुखों से बहुत डरता हूं। मेरे लिए क्या मार्ग है?

मृत्यु से शायद ही कोई डरता है। क्योंकि जिससे परिचय ही नहीं है, उससे डरोगे भी कैसे! जिससे मुलाकात ही नहीं हुई, उससे डरोगे कैसे? लोग दुखों से ही डरते हैं। और मृत्यु से भी इसलिए डरते हैं कि पता नहीं किन दुखों में मृत्यु ले जाए! मृत्यु से भी सीधा नहीं डरते। इसी तरह डरते हैं कि पता नहीं, किन दुखों में ले जाए!
यहां के दुख तो जाने-माने, परिचित हैं। मृत्यु पता नहीं किन दुखों की नयीशृंखला की शुरुआत हो! इसलिए डरते हैं। अन्यथा मृत्यु से डरने का कोई कारण नहीं है। पहचानी चीज से ही लोग डरते हैं। अजनबी-अनजान से डरने का क्या कारण हो सकता है? हो सकता हैः मृत्यु तुम्हें सुख में ले जाए, स्वर्ग ले जाए। कौन जाने! अगर तुम बहुत विचारशील हो, सॉक्रेटीज जैसे, तो नहीं डरोगे।
सुकरात मर रहा है। और उसके शिष्य उससे पूछते हैं कि आप डर नहीं रहे हैं? मृत्यु आ रही है। जहर तैयार किया जा रहा है। जल्दी जहर दिया जाएगा। आप मृत्यु से डरते नहीं?
सुकरात ने कहाः देखो; मैं सोचता हूं, दो ही संभावनाएं हैं। या तो मैं
मर ही जाऊंगा, कुछ बचेगा नहीं, तो फिर डर क्या? जिसको डर लगना है, वही नहीं बचेगा, तो डर किसको? जन्म के पहले का मुझे कुछ पता नहीं है। तो मुझे कोई अड़चन नहीं होती। मुझे यह बात सोचकर कोई बहुत मुश्किल नहीं पड़ती कि जन्म के पहले मैं नहीं था। तो जब था ही नहीं, तो दुख क्या! फिर मौत के बाद नहीं हो जाऊंगा, तो दुख क्या!
या तो यह होगा। या यह होगा कि मैं फिर भी बचूंगा। जब बचूंगा ही, तो फिर
डर क्या? फिर देख लेंगे। यहां भी जूझ रहे थे, वहां भी जूझ लेंगे। जो होगा, मुकाबला कर लेंगे। इसलिए मैं परेशान नहीं हूं। मैं सोच रहा हूं कि मरकर ही देखें कि बात क्या है असल में।
बहुत सोच-विचार वाला आदमी हो, तो मृत्यु से भी नहीं डरेगा। डरने का कोई कारण नहीं रह गया।
लेकिन दुख से आदमी डरता है। दुख से तुम्हारा परिचय है। तुम जानते हो दुखों को। दुखों से तुम्हारी खूब पहचान है। दुखों से ही पहचान है। सुख की तो सिर्फ आशा रही है, सपना रहा है। दुखों से मिलना हुआ है। तो स्वाभाविक है कि तुम दुख से डरते हो।
सभी दुख से डरते हैं। और जब तक दुख से डरेंगे, तब तक दुखी रहेंगे। क्योंकि जिससे तुम डरोगे, उसे तुम समझ न पाओगे। और दुख मिटता है समझने से। दुख मिटता है जागने से। दुख मिटता है दुख को पहचान लेने से।
इसीलिए तो दुनिया दुखी है कि लोग दुख से डरते हैं और पीठ किए रहते हैं;
तो दुख का निदान नहीं हो पाता। दुख पर अंगुली रखकर नहीं देखते कि कहां है! क्या है! क्यों है! दुख में उतरकर नहीं देखते कि कैसे पैदा हो रहा है! किस कारण हो रहा है! भय के कारण अपने ही दुख से भागे रहते हैं।
तुम कहीं भी भागो, दुख से कैसे भाग पाओगे। दुख तुम्हारे जीवन की शैली में है। तुम जहां जाओगे, वहीं पहुंच जाएगा।
मैंने सुना हैः एक आदमी को डर लगता था अपनी छाया से। और उसे बड़ा डर लगता था अपने पदचिह्नों से। तो उसने भागना शुरू किया। भागना चाहता था कि दूर निकल जाए छाया से; और दूर निकल जाए अपने पदचिह्नों से; दूर निकल जाए अपने से। मगर अपने से कैसे दूर निकलोगे? जितना भागा, उतनी ही छाया भी उसके पीछे भागी। और जितना भागा, उतने ही पदचिह्न बनते गए।

च्वांगत्सू ने यह कहानी लिखी है इस पागल आदमी की। और यही पागल आदमी जमीन पर पाया जाता है। इसी की भीड़ है।
च्वांगत्सू ने कहा हैः अभागे आदमी, अगर तू भागता न, और किसी वृक्ष की छाया में बैठ जाता, तो छाया खो जाती। अगर तू भागता न, तो पदचिह्न बनने बंद हो जाते। मगर तू भागता रहा। छाया को पीछे लगाता रहा। और पदचिह्न भी बनाता रहा।
जिनसे तुम डरते हो, अगर उनसे भागोगे, तो यही होगा। दुख से डरे कि दुखी रहोगे। दुख से डरे कि नर्क में पहुंच जाओगे; नर्क बना लोगे। दुख से डरने की जरूरत नहीं है। दुख है, तो जानो, जागो, पहचानो।
जिन्होंने भी दुख के साथ दोस्ती बनायी और दुख को ठीक से आंख भरकर देखा, दुख का साक्षात्कार किया, वे अपूर्व संपदा के मालिक हो गए। कई बातें उनको समझ में आयीं।
एक बात तो यह समझ में आयी कि दुख बाहर से नहीं आता। दुख मैं पैदा करता हूं। और जब मैं पैदा करता हूं, तो अपने हाथ की बात हो गयी। न करना हो पैदा, तो न करो। करना हो, तो कुशलता से करो। जितना करना हो, उतना करो। मगर फिर रोने-पछताने का कोई सवाल न रहा।
जिन्होंने दुख को गौर से देखा, उन्हें यह बात समझ में आ गयी कि यह मेरे
ही गलत जीने का परिणाम है। यह मेरा ही कर्म-फल है। जैसे एक आदमी दीवाल से निकलने की कोशिश करे। उसके सिर में टक्कर लगे। और लहूलुहान हो जाए। और कहे कि यह दीवाल मुझे बड़ा दुख दे रही है।
छोटे बच्चे अक्सर ऐसा करते हैं। मगर इस दुनिया में सब छोटे बच्चे हैं। बड़ा कोई कभी मुश्किल से हो पाता है। प्रा.ैढ़ता आती कहां है! छोटे बच्चे अक्सर ऐसा करते हैं। निकल रहे थे। टेबल का धक्का लग गया। हाथ में खरोंच आ गयी। गुस्से में आ जाते हैं। उठाकर डंडा टेबल को मारते हैं।
यही तुम कर रहे हो। बच्चे को समझाने के लिए उसकी मां को भी आकर टेबल को मारना पड़ता है कि टेबल बड़ी दुष्ट है। मेरे बेटे को चोट कर गयी। तब बच्चा बड़ा प्रसन्न होता है। टेबल को पिटते देखकर बड़ा प्रसन्न होता है--कि ठीक हुआ। ठीक सजा दी गयी।
मगर टेबल का कोई कसूर न था। और तुम यह मत सोचना कि सिर्फ बच्चे ऐसा करते हैं। तुम भी ऐसा करते हो। तुम क्रोध में होते हो, तो दरवाजा ऐसा झटककर खोलते हो, जैसे दरवाजे का कोई कसूर हो। क्रोध में होते हो, तो जूता ऐसा फेंकते हो निकालकर... ।
एक झेन फकीर था नान-इन। उसके पास एक आदमी मिलने आया। वह बड़े क्रोध में था। घर में कुछ झगड़ा हो गया होगा पत्नी से। क्रोध में चला आया। आकर जोर से दरवाजा खोला। इतने जोर से कि दरवाजा दीवाल से टकराया। और क्रोध में ही जूते उतारकर रख दिए।
भीतर गया। नान-इन को झुककर नमस्कार किया। नान-इन ने कहा कि तेरा झुकना, तेरा नमस्कार स्वीकार नहीं है। तू पहले जाकर दरवाजे से क्षमा मांग। और जूते पर सिर रख; अपने जूते पर सिर रख और क्षमा मांग।
उस आदमी ने कहाः आप क्या बात कर रहे हैं! दरवाजे में कोई जान है, जो क्षमा मांगूं! जूते में कोई जान है, जो क्षमा मांगूं! नान-इन ने कहाः जब इतना समझदार था, तो जूते पर क्रोध क्यों प्रगट किया? जूते में कोई जान है, जो क्रोध प्रगट करो! तो दरवाजे को इतने जोर से धक्का क्यों दिया? दरवाजा कोई तेरी पत्नी है? तू जा। जब क्रोध करने के लिए तूने जान मान ली दरवाजे में और जूते में, तो क्षमा मांगने में अब क्यों कंजूसी करता है?
उस आदमी को बात तो दिखायी पड़ गयी। वह गया; उसने दरवाजे से क्षमा मांगी। उसने जूते पर सिर रखा। और उस आदमी ने कहा कि इतनी शांति मुझे कभी नहीं मिली थी। जब मैंने अपने जूते पर सिर रखा, मुझे एक बात का दर्शन हुआ कि मामला तो मेरा ही है।
लोग बिल्कुल अप्रौढ़ हैं। बच्चों की भांति हैं।
तुम दुख के कारण नहीं देखते। दुख के कारण, सदा तुम्हारे भीतर हैं। दुख बाहर से नहीं आता। और नर्क पाताल में नहीं है। नर्क तुम्हारे ही अचेतन मन में है। वही है पाताल। और स्वर्ग कहीं आकाश में नहीं है। तुम अपने अचेतन

मन को साफ कर लो कूड़े-करकट से, वहीं स्वर्ग निर्मित हो जाता है। स्वर्ग और नर्क तुम्हारी ही भाव-दशाएं हैं। और तुम ही निर्माता हो। तुम ही मालिक हो। तो दुख को जो देखेगा, उसके हाथ में दुख को खोलने की कुंजी आ जाती है।
और मजे की बात है कि दुख को जो देखेगा, सामना करेगा, वह दुख का अनुगृहीत होगा। क्योंकि हर दुख एक चुनौती भी है। और हर दुख तुम्हें निखारने का एक उपाय भी है। और हर दुख ऐसे है, जैसे आग। और तुम ऐसे हो, जैसे आग में गुजरे सोना। आग से गुजरकर ही सोना कुंदन बनता है।
मैं छांव-छांव चला था अपना बदन बचाकर
कि रूह को एक खूबसूरत-सा जिस्म दे दूं
न कोई सिलवट, न दाग कोई
न धूप झुलसे, न चोट खाए
न जख्म छुए, न दर्द पहुंचे
बस, एक कुंवारी सुबह का जिस्म पहना दूं रूह को मैं
मगर तपी जब दुपहर दर्दों की, दर्द की धूप से जो गुजरा
तो रूह को छांव मिल गयी है
अजीब है दर्द और तस्कीन का साझा रिश्ता
मिलेगी छांव तो बस कहीं धूप में मिलेगी
दुख निखारता है। दुख स्वच्छ करता है। दुख मांजता है; मींजता है और मांजता भी।
अजीब है दर्द और तस्कीन का साझा रिश्ता
मिलेगी छांव तो बस कहीं धूप में मिलेगी
दुखों से भागो मत। दुखों को जीयो। दुखों से होशपूर्वक गुजरो। और तुम पाओगेः हर दुख तुम्हें मजबूत कर गया। हर दुख तुम्हारी जड़ों को बड़ा कर गया। हर दुख तुम्हें नया प्राण दे गया। हर दुख तुम्हें फौलाद बना गया।
दुख का कुछ कारण है। दुख व्यर्थ नहीं है। दुख की कुछ सार्थकता है। दुख
की सार्थकता यही है कि दुख के बिना कोई आदमी आत्मवान नहीं हो पाता। पोच रह जाता है, पोचा रह जाता है।
इसलिए अक्सर जिनको सुख और सुविधा में ही रहने का मौका मिला है, उनमें तुम एक तरह की पोचता पाओगे। एक तरह का छिछलापन पाओगे। सुखी आदमी में, तथाकथित सुखी आदमी में गहराई नहीं होती। उसके भीतर कोई आत्मा नहीं होती। इसलिए तुम अक्सर धनी घरों में मूढ़ व्यक्तियों को पैदा होते पाओगे। धनी घर के बच्चे बुद्धू रह जाते हैं। सब सुख-सुविधा है; करना क्या है! सब वैसे ही मिला है; पाना क्या है?
संघर्ष नहीं, तो संकल्प नहीं। और संकल्प नहीं, तो आत्मा कहां? और संकल्प नहीं, तो समर्पण कैसे होगा! जब कमाओगे संकल्प को, जब तुम्हारा मैं प्रगाढ़ होगा, तभी किसी दिन उसे झुकाने का मजा भी आएगा। नहीं तो क्या खाक मजा आएगा!
जिसके पास अहंकार नहीं है, वह निरअहंकारी नहीं हो सकता। इस बात को खूब समझ लेना। जिसके पास गहन अहंकार है, वही निरअहंकारी हो सकता है। निरअहंकारिता अहंकार की आखिरी पराकाष्ठा के बाद घटती है।
तुम कहते होः "मैं मृत्यु से इतना नहीं डरता हूं। लेकिन दुखों से बहुत डरता हूं।"
मृत्यु तो दूर है, दुख अभी है। शायद इसीलिए मृत्यु से नहीं डरते कि आएगी, तब आएगी। अभी कहां! दिखा लेते होओगे हथेली जाकर हस्तरेखाविद को और कुंडली पढ़वा लेते होओगे ज्योतिषी से। वह कहता होगाः अभी नहीं। कोई फिकर नहीं है। अभी तुम सत्तर साल जीओगे। तुम तो सौ साल जीओगे। तुम तो सबको मारकर जीओगे। तुम तो मजे से रहो। अभी मौत कहां!
और आदमी की दृष्टि बड़ी संकीर्ण है। अगर कोई बात दस साल बाद है, तो तुम्हें दिखायी ही नहीं पड़ती। बहुत करीब हो, तो ही दिखायी पड़ती है। आदमी दूर-दृष्टि नहीं है।
तुम सोचो। कोई तुमसे कहे, कल तुम्हें मरना है। तो शायद थोड़ा झटका लगे। लेकिन कोई कहे कि एक सप्ताह बाद। तो उतना झटका नहीं लगता। और एक साल बाद।
तो तुम कहते हो, देखेंगे जी। दस साल बाद। तो तुम कहते होः छोड़ो भी; कहां की

बकवास लगा रखी है! सत्तर साल बाद। तो वह तो ऐसा लगता है कि करीब-करीब अमरता मिल गयी! करना क्या है और! सत्तर साल कहीं पूरे होते हैं? इतना लंबा फासला! फिर तुम्हें दिखायी नहीं पड़ता।
दुख अभी है; मृत्यु दूर है। शायद इसीलिए तुम डरते नहीं। क्योंकि जो दुख से डरता है, वह मृत्यु के प्रति वस्तुतः अभय को उपलब्ध नहीं हो सकता है। मगर सिर्फ दूर है, इसलिए तुम्हें अभी अड़चन नहीं है। तुम कहते हो कि जब होगा, तब देख लेंगे। अभी तो यह सिरदर्द जान खा रहा है। कि अभी तो यह चिंता मन को पकड़े हुए है। अभी तो इस धंधे में दांव लगा दिया है; कहीं सब न खो जाए। अभी यह नुकसान लग गया है दुकान में। अभी यह पत्नी छोड़कर चली गयी!
अभी ये छोटी-छोटी बातें कांटे की तरह चुभ रही हैं। और जब ये छोटी-छोटी बातें कांटे की तरह चुभ रही हैं, तो जब तलवार उतरेगी मृत्यु की और गरदन काटेगी, तो तुम सोचते हो, तुम सुख से मर सकोगे? असंभव है। जब कांटे इतना दुख दे रहे हैं, तो तलवार, जो बिल्कुल काट जाएगी! कांटे तो छोटे-छोटे हैं। तलवार तो पूरी तरह छिन्न-भिन्न कर देगी।
नहीं; तुम्हें पता नहीं है मौत का। अभी तुम्हें दुख का ही पता नहीं है,
तो मौत का क्या पता होगा!
तुम दुख का साक्षात्कार करो। तुम दुख को देखना शुरू करो। इसी दुख से पहचान होती जाए, इसी दुख से धीरे-धीरे तुम्हारे भीतर बल पैदा होता जाए, तो एक दिन ऐसी घड़ी आएगी कि मौत भी आएगी और तुम अविचल खड़े रहोगे। मौत तुम्हें घेर लेगी, और तुम्हारे भीतर कोई झंझावात न होगा। मौत आएगी, और तुम अछूते रह जाओगे। वह परम घड़ी... ।
और मौत आनी तो निश्चित है। इस शरीर में थोड़ी देर ही बस सकते हो, ज्यादा देर नहीं। बसने योग्य यहां ज्यादा कुछ है भी नहीं।
खड़खड़ाता है आह! सारा बदन
खपच्चियां जैसे बांध रक्खी हैं
खोखले बांस जोड़ रक्खे हों
कोई रस्सी कहीं से खुल जाए
रिश्ता टूटे कहीं से जोड़ों का
और बिखर जाए जिस्म का पंजर
इस बदन में यह रूह बेचारी बांसुरी जानकर चली आयी
समझी होगी कि सुर मिलेंगे यहां
लेकिन सुर यहां मिलता कहां?
इस बदन में यह रूह बेचारी
बांसुरी जानकर चली आयी
समझी होगी कि सुर मिलेंगे यहां
मगर सुर मिलता कहां है? सुर किसको मिला यहां? यहां तो सब सुर झूठे हैं। यहां तो बस, सब सुर क्षणभंगुर हैं। यहां तो सब सुर अभी हैं और अभी खंडित हो जाते हैं। और सभी सुर बेस्वाद हो जाते हैं। मीठा भी यहां जल्दी ही कडुवा हो जाता है। और यहां का अमृत भी ज्यादा देर अमृत नहीं होता। ऊपर-ऊपर अमृत है; भीतर-भीतर जहर है।
आज नहीं कल यह देह तो छोड़ देनी पड़ेगी। कहीं और तलाश करनी है। मगर अगर तुमने इस देह में ठीक से तलाश न की, तो बहुत डर है कि फिर किसी और देह को बांसुरी समझकर फिर प्रवेश कर जाओगे। ऐसा ही तो कितनी ही बार कर चुके हो। अगर इस देह को ठीक से न समझा, इसके दुख ठीक से न पहचाने, इसकी व्यर्थता ठीक से न जानी, इसकी असारता को प्रगाढ़ता से अपने चित्त में नहीं बिठाया, इसकी क्षणभंगुरता न पहचानी, इसका नर्क न देखा--तो आशा लटकी रह जाएगी। सोचोगेः इस देह में नहीं हुआ, यह बांसुरी ठीक नहीं थी। चलो, न रही होगी। और भी बांसुरियां हैं। कोई और देह धरें। किसी और गर्भ में प्रवेश करें। मरते वक्त अगर थोड़ी भी आशा जिंदा रही, तो फिर पुनर्जन्म हो जाएगा।
मरते वक्त अगर तुम यह देखकर और जानकर मरे कि जिंदगी असार है; और यह असारता इतनी परिपूर्णता से तुम्हारे सामने खड़ी रही कि जरा भी आशा न उठी, जरा भी फिर जन्म लेने और फिर जीवन को देखने का भाव न उठा, तो तुम मुक्त हो जाओगे।

तो तुमने जीवन भी जी लिया और मृत्यु भी जी ली। तो जीवन से जो मिलना था, वह तुमने पा लिया--कि जीवन असार है। और मृत्यु फिर तुमसे कुछ भी नहीं छीन सकती--अगर तुम्हीं ने जान लिया कि जीवन असार है। क्योंकि मृत्यु जीवन ही छीनती है। तुम जान ही गए कि जीवन असार है, तो तुम मृत्यु का भी धन्यवाद करोगे।
और जो व्यक्ति मृत्यु को धन्यवाद करते हुए मर जाता है, वही मुक्त हो जाता है। वही आवागमन के पार हो जाता है।

पांचवां प्रश्नः मैं आपकी बातें बिल्कुल ही नहीं समझ पाता हूं!

या तो मेरा कसूर होगा, या तुम्हारे पास अभी समझ ही नहीं है। मैं तो जो
कह रहा हूं, सीधा-साफ है। इसमें जरा भी उलझाव नहीं है। लेकिन मैं समझ सकता हूं; तुम्हें उलझाव दिखते होंगे। क्योंकि तुम्हारे देखने के ढंग, तुम्हारे सोचने के ढंग में शायद बात न बैठती हो। बैठ भी नहीं सकती।
अगर तुम्हें मेरी बात समझनी है, तो तुम्हें सोचने के ढंग बदलने होंगे। तुम्हें सोचने की नयी शैली सीखनी होगी। तुम्हें तर्क की सीमाओं के बाहर आना होगा। तुम्हें शब्दों के जाल से, शास्त्रों की रटी-रटायी बातों से थोड़ा ऊपर उठना होगा। तुम्हें आदमी बनना होगा। तुम्हें तोते होने से थोड़ा छुटकारा लेना होगा।
समझ के भी बहुत तल हैं। उतनी ही बात समझ में आती है, जहां तक हमारा तल होता है।
मैंने सुनाः एक डाक्टर छोटे से बच्चे से बोला--उसकी जांच करता होगा-- बेटे, तुम्हें नाक-कान से कोई शिकायत तो नहीं है? नाक से बलगम टपक रहा है। सर्दी-जुकाम इतने जोर से है बच्चे को कि उसे कुछ ठीक से सुनायी भी नहीं पड़ता। कान तक रुंध गए हैं। छाती घर्र-घर्र हो रही है। और डाक्टर पूछता हैः बेटे, तुम्हें नाक-कान से कोई शिकायत तो नहीं है?
बच्चे ने कहाः जी है। वे कमीज उतारते बीच में आते हैं।
अपनी-अपनी समझ। अब बच्चे की तकलीफ यह है कि जब भी कमीज उतारता है, तो नाक-कान बीच में आते हैं। एक तल है।
तुम्हें शायद मेरी बात समझ में न आती हो। हो सकता है।
एक मित्र ने मुल्ला नसरुद्दीन से कहाः मुल्ला जी! मैं विवाह इस कारण नहीं करना चाहता हूं कि मुझे स्त्रियों से बहुत डर लगता है।
मुल्ला ने कहाः अगर ऐसी बात है, तब तो तुम विवाह तुरंत कर डालो। मैं तुम्हें अपने अनुभव से कहता हूं कि विवाह के बाद एक ही स्त्री का भय रह जाता है।
अपना-अपना अनुभव। अपनी-अपनी समझ।
एक बाप ने अपने बेटे से कहाः जमाना बहुत आगे बढ़ गया है। तुम खुद अपने योग्य लड़की देख लो।
बेटा बड़ा प्रसन्न हुआ। और तो कभी पिता के चरण न छूता था। आज उसने पिता
के चरण छुए। और पिता की आज्ञा मानकर पुत्र ने नियमित रूप से बालकनी में खड़े होकर लड़की देखना शुरू कर दिया।
तुम वही समझ सकते हो, जो तुम समझ सकते हो।
अगर तुम्हें मेरी बात समझ में नहीं आ रही है, तो दो उपाय हैं। या तो मैं ऐसी बात कहूं, जो तुम्हारी समझ में आ जाए। या तुम ऐसी समझ बनाओ कि जो मैं कहता हूं, वह समझ में आ जाए!
अगर मैं ऐसी बात कहूं, जो तुम्हें समझ में आ जाए, तो सार ही क्या होगा!
वह तो तुम्हें समझ में आती ही है। फिर मेरे पास आने का कोई प्रयोजन नहीं है।
तो मैं तो वह बात नहीं कहूंगा, जो तुम्हारी समझ में आ सकती है। मैं तो वही कहूंगा, जो सच है। तुम्हें समझ में न आती हो, तो समझ को थोड़ा निखारो।
थोड़ी धार रखो समझ पर। समझ को बदलो।

यही तो शिष्यत्व का अर्थ है कि अगर समझ में नहीं आता है, तो हम समझ को बदलेंगे। उसमें थोड़ी कठिनाई होगी। थोड़ा श्रम करना होगा। और लोग श्रम बिल्कुल नहीं करना चाहते। तो फिर तुम अटके रह जाओगे--तुम्हीं में।
या तो मैं तुम्हारे पास आऊं या तुम मेरे पास आओ। अच्छा यही होगा कि तुम मेरे पास आओ। उससे तुम्हारा विकास होगा। मैं तुम्हारे पास आऊं, उससे तुम्हारा कोई विकास नहीं होगा। उसमें तो तुम और जड़बद्ध हो जाओगे, जहां हो वहीं।
तो जरूर मुझे इस ढंग से तुमसे बातें कहनी पड़ती हैं कि कुछ तो तुम्हारी समझ में आएं और कुछ तुम्हारी समझ में न आएं।
अगर मैं बिल्कुल ऐसी बात कहूं कि तुम्हें बिल्कुल ही समझ में न आए, तो तुम्हारा मुझसे नाता टूट जाएगा। तब मैं कहीं दूर से चिल्ला रहा हूं और तुम कहीं बहुत दूर खोए हो। वहां तक आवाज भी नहीं पहुंचेगी।
तो कुछ तो मैं ऐसी बातें कहता हूं, जो तुम्हारी समझ में आएं, ताकि नाता बना रहे। लेकिन अगर मैं उतनी ही बातें कहता रहूं, जो तुम्हारी समझ में आती हैं, तो नाता तो बना रहेगा, लेकिन लाभ क्या होगा? ऐसे नाते का प्रयोजन क्या?
तो कुछ ऐसी बातें भी कहता हूं, जो तुम्हारी समझ में न आएं। ताकि नाता बना रहे, सेतु जुड़ा रहे, तुम्हें कुछ समझ में आता रहे। और कुछ जो समझ में नहीं आता, उसे समझने के लिए तुम थोड़े हाथ ऊपर बढ़ाते रहो। तुम्हारे हाथ ऊपर बढ़ाने में ही किसी दिन आकाश को तुम छुओगे।

छठवां प्रश्नः प्यारे ओशो! प्रेम। आपके सान्निध्य में तीन माह रहकर मेरा पूरा जीवन रूपांतरित हो गया है; पूरा जीवन बदल गया है। मैं आनंद से इतनी भर गयी हूं कि उसे शब्दों में व्यक्त नहीं कर पाती। अब तो जहां भी जाऊंगी, हृदय नर्तन करता रहेगा और मेरे मुंह में आपका गुणगान होता रहेगा। मेरा अहोभाव स्वीकार करें।

पूछा है रंजना ने।
जीवन निश्चित रूपांतरित होता है। बस, इतनी भी अगर तुम्हारी तैयारी हो
कि मेरे पास निश्चिंत मन से बैठ पाओ। सिर्फ पास बैठ पाओ, सिर्फ सत्संग हो जाए, तो भी रूपांतरण होता है।
बुझा दीया जले दीए के करीब आ जाए, तो भी जले दीए से बुझे दीए पर ज्योति कभी भी छलांग ले सकती है।
रूपांतरण किए-किए से नहीं हो; कभी-कभी बिना किए हो जाता है। और असली कलाकार वही है, जो बिना किए रूपांतरण कर ले।
लेकिन पास होना बड़ी हिम्मत की बात है। तुम यहां बैठते भी हो, तो भी हजार तरह की दीवालें बनाए रखते हो। सुरक्षा रखते हो। सोच-सोचकर कदम उठाते हो। सोच-सोचकर अगर कदम उठाए, तो चूकोगे। क्योंकि सोच-सोचकर कदम उठाए, तो वे कदम कभी बहुत दूर तक जाने वाले नहीं। तुम्हारी सोच की सीमा के भीतर होंगे। मेरे पास दो तरह के लोग संन्यास लेते हैं। एक, जो सोच-सोचकर संन्यास लेते हैं। सोचने की वजह से उनका संन्यास आधा मरा हुआ हो जाता है पहले ही से। जैसे अधमरा बच्चा पैदा हो।
दूसरे वे, जो बिना सोचे संन्यास लेते हैं। जो सिर्फ मेरे प्रेम में पड़कर संन्यास लेते हैं; जो पागल की तरह संन्यास लेते हैं। जो कहते हैंः अब नहीं सोचेंगे। एक नाता तो जीवन में बनाएं, जो बिना सोचे है। इनके संन्यास में एक जीवंतता होती है; एक प्रगाढ़ता होती है। इनके संन्यास में एक ऊर्जा होती है।
रंजना का संन्यास वैसा ही है। बिना सोचे लिया है। हिसाब-किताब नहीं रखा है।
स्त्रियां अक्सर बिना हिसाब-किताब के चल पाती हैं। पुरुष बहुत हिसाबी- किताबी है। वह सब तरह के विचार कर लेता है। लाभ-हानि सब सोच लेता है। जब देखता है कि हां, हानि से लाभ ज्यादा है, तो फिर संन्यास लेता है। हानि-लाभ दोनों सोचने के कारण चित्त का एक हिस्सा कहता है, मत लो; एक

हिस्सा कहता है, लो। तो जब लेता भी है, तब भी उसका लेना ऐसा ही होता है, जिसको हम पार्लियामेंटरी कहते हैं। जैसे पार्लियामेंट में कोई निर्णय लिया जाता है कि बहुमत एक तरफ हो गया, तो निर्णय हो गया।
लेकिन बहुमत से लिए गए निर्णय का कोई बहुत भरोसा नहीं है। क्योंकि लोग पार्टी बदलते हैं। आए राम, गए राम। लोग पार्टी बदलते हैं! तुम्हारे चित्त के हिस्से भी बदल जाते हैं। सुबह तुम सोचते थे कि सत्तर प्रतिशत मन कह रहा है, संन्यास ले लो। सांझ होते-होते साठ प्रतिशत कह रहा है कि संन्यास ले लो। दूसरे दिन पचास प्रतिशत कह रहा है, लो; पचास प्रतिशत कह रहा है, न लो। लेने के बाद पता चले कि सत्तर प्रतिशत मन कह रहा है कि गलती कर दी कि ले लिया।
मन एक से दूसरे में डांवाडोल होता रहता है। मन का स्वभाव डांवाडोल होना है। जिसने सोचकर लिया, उसने अधूरेपन से लिया। पार्लियामेंटरी निर्णय है। इसका कोई बहुत भरोसा नहीं है। जिसने बिना सोचे लिया, उसने सर्वांगीणता से लिया। उसके भीतर बहुमत और अल्पमत का मतलब नहीं है। उसने सर्वमत से लिया।
जो सर्वमत से संन्यास लेगा, सहज ही रूपांतरण घटित होगा।
रंजना को वैसा हुआ। ऐसा सबको हो सकता है। थोड़ी हिम्मत चाहिए, थोड़ा साहस चाहिए।
और जब ऐसा हो जाए, तो फिर कहीं भी रहो, इससे कुछ फर्क नहीं पड़ता। जो गीत पैदा हुआ, वह जारी रहेगा। जो नाच जन्मा, वह तुम्हारे पैरों में समा गया। वह तुम्हारे प्राणों में समा गया। फिर पास या दूर से कुछ भेद नहीं पड़ता। बहुत हैं, जो यहां पास होकर भी दूर हैं। और बहुत हैं, जो दूर होकर भी पास होंगे। पास और दूर का कोई अर्थ नहीं है। असली सवाल आत्मा से आत्मा के पास होना है।
हो गए हैं वो दीए की रोशनी लेकर फरार
मिल गयी मिलनी थी हमको जो सजाए-ऐतबार।
पत्थरों में फूल खिलते हैं यहां तो आजकल
इक नयी तासीर लेकर आयी है फस्ले-बहार।
एक भी चेहरा सही चेहरा नजर आता नहीं
इस कदर छायी है सारे शहर पे गर्दो-गुबार।
काश कोई आईने सा आईना मिलता हमें
आईनाखाने में यूं तो आईने हैं बेशुमार।
घोंसले में रख के उड़ते हैं परों को आजकल
ये परिंदे कितने ज्यादा हो गए हैं होशियार।
पक्षी भी होशियार हो गए हैं! पंखों को घोंसले में ही रख जाते हैं कि कहीं रास्ते में खो न जाएं। फिर उड़ते हैं। ऐसे होशियार झंझट में पड़ते हैं।
घोंसले में रख के उड़ते हैं परों को आजकल
ये परिंदे कितने ज्यादा हो गए हैं होशियार।
होशियारी भी कभी-कभी बड़ी गहरी नासमझी होती है। और कभी-कभी नासमझी भी बड़ी गहरी होशियारी होती है।
परमात्मा के संबंध में जो पागल होने को तैयार हैं, वे ही समझदार हैं।

आखिरी प्रश्नः ओशो! आप अपने शिष्यों में चुनकर एक मेरे नाम के पीछे ही
जी क्यों लगाते हैं? और क्या यह मेरे लिए उचित नहीं होगा कि मैं इसके प्रति अपना विनम्र विरोध प्रगट करूं?

पूछा है आनंद मैत्रेय ने।
अलग-अलग लोगों को चोट करने के मेरे अलग-अलग ढंग हैं मैत्रेय जी!
आज इतना ही।

एस धम्मो सनंतनो, भाग 12
एक सौ इक्कीस प्रवचन

जागो और जीओ

आसा यस्य न विज्जन्ति अस्मिं लोके परम्हि च।
निरासयं विसंयुत्तं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं।। 324।।

यस्सालया न विज्जन्ति अांंय अकथंकथी।
अमतोगधं अनुप्पतं तमहं बू्रमि ब्राह्मणं।। 325।।

यो"ध पुंंच पापंच उभो संगं उपच्चगा।
असोकं विरजं सुद्धं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं।। 326।।

चन्दं"व विमलं सुद्धं विप्पसन्नमनाविलं।
नन्दीभवपरिक्खीणं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं।। 327।।

हित्त्वा मानुसकं योगं दिब्बं योगं उपच्चगा।
सब्बयोगविसंयुत्तं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं।। 328।।

पुब्बेनिवासं यो वेदि सग्गापायंच पस्सति।
अथो जातिखयं पत्तो अभिंंवासितो मुनि।
सब्बवोसितवोसानं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं।। 329।।

धम्मपद के अंतिम सूत्रों का दिन आ गया!
लंबी थी यात्रा, पर बड़ी प्रीतिकर थी। मैं तो चाहता था--सदा चले। बुद्ध
के साथ उठना, बुद्ध के साथ बैठना; बुद्ध की हवा में डोलना, बुद्ध की किरणों को पकड़ना; फिर से जीना उस शाश्वत पुराण को; बुद्ध और बुद्ध के शिष्यों के बीच जो अपूर्व घटनाएं घटीं, उन्हें फिर से समझना-बूझना-गुनना; उन्हें फिर हृदय में बिठालना--यात्रा अदभुत थी।
पर यात्रा कितनी ही अदभुत हो, जिसकी शुरुआत है, उसका अंत है। हम कितना
ही चाहें, तो भी यहां कुछ शाश्वत नहीं हो सकता। यहां बुद्ध भी अवतरित होते हैं और विलीन हो जाते हैं। औरों की तो बात ही क्या! यहां सत्य भी आता है, तो ठहर नहीं पाता। क्षणभर को कौंध होती है, खो जाता है। यहां रोशनी नहीं उतरती, ऐसा नहीं। उतरती है। उतर भी नहीं पाती कि जाने का क्षण आ जाता है। बुद्ध ने ठीक ही कहा है--यहां सभी कुछ क्षणभंगुर है। बेशर्त, सभी कुछ क्षणभंगुर है। और जो इस क्षणभंगुरता को जान लेता है, उसका यहां आना बंद हो जाता है। हम तभी तक यहां टटोलते हैं, जब तक हमें यह भ्रांति होती है कि शायद क्षणभंगुर में शाश्वत मिल जाए! शायद सुख में आनंद मिल जाए। शायद प्रेम में प्रार्थना मिल जाए। शायद देह में आत्मा मिल जाए। शायद पदार्थ में परमात्मा मिल जाए। शायद समय में हम उसे खोज लें, जो समय के पार है।
पर जो नहीं होना, वह नहीं होना। जो नहीं होता, वह नहीं हो सकता है।
यहां सत्य भी आता है, तो बस झलक दे पाता है। इस जगत का स्वभाव ही क्षणभंगुरता है। यहां शाश्वत भी पैर जमाकर खड़ा नहीं हो सकता! यह धारा बहती ही रहती है। यहां शुरुआत है; मध्य है; और अंत है। और देर नहीं लगती। और जितनी जीवंत बात हो, उतने जल्दी समाप्त हो जाती है। पत्थर तो देर तक पड़ा रहता है। फूल सुबह खिले, सांझ मुरझा जाते हैं।
यही कारण है कि बुद्धों के होने का हमें भरोसा नहीं आता। क्षणभर को रोशनी उतरती है, फिर खो जाती है। देर तक अंधेरा--और कभी-कभी रोशनी प्रगट होती है। सदियां बीत जाती हैं, तब रोशनी प्रगट होती है। पुरानी याददाश्तें भूल जाती हैं, तब रोशनी प्रगट होती है। फिर हम भरोसा नहीं कर पाते।
यहां तो हमें उस पर ही भरोसा ठीक से नहीं बैठता, जो रोज-रोज होता है। यहां चीजें इतनी स्वप्नवत हैं! भरोसा हो तो कैसे हो। और जो कभी-कभी होता है

सदियों में, जो विरल है, उस पर तो कैसे भरोसा हो! हमारे तो अनुभव में पहले कभी नहीं हुआ था, और हमारे अनुभव में शायद फिर कभी नहीं होगा।
इसलिए बुद्धों पर हमें गहरे में संदेह बना रहता है। ऐसे व्यक्ति हुए! ऐसे व्यक्ति हो सकते हैं? और जब तक ऐसी आस्था प्रगाढ़ न हो कि ऐसे व्यक्ति हुए हैं, अब भी हो सकते हैं, आगे भी होते रहेंगे--तब तक तुम्हारे भीतर बुद्धत्व का जन्म नहीं हो सकेगा। क्योंकि अगर यह भीतर संदेह हो कि बुद्ध होते ही नहीं, तो तुम कैसे बुद्धत्व की यात्रा करोगे? जो होता ही नहीं, उस तरफ कोई भी नहीं जाता।
जो होता है--सुनिश्चित होता है--ऐसी जब प्रगाढ़ता से तुम्हारे प्राणों में बात बैठ जाएगी, तभी तुम कदम उठा सकोगे अज्ञात की ओर।
इसलिए बुद्ध की चर्चा की। इसलिए और बुद्धों की भी तुमसे चर्चा की है। सिर्फ यह भरोसा दिलाने के लिए; तुम्हारे भीतर यह आस्था उमग आए कि नहीं, तुम किसी व्यर्थ खोज में नहीं लग गए हो; परमात्मा है। तुम अंधेरे में नहीं चल रहे हो, यह रास्ता खूब चला हुआ है। और भी लोग तुमसे पहले इस पर चले हैं। और ऐसा पहले ही होता था--ऐसा नहीं। फिर हो सकता है। क्योंकि तुम्हारे भीतर वह सब मौजूद है, जो बुद्ध के भीतर मौजूद था। जरा बुद्ध पर भरोसा आने की जरूरत है।
और जब मैं कहता हूंः बुद्ध पर भरोसा आने की जरूरत, तो मेरा अर्थ गौतम बुद्ध से नहीं है। और भी बुद्ध हुए हैं। क्राइस्ट और कृष्ण, और मोहम्मद और महावीर, और लाओत्सू और जरथुस्त्र। जो जागा, वही बुद्ध। बुद्ध जागरण की अवस्था का नाम है। गौतम बुद्ध एक नाम है। ऐसे और अनेकों नाम हैं।
गौतम बुद्ध के साथ इन अनेक महीनों तक हमने सत्संग किया।
धम्मपद के तो अंतिम सूत्र का दिन आ गया, लेकिन इस सत्संग को भूल मत जाना। इसे सम्हालकर रखना। यह परम संपदा है। इसी संपदा में तुम्हारा सौभाग्य छिपा है। इसी संपदा में तुम्हारा भविष्य है।
फिर-फिर इन गाथाओं को सोचना। फिर-फिर इन गाथाओं को गुनगुनाना। फिर-फिर इन अपूर्व दृश्यों को स्मरण में लाना। ताकि बार-बार के आघात से तुम्हारे भीतर सुनिश्चित रेखाएं हो जाएं। पत्थर पर भी रस्सी आती-जाती रहती है, तो निशान पड़ जाते हैं।
इसलिए इस देश ने एक अनूठी बात खोजी थी, जो दुनिया में कहीं भी नहीं है।
वह थी--पाठ। पढ़ना तो एक बात है। पाठ बिल्कुल ही दूसरी बात है। पढ़ने का तो अर्थ होता हैः एक किताब पढ़ ली, खतम हो गयी। बात समाप्त हो गयी। पाठ का अर्थ होता हैः जो पढ़ा, उसे फिर पढ़ा, फिर-फिर पढ़ा। क्योंकि कुछ ऐसी बातें हैं इस जगत में, जो एक ही बार पढ़ने से किसकी समझ में आ सकती हैं! कुछ ऐसी बातें हैं इस जगत में, जिनमें गहराइयों पर गहराइयां हैं। जिनको तुम जितना खोदोगे, उतने ही अमृत की संभावना बढ़ती जाएगी। उन्हीं को हम शास्त्र कहते हैं। किताब और शास्त्र में यही फर्क है। किताब वह, जिसमें एक ही पर्त होती है। एक बार पढ़ ली और खतम हो गयी। एक उपन्यास पढ़ा और व्यर्थ हो गया। एक फिल्म देखी और बात खतम हो गयी। दुबारा कौन उस फिल्म को देखना चाहेगा! देखने को कुछ बचा ही नहीं। सतह थी, चुक गयी।
शास्त्र हम कहते हैं ऐसी किताब को, जिसे जितनी बार देखा, उतनी बार नए अर्थ पैदा हुए। जितनी बार झांका, उतनी बार कुछ नया हाथ लगा। जितनी बार भीतर गए, कुछ लेकर लौटे। बार-बार गए और बार-बार ज्यादा मिला। क्यों? क्योंकि तुम्हारा अनुभव बढ़ता गया। तुम्हारे मनन की क्षमता बढ़ती गयी। तुम्हारे ध्यान की क्षमता बढ़ती गयी।
बुद्धों के वचन ऐसे वचन हैं कि तुम जन्मों-जन्मों तक खोदते रहोगे, तो
भी तुम आखिरी स्थान पर नहीं पहुंच पाओगे। आएगा ही नहीं। गहराई के बाद और गहराई। गहराई बढ़ती चली जाती है।
पाठ तो तभी समाप्त होता है, जब तुम भी शास्त्र हो जाते हो; उसके पहले समाप्त नहीं होता। पाठ तो तब समाप्त होता है, जब शास्त्र की गहराई तुम्हारी अपनी गहराई हो जाती है।
ऐसी ये अपूर्व गाथाएं थीं। अंतिम गाथाओं के पहले इस दृश्य को समझ लें।

पहला दृश्यः

रेवत स्थविर, आयुष्मान सारिपुत्र के छोटे भाई थे। सारिपुत्र बुद्ध के अग्रणी शिष्यों में एक हैं। रेवत उनके छोटे भाई थे। वे विवाह के बंधन में बंधते-बंधते ही छूट भागे थे। बीच बारात से भाग गए थे! बारात पहुंची ही जा रही थी मंडप के पास, जहां पुजारी तैयार थे। स्वागत का आयोजन था। बैंड-बाजे बज रहे थे। ऐसे घोड़े से बीच में उतरकर रेवत भाग गए थे।
फिर जंगल में जाकर बुद्ध के भिक्षु मिल गए, तो उनसे उन्होंने प्रव्रज्या ग्रहण कर ली। और खदिरवन में एकांत, ध्यान और मौन के लिए चले गए थे। वहां उन्होंने सात वर्ष समग्रता से साधना की और अर्हत्व को उपलब्ध हुए।
उन्होंने अभी तक भगवान का दर्शन नहीं किया था। पहले सोचा रेवत ने कि योग्य तो हो लूं, तब उन भगवान के दर्शन को जाऊं। पहले कुछ पात्रता तो हो मेरी। पहले आंख तो खोल लूं, जो देख सके उन्हें। पहले हृदय तो निखार लूं, जो झेल सके उन्हें। पहले भूमि तो तैयार कर लूं, ताकि वे भगवान अपने बीज फेंकें, तो बीज यूं ही न चले जाएं; उनका श्रम सार्थक हो। पहले इस योग्य हो जाऊं, तब उनके दर्शन को जाऊं।
तो रेवत सात वर्षों तक भगवान के दर्शन को नहीं गया। फिर सात वर्षों की समग्र साधना, ध्यान में सारी शक्ति को लगा देना; रेवत अर्हत्व को उपलब्ध हो गया। पहले इसलिए नहीं गया देखने भगवान को कि कैसे जाऊं! और जब अर्हत्व को उपलब्ध हो गया, तो जाने की कोई बात ही न रही। तो भगवान को जान ही लिया। बिना देखे जान लिया। क्योंकि भगवत्ता भीतर ही उमग आयी।
सो रेवत बड़ी मुश्किल में पड़ गया। पहले गया नहीं। तब सोच-सोच रोने लगा
कि पहले गया नहीं; सोचता था कि पात्र हो जाऊं। और अब जाऊं क्या! अब जिसे देखने चला था, उसके दर्शन तो भीतर ही हो गए। जिस गुरु को बाहर खोजने चला था, वह गुरु भीतर मिल गया। सो रेवत मग्न होकर अपने जंगल में ही रहा।
उसके अर्हत्व को घटा देख भगवान स्वयं सारिपुत्र आदि स्थविरों के साथ वहां पहुंचे। वह जंगल बहुत भयंकर था। रास्ते ऊबड़-खाबड़ और कंटकाकीर्ण थे। जंगली पशुओं की छाती को कंपा देने वाली दहाड़ें भरी दोपहर में भी सुनायी पड़ती थीं। लेकिन भिक्षुओं को इसकी कोई खबर नहीं मिली; कुछ पता नहीं चला। न तो रास्तों का ऊबड़-खाबड़ होना पता चला; न जंगली जानवरों की दहाड़ें सुनायी पड़ीं। न कांटों से भरा हुआ जंगल दिखायी पड़ा। उन्हें तो सब तरफ फूल ही फूल खिले दिखायी पड़ते थे। उन्हें तो सब तरफ जंगल की परम शांति ध्वनित होती मालूम पड़ रही थी।
रेवत ने ध्यान में भगवान को आते देख उनके लिए सुंदर आसन बनाया। कुछ जंगल में विशेष चीजें तो उसके पास नहीं थीं। भिक्षु था। जो भी मिल सका-- पत्थर, ईंट--जो भी मिल सके, उसी को लगाकर आसन बनाया। घास-पात जो मिल सका, वह बिछा दिया। फूल बिखेर दिए। ध्यान में भगवान को आता देख... ।
भगवान खदिरवन में एक माह रहे। फिर वे रेवत को भी साथ लेकर वापस लौटे। आते समय दो भिक्षुओं के उपाहन, तेल की फोंफी और जलपात्र पीछे छूट गए। सो वे मार्ग से लौटकर जब उन्हें लेने गए, तो जो उन्होंने देखा, उस पर उन्हें भरोसा नहीं आया। किसी को भी न आता।
रास्ते बड़े ऊबड़-खाबड़ थे। जंगली पशु दहाड़ रहे थे। फूल तो सब खो गए थे। सारा जंगल कांटों से भरा था। इतना ही नहीं; रेवत का जो निवास स्थान घड़ी दो घड़ी पहले इतना रम्य था कि स्वर्ग को झेंपाए, वह कांटों ही कांटों से भरा था। और जिस परम सुंदर आसन पर रेवत ने बुद्ध को बिठाया था, उस पर कोई भिखारी भी बैठने को राजी न हो! ऐसा कुरूप था। इतना ही नहीं, घड़ीभर पहले जो भवन अपूर्व जीवंतता से नाच रहा था, वह बिल्कुल खंडहर था। वह भवन था ही नहीं। वह किसी... न मालूम सदियों पहले कोई रहा होगा, उसके महल का खंडहर था।
वे तो भरोसा न कर सके। देखकर वहां, ऐसा लगा कि जैसे हमने कोई सपना देखा था।
श्रावस्ती लौटने पर महोपासिका विशाखा ने उनसे पूछा--उन दो भिक्षुओं से--आर्य रेवत का निवास स्थान कैसा था? मत पूछो, उपासिके! वे भिक्षु बोले,

मत पूछो। ऐसी खतरनाक जगह हमने कभी देखी नहीं। खंडहर था खंडहर! निवास स्थान कहो मत। सब कांटों से भरा था। जंगल और भी बहुत देखे हैं, मगर ऐसा भयानक जंगल नहीं। आदमी दिन में खो जाए, तो राह न मिले। भरी दुपहरी में ऐसा घना जंगल, कि सूरज की किरणें न पार कर सकें वृक्षों को। और भयंकर जानवरों से भरा हुआ! बचकर आ गए, यही कहो उपासिके! पूछो मत। वह बात याद दिलाओ मत। और यह रेवत कैसे उस जगह में रहता था! कांटों ही कांटों से भरा था वह खंडहर। इतना ही नहीं, सांप-बिच्छुओं से भी भरा था।
फिर विशाखा ने और भिक्षुओं से भी पूछा। उन्होंने कहाः आर्य रेवत का स्थान स्वर्ग जैसा सुंदर है, मानो ऋद्धि से बनाया गया हो। चमत्कार है, महल सुंदर हमने बहुत देखे हैं, मगर रेवत जिस महल में रह रहा था, ऐसा महल स्वर्ग के देवताओं को भी उपलब्ध नहीं होगा। इतनी शांति! इतनी प्रगाढ़ शांति! ऐसा सन्नाटा! ऐसा अपूर्व संगीतमय वातावरण--नहीं, इस पृथ्वी पर दूसरा नहीं है। इन विपरीत मंतव्यों से विशाखा स्वभावतः चकित हुई। फिर उसने भगवान से पूछाः भंते! आर्य रेवत के निवास स्थान के संबंध में पूछने पर आपके साथ गए हुए भिक्षुओं में कोई उसे नर्क जैसा और कोई उसे स्वर्ग जैसा बताते हैं। असली बात क्या है?
भगवान हंसे और बोलेः उपासिके! जब तक वहां रेवत का वास था, वह स्वर्ग जैसा था। जहां रेवत जैसे ब्राह्मण विहरते हैं, वह स्वर्ग हो ही जाता है। लेकिन उनके हटते ही, वह नर्क जैसा हो गया। जैसे दीया हटा लिया जाए और अंधेरा हो जाए, ऐसे ही। मेरा पुत्र रेवत अर्हत हो गया है; ब्राह्मण हो गया है। उसने ब्रह्म को जान लिया है।
और तब उन्होंने ये गाथाएं कही थींः

आसा यस्य न विज्जन्ति अस्मिं लोके परम्हि च।
निरासयं विसंयुत्तं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं।।

"इस लोक और परलोक के विषय में जिसकी आशाएं नहीं रह गयी हैं, जो निराशय
और असंग है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूं।"

यस्सालया न विज्जन्ति अांंय अकथंकथी।
अमतोगधं अनुप्पतं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं।।

"जिसे आलय--तृष्णा--नहीं है, जो जानकर वीतसंदेह हो गया है, और जिसने डूबकर अमृत पद निर्वाण को पा लिया है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूं।"

यो"ध पुंंच पापंच उभो संगं उपच्चगा।
असोकं विरजं सुद्धं तमहं बू्रमि ब्राह्मणं।।

"जिसने यहां पुण्य और पाप दोनों की आसक्ति को छोड़ दिया है, जो विगतशोक, निर्मल और शुद्ध है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूं।"
सूत्रों के पूर्व दृश्य को खूब मनन करो। दृश्य पर ध्यान करो।
रेवत स्थविर सारिपुत्र का छोटा भाई था। बारात जाती थी। घोड़े पर बैठा होगा। लेकिन बीच से भाग गया। क्या हो गया?
दुनिया में तीन तरह के लोग हैं। पहले, जिन्हें हम मूढ़ कहें, बुद्धिहीन कहें। वे अनुभव से भी नहीं सीखते हैं। बार-बार अनुभव हो, तब भी नहीं सीखते हैं। वे पुनः-पुनः वही भूल करते हैं। वे भूलें भी नयी नहीं करते हैं! वे भूलें भी पुरानी ही दोहराते हैं। उनके जीवन में नया कुछ होता ही नहीं। उनका जीवन कोल्हू के बैल जैसा होता है। बस, उसी में डोलता रहता है। वही चक्कर काटता रहता है। गाड़ी के चाक जैसा घूमता रहता है।
एक आदमी अपनी पत्नी से बहुत पीड़ित था। और कई बार अपने मित्रों से कह चुका था कि अगर यह मेरी स्त्री मर जाए, तो मैं दुबारा सपने में भी विवाह की न सोचूंगा। फिर स्त्री मर गयी, संयोग की बात। और पांच-सात दिन बाद ही वह आदमी नयी स्त्री की तलाश करने लगा। तो उसके मित्रों ने पूछाः अरे! अभी

पांच-सात दिन ही बीते। और तुम तो कहते थे, सपने में न सोचूंगा। उन्होंने कहाः छोड़ो भी। जाने भी दो। उस समय की बात उस समय की थी। सब बदल गया अब। सभी स्त्रियां एक जैसी थोड़े ही होती हैं। उसने दुख दिया, तो सभी दुख देंगी, ऐसा थोड़े ही है।
उसने फिर विवाह कर लिया और फिर दुख पाया। तब वह अपने मित्रों से बोला
कि तुम ठीक ही कहते थे। अब यह भी अनुभव हो गया कि सभी स्त्रियां एक जैसी हैं। कुछ भेद नहीं पड़ता। सब संबंधों में दुख है। और यह विवाह का संबंध तो महादुख है। अब कभी नहीं। अगर भगवान एक अवसर और दे, तो अब कभी न करूंगा विवाह।
पुरानी कहानी है; भगवान ने सुन लिया होगा। एक अवसर और दिया! पत्नी फिर
मर गयी। साधारणतः पहली पत्नी नहीं मरती! अक्सर तो ऐसा होता है कि पत्नी पति को मारकर ही मरती है।
तुमने देखा, विधवाएं दिखायी पड़ती हैं। स्त्रियों की शारीरिक उम्र पुरुषों से ज्यादा है; पांच साल ज्यादा है, औसत। अगर आदमी सत्तर साल जीएगा, तो स्त्री पचहत्तर साल जीएगी। और एक मूढ़ता के कारण कि जब हम विवाह करते हैं, तो हम पुरुष की उम्र तीन-चार-पांच साल ज्यादा... । लड़का होना चाहिए इक्कीस का और लड़की होनी चाहिए सोलह की या अठारह की। तो पांच साल का तो स्वाभाविक भेद है, पांच साल का भेद हम खड़ा कर देते हैं। तो पुरुष दस साल पीछे पिछड़ जाता है। तो अगर पुरुष मरेगा, तो उसके दस साल बाद तक उसकी पत्नी के जिंदा रहने की संभावना है।
तो पहली पत्नी ही नहीं मरती! पहली भी मरी। दूसरी मरी। यह कथा सतयुग की होगी। कलयुग में ये बातें कहां! दूसरी स्त्री के मरने के पांच-सात दिन बाद ही वह आदमी फिर स्त्री तलाश करने लगा। मित्रों ने कहाः अरे भई! अब तो सम्हलो। वह आदमी मुस्कुराया और उसने कहाः सुनो। अब मुझे एक बात समझ में आ गयी मन में कि आशा की हमेशा अनुभव पर विजय होती है। अब मुझे फिर आशा बंध रही है कि कौन जाने, तीसरी स्त्री भिन्न हो! अरे! किसने जाना!
आशा पर अनुभव नहीं जीत पाता; अनुभव पर आशा जीत जाती है--यह मूढ़ का लक्षण है।
दूसरे वे लोग हैं, जिन्हें हम बुद्धिमान कहें। वे अनुभव से सीखते हैं। अनुभव के बिना नहीं सीखते। बुद्धिमान को पुनरुक्ति नहीं करनी पड़ती। एक ही अनुभव काफी होता है। मगर एक अनुभव जरूरी होता है। बिना अनुभव के नहीं बुद्धिमान सीख सकता। मगर एक काफी है। एक बार चख लिया समुद्र के पानी को, तो सारे समुद्रों का पानी चख लिया। बात समाप्त हो गयी। उस स्वाद ने निर्णय दे दिया। अब दुबारा यही भूल नहीं करेगा।
मूढ़ बंधी-बंधायी भूलें करता है। कुछ सीखता ही नहीं। इसका मतलब हुआ-- वही-वही भूलें करने का मतलब हुआ--कि कुछ सीखता नहीं कि भूलों को बदल ले। नयी भूलें करे। पुरानी छोड़े। कुछ नए उपाय करे।
बुद्धिमान एक भूल को एक बार करता है। ऐसा नहीं कि बुद्धिमान भूलें नहीं करता। मगर जब करता है, तो नयी भूलें करता है। इसलिए बुद्धिमान विकासमान होता है। वह आगे बढ़ता है। हर अनुभव उसे नया ज्ञान दे जाता है। तीसरे व्यक्ति होते हैं, जिनको प्रज्ञावान कहा जाता है। वे बुद्धिमान
से आगे होते हैं। वे अनुभव में नहीं गुजरते। वे अनुभव को बाहर से ही देखकर जाग जाते हैं। वे दूसरों का अनुभव देखकर भी जाग जाते हैं। उन्हें स्वयं ही अनुभव में जाने की जरूरत नहीं होती।
पहला आदमी ऐसा कि जब गिरेगा आग में, तो एक बार गिरेगा, दो बार गिरेगा। रोज जलेगा; फिर-फिर गिरेगा। दूसरा आदमी ऐसा कि एक बार जल जाएगा, तो सम्हल जाएगा। और तीसरा आदमी ऐसा कि दूसरों को गिरते देखकर, जलते देखकर ही सम्हल जाएगा। उसको प्रज्ञावान कहा है।
रेवत प्रज्ञावान था। उसने देखे होंगे चारों तरफ विवाहित और दुखी लोग।
विवाहित और दुखी करीब-करीब पर्यायवाची शब्द हैं। विवाहित--और तुमने सुखी देखा! इस बात को बचाने के लिए कहानियां विवाह के बाद खतम हो जाती हैं। फिर आगे नहीं जातीं, क्योंकि आगे जाना खतरनाक है।

फिल्में भी--बैंड-बाजा बज रहा है, शहनाई बज रही है--और खतम हो जाती हैं। विवाह हुआ; खतम हुईं। कहानियां पुरानी कहती हैं कि उन दोनों का विवाह हो गया, फिर वे दोनों सुख से रहने लगे। यहीं जाकर खतम हो जाती हैं। फिर आगे की बात उठाना खतरे से खाली नहीं है।
विवाह के बाद कौन कब सुख से रहा? विवाह के पहले लोग भला सुख से रहे हों। एक आदमी ही जब दुखी था, तो दो होकर दुगना दुख हो जाएगा, हजार गुना हो जाएगा। दो दुखी मिलेंगे, तो सुख पैदा हो कैसे सकता है? दो जहरों के मिलने से कहीं अमृत बनता है?
और ध्यान रखना, कसूर न स्त्री का है, न पुरुष का। कसूर यही है कि हमारी मौलिक भ्रांति है कि मैं दुखी हूं; कोई स्त्री भी दुखी है; हम दोनों मिल बैठेंगे, साथ-साथ हो जाएंगे, तो दोनों सुखी हो जाएंगे। हम एक असंभव बात की कल्पना कर रहे हैं। मैं दुखी हूं; स्त्री दुखी है। अकेली वह भी दुखी है; अकेला मैं भी दुखी हूं। ये दो दुखी आदमी एक-दूसरे से मिलकर दुख को अनंत गुना कर लेंगे। यह जोड़ ही नहीं होगा; गुणनफल होगा। और तब तड़फेंगे, तब परेशान होंगे।
रेवत ने देखा होगा चारों तरफ। रेवत ने देखे होंगे अपने मां-बाप। रेवत
ने देखे होंगे अपने पड़ोसी, अपने बुजुर्ग, अपने परिवार के लोग। और फिर रेवत ने यह भी देखा होगा, सारिपुत्र का सब छोड़कर संन्यस्त हो जाना--बड़े भाई का। फिर उसने यह भी देखा होगा कि सारिपुत्र की आंखों में एक और ही आभा आ गयी। फिर उसने यह भी देखा होगा कि सारिपुत्र पहली दफा आनंदित हुए। ऐसा आनंदित आदमी उसने नहीं देखा था।
ये सब बातें वह चुपचाप देखता रहा होगा। ये सारी बातें इकट्ठी होकर उसके भीतर घनी होती रही होंगी। फिर घोड़े पर सवार करके जब लोग उसे आग की तरफ ले चलने लगे, और जब बैंड-बाजे जोर से बजने लगे, तब उसके भीतर निर्णय की घड़ी आ गयी होगी। उसने सोचा होगाः अब सोच लूं या फिर सोचने का आगे कोई उपाय न रहेगा। कुछ करना हो तो कर लूं, अन्यथा घड़ीभर बाद फिर करना झंझट से भर जाएगा।
उसने देखा होगा कि सारिपुत्र घर छोड़कर गए, तो उनकी पत्नी कितनी दुखी है। सारिपुत्र परम सुख को उपलब्ध हो गए हैं, लेकिन पत्नी बहुत दुखी है। पति जिंदा है और पत्नी विधवा हो गयी है जीते जी पति के; दुखी न होगी, तो क्या होगा!
सारिपुत्र घर छोड़कर चले गए, उनके बेटे दीन-हीन और अनाथ हो गए हैं। सारिपुत्र तो परम अवस्था को उपलब्ध हो गए, लेकिन थोड़ी खटक तो है इसमें कि ये बच्चे अनाथ हो गए; यह पत्नी दुखी है। बूढ़े मां-बाप चिंतित हैं; परेशान हैं। उनको यह बोझ ढोना पड़ रहा है सारिपुत्र की पत्नी और बच्चों का।
ये सब बातें सघन होती रही होंगी। उस घड़ी में इन सारी बातों का जोड़ हो गया। उसने सोचा होगाः अब एक क्षण और रुक जाऊं कि मैं भी उसी जाल में पड़ जाऊंगा। और मैं भी वही करूंगा, जो सारिपुत्र ने किया। बेहतर है, मैं भाग जाऊं।
कोई बहाना करके उतर गए होंगे--कि जरा घोड़े से उतर जाऊं। और भागे, सो भागे। फिर घोड़े पर वापस नहीं लौटे।
शायद दूल्हे को घोड़े पर बिठाकर इसीलिए ले जाते होंगे, जिसमें भाग न सके। छुरी इत्यादि लटका देते हैं। यह उसको समझाने को कि तू बड़ा बहादुर है। भगोड़ा थोड़े ही है। देख, घोड़े पर बैठा है! राजा-महाराजा है! और देख, इतनी बारात चल रही है; इतना बैंड-बाजा बज रहा है! उसको सब तरह का भ्रम देते हैं। जैसे डाक्टर जब किसी का आपरेशन करता है, तो पहले बेहोश करने के लिए क्लोरोफार्म देता है। ये सब क्लोरोफार्म हैं! एक दिन के लिए उसको राजा बना देते हैं--दूल्हा राजा! और एक दिन की अकड़ में वह भूला रहता है और मस्त रहता है। उसे पता नहीं है, इस मस्ती का परिणाम क्या है!
मगर यह रेवत बड़ा होशियार आदमी रहा होगा, प्रज्ञावान रहा होगा। यह उतरा और चुपचाप भाग गया। इसने फिर पीछे लौटकर नहीं देखा। जंगल चला गया। भिक्षु मिल गए मार्ग पर, उन्हीं से दीक्षा ले ली।

अब बहुत ऐसे लोग हैं जो बुद्ध के पास पहुंचकर भी अर्हत न हो सके। और यह आदमी बुद्ध के सामान्य भिक्षुओं से, अज्ञातनाम भिक्षुओं से, जिनके नाम का भी पता नहीं है, कि किनसे उसने दीक्षा ली थी, कोई प्रसिद्ध भिक्षु न रहे होंगे, उनसे दीक्षा लेकर अर्हत्व को उपलब्ध हो गया!
तो ख्याल रखनाः असली सवाल तुम्हारी प्रगाढ़ता का है। तुम बुद्ध के पास होकर भी चूक सकते हो, अगर प्रगाढ़ नहीं हो। अगर तुम्हारे भीतर त्वरा और तीव्रता नहीं है; अगर सारे जीवन को दांव पर लगा देने की हिम्मत नहीं है, तो बुद्ध के पास भी चूक जाओगे। और अगर सारे जीवन को दांव पर लगा देने की हिम्मत है, तो किसी साधारणजन से दीक्षा लेकर भी पहुंच जाओगे।
एकांत, मौन और ध्यान--इन तीन चीजों में रेवत संलग्न हो गया। अकेला रहने लगा, चुप रहने लगा और अपने भीतर विचारों को विदा करने लगा। यही तीन सूत्र हैं समाधि के।
एकांत! ऐसे रहो, जैसे तुम अकेले हो। कहीं भी रहो--ऐसे रहो, जैसे तुम अकेले हो। न कोई संगी है, न कोई साथी। भीड़ में भी रहो, तो अकेले रहो। परिवार में भी रहो, तो अकेले रहो। इस बात को जानते ही रहो भीतर, एक क्षण को यह सूत्र हाथ से मत जाने देना। एक क्षण को भी यह भ्रांति पैदा मत होने देना कि तुम अकेले नहीं हो, कि कोई तुम्हारे साथ है। यहां न कोई साथ है; न कोई साथ हो सकता है। यहां सब अकेले हैं। अकेलापन आत्यंतिक है। इसे बदला नहीं जा सकता। थोड़ी-बहुत देर को भुलाया जा सकता है; बदला नहीं जा सकता।
और सब भुलावे एक तरह के मादक द्रव्य हैं। एक प्रकार के नशे हैं। कैसे तुम भुलाते हो, इससे फर्क नहीं पड़ता। कोई शराब पीकर भुलाता है। कोई धन की दौड़ में पड़कर भुलाता है। कोई पद के लिए दीवाना होकर भुलाता है। कैसे तुम भुलाते हो, इससे फर्क नहीं पड़ता। लेकिन थोड़ी देर को भुला सकते हो। बस।
और जब भी नशा उतरेगा, अचानक पाओगेः अकेले हो।
संन्यासी वही है, जो जानता है कि मैं अकेला हूं और भुलाता नहीं अपने अकेलेपन को। भुलाना तो दूर, अपने अकेलेपन में रस लेता है। और प्रतीक्षा करता है कि कब मौका मिल जाए कि थोड़ी देर अपने अकेलेपन का स्वाद लूं। थोड़ी देर आंख बंद करके अपने में डूब जाऊं; अकेला रह जाऊं। वही मेरी नियति है।
वही मेरा स्वभाव है। उसी स्वभाव से मुझे पहचान बनानी है।
दूसरों से पहचान बनाने से कुछ भी न होगा; अपने से पहचान बनानी है।
दूसरों को जानने से क्या होगा? अपने को ही न जाना और सबको जान लिया, इस जानने का कोई मूल्य नहीं है। मूल में तो अज्ञान रह गया।
तो रेवत एकांत में बैठ गया। मौन रखने लगा। बोलना बंद कर दिया।
बोलने को है क्या? जब तक जान न लो, तब तक बोलने को है क्या? जब तक जान न लो, तब तक बोलना खतरनाक भी है, क्योंकि तुम जो भी बोलोगे, वह गलत होगा। तुम जो भी लोगों से कहोगे, वह भटकाने वाला होगा। तुम भटके हो, और औरों को भटकाओगे!
बोलना तो तभी सार्थक है, जब कुछ जाना हो; जब कुछ अनुभव हुआ हो। जब कोई बात तुम्हारे भीतर प्रखर होकर साफ हो गयी हो। जब तुम्हारे भीतर ज्योति जली हो और तुम्हारे पास अपनी आंखें हों, तब बोलना। तब तक तो अच्छा है, चुप ही रहना। तुम अपना कूड़ा-करकट दूसरे पर मत फेंकना। तुम्हीं दबे हो, औरों पर कृपा करो। मत किसी को दबाओ अपने कूड़े-करकट से।
लेकिन लोग बड़े उत्सुक होते हैं! लोग अकेले-अकेले में घबड़ाने लगते हैं। राह खोजने लगते हैं कि कोई मिल जाता। किसी से दो बात कर लेते। बात करने का मतलबः कुछ कचरा वह हमारी तरफ फेंकता, कुछ कचरा हम उसकी तरफ फेंकते। न हमें पता है, न उसे पता है। इसको लोग बातचीत कहते हैं!
यह बातचीत महंगी है। क्योंकि दूसरा भी अपने अज्ञान को छिपाता है और अपनी बातों को इस तरह से कहता है, जैसे जानता हो। तुम भी अपने अज्ञान को छिपाते हो और अपनी बातों को इस तरह से कहते हो, जैसे तुमने जाना है। दोनों एक-दूसरे को धोखा दे रहे हो। और अगर दूसरे ने मान लिया तुम्हारी बात को, तो गड्ढे में गिरेगा। तुम खुद गड्ढे में गिरते रहे हो। तुम्हारी बात मानकर जो चलेगा, वह गड्ढे में गिरेगा।

इसलिए तो कोई किसी की सलाह नहीं मानता। तुमने देखा, दुनिया में सबसे ज्यादा चीज जो दी जाती है, वह सलाह है। और सबसे कम जो चीज ली जाती है, वह भी सलाह है।
कोई किसी की मानता नहीं। बाप की बेटा नहीं मानता। भाई की भाई नहीं मानता। मित्र की मित्र नहीं मानता। अध्यापक की शिष्य नहीं मानता।
एक लिहाज से अच्छा है कि लोग किसी की मानते नहीं। अरे, गिरना है तो कम
से कम अपने ही गड्ढे में गिरो। दूसरे की सलाह लेकर दूसरे के गड्ढे में क्यों गिरना! अपने गड्ढे में गिरोगे, तो शायद कुछ अनुभव भी होगा। अपनी तरफ से गिरोगे, अपने हाथ से गिरोगे, तो शायद निकलने की संभावना भी है। अवश, दूसरे की सलाह से गिरोगे, तो निकलने की संभावना भी न रह जाएगी।
मैं तुमसे कहना चाहता हूंः अपने ही पैर से चलकर जो नर्क तक पहुंचा है,
वह वापस भी लौट सकता है। जो दूसरों के कंधों पर चढ़कर पहुंच गया है, वह लंगड़ा है। वह वापस कैसे लौटेगा? उसका लौटना बहुत असंभव हो जाएगा।
और नर्क तक ले जाने वाले लोग तो तुम्हें बहुत मिल जाएंगे। एक ढूंढो, हजार मिल जाएंगे। लेकिन नर्क से स्वर्ग तक लाने वाला तो बहुत मुश्किल है। नर्क में कहां पाओगे ऐसा आदमी जो तुम्हें स्वर्ग तक ले जाए? यहां से नर्क तक जाने के लिए तो सब गाड़ियां बिल्कुल भरी हैं, लबालब भरी हैं। लेकिन नर्क से इस तरफ आने वाली गाड़ियां चलती कहां हैं! उनको चलाने वाला नहीं है कोई। अच्छा ही है कि कोई किसी की सलाह नहीं मानता।
रेवत भाग गया। एकांत में बैठ गया। चुप हो गया। बोलता ही न था।
और जब तुम एकांत में रहोगे और चुप रहोगे, तो भीतर विचार कब तक चलेंगे?
कब तक चलेंगे? उनका मौलिक आधार ही कट गया। जड़ ही कट गयी। तुमने पानी सींचना बंद कर दिया। वही-वही विचार कुछ दिन तक गूंजेंगे-गूंजेंगे- गूंजेंगे; धीरे-धीरे तुम भी ऊब जाओगे, वे भी ऊब जाएंगे।
रोज-रोज नया कुछ होता रहे, तो विचार में धारा बहती रहती है; प्राण पड़ते रहते हैं। अब अकेले में बैठ गए, न बोलना है, न चालना है। कब तक सिर में वही विचार घूमते रहेंगे? धीरे-धीरे मुर्दा हो जाएंगे। गिर जाएंगे। सूखे पत्तों की तरह झड़ जाएंगे। नए पत्ते तो अब आते नहीं। पुराने पत्ते एक बार झड़ गए, तो मन निर्विचार हो जाएगा। उस दशा का नाम ही ध्यान है।
वहां उन्होंने सात वर्ष समग्रता से साधना की।
और साधना हो ही तब सकती है, जब कोई समग्रता से करे। कुछ भी बचाया, तो चूक जाओगे। निन्यानबे डिग्री पर भी पानी भाप नहीं बनता। सौ डिग्री पर ही बनता है। और जब तुम भी सौ डिग्री उबलोगे, तो ही रूपांतरित होओगे। एक डिग्री भी बचाया, तो रूपांतरित नहीं हो पाओगे।
इसलिए रूपांतरण के लिए समग्र रूप से दांव लगाने की क्षमता और साहस चाहिए। लोग दुकानदार हैं। और परम सत्य को पाने के लिए जुआरी चाहिए, जो सब दांव पर लगा दे। दुकानदार दो-दो पैसे का हिसाब लगाकर दांव पर लगाता है--कि कितना लाभ होगा? अगर लाभ नहीं होगा, तो हानि कितनी होगी? अभी इतना लगाऊं। पहले देखूं थोड़ा लगाकर। फिर लाभ हो, तो थोड़ा और ज्यादा लगाऊंगा। फिर लाभ हो, तो थोड़ा और ज्यादा लगाऊंगा!
जुआरी सब इकट्ठा लगा देता है। या इस पार या उस पार। और जिसने भी सब इकट्ठा लगा दिया ध्यान में, वह उस पार ही होता है; इस पार का उपाय ही नहीं। उसके सब लगाने में ही उस पार हो गया। वह सब लगाने की जो वृत्ति थी, उसी में उस पार हो गया। अब कोई और दूसरी बात नहीं बची।
सात वर्ष की समग्र साधना; रेवत अर्हत्व को उपलब्ध हो गया। उसने जान लिया अपने आत्यंतिक स्वरूप को, अपने भीतर छिपी पड़ी भगवत्ता को। उसने अपने को पहचान लिया। वह अपने आमने-सामने खड़ा हो गया। वह आह्लादित हो गया। आनंदित हो गया। वह मुक्त हो गया।
उसने अभी तक भगवान का दर्शन नहीं किया था। पहले सोचता थाः पात्र हो जाऊं, तब करूंगा। और अब, अब यह बात ही व्यर्थ मालूम पड़ने लगी कि भगवान की देह को देखने जाऊं। अब तो भगवान का अंतरतम देख लिया।
वही तो बुद्ध ने कहा हैः जो धर्म को जानता है, वह मुझे जानता है। जिसने धर्म देखा, उसने मुझे देखा। जो मुझे ही देखता रहा और मेरे भीतर के धर्म से

वंचित रहा, उसने मुझे देखा ही नहीं। वह तो अंधा था। क्योंकि मैं देह नहीं हूं।
देह के पार जब तुम देखने लगोगे, तभी बुद्धों से संबंध होता है; संबंध जुड़ता है। वह संग आत्मा का है, देह का नहीं।
तो पहले तो सोचा था--ठीक ही सोचा था, रेवत बड़ा प्रज्ञावान है--ठीक ही सोचा कि पहले पात्र तो हो जाऊं। उन भगवान की आंख मेरे ऊपर पड़े, इस योग्य तो हो जाऊं। उनके चरण छुऊं, इस योग्य हाथ तो हो जाएं। कुछ हो तो मेरे पास चढ़ाने को। ऐसे खाली-खाली क्या जाना! कुछ लेकर जाऊं; कुछ ध्यान की संपदा लेकर जाऊं। कुछ उनके पैरों में रखने की मेरे पास सुविधा हो। कुछ कमाकर जाऊं।
ठीक सोचा था। काश! ऐसे लोग अधिक हों दुनिया में, तो दुनिया का रूप बदले। अक्सर तो ऐसा होता है कि अपात्र भी बुद्धों के पास पहुंच जाते हैं और पहुंच कर ही सोचते हैं कि सब हो गया। फिर वे बुद्धों को ही दोष देने लगते हैं कि आपके पास आए इतने दिन हो गए, अभी तक कुछ हुआ क्यों नहीं? फिर वे बुद्धों पर शक करने लगते हैं कि जब इतने दिन हो गए और कुछ नहीं हुआ, तो मालूम होता है ये बुद्ध सच्चे नहीं हैं। जैसे बुद्धों के ऊपर ही सब है! कुछ तुम भी करोगे? तुम्हारे भीतर घटनी है बात, और तुम्हारे भीतर कुछ
भी नहीं है।
जीसस का प्रसिद्ध वचन हैः जिसके पास है, उसे और दिया जाएगा। और जिसके पास नहीं है, उससे वह भी छीन लिया जाएगा, जो उसके पास है।
अनूठा वचन हैः जिसके पास है, उसे और भी दिया जाएगा।
तो रेवत ने सोचाः कुछ लेकर जाऊं। कुछ हो मेरे पास, तब जाऊं। बड़ी ठीक बात थी। लेकिन फिर अड़चन में पड़ा। जब घटना घट गयी, तो चौंका। तो उसने सोचाः अब जाकर क्या करूंगा! अब तो उन भगवान को मैं यहीं से देख रहा हूं। अब तो समय का और स्थान का फासला गिर गया। अब तो मैंने जान लिया कि न मैं देह हूं, न वे देह हैं। अब तो मैं वहां पहुंच गया, जहां वे हैं। अब कहां जाना! अब कैसा आना-जाना?
तो फिर वह कहीं नहीं गया। बैठा रहा। और तब यह अपूर्व घटना घटी।
उसके अर्हत्व को घटा देख भगवान स्वयं सारिपुत्र आदि स्थविरों के साथ वहां गए।
यही है सत्य। जिस दिन तुम तैयार होओगे, भगवान स्वयं तुम्हारे पास आता है। तुम्हारे जाने की कहीं कोई जरूरत नहीं है। जिस दिन तुम्हारी तैयारी पूरी है, उस दिन परमात्मा उतरता है। यह अर्थ है इस कहानी का।
तुम्हें कहीं जाने की जरूरत नहीं है। न मक्का, न काबा; न काशी, न कैलाश। तुम्हें कहीं जाने की जरूरत नहीं है। न जेरूसलम, न गिरनार। तुम्हें कहीं जाने की जरूरत नहीं है।
फिर तुम जाओगे भी कहां! कहां खोजोगे उसे? जब यहां नहीं दिखायी पड़ता,
तो कैलाश पर कैसे दिखायी पड़ेगा? अंधा आदमी यहां अंधा है; कैलाश पर भी अंधा होगा। जब यहां नहीं मिलता, तो काशी में कैसे मिलेगा? मिलना तो तुम्हें है। नजर तुम्हारी निखरी होनी चाहिए। आंखें तुम्हारी खुली होनी चाहिए। हृदय तुम्हारा प्रफुल्लित होना चाहिए, फूल की तरह खिला हुआ। यहां नहीं खिल रहा है, काबा में कैसे खिलेगा?
तुम समझते हो, जो काबा में रहते हैं, वे परमात्मा को उपलब्ध हो गए हैं! तुम सोचते हो, काशी में रहने वाले परमात्मा को उपलब्ध हो गए हैं?
जो यहां घट सकता है, वही कहीं और भी घटेगा। और जो कहीं और घट सकता है,
वह यहां भी घट सकता है। असली सवाल तुम्हारे भीतर का है।
बड़ी प्राचीन कहावत है कि जब शिष्य तैयार हो, तो गुरु उपस्थित हो जाता है। जब तुम तैयार हो, तो परमात्मा चुपचाप कब चला आता है, तुम्हें पता भी नहीं चलता।
उसके अर्हत्व को घटा देख भगवान स्वयं सारिपुत्र आदि स्थविरों के साथ वहां गए। वह जंगल बहुत भयंकर था। रास्ते ऊबड़-खाबड़ और कंटकाकीर्ण थे। जंगली पशुओं की छाती को कंपा देने वाली दहाड़ें भरी दोपहरी में सुनायी पड़ती थीं। लेकिन भिक्षुओं को इस सब का कोई पता ही न चला।

जिन्हें भगवान का साथ है, उन्हें यह सब पता चलेगा ही नहीं। बुद्ध के साथ चलते थे। बुद्ध की छाया में चलते थे। बुद्ध की रोशनी में चलते थे। बुद्ध का एक वायुमंडल था, उसमें चलते थे। सुरक्षित थे। यह जंगल जैसे था ही नहीं। रास्ते ऊबड़-खाबड़ नहीं थे।
नजर बुद्ध पर लगी हो, तो कहां रास्ता ऊबड़-खाबड़! रास्तों में कांटे पड़े थे। लेकिन नजर बुद्ध जैसे फूल पर लगी हो, तो किसको ये छोटे-मोटे कांटे दिखायी पड़ते हैं! जंगल में जंगली आवाजें गूंज रही होंगी जरूर, कोई जंगल के जानवर भिक्षुओं को देखकर चुप नहीं हो जाएंगे। लेकिन जिसका हृदय बुद्ध को सुनने में लगा हो, उनके पदचाप को सुनने में लगा हो; जो यहां एकाग्र-चित्त होकर डूबा हो, उसे सब खो जाता है।
तुमने देखा न। तुम जब कभी एकाग्र-चित्त हो जाओ, तो आकाश में बादल गरजते रहें और तुम्हें सुनायी न पड़ेंगे। ट्रेन गुजरे, हवाई जहाज निकले-- तुम्हें सुनायी न पड़ेगा। तुम जब चित्त से शांत होते हो, एक दिशा में अनस्यूत होते हो, तो और सारी दिशाएं अपने आप खो जाती हैं।
बुद्ध के प्रेमी थे ये भिक्षु। बुद्ध थोड़े से चुने हुए व्यक्तियों को लेकर ही गए होंगे; सारिपुत्र आदि को। सारिपुत्र होगा; महाकाश्यप होगा; मोद्गल्यायन होगा; आनंद होगा। ऐसे चुने हुए लोगों को लेकर गए होंगे। थोड़े से लोगों को रेवत को दिखाने ले गए होंगे--कि देखो रेवत को। अकेला है। मुझे कभी मिला भी नहीं। दूर से ही श्रद्धा के फूल चढ़ाता रहा है। मुझे कभी देखा नहीं और पहुंच गया!
रेवत ने भगवान को ध्यान में आते देख... ।
जब बुद्धि शांत हो जाती है और विचारों का ऊहापोह मिट जाता है, तो ध्यान की आंख खुलती है। ध्यान की आंख के लिए कोई बाधा नहीं है। ध्यान की आंख सब देख पाती है।
बुद्ध के आने को देख सुंदर आसन बनाया।
प्रभु आते हैं! जिनके पास जाने की कितनी-कितनी तमन्नाएं थीं, और कितनी-कितनी अभीप्साएं थीं, और कितने-कितने सपने थे! जिनके पास जाने के लिए सात साल अथक मेहनत की थी कि पात्र हो जाऊं तो जाऊं। आज वे स्वयं आते हैं। उसका आह्लाद तुम समझो। उसकी प्रतीक्षा तुम समझो। उसका आनंद! आज स्वर्ग टूटने को है!
वह तो भूल ही गया होगा कि मैं यह क्या कर रहा हूं! ये पत्थर, और ये ईंटें, और जंगल से कुछ भी उठाकर आसन बना रहा हूं! इसकी फिक्र ही न रही होगी। प्रेम ऐसा जादू है कि पत्थर को छुए, सोना हो जाए। और तुमने अगर बेमन से सोने की ईंटें लगाकर भी आसन बनाया, तो मिट्टी हो जाती है। असली सवाल प्रेम का है। बुद्ध प्रेम को देखते हैं।
भगवान रेवत के पास एक माह रहे।
कहानी कुछ नहीं कहती। कहानी बड़ी महत्वपूर्ण है। कहानी यह नहीं कहती
कि भगवान ने रेवत को कुछ कहा कि रेवत ने भगवान से कुछ कहा। बस इतना ही कहती है कि भगवान रेवत के पास एक माह रहे।
नहीं; कुछ कहा नहीं होगा। कहने की अब कोई बात ही न थी। रेवत वहां पहुंच
ही गया, जहां पहुंचाने के लिए भगवान कुछ कहते। और रेवत तो क्या कहे! जो चाह थी, वह बिना मांगे पूरी हो गयी। भगवान उसके द्वार पर आ गए।
मेरी अपनी दृष्टि यही है कि वे बैठे होंगे चुपचाप पास-पास। कोई कुछ न बोला होगा। बोलने को कुछ बचा न था। दो अर्हत बोल भी क्या सकते हैं! दो ज्ञानियों के पास बोलने को कुछ नहीं होता।
दो अज्ञानियों के पास बहुत होता है बोलने को। बोलने से ही काम नहीं चलता; सिर खोलकर मानेंगे। दो अज्ञानी एक-दूसरे की गरदन पकड़ लेते हैं।
दो ज्ञानी मिलें, तो चुप हो जाते हैं। हां, एक अज्ञानी हो और एक ज्ञानी, तो कुछ बोलने को हो सकता है।
बुद्ध सदा बोलते हैं; रोज बोलते हैं। लेकिन इस एक माह कुछ बोले, इसकी कोई खबर नहीं है। यह एक माह जैसे चुप्पी में बीता होगा। जिनको साथ ले गए होंगे, वे भी ऐसे लोग थे, जो अर्हत्व को पा गए हैं। रेवत भी अर्हत था।

यह सन्नाटे में बीता होगा महीना। यह महीना बड़ा प्यारा रहा होगा। यह महीना इस पृथ्वी पर अनूठा रहा होगा। इतने बुद्धपुरुष एक साथ बैठे चुपचाप! खूब बरसा होगा अमृत वहां। खूब घनी बरसा हुई होगी। मूसलाधार बरसा होगा अमृत वहां। सारा वन आनंदित हुआ होगा। पशु-पक्षियों तक की आत्माएं मुक्त होने के लिए आतुर हो उठी होंगी। वृक्षों के प्राण सुगबुगाकर जग गए होंगे। ऐसी गहन चुप्पी रही होगी।
फिर रेवत को साथ लेकर वे वापस लौटे।
और जब भगवान तुम्हारे पास आएं, तो एक ही प्रयोजन होता है कि तुम्हें अपने पास ले आएं। और तो कोई प्रयोजन नहीं हो सकता। गुरु शिष्य के पास आता है, ताकि शिष्य को गुरु अपने पास ले आए। गुरु की किरण तुम्हें टटोलती आती है--खोजती।
रेवत को साथ लेकर वापस लौटे। आते समय दो भिक्षुओं के उपाहन, तेल की फोंफी और जलपात्र पीछे छूट गए। सो वे मार्ग से लौटकर जब उन्हें लेने गए, तो जो उन्होंने देखा, उस पर उन्हें भरोसा नहीं आया। रास्ते बड़े ऊबड़-खाबड़ थे। इस बार भगवान का साथ न था। वे ही रास्ते, भगवान साथ हों, तो प्यारे हो जाते हैं। वे ही रास्ते, भगवान साथ न हों, तो ऊबड़-खाबड़ हो जाते हैं। दुनिया वही है। भगवान का साथ हो, तो स्वर्ग; भगवान का साथ चूक जाए, तो नर्क। सब वही है; सिर्फ भगवान के साथ से फर्क पड़ता है। तुम अकेले हो; भगवान का साथ नहीं; सब ऊबड़-खाबड़ होगा। जिंदगी एक दुख की कथा होगी। अर्थहीन, विषाद से भरी, रुग्ण। और भगवान का साथ हो, तो सब रूपांतरित हो जाता है जादू की तरह। तुम स्वस्थ हो जाते हो। कहीं कोई कांटे नहीं रह जाते हैं। सब तरफ फूल खिल जाते हैं। कहीं कोई शोरगुल नहीं रह जाता। सब तरफ शांति बरसने लगती है। उन्हें भरोसा न आया कि हो क्या गया! अभी-अभी हम आए थे; अभी-अभी हम गए;
दो घड़ी में इतना सब बदल गया! ये वे ही रास्ते हैं? यह वही जंगल है? ये वे ही वृक्ष हैं? इतना ही नहीं, रेवत का जो निवास स्थान घड़ी दो घड़ी पहले इतना रम्य था कि स्वर्ग मालूम होता था, वह सिर्फ कांटों से भरा था, और एक खंडहर था। और ऐसा लगता था, जैसे सदियों से वहां कोई न रहा हो।
श्रावस्ती लौटने पर महोपासिका विशाखा ने उनसे पूछाः आर्य रेवत का वास स्थान कैसा था?
मत पूछो, उपासिके! सारा कांटों से भरा है और सांप-बिच्छुओं से भी। भूलकर भी भगवान न करे कि ऐसी जगह दुबारा जाना पड़े।
फिर विशाखा ने और भिक्षुओं से भी पूछा। उन्होंने कहा, आर्य रेवत का स्थान स्वर्ग जैसा सुंदर है, मानो ऋद्धि से बनाया गया हो! जैसे हजारों सिद्धों ने अपनी सारी सिद्धि उंडेल दी हो। चमत्कार है वह जगह। ऐसी सुंदर जगह पृथ्वी पर नहीं है।
इन विपरीत मंतव्यों को सुनकर स्वभावतः विशाखा चकित हुई। फिर उसने भगवान से पूछाः भंते! आर्य रेवत के स्थान के विषय में पूछने पर आपके साथ गए भिक्षुओं में कोई कहता नर्क जैसा; कोई कहता स्वर्ग जैसा। बात क्या है? असली बात क्या है? आप कहें।
भगवान ने कहाः उपासिके! जब तक वहां रेवत का वास था, वह स्वर्ग जैसा था। जहां रेवत जैसे ब्राह्मण विहरते हैं, वह स्वर्ग हो जाता है। लेकिन उनके हटते ही वह नर्क जैसा हो गया। जैसे दीया हटा लिया जाए और अंधेरा हो जाए-- ऐसे ही। मेरा पुत्र रेवत अर्हत हो गया है, ब्राह्मण हो गया है। उसने ब्रह्म को जान लिया है।
धम्मपद ब्राह्मण की परिभाषा पर पूरा होता है--कि ब्राह्मण कौन! ब्राह्मण क्या! ब्राह्मण अंतिम दशा है--ब्रह्म को जान लेने की।
"इस लोक और परलोक के विषय में जिसकी आशाएं नहीं हैं... ।"
जो न तो यहां कुछ चाहता है, न वहां कुछ चाहता है। जो कुछ चाहता ही नहीं,
जो अचाह को उपलब्ध हो गया है।
"ऐसे निराशय और असंग को मैं ब्राह्मण कहता हूं।"
रेवत ऐसा ब्राह्मण हो गया है।
"जिसे तृष्णा नहीं है, जो जानकर वीतसंदेह हो गया है, जिसने डूबकर अमृत
पद निर्वाण को पा लिया है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूं।"

ऐसा मेरा पुत्र रेवत ब्राह्मण हो गया है।
"जानकर वीतसंदेह हो गया... ।"
इस बात को समझना। लोग दो तरह से संदेह से बच सकते हैं। एक तो जबर्दस्ती किसी विश्वास को अपने ऊपर थोप लें और संदेह से बच जाएं। वह झूठा है संदेह से बचना। वह संदेह आज नहीं कल बदला लेगा; बुरी तरह बदला लेगा। तुम दुनिया में इतने नास्तिक देखते हो, इतने नास्तिक नहीं हैं। दुनिया में नास्तिक बहुत ज्यादा हैं। क्योंकि जिन्हें तुम आस्तिक की तरह देखते हो, उनमें से शायद ही कोई आस्तिक है। वे सब नास्तिक हैं। भीतर तो नास्तिकता है; ऊपर से आस्तिकता की सिर्फ धारणा है। मान्यता है। मानते हैं कि ईश्वर है; जाना नहीं है। बिना जाने कैसे मानोगे? बिना जाने मानना नपुंसक है। उसमें कोई प्राण नहीं है।
इसलिए बुद्ध कहते हैं, जानकर जो वीतसंदेह हो गया है, जिसने जानकर संदेह से मुक्ति पा ली, जिसने परमात्मा को पहचान लिया, सत्य को पहचान लिया। जो यह नहीं कहता है कि मानता हूं कि ईश्वर है। जो कहता है, मैं जानता हूं--ऐसा व्यक्ति ब्राह्मण है।
ब्रह्म को मानने से कोई ब्राह्मण नहीं होता। ब्रह्म को जानने से कोई ब्राह्मण होता है।
"जिसने यहां पुण्य और पाप दोनों की आसक्ति को छोड़ दिया है, जो विगतशोक, निर्मल और शुद्ध है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूं।"
और मेरा पुत्र रेवत ऐसा ही ब्राह्मण हो गया है। इस ब्राह्मण के कारण वहां स्वर्ग था। इस ब्राह्मण के कारण वहां ऋद्धि की वर्षा हो रही थी। इस ब्राह्मण की मौजूदगी ने उस जंगल को महल बना दिया था।
और तुम समझ लेना। अगर तुम्हारे भीतर आनंद नहीं है, तो तुम महलों में
भी रहो, तो जंगल में रहोगे। और तुम्हारे भीतर आनंद है, तो तुम जहां रहो, वहीं महल है। वहीं महल खड़ा हो जाएगा। वहीं महल निर्मित हो जाएगा। तुम जहां रहो, जैसे रहो, वही महल है।
ख्याल रखना, लोग कहते हैं कि जो आदमी पाप करेगा, उसे नर्क भेजा जाएगा।
और जो पुण्य करेगा, उसे स्वर्ग भेजा जाएगा। यह गलत बात है। सच बात कुछ और है। जो पाप करता है, वह नर्क में जीता है। भेजा जाएगा--ऐसा नहीं--भविष्य में। वह नर्क में जीता है--अभी और यहीं। और जो पुण्य करता है, वह स्वर्ग में जीता है--अभी और यहीं।
पाप और पुण्य प्रतिपल फल लाते हैं। कोई सरकारी काम थोड़े ही है कि फाइलों को सरकने में इतना समय लगे! कि तुमने पाप किया था पिछले जन्म में और अब तुम्हें फल मिलेगा! यह तुमने कोई भारतीय सरकार की व्यवस्था समझी है! कि फाइलें सरकती हैं एक टेबल से दूसरी टेबल। और सरकती ही रहती हैं और कभी कोई परिणाम नहीं होता।
तत्क्षण है फल। धर्म नगद है। यहां उधार कुछ भी नहीं है।
दूसरा सूत्रः

चन्दं"व विमलं सुद्धं विप्पसन्नमनाविलं।
नन्दीभवपरिक्खीणं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं।।

"जो चंद्रमा की भांति विमल, शुद्ध, स्वच्छ और निर्मल है तथा जिसकी सभी
जन्मों की तृष्णा नष्ट हो गयी है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूं।"

हित्त्वा मानुसकं योगं दिब्बं योगं उपच्चगा।
सब्बयोगविसंयुत्तं तमहं बू्रमि ब्राह्मणं।।

"जो मानुषी बंधनों को छोड़ दिव्य बंधनों को भी छोड़ चुका है, जो सभी बंधनों से विमुक्त है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूं।"

पुब्बेनिवासं यो वेदि सग्गापायंच पस्सति।
अथो जातिखयं पत्तो अभिंंवासितो मुनि।

सब्बवोसितवोसानं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं।।

"जो पूर्व-जन्म को जानता है, जिसने स्वर्ग और अगति को देख लिया है, जिसका पूर्व-जन्म क्षीण हो चुका है, जिसकी प्रज्ञा पूर्ण हो चुकी है, जिसने अपना सब कुछ पूरा कर लिया है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूं।"
इन सूत्रों का आधार, इनकी पृष्ठभूमि, द्वितीय दृश्यः

राजगृह में चंदाभ नामक एक ब्राह्मण था। वह पूर्व-जन्म में भगवान कश्यप बुद्ध के चैत्य में चंदन लगाया करता था, जिसके पुण्य से उसकी नाभि से चंद्र-मंडल सदृश आभा निकलती थी। कुछ पाखंडी ब्राह्मण उसे नगर-नगर लेकर घूमते थे और लोगों को लूटते थे। वे कहते थेः जो इसके शरीर को स्पर्श करता है, वह जो चाहता है, पाता है।
एक समय जब भगवान जेतवन में विहरते थे, तब उसे लिए हुए वे ब्राह्मण श्रावस्ती पहुंचे। संध्या समय था और सारा श्रावस्ती नगर भगवान के दर्शन और धर्मश्रवण के लिए जेतवन की ओर जा रहा था। उन ब्राह्मणों ने लोगों को रोककर चंदाभ का चमत्कार दिखाना चाहा। लेकिन कोई रुकना ही नहीं चाहता था। फिर वे ब्राह्मण भी शास्ता के अनुभाव को देखने के लिए चंदाभ को लेकर जेतवन गए।
भगवान के पास जाते ही चंदाभ की आभा लुप्त हो गयी। वह तो अति दुखित हुआ
और चमत्कृत भी। वह समझा कि शास्ता आभा लुप्त करने का कोई मंत्र जानते हैं। अतः भगवान से बोलाः हे गौतम! मुझे भी आभा को लुप्त करने का मंत्र दीजिए और उस मंत्र को काटने की विधि भी बताइए। मैं सदा-सदा के लिए आपका दास हो जाऊंगा।
भगवान ने कहाः मैं प्रव्रजित होने पर ही मंत्र दे सकता हूं। चंदाभ भगवान की बात सुनकर प्रव्रजित हो, थोड़े ही समय में ध्यानस्थ हो, अर्हत्व को पा लिया। वह तो भूल ही गया मंत्र की बात। महामंत्र मिले, तो कौन न भूल जाए? जब ब्राह्मण उसे लेने के लिए वापस आए, तो वह हंसा और बोलाः तुम लोग जाओ। अब मैं नहीं जाने वाला हो गया हूं। मेरा तो आना-जाना सब मिट गया है। ब्राह्मणों को तो बात समझ में ही न आयी कि यह क्या कह रहा है! ब्राह्मणों को तो छोड़ दें, भिक्षुओं को भी यह बात समझ में न आयी कि यह क्या कह रहा है!
भिक्षुओं ने जाकर भगवान से कहाः भंते! यह चंदाभ भिक्षु अभी नया-नया आया है और अर्हत्व का दावा कर रहा है! और कहता है, मैं आने-जाने से मुक्त हो गया हूं। और इस तरह निरर्थक, सरासर झूठ बोल रहा है। आप इसे चेताइए। शास्ता ने कहाः भिक्षुओ! मेरे पुत्र की तृष्णा क्षीण हो गयी है। और वह
जो कह रहा है, वह पूर्णतः सत्य है। वह ब्राह्मणत्व को उपलब्ध हो गया है।
तब उन्होंने ये सूत्र कहे थे।
यह छोटी सी कहानी समझ लें।
यह चंदाभ नाम का ब्राह्मण किसी अतीत जन्म में भगवान कश्यप बुद्ध के चैत्य में चंदन लगाया करता था।
कुछ और बड़ा कृत्य नहीं था पीछे। लेकिन बड़े भाव से चंदन लगाया होगा कश्यप बुद्ध के चैत्य में, उनकी मूर्ति पर। असली सवाल भाव का है। बड़ी श्रद्धा से लगाया होगा। तब से ही इसमें एक तरह की आभा आ गयी थी। जहां श्रद्धा है, वहां आभा है। जहां श्रद्धा है, वहां जादू है।
उस पुण्य के कारण, वह जो कश्यप बुद्ध के मंदिर में चंदन लगाने का जो पुण्य था, वह जो आनंद से इसने चंदन लगाया था, वह जो आनंद से नाचा होगा, पूजा की होगी, प्रार्थना की होगी, वह इसके भीतर आभा बन गयी थी। ज्योतिर्मय हो कर इसके भीतर जग गयी थी।
कुछ पाखंडी ब्राह्मण उसे साथ लेकर नगर-नगर घूमते थे। क्योंकि वह बड़ा चमत्कारी आदमी था। उसकी नाभि में से रोशनी निकलती थी। वे कपड़ा उघाड़-उघाड़कर लोगों को उसकी नाभि दिखाते थे। नाभि देखकर लोग हैरान हो जाते थे। और उन्होंने इसमें एक धंधा बना रखा था। वे कहते थेः जो इसके शरीर को

स्पर्श करता है, वह जो चाहता है, पाता है। और जब तक लोग बहुत धन दान न करते, वे उसका शरीर स्पर्श नहीं करने देते थे। ऐसे वे काफी लोगों को लूट रहे थे।
भगवान जेतवन में विहरते थे, तब वे उसे लिए हुए श्रावस्ती पहुंचे। जेतवन श्रावस्ती में था। संध्या समय था और सारा नगर भगवान के दर्शन और धर्मश्रवण के लिए जेतवन की ओर जा रहा था। उन ब्राह्मणों ने लोगों को रोककर चंदाभ का चमत्कार दिखाना चाहा। लेकिन कोई रुकना नहीं चाहता था।
जिसने भगवान को देखा हो, जिसने किसी बुद्धपुरुष को देखा हो, उसके लिए सारी दुनिया के चमत्कार फीके हो गए। जिसने साक्षात प्रकाश देखा हो, उसके लिए किसी की नाभि में से थोड़ी-बहुत रोशनी निकल रही है--इसका कोई अर्थ नहीं है। बच्चों जैसी बात है। इस तरह की बातों में बच्चे ही उत्सुक हो सकते हैं।
कोई रुका नहीं। ब्राह्मण बड़े हैरान हुए। ऐसा तो कभी न हुआ था। उनके अनुभव में न आया था। जहां गए थे, वहीं भीड़ लग जाती थी। तो उन्हें लगा कि जरूर इससे भी बड़ा चमत्कार कहीं बुद्ध में घट रहा होगा, तभी लोग भागे जा रहे हैं। तो बुद्ध का अनुभाव देखने के लिए--कि कौन है यह बुद्ध! और क्या इसका प्रभाव है! क्या इसका चमत्कार है! वे ब्राह्मण चंदाभ को लेकर बुद्ध के पास पहुंचे। भगवान के सामने जाते ही चंदाभ की आभा लुप्त हो गयी।
हो ही जाएगी। क्योंकि जो आभा थी, वह ऐसी ही थी, जैसे कोई दीया जलाए सूरज के सामने। सूरज के सामने दीए की रोशनी खो जाए, इसमें आश्चर्य क्या! दीए की तो बात और; सुबह सूरज निकलता है, आकाश के तारे खो जाते हैं। अंधेरे में चमकते हैं; रोशनी में खो जाते हैं। सूरज की विराट रोशनी तारों की रोशनी छीन लेती है। तारे कहीं जाते नहीं; जहां हैं, वहीं हैं। मगर दिन में दिखायी नहीं पड़ते। जब सूरज ढलेगा, तब फिर दिखायी पड़ने लगेंगे।
यह चंदाभ की जो आभा थी, मिट्टी का छोटा सा दीया था। बुद्ध की जो आभा थी, जैसे महासूर्य की आभा।
लेकिन चंदाभ तो बेचारा यही समझा कि जरूर कोई मंत्र जानते होंगे। मेरी आभा को मिटा दिया। दुखी भी हुआ, चमत्कृत भी। उसने कहाः हे गौतम! मुझे भी आभा को लुप्त करने का मंत्र दीजिए। और उस मंत्र को काटने की विधि भी बताइए। तो मैं सदा-सदा के लिए आपका दास हो जाऊंगा, आपकी गुलामी करूंगा। बुद्धपुरुष कभी मौका नहीं चूकते। कोई भी मौका मिले, किसी भी बहाने मौका मिले, संन्यास का प्रसाद अगर बांटने का अवसर हो, तो वे जरूरत बांटते हैं। बुद्ध ने यही मौका पकड़ लिया। इसी निमित्त चलो।
उन्होंने कहाः देख, मंत्र दूंगा--मंत्र-वंत्र है नहीं कुछ--मंत्र दूंगा। लेकिन पहले तू संन्यस्त हो जा।
मंत्र के लोभ में वह आदमी संन्यस्त हुआ।
लेकिन बुद्ध ने देखा होगा कि इस आदमी में क्षमता तो पड़ी है, बीज तो पड़ा है। वह जो कश्यप बुद्ध के मंदिर में चंदन लगाया था; वह जो भावदशा इसकी सघन हुई थी, वह आज भी मौजूद है। तड़फती है मुक्त होने को। उस पर ही दया की होगी।
यह आदमी ऊपर से तो भूल-भाल चुका है। किस जन्म की बात! कहां की बात! किसको याद है! इस आदमी की बुद्धि में तो कुछ भी नहीं है। सब भूल-भाल गया है। इसकी स्मृति में कोई बात नहीं रह गयी है। इसे सुरति नहीं है। लेकिन इसके भीतर ज्योति पड़ी है।
कल एक युवक नार्वे से आया। मैंने लाख उपाय किया कि वह संन्यस्त हो जाए, क्योंकि उसके हृदय को देखूं, तो मुझे लगे कि उसे संन्यस्त हो ही जाना चाहिए। और उसके विचारों को देखूं, तो लगे कि उसकी हिम्मत नहीं है। सब तरह समझाया-बुझाया उसे कि वह संन्यस्त हो जाए। तरंग उसमें भी आ जाती थी। बीच-बीच में लगने लगता था कि ठीक। हृदय जोर मारने लगता; बुद्धि थोड़ी क्षीण हो जाती। लेकिन फिर वह चौंक जाता।
दो हिस्सों में बंटा है। सिर कुछ कह रहा है। हृदय कुछ कह रहा है। और हृदय की आवाज बड़ी धीमी होती है; मुश्किल से सुनायी पड़ती है। क्योंकि हमने सदियों से सुनी नहीं है, तो सुनायी कैसे पड़े! आदत ही चूक गयी है। खोपड़ी में जो चलता है, वह हमें साफ-साफ दिखायी पड़ता है। हम वहीं बस गए हैं। हमने हृदय में जाना छोड़ दिया है।

तो यह आदमी तो चाहता था मंत्र। मंत्र के लोभ में संन्यस्त हुआ। इसे पता नहीं कि बुद्धों के हाथ में तुम अंगुली दे दो, तो वे जल्दी ही पहुंचा पकड़ लेंगे! पकड़े गए कि पकड़े गए। फिर छूटना मुश्किल है।
बुद्ध ने उसको समझाया होगा कि अब तू ध्यान कर--तो मंत्र। समाधि लगा--तो मंत्र! ऐसे धीरे-धीरे कदम-कदम उसको समाधि में पहुंचा दिया। जब वह समाधिस्थ हो गया, तो वह तो भूल ही गया मंत्र की बात। कौन न भूल जाएगा! महामंत्र मिल गया। अब तो उसे खुद भी दिखायी पड़ गया होगा कि वह बात ही मूढ़ता की थी कि मैं मंत्र मांगता था। न तो उन्होंने काटा था, न कोई मंत्र था। बड़ी रोशनी के सामने आकर छोटी रोशनी अपने आप लुप्त हो गयी थी। किसी ने कुछ किया नहीं था। बुद्ध कुछ करते नहीं हैं। बुद्ध कोई मदारी नहीं हैं।
जब ब्राह्मण उसे लेने के लिए आए, तो वह हंसा और बोला कि तुम लोग जाओ। मैं तो अब नहीं जाने वाला हो गया हूं। मैं तो ऐसी जगह ठहर गया हूं, जहां से जाना इत्यादि होता ही नहीं। मैं समाधिस्थ हो गया हूं।
जाना कैसे हो? जाना तो विचार के घोड़ों पर होता है। जाना तो वासनाओं पर होता है। जाना तो तृष्णाओं के सहारे होता है। वे सब तो गए सहारे। अब मेरी कोई दौड़ नहीं, क्योंकि मेरी कोई चाह नहीं। अब मुझे कहीं जाना नहीं, कहीं पहुंचना नहीं, क्योंकि मुझे जहां पहुंचना था, वहां मैं पहुंच गया हूं। मेरा तो आना-जाना सब मिट गया। आवागमन मिट गया। तुम कहां की बातें कर रहे हो! अब तो इस जमीन पर भी मैं लौटकर आने वाला नहीं। मुझे महामंत्र मिल गया है।
ब्राह्मण तो चौंके ही चौंके कि यह क्या हो गया! लेकिन भिक्षु भी चौंके, जो ज्यादा सोचने जैसी बात है। आदमी इतना राजनैतिक प्राणी है! वह यह बर्दाश्त नहीं कर सकता। धार्मिक आदमी भी, भिक्षु भी ईर्ष्या से भर गए होंगे कि यह अभी-अभी तो आया चंदाभ; और अभी-अभी ज्ञान को उपलब्ध हो गया! और हम इतने दिन से बैठे हैं! हम कपास ही ओंट रहे हैं। और यह आए देर नहीं हुई; अभी नया-नया सिक्खड़, सिद्ध होने का दावा कर रहा है!
उन्होंने जाकर बुद्ध को कहा कि भंते! चंदाभ भिक्षु अर्हत्व होने का दावा कर रहा है। और इस तरह झूठ बोल रहा है। आप उसे चेताइए।
लेकिन बुद्ध ने चंदाभ को नहीं चेताया। चेताया उन भिक्षुओं को, कि भिक्षुओ! तुम चेतो। तुम ईर्ष्या से भरे हो। तुम देख नहीं रहे हो जो घट रहा है। तुम अहंकार से भरे हो। मेरे पुत्र की तृष्णा क्षीण हो गयी है। और वह जो कर रहा है, पूर्णतः सत्य है। वह जो कह रहा है, पूर्णतः सत्य है। वह ब्राह्मणत्व को उपलब्ध हो गया है।
"जो चंद्रमा की भांति विमल, शुद्ध, स्वच्छ और निर्मल है तथा जिसकी सभी जन्मों की तृष्णा नष्ट हो गयी, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूं।"
और चंदाभ ब्राह्मण हो गया है भिक्षुओ। वह ठीक चंद्रमा की भांति अब हुआ। तब तो नाम ही था। तब जो जरा सी ज्योति थी उसकी नाभि में। अब ज्योति सब तरफ फैल गयी। अब वह ज्योति स्वरूप हो गया। अब चंदाभ चंद्रमा ही हो गया है। तुम फिर से देखो भिक्षुओ! उसमें तृष्णा नहीं बची। उसमें मांग नहीं रही। उसकी वासना भस्मीभूत हो गयी है। वह ब्राह्मण हो गया है।
"जो मानुषी बंधनों को छोड़ दिव्य बंधनों को भी छोड़ चुका है... ।"
उसने मनुष्यों से ही बंधन नहीं छोड़ दिए हैं, उसने दिव्यता से भी बंधन छोड़ दिए हैं। आया था मंत्र मांगने, अब वह कुछ भी नहीं मांगता; मोक्ष भी नहीं मांगता है।
"सभी बंधनों से जो विमुक्त है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूं।"
"जो पूर्व-जन्म को जानता है... ।"
और अब उसे याद आ गयी है कि वह जो आभा उसकी नाभि में थी--क्यों थी। उसे याद आ गयी, कश्यप महाबुद्ध के चैत्य में चंदन लगाया था आनंद से। उतनी सी छोटी बात भी इतना फल लायी थी! उसे याद आ गए हैं अपने सब पिछले जीवन के रास्ते। और चूंकि उनकी याद आ गयी है, इसलिए अब उसके आगे के सब रास्ते टूट गए हैं।

अब उसने देख लिया कि मैं व्यर्थ ही भटक रहा था। बाहर जो भटकता है, व्यर्थ भटकता है। जन्मों-जन्मों यही वासनाएं, यही कामनाएं, यही तृष्णाएं, और इन्हीं-इन्हीं के सहारे दौड़ता रहा और कहीं नहीं पहुंचा।
अब मेरा पुत्र पहुंच गया है। अब वह वहां पहुंच गया है, जहां जन्म-मरण शांत हो जाते हैं। उसने स्वर्ग-नर्क का सब रहस्य जान लिया है। उसका पूर्व-जन्म क्षीण हो गया है। अब वह दुबारा नहीं आएगा। वह अनागामी हो गया है। "जिसकी प्रज्ञा पूर्ण हो चुकी है, जिसने अपना सब कुछ पूरा कर लिया है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूं।"
बुद्ध ने ब्राह्मण की जो परिभाषा की, वही भगवत्ता की परिभाषा है। बुद्ध ने ब्राह्मण को जैसी ऊंचाई दी, वैसी किसी ने कभी नहीं दी थी। ब्राह्मणों ने भी नहीं। ब्राह्मणों ने तो ब्राह्मण शब्द को बहुत क्षुद्र बना दिया--जन्म से जोड़ दिया। बुद्ध ने आत्म-अनुभव से जोड़ा। बुद्ध ने निर्वाण से जोड़ा।
वह जो मुक्त है, वह जो शून्य है, वह जो खो गया है बूंद की तरह सागर में
और सागर हो गया है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूं--ऐसा बुद्ध ने कहा।
मैंने तुमसे कहाः सभी लोग शूद्र की तरह पैदा होते हैं। और दुर्भाग्य
से अधिक लोग शूद्र की तरह ही मरते हैं। ध्यान रखना, फिर दोहराता हूं--सभी लोग शूद्र की तरह पैदा होते हैं। ब्राह्मण की तरह कोई पैदा नहीं होता। क्योंकि ब्राह्मणत्व उपलब्ध करना होता है; पैदा नहीं होता कोई। ब्राह्मणत्व अर्जन करना होता है। ब्राह्मणत्व साधना का फल है।
शूद्र की तरह सब पैदा होते हैं, क्योंकि सभी शरीर के साथ तादात्म्य में जुड़े पैदा होते हैं। शूद्र हैं, इसीलिए पैदा होते हैं। नहीं तो पैदा ही क्यों होते? शूद्रता के कारण पैदा होते हैं। क्योंकि अभी शरीर से मोह नहीं गया। इसलिए पुराना शरीर छूट गया; तत्क्षण जल्दी से नया शरीर ले लिया।
राग बना है, मोह बना है, तृष्णा बनी है--फिर नए गर्भ में प्रविष्ट हो गए। फिर पैदा हो गए।
तुम्हें कोई पैदा नहीं कर रहा है। तुम अपनी ही वासना से पैदा होते हो।
मरते वक्त जब तुम घबड़ाए होते हो, और जोर से पकड़ते हो शरीर को, और चीखते हो और चिल्लाते हो; और कहते होः बचाओ मुझे। थोड़ी देर बचा लो। तब तुम नए जन्म का इंतजाम कर रहे हो।
जो मरते वक्त निश्चिंत मर जाता है; जो कहता हैः धन्य है! यह जीवन समाप्त हुआ। धन्य--कि इस शरीर से मुक्ति हुई। धन्य--कि इस क्षणभंगुर से छूटे। जो इस विश्राम में विदा हो जाता है, उसका फिर कोई जन्म नहीं है।
तुम जन्म का बीज अपनी मृत्यु में बोते हो। जब तुम मरते हो, तब तुम नए जन्म का बीज बोते हो। और तुम जिस तरह की वासना करते हो, उस तरह के जन्म का बीज बोते हो। तुम्हारी वासना ही देह धरेगी। तुम्हारी वासना ही गर्भ लेगी। बुद्ध ने कहा हैः तुम नहीं जन्मते, तुम्हारी वासना जन्मती है। तो जब वासना नहीं, तब तुम्हारा जन्म समाप्त हो जाता है।
सब शूद्र की तरह पैदा होते हैं। लेकिन शूद्र की तरह मरने की कोई जरूरत नहीं है। स्मरणपूर्वक कोई जीए, होशपूर्वक कोई जीए; एकांत में, मौन और ध्यान में कोई जीए, तो ब्राह्मण की तरह मर सकता है। और जो ब्राह्मण की तरह मरा, वह संसार में नहीं लौटता है; वह ब्रह्म में विलीन हो जाता है।
ये सारे धम्मपद के सूत्र, कैसे कोई ब्रह्म को उपलब्ध कर ले, कैसे कोई ब्राह्मण हो जाए, इसके ही सूत्र थे। धम्मपद का अर्थ होता हैः ब्राह्मण तक पहुंचा देने वाला मार्ग; धर्म का मार्ग, जो तुम्हें ब्राह्मणत्व तक पहुंचा दे।
सुनकर ही समाप्त मत कर देना। जीना। इंचभर जीना, हजार मीलों के सोचने
से बेहतर है। क्षणभर जीना, शाश्वत, हजारों वर्षों तक सोचने से बेहतर है।
कणभर जीना, हिमालय जैसे सोचने से बेहतर है, मूल्यवान है।
जीओ--जागो और जीओ!
आज इतना ही।

एस धम्मो सनंतनो, भाग 12
एक सौ बाईस प्रवचन

एस धम्मो सनंतनो

पहला प्रश्नः यह मोह क्या है? उससे इतना दुख पैदा होता है, फिर भी वह छूटता क्यों नहीं है?

मनुष्य शून्य होने की बजाय दुख से भरा होना ज्यादा पसंद करता है। भरा होना ज्यादा पसंद करता है। खाली होने से भयभीत है। चाहे फिर दुख से ही क्यों न भरा हो। सुख न मिले, तो कोई बात नहीं है। दुख ही सही। लेकिन कुछ पकड़ने को चाहिए। कोई सहारा चाहिए।
दुख भी न हो, तो तुम शून्य में खोने लगोगे। सुख का किनारा तो दूर मालूम पड़ता है, दुख का किनारा पास। वहीं तुम खड़े हो। जो पास है, उसी को पकड़ लेते हो कि कहीं खो न जाओ। कहीं इस अपार में लीन न हो जाओ!
कहते हैं नः डूबते को तिनके का सहारा। दुख तुम्हारा तिनका है।
बचाने योग्य कुछ भी नहीं है। दुख ही पा रहे हो। लेकिन कुछ तो पा रहे हो! ना-कुछ से कुछ सदा बेहतर! इसलिए जान-जानकर भी आदमी दुख को पकड़ लेता है। तुम जरा उस दिन की बात सोचो, जब तुम्हारे भीतर कोई दुख न बचे; कोई चिंता न हो--तुम घबड़ा जाओगे। तुम सह न पाओगे। तुम उद्विग्न हो उठोगे। तुम बेचैन हो जाओगे। तुम कोई न कोई दुख रच लोगे। तुम जल्दी ही कोई दुख पैदा कर लोगे। अगर वास्तविक न होगा, तो काल्पनिक पैदा कर लोगे। बिना दुख के तुम न रह सकोगे।
इसलिए भी कि बिना दुख के तुम होते ही नहीं। मैं ही दुख पर जीता है। जहां दुख गया, मैं गया। अहंकार दुख का भोजन करता है। दुख ही अहंकार में खून बनकर बहता है। हड्डी-मांस-मज्जा बनता है। जहां दुख नहीं, वहां तुम नहीं। इसलिए भी तुम दुख को पकड़ते हो कि इसी के सहारे तो तुम हो।
तुमने कभी ख्याल कियाः तुम अपने दुखों को बढ़ा-चढ़ाकर कहते हो! जितने होते हैं, उनसे बहुत बड़ा करके कहते हो। क्यों? दुख को बढ़ाकर कहने में क्या सुख होता होगा?
एक सुख होता है कि बड़े दुख के साथ अहंकार बड़ा होता है। छोटी-मोटी बीमारियां छोटे-मोटे लोगों को होती हैं। बड़ी बीमारियां बड़े लोगों को होती हैं! छोटे-मोटे दुख, दो कौड़ी के दुख कोई भी भोग लेता है। तुम महंगे दुख भोगते हो। तुम्हारे दुख बहुत बड़े हैं। तुम दुखों का पहाड़ ढोते हो। तुम कोई छोटे-मोटे दुख से नहीं दबे हो। तुम पर सारी दुनिया की चिंताओं का बोझ है। तुम अपने दुखों को बड़ा करके बताते हो। तुम बढ़ा-चढ़ाकर बात करते हो। अगर कोई तुम्हारे दुख को छोटा करने की कोशिश करे, तो तुम उससे नाराज होते हो। तुम उसे कभी क्षमा नहीं करते!
आदमी बहुत अदभुत है। तुम अपने दुख की कथा कह रहे हो और कोई उदास होकर सुने, या उपेक्षा करे, तो तुम्हें चोट लगती है; कि मैं अपने दुख कह रहा हूं और तुम सुन नहीं रहे हो! तुम्हें चोट इस बात से लगती है कि तुम मेरे अहंकार को स्वीकार नहीं कर रहे हो! मैं इतने दुखों से दबा जा रहा हूं; तुम्हें इतनी भी फुर्सत नहीं?
दुख के द्वारा तुम दूसरों का ध्यान आकर्षित करते हो। और अक्सर यह तरकीब मन में बैठ जाती है--गहरी बैठ जाती है--कि दुख से ध्यान आकर्षित होता है। बचपन से ही सीख लेते हैं। छोटे-छोटे बच्चे सीख लेते हैं! जब वे चाहते हैं, मां का ध्यान मिले, पिता का ध्यान मिले, लेट जाएंगे बिस्तर पर कि सिर में दर्द है! स्त्रियों ने तो सारी दुनिया में यह कला सीख रखी है।
मैं अनेक घरों में मेहमान होता था। मैं चकित होकर देखता था कि पत्नी ठीक थी, प्रसन्न थी; मुझसे ठीक-ठीक बात कर रही थी। उसके पति आए और वह लेट गयी! उसके सिर में दर्द है! पति से ध्यान को पाने का यही उपाय है। सिर में दर्द हो, तो पति पास बैठता है। सिर में दर्द न हो, तो कौन किसके पास बैठता है? और हजार काम हैं!

और एक बार तुमने यह तरकीब सीख ली कि दुख से ध्यान आकर्षित होता है, तो आदमी कुछ भी कर सकता है। तुम्हारे ऋषि-मुनि जो उपवास करके अपने को दुख दे रहे हैं, इसी तर्क का उपयोग कर रहे हैं जो स्त्रियां हर घर में कर रही हैं; बच्चे हर घर में कर रहे हैं।
किसी ने तीस दिन का उपवास कर लिया है; और तुम चले दर्शन करने! उसने दुख पैदा कर लिया है; उसने तुम्हारे ध्यान को आकर्षित कर लिया है। अब तो जाना ही होगा! ऐसे और हजार काम थे। दुकान थी, बाजार था, लेकिन अब मुनि महाराज ने तीस दिन का उपवास कर लिया है, तो अब तो जाना ही होगा! भीड़ बढ़ने लगती है। लोग कांटों पर लेटे हैं। सिर्फ इसीलिए कि कांटों पर लेटें, तभी तुम्हारी नजरें उन पर पड़ती हैं। लोग अपने को सता रहे हैं।
धर्म के नाम पर लोग हजार तरह की पीड़ाएं अपने को दे रहे हैं; घाव बना रहे हैं। जब तक तुम्हारे मुनि महाराज बिल्कुल सूखकर हड्डी-हड्डी न हो जाएं, जब तक तुम्हें थोड़ा उन पर मांस दिखायी पड़े, तब तक तुम्हें शक रहता है कि अभी मजा कर रहे हैं! अभी हड्डी पर मांस है। जब मांस बिल्कुल चला जाए, जब वे बिल्कुल अस्थि-पंजर हो जाएं, तुम कहते होः हां, यह है तपस्वी का रूप! जब उनका चेहरा पीला पड़ जाए और खून बिल्कुल खो जाए... ।
एक बार कुछ लोग अपने एक मुनि को मेरे पास ले आए थे। उनकी हालत खराब थी। लेकिन भक्त मुझसे कहकर गए थे कि उनके चेहरे पर ऐसी आभा है, जैसे सोने की! वहां पीतल भी नहीं था। वह सिर्फ पीलापन था। मैंने उनसे कहा कि तुम पागल हो। तुम इस आदमी को मार डालोगे। इसका चेहरा सिर्फ पीला हो गया है; जर्द हो गया है। और तुम कह रहे हो, यह आभा है अध्यात्म की! यह कोई भी भूखे मरने वाले आदमी के चेहरे पर हो जाएगी।
दुख जल्दी से लोगों का ध्यान आकर्षित करवाता है।
तुमने एक बात ख्याल की! अगर तुम सुखी हो, तो लोग तुमसे नाराज हो जाते हैं! तुम जब दुखी होते हो, तब तुमसे राजी होते हैं। तुम जब सुखी हो, सब तुम्हारे दुश्मन हो जाते हैं। सुखी आदमी के सब दुश्मन। दुखी आदमी के सब संगी-साथी। सहानुभूति प्रगट करने लगते हैं।
तुम एक बड़ा मकान बना लो; सारा गांव तुम्हारा दुश्मन। तुम्हारे मकान में आग लग जाए, सारा गांव तुम्हारे लिए आंसू बहाता है। तुमने यह मजा देखा! जो तुम्हारे दुख में आंसू बहा रहे हैं, इन्होंने कभी तुम्हारे सुख में खुशी नहीं मनायी थी। इनके आंसू झूठे हैं। ये मजा ले रहे हैं। ये कह रहे हैंः चलो, अच्छा हुआ। तो जल गया न! हम तो पहले से ही जानते थे कि यह होगा। पाप का यह फल होता ही है।
जब तुमने बड़ा मकान बनाया था, इनमें से कोई नहीं आया था कहने कि हम खुश हैं; कि हम बड़े आनंदित हैं कि तुमने बड़ा मकान बना लिया।
जो तुम्हारे सुख में सुखी नहीं हुआ, वह तुम्हारे दुख में दुखी कैसे हो सकता है? लेकिन सहानुभूति बताने का मजा है। और सहानुभूति लेने का भी मजा है। सहानुभूति बताने वाले को क्या मजा मिलता है? उसको मजा मिलता है कि आज मैं उस हालत में हूं, जहां सहानुभूति बताता हूं। तुम उस हालत में हो, जहां सहानुभूति बतायी जाती है। आज तुम गिरे हो चारों खाने चित्त; जमीन पर पड़े हो। आज मुझे मौका है कि तुम्हारे घाव सहलाऊं, मलहम-पट्टी करूं। आज मुझे मौका है कि तुम्हें बताऊं कि मेरी हालत तुमसे बेहतर है।
जब कोई तुम्हारे आंसू पोंछता है, तो जरा उसकी आंखों में गौर से देखना।
वह खुश हो रहा है। वह यह खुश हो रहा है कि चलो, एक तो मौका मिला। नहीं तो अपनी ही आंखों के आंसू दूसरे पोंछते रहे जिंदगीभर। आज हम किसी और के आंसू पोंछ रहे हैं! और कम से कम इतना अच्छा है कि हमारी आंख में आंसू नहीं हैं। किसी और की आंखों में आंसू हैं। हम पोंछ रहे हैं!
लोग जब दुख में सहानुभूति दिखाते हैं, तो मजा ले रहे हैं। वह मजा रुग्ण है। वह स्वस्थ-चित्त का लक्षण नहीं है। और तुम भी दुखी होकर जो सहानुभूति पाने का उपाय कर रहे हो, वह भी रुग्ण दशा है।
यह पृथ्वी रोगियों से भरी है; मानसिक रोगियों से भरी है। यहां स्वस्थ आदमी खोजना मुश्किल है।

पूछा है तुमनेः "मोह क्या है? और इतना दुख पैदा होता है, फिर भी वह छूटता नहीं है!"
पहली तो बातः तुम्हें अभी ठीक-ठीक दिखायी नहीं पड़ा होगा कि मोह से दुख पैदा होता है। तुमने सुन ली होगी बुद्ध की बात, कि किसी महावीर की, कि किसी कबीर की, कि किसी मोहम्मद की। तुमने बात सुन ली होगी कि मोह से दुख पैदा होता है। अभी तुम्हें समझ नहीं पड़ी है। सुनी जरूर है; अभी गुनी नहीं है। विचार तुम्हारे मन में पड़ गया है। विचार के कारण प्रश्न उठने लगा है। लेकिन यह तुम्हारा अपना प्रामाणिक अनुभव नहीं है। यह तुमने अपने जीवन की कठिनाइयों से नहीं जाना है। तुमने इसे अपने अनुभव की कसौटी पर नहीं कसा है--कि मोह दुख लाता है। अगर तुम्हें यह दिखायी पड़ जाए, तो तुम कैसे पकड़ोगे!
कोई आदमी मेरे पास नहीं आता और कहता कि यह बिच्छू है, यह मेरे हाथ में काटता है। अब मैं इसको छोडूं कैसे? कोई पूछेगा? कि बिच्छू है; काटता है; दुख देता है; मगर छोड़ा नहीं जाता! जैसे ही बिच्छू काटेगा, तुम फेंक दोगे उसे। तुम पूछने नहीं जाओगे किसी से।
लेकिन तुम पूछ रहे हो कि "मोह दुख देता है, फिर भी छूटता क्यों नहीं?" इसका कारण साफ है। भीतर तो तुम जानते हो कि मोह में मजा है। ये बुद्धपुरुष हैं जो तुम्हारे चारों तरफ शोरगुल मचाए रहते हैं; जो कहते हैं कि मोह में दुख है। इनकी बात तुम टाल नहीं सकते। क्योंकि ये आदमी प्रामाणिक हैं। इनकी बात को तुम इनकार नहीं कर सकते, क्योंकि इनका जीवन तुमसे बहुत ज्यादा, अनंतगुना आनंदपूर्ण है। इनका तर्क प्रगाढ़ है। इनकी प्रतिभा वजनी है। ये जब कुछ कहते हैं, तो उस कहने के पीछे इनका पूरा बल होता है; इनकी पूरी जीवन-ज्योति होती है।
तो इनकी बात को तुम इनकार नहीं कर सकते। इनकार करने की तुम्हारे पास क्षमता नहीं है, साहस नहीं है। इनकार कैसे करोगे! तुम्हारे चेहरे पर दुख है; तुम्हारे प्राणों में दुख है। इनके चारों तरफ आनंद की वर्षा हो रही है। इनकार तुम किस मुंह से करोगे!
तो इनकार तो नहीं कर पाते कि आप गलत कहते हैं। मानना तो पड़ता है सिर झुकाकर, कि आप ठीक कहते होंगे। क्योंकि हम दुखी हैं और आप आनंदित हैं। लेकिन भीतर तुम्हारा गहरे से गहरा मन यही कहे चला जाता है कि छोड़ो, इन बातों में पड़ना मत। संसार में बड़ा सुख पड़ा है। शायद अभी नहीं मिला है, तो कल मिलेगा। आज तक नहीं मिला है, तो कल भी नहीं मिलेगा--यह कौन कह सकता है? खोदो थोड़ा और। शायद जलस्रोत मिल जाए। थोड़ी मेहनत और। जल्दी थको मत। दिल्ली ज्यादा दूर नहीं है। थोड़े और चलो। इतने चले हो, थोड़ा और चल लो। इतनी जिंदगी गंवायी है, थोड़ी और दांव पर लगाकर देख लो। और फिर नहीं होगा कुछ, तो अंत में तो धर्म है ही। लेकिन तुम धर्म को हमेशा अंत में रखते हो। तुम कहते होः नहीं होगा कुछ, तो अंततः तो परमात्मा का स्मरण करेंगे ही। मगर जब तक जीवन है, चेष्टा तो कर लें। इतने लोग दौड़ते हैं, तो गलत तो न दौड़ते होंगे! अब एक दूसरी बात ख्याल में लेना। जब तुम बुद्धपुरुषों के पास होते हो,
तो उनकी आंखें, उनका व्यक्तित्व, उनकी भाव-भंगिमा, उनके जीवन का प्रसाद, उनका संगीत--सब प्रमाण देता है कि वे ठीक हैं, तुम गलत हो।
लेकिन बुद्धपुरुष कितने हैं? कभी-कभी उनसे मिलना होता है। और मिलकर
भी कितने लोग उन्हें देख पाते हैं और पहचान पाते हैं? सुनकर भी कितने लोग उन्हें सुन पाते हैं? आंखें कहां हैं जो उन्हें देखें? और कान कहां हैं जो उन्हें सुनें? और हृदय कहां हैं, जो उन्हें अनुभव करें? और कभी-कभी विरल उनसे मिलना होता है।
जिनसे तुम्हारा रोज मिलना होता है सुबह से सांझ तक--करोड़ों-करोड़ों लोग--वे सब तुम जैसे ही दुखी हैं। और वे सब संसार में भागे जा रहे हैं; तृष्णा में दौड़े जा रहे हैं; मोह में, लोभ में। इनकी भीड़ भी प्रमाण बनती है कि जब इतने लोग जा रहे हैं इस संसार की तरफ, जब सब दिल्ली जा रहे हैं, तो गलती कैसे हो सकती है? इतने लोग गलत हो सकते हैं? इतने लोग नहीं गलत हो सकते।

अधिकतम लोग गलत होंगे? और इक्का-दुक्का आदमी कभी सही हो जाता है! यह बात जंचती नहीं।
इनमें बहुत समझदार हैं। पढ़े-लिखे हैं। बुद्धिमान हैं। प्रतिष्ठित हैं। इनमें सब तरह के लोग हैं। गरीब हैं, अमीर हैं। सब भागे जा रहे हैं! इतनी बड़ी भीड़ जब जा रही हो, तो फिर भीतर के स्वर सुगबुगाने लगते हैं। वे कहते हैंः एक कोशिश और कर लो। जहां सब जा रहे हैं, वहां कुछ होगा। नहीं तो इतने लोग अनंत-अनंत काल से उस तरफ जाते क्यों? अब तक रुक न जाते?
तो बुद्धपुरुष फिर... तुम्हारे भीतर उनका स्वर धीमा पड़ जाता है। भीड़
की आवाज फिर वजनी हो जाती है। और भीड़ की आवाज इसलिए वजनी हो जाती है कि अंतस्तल में तुम भीड़ से ही राजी हो, क्योंकि तुम भीड़ के हिस्से हो; तुम भीड़ हो।
बुद्धपुरुषों से तो तुम किसी-किसी क्षण में राजी होते हो। कभी। बड़ी मुश्किल से। एक क्षणभर को तालमेल बैठ जाता है। उनकी वीणा का छोटा सा स्वर तुम्हारे कानों में गूंज जाता है। मगर यह जो नक्कारखाना है, जिसमें भयंकर शोरगुल मच रहा है, यह तुम्हें चौबीस घंटे सुनायी पड़ता है।
तुम्हारे पिता मोह से भरे हैं; तुम्हारी मां मोह से भरी है; तुम्हारे भाई, तुम्हारी बहन, तुम्हारे शिक्षक, तुम्हारे धर्मगुरु--सब मोह से भरे हैं। सबको पकड़ है कि कुछ मिल जाए। और जो मिल जाता है, उसे पकड़कर रख लें। और जो नहीं मिला है, उसे भी खोज लें।
मोह का अर्थ क्या होता है? मोह का अर्थ होता है--मेरा, ममत्व; जो मुझे मिल गया है, वह छूट न जाए। लोभ का क्या अर्थ होता है? लोभ का अर्थ होता हैः जो मुझे अभी नहीं मिला है, वह मिले। और मोह का अर्थ होता हैः जो मुझे मिल गया है, वह मेरे पास टिके। ये दोनों एक ही पक्षी के दो पंख हैं। उस पक्षी का नाम हैः तृष्णा, वासना, कामना।
इन दो पंखों पर तृष्णा उड़ती है। जो है, उसे पकड़ रखूं; वह छूट न जाए। और
जो नहीं है, वह भी मेरी पकड़ में आ जाए। एक हाथ में, जो है, उसे सम्हाले रखूं; और एक हाथ उस पर फैलाता रहूं, जो मेरे पास नहीं है।
मोह लोभ की छाया है। क्योंकि अगर उसे पाना है, जो तुम्हें नहीं मिला है, तो उसको तो पकड़कर रखना ही होगा, जो तुम्हें मिल गया है। समझो कि तुम्हारे पास पांच लाख रुपये हैं और तुम पचास लाख चाहते हो। अब पचास लाख अगर चाहिए, तो ये पांच लाख खोने नहीं चाहिए। क्योंकि इन्हीं के सहारे पचास लाख मिल सकते हैं।
अगर ये खो गए, तो फिर पचास लाख का फैलाव नहीं हो सकेगा। धन धन को खींचता है। पद पद को खींचता है। जो तुम्हारे पास है, उसमें बढ़ती हो सकती है। लेकिन अगर इसमें कमती होती चली जाए, तो फिर जो तुम्हें नहीं मिला है, उसको पाने की आशा टूटने लगती है।
तो जो है, उस पर जमाकर पैर खड़े रहो। और जो नहीं है, उसकी तरफ हाथों को बढ़ाते रहो। इन्हीं दो के बीच आदमी खिंचा-खिंचा मर जाता है। ये दो पंख वासना के हैं; और ये ही दो पंख तुम्हें नर्क में उतार देते हैं। वासना तो उड़ती है इनके द्वारा, तुम भ्रष्ट हो जाते हो। तुम नष्ट हो जाते हो।
लेकिन यह अनुभव तुम्हारा अपना होना चाहिए। मैं क्या कहता हूं, इसकी फिकर मत करो। तुम्हारा अनुभव क्या कहता है--कुरेदो अपने अनुभव को। जब भी तुमने कुछ पकड़ना चाहा, तभी तुम दुखी हुए हो।
क्यों दुख आता है पकड़ने से? क्योंकि इस संसार में सब क्षणभंगुर है। पकड़ा कुछ जा नहीं सकता। और तुम पकड़ना चाहते हो। तुम प्रकृति के विपरीत चलते हो; हारते हो। हारने में दुख है। जैसे कोई आदमी नदी के धार के विपरीत तैरने लगे। तो शायद हाथ दो हाथ तैर भी जाए। लेकिन कितना तैर सकेगा? थकेगा। टूटेगा। विपरीत धार में कितनी देर तैरेगा? धार इस तरफ जा रही है; वह उलटा जा रहा है। थोड़ी ही देर में धार की विराट शक्ति उसकी शक्ति को छिन्न-भिन्न कर देगी। थकेगा। हारेगा। और जब थकेगा, हारेगा और पैर उखड़ने लगेंगे और नीचे की तरफ बहने लगेगा, तब विषाद घेरेगा कि हार गया; पराजित हो गया। जो चाहिए था, नहीं पा सका। जो मिलना था, नहीं मिल सका। तब चित्त में बड़ी ग्लानि होगी। आत्मघात के भाव उठेंगे। दुख गहन होगा।

जो जानता है, वह नदी की धार के साथ बहता है। वह कभी हारता ही नहीं; दुख
हो क्यों! वह नदी की धार को शत्रु नहीं मानता; मैत्री साधता है।
बुद्धत्व आता कैसे है? बुद्धत्व आता है स्वभाव के साथ मैत्री साधने से। जैसा है, जैसा होता है, उससे विपरीत की आकांक्षा मत करना, अन्यथा दुख होगा।
जानकर हम विपरीत की आकांक्षा करते हैं! तुम सोचते हो, जो मुझे मिला... । समझो कि तुम जवान हो, तो तुम सोचते हो, सदा जवान रह जाऊं। तुम क्या कह रहे हो? थोड़ा आंख उठाकर देखो। ऐसा हो सकता होता, तो सभी जवान रह गए होते। ऐसा हो सकता होता, तो कौन बूढ़ा हुआ होता--जानकर, सोचकर, विचारकर, राजी होकर? हर जवान रुक जाना चाहता है--कि बूढ़ा न हो जाऊं। लेकिन हर एक को बूढ़ा होना पड़ेगा। धार बही जाती है। यह पानी के बबूलों जैसा जीवन रोज बदलता जाता है। यहां कुछ भी थिर नहीं है। तो जब बुढ़ापा आएगा, और उसके पहले कदम तुम सुनोगे, दुख होगा--कि हार गया। हारे इत्यादि कुछ भी नहीं। जीत की आकांक्षा के कारण हार का ख्याल पैदा हो रहा है। यह भ्रांति इसलिए बन रही है, क्योंकि तुम जवान रहना चाहते थे और प्रकृति किसी चीज को ठहरने नहीं देती। प्रकृति बहाव है। और तुमने प्रकृति के विपरीत कुछ चाहा था, जो संभव नहीं है, संभव नहीं हो सकता है। न हुआ है, न कभी होगा।
जो संभव नहीं हो सकता, उसकी आकांक्षा में दुख है। फिर तुम बूढ़े हो जाओगे, तब भी नहीं समझोगे। अब तुम मरना नहीं चाहते! पहले जवानी पकड़ी थी; अब बुढ़ापे को पकड़ते हो। तो कुछ सीखे नहीं!
देखा कि बचपन था, वह भी गया। जवानी थी, वह भी गयी। बुढ़ापा भी जाएगा। जीवन भी जाएगा; मौत भी आएगी। और जब जीवन ही चला गया, तो मौत भी जाएगी। घबड़ाओ मत। सब बह रहा है। यहां न जीवन रुकता है, न मौत रुकती है।
इस प्रवाह को जो सहज भाव से स्वीकार कर लेता है, जो रत्तीभर भी इससे संघर्ष नहीं करता, जो कहता हैः जो हो, मैं उससे राजी हूं; जैसा हो, उससे मैं राजी हूं। कभी धन हो, तो धन से राजी हूं। और कभी दरिद्रता आ जाए, तो दरिद्रता से राजी हूं। कभी महल मिल जाएं, तो महल में रह लूंगा। कभी महल खो जाएं, तो उनके लिए रोता नहीं रहूंगा; लौटकर पीछे देखूंगा नहीं। जो होगा, जैसा होगा, उससे अन्यथा मेरे भीतर कोई कामना न करूंगा। फिर कैसा दुख! फिर दुख असंभव है।
आज तुम एक स्त्री से मिले; प्रेम में पड़ गए; विवाह कर लिया। अब तुम सोचते होः यह स्त्री खो न जाए। एक दिन पहले यह तुम्हारी स्त्री नहीं थी। कहीं यह खो न जाए! कहीं यह प्रेम टूट न जाए! कहीं यह संबंध बिखर न जाए!
जो बना है, बिखरेगा। बनती ही चीजें बिखरने को हैं। यहां कुछ भी शाश्वत नहीं है। यहां सिर्फ झूठी और मुर्दा चीजें शाश्वत होती हैं। कागज का फूल देर तक टिक सकता है। असली फूल देर तक नहीं टिकता।
इसी डर से कि कहीं प्रेम खो न जाए, लोगों ने प्रेम करना बंद कर दिया और विवाह करना शुरू किया। विवाह कागज का फूल है। प्लास्टिक का फूल है। प्रेम गुलाब का फूल है; सुबह खिला, सांझ मुर्झा जाएगा। कुछ पक्का नहीं है।
जो जीवंत है, वह जीवंत ही इसलिए है कि बह रहा है। बहने में जीवन है।
जीवन में बहाव है। जो ठहरा हुआ है... । एक पत्थर पड़ा है गुलाब के फूल के पास; वह सुबह भी पड़ा था, सांझ भी पड़ा होगा। कल भी पड़ा होगा, परसों भी पड़ा होगा। सदियां बीत गयीं और सदियों तक पड़ा रहेगा। और यह गुलाब का फूल सुबह खिला और सांझ मुर्झा गया।
यह सोचकर कि यह गुलाब का फूल मुर्झा जाएगा, तुमने पत्थर की पूजा करनी शुरू कर दी। आदमी खूब अदभुत है। पत्थर की मूर्तियों पर फूलों को चढ़ाता है! फूलों की मूर्तियों पर पत्थर को चढ़ाओ, तो समझ में आता है।
लेकिन पत्थर की मूर्ति में थिरता मालूम होती है, स्थिरता मालूम होती है। असली बुद्ध तो एक दिन थे; फिर एक दिन नहीं हो गए। लेकिन नकली बुद्ध--वह जो पत्थर की मूर्ति है--उसे तुम सदा पकड़े बैठे रह सकते हो।
आदमी इस भय से कि कहीं दुख न झेलना पड़े, धीरे-धीरे जीवंत वस्तुओं से ही संबंध तोड़ लेता है। मुर्दा वस्तुओं से संबंध जोड़ लेता है। उससे भी दुख होगा, क्योंकि मुर्दा वस्तुओं से कहां सुख की संभावना!

सुख का एक ही उपाय है--तरलता, तथाता।
तुमने पूछाः "मोह क्या है?"
मोह है ठहरने की वृत्ति। जहां कुछ भी नहीं ठहरता, वहां सब ठहरा हुआ रहे--ऐसी भावदशा, ऐसी भ्रांति। इससे दुख पैदा होगा। तुम खुद ही दुख पैदा कर रहे हो। फिर इस दुख से, तुम कहते हो कि छूटना कैसे हो? यह छूटता भी नहीं। यह छूटता इसलिए नहीं कि इसको छोड़ो, तो तुम एकदम खाली हो जाते हो। फिर तुम क्या हो! दुख की कथा हो तुम। दुख का अंबार हो तुम। दुख ही दुख जमे हैं। इन सबको छोड़ दो, तो शून्य हो गए।
शून्य से घबड़ाहट लगती है। कि चलो, कुछ नहीं, सिरदर्द तो है! चलो, कुछ नहीं, कोई तकलीफ तो है, कोई तकलीफ से भरे तो हैं। कुछ उलझाव, कुछ व्यस्तता बनी है। तो आदमी इसलिए दुख नहीं छोड़ता।
प्रश्न पूछने वाले का ख्याल ऐसा है कि जब दुख है, तो छूटता क्यों नहीं! इसीलिए नहीं छूटता कि यही तो है तुम्हारे पास। दुख की संपदा के अतिरिक्त तुम्हारे पास है क्या? इसको ही छोड़ दोगे, तो बचता क्या है?
एक दिन हिसाब लगाना बैठकर। एक कागज पर लिखना कि क्या-क्या दुख है जीवन में। कंजूसी मत करना। सारी फेहरिश्त लिख डालना। और फिर सोचना कि यह सब छूट जाए, तो मेरे पास क्या बचता है?
तुम एकदम घबड़ा जाओगे। क्योंकि इसके अतिरिक्त तुम्हारे पास कुछ भी नहीं बचता। यही चिंताएं, यही विषाद, यही फिक्रें, यही स्मृतियां, यही कामनाएं, यही वासनाएं, यही सपने--इनके अतिरिक्त तुम्हारे पास क्या है? यही आपाधापी, यही रोज का संघर्ष--इसके अतिरिक्त तुम्हारे पास क्या है? तुम्हें पता है, छुट्टी का दिन लोगों का मुश्किल से कटता है! काटे नहीं कटता। तरकीबें खोजनी पड़ती हैं नए दुख की; कि चलो, पिकनिक को चलें। कोई नया दुख उठाएं। काटे नहीं कटता। खाली बैठ नहीं सकते। क्योंकि खाली बैठें, तो खाली मालूम होते हैं। दफ्तर की याद आती है! बड़ा मजा है। दफ्तर में छह दिन सोचते हैं, कब छुट्टी हो। और जिस दिन छुट्टी होती है, उस दिन सोचते हैं कि कब सोमवार आ जाए और दफ्तर खुल जाए! फिर चलें।
रविवार के दिन पश्चिम के मुल्कों में सर्वाधिक दुर्घटनाएं होती हैं। क्योंकि रविवार के दिन सारे लोग खुल्ले छूट गए। जैसे सब जंगली जानवर खुले छोड़ दिए। अब उनको कुछ सूझ नहीं रहा है कि करना क्या है! सबके पास कारें हैं। अपनी-अपनी लेकर निकल पड़े! तुमने चित्र देखे हैं पश्चिम के समुद्र तटों के! वहां लोग इकट्ठे हैं। इतनी भीड़-भाड़ मालूम होती है। खड़े होने की जगह नहीं है! इससे अपने घर में ही थोड़ी ज्यादा जगह थी।
चले! मीलों तक कारें एक-दूसरे से लगी चल रही हैं। चार-छह घंटे कार ड्राइव करके पहुंचे। फिर चार-छह घंटे कार ड्राइव करके लौटे। और वहां वही भीड़ थी, जिस भीड़ से बचने निकले थे। वे सारे लोग वहीं पहुंच गए थे। सभी को जाना है! भीड़ से बचना है! सारी भीड़ वहीं पहुंच गयी! घर में भी इससे ज्यादा आराम था। अगर घर ही रुक गए होते, तो आज शांति होती। क्योंकि सारा गांव तो गया था।
लेकिन घर कौन रुके! खालीपन--घबड़ाहट होती है। बेचैनी होती है। कुछ करने
को चाहिए।
तुमने कभी खाली एक दिन गुजारा? एक दिन सुबह छह बजे से सांझ छह बजे तक कुछ न किया हो। पड़े रहे। अखबार भी न पढ़ा हो। रेडियो भी न खोला हो। पत्नी से भी नहीं झगड़े हो। पड़ोसियों से भी जाकर गपशप न की हो। एक दिन तुमने कभी ऐसा किया है कि कुछ न किया हो! तुम्हें याद न आएगा ऐसा जिंदगी में कोई दिन, जिस दिन तुमने कुछ न किया हो।
क्या कारण होगा कि कभी तुमने इतना विश्राम भी न जाना?
खाली होने में डर लगता है। खाली होने में भय लगता है कि यह भीतर अगर मैं गया खालीपन में और वहां कुछ न पाया तो!
मुल्ला नसरुद्दीन एक ट्रेन में सफर कर रहा था। टिकिट कलेक्टर आया। टिकिट पूछी। मुल्ला बहुत से खीसे बना रखा है। कमीज में भी, कोट में भी, अचकन में भी--सब में कई खीसे और उनमें चीजें भरी रखता है। एक खीसा उलटा,

दूसरा उलटा--सब खीसे उलटा। मगर एक कोट के खीसे को नहीं छू रहा है। सब में देख लिया, टिकिट नहीं मिल रही है।
आखिर उस टिकिट कलेक्टर ने कहा कि महानुभाव! आप इस खीसे को नहीं देख रहे हैं कोट के! उसने कहाः उसको नहीं देख सकता। अगर उसमें न मिली, तो फिर? फिर मारे गए! वही तो एक आशा है कि शायद वहां हो। उस खीसे की तो बात ही मत उठाना।
फिर अपने दूसरे खीसों में टटोलने लगा।
तुम बाहर टटोलते रहते हो, क्योंकि तुम डरते हो कि अगर भीतर खोजा और वहां भी न पाया--फिर? फिर क्या होगा? फिर गए काम से! इसलिए आदमी बाहर दौड़ता है। खूब दौड़-धूप करता है।
मोह यानी बाहर--बाहर--बाहर। व्यस्तता अर्थात बाहर।
अव्यस्त हुए, खाली हुए, विराम आया, तो भीतर जाना पड़ेगा। और तो जाने को कोई जगह नहीं बचती। बाहर से ऊर्जा उलझी थी; सुलझ गयी, तो कहां जाएगी? लौटेगी अपने घर पर। जैसे पंछी उड़ा--उड़ा--और थक गया, तो लौट आता है अपने नीड़ में। ऐसे ही तुम अगर बाहर कोई उलझन न पाओगे, तो कहां जाओगे? लौट आओगे अपने नीड़ में। और डर लगता है कि वहां अगर सन्नाटा हुआ, वहां अगर कोई न मिला, अगर वहां कुछ भी न हुआ... !
सुनते हैं कि वहां परमात्मा का वास है। जरूर होगा। मानते हैं कि होगा। मगर देखते नहीं। अगर न हुआ तो? सुनते हैं, वहां परम आनंद की वर्षा हो रही है। सुनते हैं, मगर देखा नहीं कभी।
क्योंकि देखा, और अगर न हुआ, तो फिर तो जीवन बिल्कुल ही निराश हो जाएगा। बाहर तो है ही नहीं; और अब भीतर भी नहीं है। फिर तो जीने का क्या कारण रह जाएगा? फिर तो आत्मघात के सिवाय कुछ भी न सूझेगा।
इस घबड़ाहट से आदमी उलझा रहता है। पुराने मोह कट जाते हैं, नए मोह बना लेता है। पुरानी झंझटें छूट जाती हैं, नयी झंझटें बना लेता है। पुरानी खतम ही नहीं हो पातीं, उसके पहले ही नए के बीज बो देता है कि कहीं ऐसा न हो कि कुछ ऐसी घड़ी आ जाए कि खाली छूट जाऊं। पुरानी झंझट खतम; नयी है नहीं। अब क्या करूं?
और आश्चर्य तुम्हें होगा यह जानकर कि जो इस भीतर की शून्यता को जानता है, वही सुख को जानता है। और तो सब दुख ही दुख है। जो इस शून्य होने को राजी है, वही पूर्ण हो पाता है। और तो सब खाली के खाली रह जाते हैं।
यह तुम्हें बड़ा उलटा लगेगा। जो खाली होने को राजी है, वह भर जाता है।
और जो खाली होने को राजी नहीं है, वह सदा के लिए खाली रह जाता है।
जीसस ने कहा हैः धन्य हैं वे, जो खोएंगे; क्योंकि जिन्होंने खोया, उन्होंने पाया। और जिन्होंने बचाया, उन्होंने सब गंवाया।
इसलिए तुम दुख नहीं छोड़ते। कुछ तो है मुट्ठी में। दुख ही सही। मुट्ठी
तो बंधी है। भ्रांति तो बनी है।
बुद्ध का सारा संदेश यही है। सारे बुद्धों का संदेश यही है कि खोलो मुट्ठी। बंधी मुट्ठी खाली है। संसारी तो उलटी बात कहते हैं। वे कहते हैंः बंधी मुट्ठी लाख की, खुली कि खाक की! और बुद्ध कहते हैंः खोलो मुट्ठी। बंधी मुट्ठी खाक की, खोलो तो लाख की! खोलो मुट्ठी। सब खोल डालो। और एक बार आर-पार झांक लो। कुछ बंद मत रखो। कोई जेब डर के कारण छोड़ो मत। सब ही देख लो। चुकता देख लो। पूरा देख लो। उसी देखने में, उसी देखते-देखते तुम्हारा जीवन रूपांतरित हो जाता है।
जिसने अपने भीतर के शून्य का साक्षात्कार कर लिया, उसने पूर्ण का साक्षात्कार कर लिया। क्योंकि शून्य और पूर्ण एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। जो एक तरफ से शून्य मालूम होता है, वही दूसरी तरफ से पूर्ण है।
शून्य मालूम होता है, क्योंकि तुम संसार को पकड़े हो। तुम एक तरह का ही भराव जानते हो--सांसारिक भराव। वह वहां नहीं है, इसलिए तुम्हें भ्रांति होती है कि भीतर शून्य है। जब तुमने सांसारिक भराव छोड़ दिया और तुमने भीतर झांका, तब तुम्हें दूसरी बात पता चलेगी कि यह शून्य नहीं है। यह मेरी सांसारिक पकड़ के कारण शून्य मालूम होता था। यहां संसार नहीं है, इसलिए शून्य मालूम होता था। यहां परमात्मा है।

मैं एक बहुत बड़े अमीर के घर में मेहमान हुआ। अमीर थे; और जैसे अक्सर अमीर होते हैं, कोई सौंदर्य-बोध नहीं था। जो नया दुनिया में मिलता है--सारी दुनिया में यात्रा करते रहते थे--सब खरीद लाए थे। जहां जो मिले, वह ले आते थे। उनका घर एक कबाड़खाना था। जिस कमरे में मुझे ठहराया, उसमें सम्हलकर चलना पड़ता था, इतनी चीजें उसमें भर रखी थीं। सब कुछ था उसमें!
मैंने उनसे कहा कि मुझे यहां सात दिन रुकना होगा; आप मुझ पर अगर थोड़ी कृपा करें, तो ये सब चीजें यहां से हटा दें। वे बोलेः लेकिन कमरा खाली हो जाएगा! मैंने उनसे कहाः कमरा खाली नहीं हो जाएगा। कमरा कमरा हो जाएगा। अभी यह कमरा है ही नहीं। अभी यहां से चलना भी पड़ता है, तो सम्हलकर निकलना पड़ता है। यह कोई कमरा है! इसमें स्थान ही नहीं है। इसमें रहने की जगह नहीं है। इसमें अवकाश नहीं है। कमरे का तो मतलब होता है जहां अवकाश हो, जहां रहने की जगह हो, जहां रहा जा सके। कमरे का मतलब होता है जहां रहा जा सके। यहां तो रह ही नहीं सकता कोई। यहां रिक्तता तो बिल्कुल नहीं है। और रिक्तता के बिना कैसे रहोगे?
रिक्तता में ही रहा जाता है। इसलिए तो सारा अस्तित्व आकाश में रहता है। क्योंकि आकाश यानी शून्य। आकाश यानी अवकाश। जगह देता है। पृथ्वी हो, चांद हो, तारा हो, सूरज हो, लोग हों, वृक्ष हों--सबको जगह देता है। आकाश शून्य नहीं है। आकाश पूर्ण है। लेकिन उसकी पूर्णता और ढंग की है।
खैर मैं उनका मेहमान था। राजी तो वे बहुत नहीं थे, लेकिन अब मुझे वहां सात दिन रहना था। मैं भी राजी नहीं था, उस कबाड़खाने में रहने को। तो उन्हें मजबूरी में सब निकालना पड़ा। बड़े बेमन से उन्होंने निकाला। निकाल-निकालकर पूछते थे कि अब इतना रहने दें? मैं कहताः इसको भी ले जाओ। रेडियो रहने दें? टेलीविजन रहने दें? मैंने कहाः सब तुम ले जाओ। तुम बस मुझे छोड़ दो। और तुम भी ज्यादा यहां मत आना-जाना।
ले गए बेमन से। उनको बड़ी उदासी लग रही थी। वे बड़े सोच भी रहे होंगे कि मैं भी कैसा नासमझ आदमी आ गया घर में! उन्होंने शायद मेरे आने की वजह से और चीजें वहां रख दी होंगी। उन्होंने तैयारी की थी।
जब सब निकल गया, वहां कुछ भी न बचा, तो उन्होंने आकर बड़ी उदासी से चारों तरफ देखा और कहाः मैंने कहा था आपसे कि बिल्कुल खाली हो जाएगा! उनकी आंखों में करीब-करीब आंसू थे कि सब खाली हो गया।
मैंने उनसे कहा कि आप फिकर न करें। मुझे खाली में रहने का आनंद है।
मुझे खाली में रहने का रस है। अब यह जगह बनी। अब यह कमरा भरा-पूरा है, कमरेपन से। स्थान से भरा है। आकाश से भरा है। मगर यह और ढंग का भराव है।
फर्नीचर से भरना, एक भरना है। आकाश से भरना, दूसरा भरना है।
ठीक ऐसा ही तुम्हारे भीतर भी घटता है। कूड़ा-करकट से भरे हो अपने को।
छोड़ते भी नहीं, क्योंकि खाली न हो जाओ। छोड़ोगे, तभी तुम पहचानोगे कि तुम्हारे खाली करते-करते ही, जो उतर आता है आकाश तुम्हारे भीतर, वही तुम्हारी वास्तविकता है। उसे निर्वाण कहो, परमात्मा कहो--जो नाम देना हो, वह नाम दो।

दूसरा प्रश्नः
तुम्हें अपना बनाना चाहता हूं
मुकद्दर आजमाना चाहता हूं
मुझे बस प्यार का एक जाम दे दे
मैं सब कुछ भूल जाना चाहता हूं।

फिर तुम गलत जगह आ गए।
"तुम्हें अपना बनाना चाहता हूं।"
यहां सारी चेष्टा यही चल रही है कि अब तुम अपना और न बनाओ। अपना बनाना यानी मोह, मेरे का विस्तार। मैं तुम्हें कोई तरह से भी सहयोगी नहीं हो सकता अपने को बढ़ाने में।

काफी दुख नहीं झेल लिया है अपनों से! अब तो छोड़ो। मुझसे तुम इस तरह का संबंध बनाओ, जिसमें मेरा-तेरा हो ही नहीं। नहीं तो वह संबंध भी सांसारिक हो जाएगा। जहां मेरा आया, वहां संसार आया।
क्या तुम बिना मेरे-तेरे को उठाए संबंध नहीं बना सकते? क्या यह संबंध मेरे-तेरे की भीड़ से मुक्त नहीं हो सकता? तुम वहां, मैं यहां; क्या बीच में मेरे-तेरे का शोरगुल होना ही चाहिए? सन्नाटे में यह बात नहीं हो सकेगी? तुम शून्य बनो--बजाय मेरे का फैलाव करने के--तो तुम मुझसे जुड़ोगे। मैं शून्य हूं; तुम शून्य बनो; तो तुम मुझसे जुड़ोगे। मैंने मेरे का भाव छोड़ा है, तुम भी मेरे का भाव छोड़ो, तो मुझसे जुड़ोगे। मुझसे जुड़ने का एक ही उपाय हैः मुझ जैसे हो जाओ, तो मुझसे जुड़ोगे।
अब तुम कहते हो कि "तुम्हें अपना बनाना चाहता हूं।"
तुमने कितने दरवाजों पर दस्तक दी! कितने लोगों को अपना बनाना चाहा! सब जगह से ठोकर खाकर लौटे; सब जगह से अपमानित हुए; अभी भी होश नहीं आया? फिर वही पुराना राग?
लोग विषय बदल लेते हैं, गीत वही गाए चले जाते हैं! लोग वाद्य बदल लेते हैं, सुर वही उठाए चले जाते हैं। कभी कहते हैंः मेरा धन। कभी कहते हैंः मेरा मकान। फिर कभी कहने लगते हैंः मेरा गुरु; मेरा भगवान; कि मेरा मोक्ष; कि मेरा शास्त्र! क्या फर्क पड़ता है, तुम मेरा शास्त्र कहो कि मेरी दुकान कहो, सब बराबर है। जहां मेरा है, वहां दुकान है। और इसीलिए तो मंदिरों पर भी झगड़े हो जाते हैं, क्योंकि जहां मेरा है, वहां झगड़ा है। जहां मेरा है, वहां उपद्रव है।
मैं एक गांव में गया। एक ही जैन मंदिर है। थोड़े से घर हैं उस गांव में। कुछ श्वेतांबरियों के घर हैं और कुछ दिगंबरियों के घर हैं। और एक ही मंदिर है। मंदिर पर ताला पड़ा है पुलिस का! मैंने पूछाः मामला क्या है? उन्होंने कहाः श्वेतांबर और दिगंबर में झगड़ा हो गया। मंदिर एक ही है। कई दिनों से दोनों उसमें पूजा करते थे। सब ठीक चलता था। समय बांट रखा था। कि बारह बजे तक एक पूजा करेगा; बारह बजे के बाद दूसरे का हो जाएगा मंदिर।
कभी-कभी अड़चन आ जाती थी कि बारह बजे; समय हो गया। और कोई श्वेतांबरी है
कि अभी पूजा किए ही चला जा रहा है! कोई उपद्रवी लोग होते हैं! कोई पूजा से मतलब नहीं है। पूजा करनी हो, तो क्या मतलब है यहां आने का; कहीं भी हो सकती है। उपद्रवी लोग। देख लिया कि बारह बज गए हैं, लेकिन उपद्रव! खींचे गए पूजा को। साढ़े बारह बजा दिया। दिगंबरी आ गए लट्ठ लेकर--कि हटो।
वे उनके महावीर स्वामी खड़े देख रहे हैं बेचारे कि यह... ! वहां लट्ठ चल गया। बारह के बाद मंदिर मेरा है। न ये जो लट्ठ लेकर आए हैं, इनको पूजा से प्रयोजन है। क्योंकि पूजा करने वाले को लट्ठ लेकर आने की क्या जरूरत थी? श्वेतांबरी और दिगंबरी में कुछ बड़े भेद नहीं हैं। मगर मेरा! अड़चन आ जाती है। एक ही महावीर के शिष्य; एक की ही पूजा है। लेकिन उसमें भी थोड़े- थोड़े हिसाब लगा लिए हैं। जरा-जरा से हिसाब!
अब महावीर में ज्यादा हिसाब लगाने की सुविधा भी नहीं है। नग्न खड़े हैं! अब इसमें तुम फर्क भी क्या करोगे? लंगोटी भी नहीं लगा सकते! तो एक छोटा सा हिसाब बना लिया। दिगंबरी पूजा करते हैं महावीर की बंद-आंख-अवस्था में। और श्वेतांबरी पूजा करते हैं खुली-आंख-अवस्था में।
अब पत्थर की मूर्ति है, ऐसा आंख खोलना, बंद होना तो हो नहीं सकता। तो श्वेतांबरी एक नकली आंख चिपका देते हैं ऊपर से--खुली आंख! रहे आओ भीतर बंद किए! वह मूर्ति भीतर बंद आंख की है, ऊपर से खुली आंख चिपका दी! और पूजा कर ली। क्योंकि वे खुली आंख भगवान की पूजा करते हैं!
दिगंबरी आते हैं, वे जल्दी से निकाल आंख अलग कर देते हैं! महावीर से तो कुछ लेना-देना नहीं है।
तुमने कहानी सुनी! एक गुरु के दो शिष्य थे। एक भरी दुपहरी, गर्मी के दिन, और दोनों पैर दाब रहे थे। एक बायां, एक दायां। बांट लिया था उन्होंने आधा-आधा। और दोनों को सेवा करनी है!
गुरु ने कहाः भाई, झगड़ा मत करो। सेवा करो। बांट लो।

गुरु तो सो गया। उसको थोड़ी झपकी आ गयी। करवट ले ली; तो बायां पैर दाएं पैर पर पड़ गया। तो जिसको दायां पैर मिला था, उसने दूसरे से कहा, हटा ले अपने पैर को। यह मेरे बरदाश्त के बाहर है। देख, हटा ले।
दूसरा भी... उसने कहाः कौन है मेरे पैर को हटाने वाला? यहीं रहेगा।
वे दोनों डंडे ले आए। आवाज सुनकर गुरु की नींद खुल गयी। उसने कहाः जरा रुको।
गुरु को मारने को डंडे ले आए, क्योंकि वह पैर! वह जिसके पैर पर पैर पड़ गया था, वह दूसरे पैर को हटा देना चाहता था। वह डंडा ले आया था कि अगर ऐसे नहीं होगा, तो डंडे से हटा दिया जाएगा।
गुरु ने कहाः जरा ठहरो! पैर मेरे हैं। दोनों पैर मेरे हैं।
मगर विभाजन मेरे-तेरे का झंझट लाता है।
तुमने जिंदगी में इतनी बार मेरा बनाया और हर बार उजड़ा। अब तुम यहां तो मेरा मत बनाओ। यहां तो मेरा लाओ भी मत।
"तुम्हें अपना बनाना चाहता हूं।"
तुम फर्क समझो। अगर तुम्हारे भीतर समझ हो, तो तुम मेरे बनना चाहोगे, न
कि मुझे अपना बनाना चाहोगे! तुम कहोगे कि मैं राजी हूं; मुझे अपना बना लें। तुम कहोगे कि मैं समर्पित होने को राजी हूं। मैं अपने को छोड़ने को राजी हूं। मुझे अपने में लीन कर लें।
लेकिन तुम कह रहे होः "तुम्हें अपना बनाना चाहता हूं।"
मुझे तुम अपनी मुट्ठी में लेना चाहते हो! नहीं; मैं ऐसी कोई सुविधा नहीं देता। मैं किसी की मुट्ठी में नहीं हूं।
इसलिए बहुत से लोग मुझसे नाराज होकर चले गए हैं। क्योंकि उनकी मुट्ठी में मैं नहीं आता। वे चाहते थे कि उनकी मुट्ठी में रहूं। वे जैसा कहें, वैसा करूं। जैसा कहें, वैसा बोलूं। वे जैसा कहें, वैसे उठूं-बैठूं। ये सब मुट्ठी फैलाने के ढंग हैं।
अजीब लोग हैं! किसी के घर में ठहर जाता था, तो वे समझे कि उनके घर में ठहरा हूं, तो वे मुझे यह भी बता देते कि आज आप बोलने जा रहे हैं, यह बात जरूर बोलना। मैं अगर बोलने भी जा रहा था, तो खतम। अब नहीं बोलूंगा।
कि लौटकर मेरे साथ मुझे गाड़ी में लेकर आते, तो रास्ते में कहते कि यह बात आप न कहते तो अच्छा था। इससे कई लोगों को धक्का लग गया होगा। दुबारा आप यह बात मत कहना!
लोग ऐसे मूढ़ हैं कि उन्हें पता नहीं कि वे क्या कह रहे हैं; किससे कह रहे हैं! उन्हें होश ही नहीं है।
"तुम्हें अपना बनाना चाहता हूं
मुकद्दर आजमाना चाहता हूं।"
मुकद्दर तुम्हारा अभी तक फूटा नहीं? कितने जन्मों से आजमा रहे हो।
खोपड़ी सब जगह से पिट गयी है। अभी भी मुकद्दर आजमाना चाहते हो! अब छोड़ो।
यह मुकद्दर आजमाना बचकानी बात है। यह भी अहंकार का ही फैलाव है।
इसमें भी दुनिया को कुछ करके दिखाने का भाव है कि कुछ करके दिखा दूं; कुछ होकर दिखा दूं।
"मुझे बस प्यार का एक जाम दे दे।"
देखो, जिसे प्यार चाहिए हो, उसे प्यार देना सीखना चाहिए, मांगना नहीं।
मांगने से प्यार नहीं मिलता। जो मांगने से मिलता है, वह प्यार होता ही नहीं।
प्रेम के मिलने की एक ही कला है कि दो। तुम मांग-मांगकर भिखारी होने
की वजह से तो चूके; आज तक मिला नहीं। जहां गए, भिखारी की तरह खड़े हो गए। प्रेम मिलता है सम्राटों को; भिखारियों को नहीं। भिखारी को भिक्षा मिलती है, प्रेम नहीं मिलता। और भिक्षा कभी प्रेम नहीं है; सहानुभूति है। और सहानुभूति में क्या रखा है! दया। दया में क्या रखा है? मांगोगे, तो जो मिलेगा, वह दया होगी। और दया बड़ी लचर चीज है। दोगे, तो जो मिलेगा, प्रेम होगा।
प्रेम उसी मात्रा में मिलता है, जितना दिया जाता है। जो अपना पूरा हृदय उंडेल देता है, उसे खूब मिलता है, खूब मिलता है। चारों तरफ से बरसकर

मिलता है। प्रेम पाने के लिए जुआरी चाहिए, भिखारी नहीं। सब दांव पर लगाने की हिम्मत होनी चाहिए।
और क्या एक जाम मांगते हो! एक जाम से क्या होगा? तुम्हारे ओठों पर लगेगा मुश्किल से। पूरा सागर उपलब्ध हो और तुम जाम मांगो!
मगर कंजूसी की ऐसी वृत्ति हो गयी है! देने की हिम्मत नहीं रही है, तो लेने की हिम्मत भी खो गयी है। जो देना नहीं जानता, वह लेना भी नहीं जानता है। क्योंकि वे एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। उनमें भेद नहीं है।
यहां तो भिक्षा मत मांगो! इसलिए मैंने जानकर बुद्ध के प्यारे शब्द भिक्षु को अपने संन्यासी के लिए नहीं चुना। जानकर। नहीं तो बुद्ध से मेरा लगाव गहरा है। मैंने स्वामी शब्द को चुना। क्योंकि मैं तुम्हें मालिक बनाना चाहता हूं।
मैं चाहता हूंः तुम सम्राट बनो। तुम भिक्षा की आदत छोड़ो। तुम मांगना
ही बंद करो। मांग-मांगकर ही तो तुम्हारी यह दुर्दशा हो गयी है। अब मांगो ही मत। अब जो मिल जाए, उससे राजी। जो न मिले, उससे राजी। अब तुम्हारे राजीपन में कोई फर्क ही नहीं पड़ना चाहिए--मिले, न मिले। और तुम पाओगे कि इतना मिलता है, इतना मिलता है कि सम्हाले नहीं सम्हलता। तुम्हारी झोली छोटी पड़ जाएगी। तुम छोटे पड़ जाओगे।
मगर कला, गणित समझ लेना। देना गणित है, दो!
करीब-करीब लोग जानते ही नहीं कि प्रेम देना यानी क्या। मेरे पास इतने लोग आते हैं, उनमें से अधिक की शिकायत यही होती है कि प्रेम नहीं मिलता। मगर कोई यह शिकायत करने नहीं आता कि मैं प्रेम नहीं दे पाता!
तब मैं सोचता हूं कि जब किसी को प्रेम नहीं मिल रहा है, तो किससे ये मांग रहे हैं! यही तो देने वाले हैं; यही लेने वाले हैं! पति भी मुझसे आकर कह जाता है कि मुझे प्रेम नहीं मिलता पत्नी से। पत्नी भी मुझसे आकर कह जाती है कि मुझे प्रेम नहीं मिलता पति से।
दोनों लेने पर उतारू हैं। देने को कोई राजी नहीं है। मिले कैसे? यह सौदा हो तो हो कैसे? यह बात बने तो बने कैसे? दोनों एक-दूसरे पर नजर लगाए बैठे हैं कि दो। और कोई देना नहीं चाहता। दूसरा भी यही नजर लगाए बैठा है कि दो। दोनों की मांग एक ही है, पूर्ति कैसे हो? पूर्ति तो तब हो सकती है, जब दोनों दें। तो दोनों को मिले।
इस जगत से तुम्हें बहुत कम प्रेम मिलता है, क्योंकि तुम देते ही नहीं। नहीं तो यह जगत चारों तरफ से प्रेम से भरा है। यहां फूल-फूल, पत्ती-पत्ती पर प्रेम का संदेश है। यहां कण-कण, रत्ती-रत्ती पर प्रेम की पाती है। परमात्मा तुम्हें बहुत तरह से पातियां भेज रहा है। मगर तुम्हें देने
की कला नहीं आती, इसलिए तुम लेने से चूक जाते हो।
"मुकद्दर आजमाना चाहता हूं
मुझे बस प्यार का एक जाम दे दे
मैं सब कुछ भूल जाना चाहता हूं।"
यहां मैं शराब निश्चित बांटता हूं। मगर वह शराब ऐसी नहीं कि तुम भूल जाओ। वह शराब ऐसी है, जो होश लाए। वह होश लाने वाली शराब है। बेहोशी लाने वाली शराबें तो सब तरफ मिल रही हैं। बेहोशी लाने वाली शराब में कितना मूल्य है? थोड़ी देर को भूल जाओगे; फिर याद आएगी। और घनी होकर आएगी। थोड़ी देर को भूल जाओगे, तब भी भीतर तो सरकती ही रहेगी।
चिंता से भरा आदमी शराब पी लेता है। चलो, रात गुजर गयी। सुबह फिर चिंताएं वहीं की वहीं खड़ी हैं। और बड़ी होकर खड़ी हैं। क्योंकि रात हल कर ली होतीं, तो उनकी उम्र कम थी। अब रातभर और गुजर गयी। उनकी उम्र ज्यादा हो गयी। वे और मजबूत हो गयीं। उनकी जड़ें और फैल गयीं। फिर शराब पी ली। ऐसे दो- चार-दस दिन गुजार दिए, तो चिंताएं तुम्हारे भीतर गहरी, मजबूती से जड़ जमा लेंगी। उनको हल करना रोज-रोज कठिन हो जाएगा।
बेहोशी से कुछ लाभ नहीं है। और तुम संगीत में भी बेहोशी खोजते हो। और तुम सुंदरी में भी बेहोशी खोजते हो। और तुम संपत्ति में भी बेहोशी खोजते हो। और तुम सम्मान में भी बेहोशी खोजते हो। तुम बेहोशी ही खोजते हो।
यहां तो कम से कम बेहोशी खोजने न आओ। यहां होश खोजो। यहां जागो।

निश्चित ही यह जागना भी एक ऐसी अदभुत कीमिया है कि इससे तुम जागोगे भी
और मस्त भी हो जाओगे। इसलिए मैं इसको शराब भी कहता हूं। तुम जागोगे भी और डोलोगे भी।
मगर डोलना अगर बेहोशी में हो, तो कुछ मजा न रहा। वह तो नींद का डोलना है। जागकर डोलो। होश से भरे नाचो। होश भी हो और नाच भी हो। होश भी हो और रसधार भी बहे। भीतर होश का दीया जले और बाहर मस्ती हो।
मैं चाहता हूंः तुम ऐसे संन्यासी हो जाओ कि जिसके भीतर बुद्ध जैसा दीया जलता हो और जिसके बाहर मीरा जैसी मस्ती हो। तुम ऐसा जोड़ बनो। इस जोड़ पर कोशिश नहीं की गयी है। यह जोड़ अब तक संभव नहीं हुआ है। इसलिए अतीत में संन्यास अधूरा-अधूरा रह गया है; आधा-आधा रह गया है। पूरा संन्यासी होश से भरा होगा और मदमस्त भी होगा। दीया भी जला होगा ध्यान का और प्रेम की धारा भी बहती होगी।
पूर्ण संन्यासी बनो। एक अपूर्व अवसर तुम्हें मिला है, इसे चूकना मत।
चूकने की संभावना सदा ज्यादा है। अगर न चूके तो तुम कुछ ऐसा जान लोगे, तुम कुछ ऐसे हो जाओगे, जैसा कि इसके पहले संभव नहीं था।
एकांगी ढंग के संन्यासी हुए हैं। एकांगी ढंग का संन्यास भी सुंदर है।
संसार से तो बहुत सुंदर है। लेकिन बहुआयामी संन्यास के सामने फीका है।
जैसे हीरे पर देखा न, बहुत पहलू होते हैं। जितने पहलू होते हैं, उतनी हीरे की चमक बढ़ती जाती है। ऐसे ही जितने तुम्हारे संन्यास में पहलू होंगे, उतनी चमक बढ़ती जाएगी, उतनी गरिमा बढ़ती जाएगी। उतनी ही तुमसे ज्यादा किरणें प्रगट होंगी।
और ये दो पहलू तो होने ही चाहिए कि तुम्हारे भीतर होश का दीया हो, और तुम्हारे भीतर होश के दीए के साथ-साथ मस्ती की लहर हो। होश का दीया ऐसा न हो कि तुम्हें सुखा जाए, रेगिस्तान बना जाए।
तुममें फूल भी खिलें। और तुममें फूल ही खिलें, इतना ही नहीं है। क्योंकि अगर फूल ही खिलें और भीतर बेहोशी रहे, तो मजा न रहा। भीतर दीए की ज्योति भी फूलों पर पड़ती हो।
फूल अंधेरे में खिलें, तो मजा नहीं है। और दीया रेगिस्तान में जले, तो मजा नहीं है। बगिया में जले दीया। फूल भी खिलें और दीए में दिखायी भी पड़ें। मस्ती भी हो और होश में मस्ती दिखायी भी पड़ती रहे। मस्ती बेहोश न हो। और होश गैर-मस्त न हो।
इस नए संन्यास को ही जन्म दे रहा हूं। तुम एक महान प्रयोग में सहभागी
हो रहे हो। तुम्हें शायद पता हो अपने सौभाग्य का या न पता हो।

तीसरा प्रश्नः
औजार कोई तरकीब कोई
न जाने कहां क्या अटका है,
न जाने कहां क्या जाम हुआ
यह रात कि बंद होती ही नहीं,
यह दिन कि उफ खुलता ही नहीं
औजार कोई तरकीब कोई!

एक एक बहुत बड़ा जादूगर हुआ--हूदनी। उसकी सबसे बड़ी कला यह थी कि कैसी ही जंजीरों में उसे कस दिया जाए, वह क्षणों में खोलकर बाहर आ जाता था। जंजीरों में कसकर, पेटियों में बंद करके, पेटियों पर ताले डालकर उसे समुद्र में फेंका गया। वहां से भी वह मिनटों के भीतर बाहर आ गया।
दुनिया के सभी कारागृहों में उस पर प्रयोग किए गए; सभी तरह के पुलिस
ने अपने इंतजाम किए--इंग्लैंड में, अमेरिका में, फ्रांस में, जर्मनी में।
उसको कारागृह की कोठरी में डाल देते। तालों पर ताले जड़ देते। हाथों में जंजीरें; पैरों में जंजीरें और मिनटें भी नहीं बीततीं... । तीन मिनट से ज्यादा उसको कभी नहीं लगे थे जीवन में किसी भी स्थिति से बाहर आ जाने में।
बड़ी चौंकाने वाली उसकी कला थी।

लेकिन इटली में वह हार गया। इटली में जाकर बड़ी बुरी तरह हारा। घंटेभर
तक न निकल सका। तीन घंटे लगे। जो भीड़ इकट्ठी हो गयी थी हजारों लोगों की, वे तो घबड़ा गए कि मर गया हूदनी या क्या हुआ!
यह तो किसी को भरोसा ही नहीं था। तीन मिनट तो आखिरी सीमा थी। सेकेंडों में निकल आता था। यह हुआ क्या?
और जब तीन घंटे बाद हूदनी निकला, तो उसकी हालत बड़ी खस्ता थी। पसीना- पसीना था। माथे की नसें चिंता से फूल गयी थीं। आंखें लाल हो गयी थीं। बाहर आया, तो हांफ रहा था।
पूछा गया कि हुआ क्या! इतनी देर कैसे लगी? उसने कहा कि मेरे साथ बड़ा धोखा किया गया। दरवाजे पर ताला नहीं था। और वह बेचारा कोशिश करता रहा खोलने की कि कहां से खोले। ताला हो तो खोले! एक मजाक काम कर गया।
ताला होता तो खोल ही लेता वह। ताला खोलने में तो उसके पास कला थी। ऐसा
तो कोई ताला नहीं था, जो वह नहीं खोल लेता। मगर ताला था नहीं। दरवाजा सिर्फ अटका था। सांकल भी नहीं चढ़ी थी। सांकल भी चढ़ी होती, तो खोल लेता। न सांकल थी, न ताला था। भीतर कुछ था ही नहीं।
वह बड़ा घबड़ाया। उसने सब तरफ खोजा होगा। कोई उपाय न दिखे। पहली दफा हारा। तीन घंटे बाद, लोगों ने पूछा, फिर कैसे निकले? उसने कहाः ऐसे निकले कि जब तीन घंटे के बाद बिल्कुल थक गया और गिर पड़ा, दरवाजे को धक्का लगा और दरवाजा खुल गया। सोच लिया कि आज तो प्रतिष्ठा पानी में मिल गयी।
तुम पूछते होः
"औजार कोई तरकीब कोई
न जाने कहां क्या अटका है,
न जाने कहां क्या जाम हुआ
यह रात कि बंद होती ही नहीं,
यह दिन कि उफ खुलता ही नहीं
औजार कोई तरकीब कोई!"
न कोई औजार है, न कोई तरकीब है। दरवाजा बंद नहीं है। तुम खोलने की कोशिश में परेशान हो रहे हो! तुम खोलने की कोशिश छोड़ो।
यहां तुमने जीवन को समस्या की तरह लिया कि तुम चूकते चले जाओगे। जीवन कोई समस्या नहीं है, जिसको सुलझाना है। न जीवन कोई प्रश्न है, जिसका उत्तर कहीं से पाना है। जीवन एक रहस्य है, जिसको जीना है।
फर्क समझ लेना समस्या और रहस्य का। समस्या का अर्थ होता है, जिसका समाधान हो। रहस्य का अर्थ होता है, जिसका समाधान हो ही न। रहस्य का अर्थ होता है, जिसका उत्तर है ही नहीं। रहस्य का अर्थ होता हैः तुम खोजे जाओ। खोजते-खोजते तुम खो जाओगे, लेकिन खोज जारी रहेगी। अंतहीन है खोज।
इसलिए तो हम परमात्मा को असीम कहते हैं। असीम का अर्थ होता है, जिसकी कभी कोई सीमा न आएगी। इसलिए तो परमात्मा को हम अज्ञेय कहते हैं; जिसे हम जान-जानकर भी न जान पाएंगे।
इसीलिए तो पंडित हार जाता है और भोले-भाले लोग जान लेते हैं। पंडित और भोले-भाले लोगों की वही हालत है, जो हूदनी की हुई। पहले वह पंडित था। तीन घंटे तक पंडित रहा। तब तक नहीं खुला दरवाजा। क्योंकि वह सोच रहा थाः ताला होना चाहिए। ताला होता, तो पांडित्य काम कर जाता। लेकिन ताला था ही नहीं, तो पांडित्य करे क्या!
समस्या है नहीं जीवन में कोई; पांडित्य करे क्या? होती समस्या, पांडित्य हल कर लेता। बुद्धि करे क्या! बुद्धि नपुंसक है। तर्क करे क्या! तर्क का बस नहीं चलता। समस्या होती, तो बस चल जाता। जिंदगी एक रहस्य है। जब गिर पड़ा हारकर हूदनी, उसी धक्के में दरवाजा खुल गया। जो खोले-खोले
न खुला, वह अपने से खुल गया। वह बंद था ही नहीं।
इसलिए जीसस ने कहा हैः जो बच्चों की भांति भोले-भाले हैं, वे ही मेरे प्रभु के राज्य में प्रवेश पा सकेंगे।
क्यों बच्चों की भांति भोले-भाले लोग पा सकेंगे? क्योंकि बच्चे ही रहस्य को जीना जानते हैं।

तुमने छोटे बच्चे देखे! चारों तरफ उन्हें विमुग्ध करने वाला जगत दिखायी पड़ता है। हर चीज उन्हें आकर्षित करती है। एक तितली उड़ी जाती है, भागने लगते हैं। तुम कहते होः कहां भाग रहा है पागल! क्योंकि तुम्हें तितली में कुछ नहीं दिखता। तुम अंधे हो। तुम अंधे हो गए हो। तुम्हारी आंख पर धूल जम गयी है। समय ने तुम्हारी आंख को खराब कर दिया है। स्कूल ने, शिक्षकों ने, माता-पिताओं ने, संस्कारों ने तुम्हारी आंख को धूमिल कर दिया है। तुम्हारे आश्चर्य की हत्या कर दी है। और जिस आदमी के भीतर आश्चर्य मर गया, उस आदमी के भीतर आत्मा मर गयी।
तुम अब चकित होने की क्षमता खो दिए हो। चकित होने जैसी बात है। तितली
का होना असंभव जैसा होना है। होना नहीं चाहिए। इतनी सुंदर तितली! इतनी रंग-बिरंगी तितली! यूं उड़ी जाती है। बच्चा चकित है, विमुग्ध है। भागा। तुम उसका हाथ खींचते हो। कहते होः कहां जाते हो?
बच्चा घास में खिले एक फूल को देखकर विमुग्ध हो जाता है। रसलीन हो जाता है। कंकड़-पत्थर बीनने लगता है समुद्र के तट पर। रंग-बिरंगे कंकड़-पत्थर! तुम कहते होः यह तू क्या कर रहा है? फिजूल ये चीजें कहां ले जा रहा है? तुमसे बचाकर भी बच्चा अपने खीसों में कंकड़-पत्थर भर लाता है। रात उसकी मां को उसके बिस्तर में से कंकड़-पत्थर निकालकर अलग करने पड़ते हैं।
इन कंकड़-पत्थरों में बच्चे को अभी उतना दिख रहा है, जितना बाद में तुम्हें हीरों में भी नहीं दिखेगा। इस बच्चे के पास अभी गहरी आंख है। यहां हर चीज रहस्यमय है। छोटे से कंकड़ में भी तो परमात्मा विराजमान है। हर कंकड़ हीरा है। होना ही चाहिए। क्योंकि हर कंकड़ पर उसी के हस्ताक्षर हैं। होना ही चाहिए। हर पत्ती पर वेद है। हर फूल में उपनिषद है। हर पक्षी की आवाज में कुरान की आयत है। होनी ही चाहिए। क्योंकि वही तो बोलता है।
क्योंकि वही तो खिलता है। क्योंकि वही तो उड़ता है। वही है।
बच्चा रोमांचित हो जाता है छोटी-छोटी बात से। एक तोता उड़ जाता है और बच्चा रोमांचित हो जाता है।
जिस दिन तुम बच्चे जैसे होओगे... । फिर से तुम्हें बच्चा होना पड़ेगा।
फिर से तुम्हें धूल झाड़नी होगी। समय ने, समाज ने, संस्कारों ने तुम्हारे मन में जो विकृतियां डाल दी हैं--विकृतियां यानी ज्ञान--वह जो ज्ञान डाल दिया है, वह जो पांडित्य डाल दिया है, तुम्हें भ्रम दे दिया है कि मैं जानता हूं; उस भ्रम को छोड़ना होगा।
न तो कोई औजार है, न कोई तरकीब है। क्योंकि यहां कोई ताला ही नहीं है, जिसको तोड़ना हो। औजार की कोई जरूरत ही नहीं है। ताला लगा ही नहीं है; सब दरवाजे खुले हैं। सिर्फ तुम्हारी आंखें बंद हैं। अब आंखें खोलने के लिए तो औजार इत्यादि थोड़े ही होते हैं।
मैंने सुनाः एक डाक्टर एक मरीज को देखने आया। एक स्त्री बीमार थी। गर्भवती थी। नौ महीने पूरे हो गए थे। पति बड़ा बेचैन था। बाहर खड़ा है--पर्दे के बाहर। डाक्टर भीतर गया। भीतर से डाक्टर बाहर झांका खिड़की में से और बोला कि हथौड़ी होगी? थोड़ा डरा पति कि हथौड़ी! पत्नी गर्भवती है; हथौड़ी की क्या जरूरत! मगर उसने कहा, होगी कोई जरूरत। उसने हथौड़ी लाकर दे दी।
फिर थोड़ी देर बाद डाक्टर बोलाः स्क्रू ड्राइवर? अब मार डाला इस आदमी ने। यह डाक्टर है कि कोई मैकेनिक आ गया, कि क्या मामला है? मगर अब मांगता है तो उसको स्क्रू ड्राइवर दे दिया। थोड़ी देर में बोलाः आरा। तब उसने कहाः अब जरूरत से ज्यादा हो गयी बात। हद्द हो गयी! मामला क्या है? मेरी पत्नी को हुआ क्या? उसने कहाः पत्नी की बकवास मत करो। अभी मेरी पेटी ही नहीं खुली है! तुम पत्नी की लगा रहे हो।
तुम औजार मांग रहे हो! यहां परमात्मा के ऊपर कोई दरवाजे नहीं हैं। परमात्मा खुला है; प्रगट है। तुम आंख से ओझल किए बैठे हो। तुम आंख पर पर्दा डाले बैठे हो। तुम्हारी आंख बंद है। अब आंख खोलने के लिए कोई स्क्रू ड्राइवर या हथौड़ी या कोई आरे की थोड़े ही जरूरत है। जब खोलना चाहो, तब खोल लो। तुम्हारी मर्जी की बात है।
खोलने के लिए प्रयास भी क्या करना है! खोलना चाहो अभी खोल लो; और अभी विमुक्त हो जाओ। और अभी ये फूल-पत्तियों का राज बदल जाए। और अभी ये हवाएं

कुछ और संदेश लाने लगें। और ये सूरज की नाचती किरणें अभी परमात्मा का नृत्य बन जाएं। और ये लोग जो तुम्हारे चारों तरफ बैठे हैं, इनके भीतर वही छिपा है। तुम्हारे भीतर वही छिपा है। खोजने जाते कहां हो। खोजने वाले में भी वही छिपा है।
न कोई विधि है, न कोई विधान। समझ चाहिए। बस समझ चाहिए और समझ यानी दर्पण जैसा चित्त चाहिए।
समझ शब्द से तुम मत समझ लेना, समझदारों की समझ। समझदार तो बड़े नासमझ हैं। नासमझों की समझ से मेरा मतलब है।
सुकरात ने कहा हैः जब मैं जानता था, तब कुछ भी नहीं जानता था। और जब से
सब जानना छूट गया है, क्या जानने को बचा! सब जान लिया।
लाओत्सू ने कहा हैः जो कहे जानता हूं, समझ लेना कि नहीं जानता। जानने वाले कैसे कहेंगे कि जानते हैं? क्योंकि जानने को है क्या? सिर्फ रहस्य है। रहस्य को जाना कैसे जा सकता है?
जाना जाता है जब रहस्य, तो यही जाना जाता है कि जानने को कुछ भी नहीं है। और क्या जाना जाता है! एक आश्चर्यविमुग्ध भाव घेर लेता है। एक अहोभाव घेर लेता है। तुम फिर दौड़ने लगते हो अस्तित्व के पीछे, जैसा बच्चा तितली के पीछे दौड़ता है। तुम फिर से समुद्र के तट पर, जीवन के समुद्र तट पर शंख-सीप बीनने लगते हो। फिर तुम्हारे जीवन में अहर्निश आनंद की वर्षा शुरू हो जाती है।

चौथा प्रश्नः मनोमंथन करने पर पता चलता है कि सांसारिक वासनाएं तो नहीं हैं, जो मृत्यु के समय बंधन बनें। लेकिन सत्य पाने की वासना ही बनती जाती है, सो क्या करूं? कृपाकर मार्ग-दर्शन करें।

वह भी रोक लेगी। वासना मात्र रोकती है। इससे कुछ भेद नहीं पड़ता कि वासना किस चीज की। विषय-वस्तु से कोई भेद नहीं पड़ता। तुम धन चाहो कि ध्यान चाहो, चाह का स्वरूप एक है। और चाह रोकती है।
तुम पद चाहो कि परमात्मा चाहो, चाह की भ्रांति एक है।
चाह का अर्थ क्या होता है? यह समझ लो। चाह का अर्थ होता हैः जैसा मैं हूं, वैसा ठीक नहीं हूं। कुछ और होना चाहिए। थोड़ा और धन, थोड़ा और पद, थोड़ा और ध्यान, थोड़ा और सत्य, थोड़ा और परमात्मा। लेकिन थोड़ा और होना चाहिए। जैसा मैं हूं, उससे मैं संतुष्ट नहीं। चाह का अर्थ है--असंतोष। फिर चाह किस बात की है, इससे क्या फर्क पड़ेगा? असंतोष तो रहेगा ही।
तुम गए; एक शांत झील में कंकड़ फेंका--कंकड़, साधारण सा कंकड़--तो लहर उठती है। तुम सोचते हो, कोहिनूर हीरा फेंकोगे, तो लहर नहीं उठेगी! कोहिनूर हीरा फेंको--पानी को क्या फर्क पड़ता है? तुमने कंकड़ फेंका कि कोहिनूर, पानी को तो कोई भी भेद नहीं है। कोहिनूर पत्थर है, और पत्थर कोहिनूर है। फिर भी लहरें उठेंगी। और लहरें उठ जाएंगी तो चांद का जो प्रतिबिंब बन रहा है, वह भ्रष्ट हो जाएगा।
चाह पत्थर की तरह गिरती है तुम्हारे भीतर। फिर चाह सोने की हो कि स्वर्ग की--इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। फिर चाह संसार की हो कि परलोक की-- इससे कोई फर्क नहीं पड़ता।
चाह पत्थर की तरह गिरती है तुम्हारे चित्त में और चित्त कंप जाता है।
और चित्त के कंपन के कारण सत्य खो जाता है। सत्य को चाहना हो, तो सत्य को चाह मत बनाना। चाह से जो मुक्त हो जाता है, उसे सत्य मिलता है।
यह तुम्हें जरा कठिन लगेगा। लेकिन धैर्यपूर्वक समझोगे, तो सीधी-सीधी बात है। चाह के कारण तनाव पैदा होता है। तनाव भरे चित्त में परमात्मा की छबि नहीं बनती। चाह के कारण तरंगें उठ आती हैं। तरंगों के कारण सब कंपन पैदा हो जाता है। कंपते हुए मन में परमात्मा की छबि नहीं बनती।
ठीक से समझो, तो कंपता हुआ मन ही संसार है।
पूछा है तुमने कि "मनोमंथन करने पर पता चला कि सांसारिक वासनाएं तो नहीं हैं... ।"

लेकिन वासना संसार है। सांसारिक वासनाएं और पारलौकिक वासनाएं, ऐसी दो वासनाएं थोड़े ही होती हैं।
तुम्हें पंडित-पुरोहितों ने बड़ी गलत बातें समझायी हैं। उन्होंने समझाया है कि संसार की वासना छोड़ो और परलोक की वासना करो। लेकिन ज्ञानियों ने कुछ और कहा है। बुद्धों ने कुछ और कहा है। उन्होंने कहा हैः वासना छोड़ो, क्योंकि वासना संसार है। और जहां वासना नहीं है, वहां परलोक है। जहां वासना है, वहां यही लोक रहा आएगा। धोखे में मत पड़ना। मन बहुत चालबाज है।
मन कहता है कि यह तो अच्छी वासना है। अच्छी वासना होती ही नहीं। वासना मात्र बुरी होती है। मन कहेगाः यह तो धार्मिक वासना है! यह तो आध्यात्मिक वासना है। इसको तो खूब करना चाहिए। हां, धन थोड़े ही चाहते हैं हम; हम तो ध्यान चाहते हैं।
मगर चाहने में ही तो उपद्रव है। चाहते, तो मतलब तन गए। चाहते, तो मतलब अशांत हो गए। चाहते, तो मतलबः यहां न रहे, इस क्षण में न रहे। भविष्य में चले गए। धन भी कल मिलेगा, और ध्यान भी कल मिलेगा। तो कल में चले गए। आज चूक गया। पद भी कल और परलोक भी कल।
और जो है, वह अभी है और यहीं है, इसी क्षण है। समझो। जागो।
अगर इसी क्षण तुम्हारे भीतर कोई वासना नहीं है; मुझे समझने की भी वासना नहीं है; शांत बैठे हो; कोई वासना नहीं है। चित्त निस्तरंग है। क्या पाने को बचा? उस निस्तरंग चित्त में क्या कमी है?
वही निस्तरंग चित्त तो आप्तकाम है। वही निस्तरंग चित्त तो ब्राह्मण है। उसी को मैं ब्राह्मण कहता हूं; निस्तरंग चित्त; अकंपित।
ब्रह्म की चाह भी रह गयी, तो ब्राह्मण नहीं। ब्रह्म हो गए, तो ब्राह्मण। और ब्रह्म होने के लिए देर क्या है? ब्रह्म तुम हो। मगर तुम्हारी चाहत ने तुम्हें चुकाया है। तुम जो खोज रहे हो, वह तुम्हारे भीतर मौजूद है। मगर खोज की वजह से तुम इतने उद्विग्न हो गए हो... ।
हूदनी की कहानी फिर याद करो। दरवाजा खुला था; अटका था। मगर वह ताला खोज रहा था! ताला था नहीं। मुश्किल में पड़ गया। तीन घंटे लग गए। अगर पहले ही दरवाजा खोल दिया होता; इतना सोच लिया होता। सोचा नहीं होगा। क्योंकि कैसे सोचता! जिंदगीभर ताले ही खोले थे। और जब लोग उसे बंद करते थे, तो तालों में ही बंद करते थे। ताले खुलवाने के लिए ही तो बंद करते थे।
मगर ये इटैलियन बाजी मार ले गए। हूदनी को बुरा हराया। खूब गहरा मजाक किया।
स्वभावतः, तुम भी हूदनी की जगह होते, तो ताला ही खोजते रहते। और जिसको तीन मिनट में बाहर निकलना हो, उसकी बेचैनी! स्वभावतः, पसीना-पसीना हो गया होगा। तीन मिनट की तो बात--घंटा बीत गया! बार-बार घड़ी देखता होगा। घंटा बीत गया। प्रतिष्ठा गयी! जीवनभर की कमायी गयी! लोग क्या कहेंगे? कि हूदनी गए! हार गए! पुलिस वालों से हार गए! आज लग गया ताला तुम पर! जिंदगीभर की प्रतिष्ठा थी; मिट्टी हुई जा रही है!
जैसे-जैसे समय बीता होगा, वैसे-वैसे बेचैनी बढ़ी होगी; वैसे-वैसे घबड़ाहट बढ़ी होगी। रक्तचाप बढ़ा होगा। हृदय की धड़कन बढ़ी होगी। पसीना-पसीना हुआ जा रहा होगा। और जितना पसीना हुआ होगा, जितना रक्तचाप बढ़ा होगा, जितनी घबड़ाहट बढ़ी होगी, उतनी ही तेजी से ताला खोजता होगा! जितना ताला खोजता होगा, उतनी ही बुद्धि खो गयी; उतना ही बोध खो गया।
यह बात तो उठे भी कैसे कि शायद दरवाजा खुला हो! दरवाजा खुला है। लेकिन चाहत के कारण नहीं खुल पा रहा है। चाह छोड़ो।
और जब मैं कहता हूं, चाह छोड़ो, तो बेशर्त कह रहा हूं। यह नहीं कह रहा हूं कि संसार की चाह छोड़ो।
फिर दोहरा दूंः चाह संसार है। संसार की कोई चाह नहीं होती और परमात्मा की कोई चाह नहीं होती। जहां चाह है, वहां संसार है। अगर तुम परमात्मा चाहते हो, तो तुम अभी भी सांसारिक हो।
इसलिए तो मैं कहता हूंः तुम्हारे ऋषि-मुनि जो मंदिरों में और गुफाओं में बैठे हैं--सब संसारी हैं; तुम जैसे संसारी हैं; जरा भेद नहीं है।

स्वर्ग चाह रहे हैं! स्वर्ग में क्या चाह रहे हैं? वही अप्सराएं, जिनको तुम यहां चाह रहे हो। तुम फिल्म अभिनेत्रियों में देख रहे हो; तुम जरा आधुनिक हो, वे जरा प्राचीन हैं। वे जरा उर्वशी इत्यादि की सोच रहे हैं! वे पुरानी फिल्म अभिनेत्रियां! वे सोच रहे हैंः वहां मिलेगा।
तुम सोचते होः यहीं चले जाएं बाजार में और दो कुल्ह.ड़ पी लें। और वे सोचते हैं कि वहां पीएंगे बहिश्त में, जहां झरने बह रहे हैं शराब के। यहां क्या पीना! फिर मुफ्त मिलती है वहां। कोई पाबंदी भी नहीं है। असली शराब मिलती है वहां। ऐसा कोई देशी ठर्रा नहीं। वहां कोई स्वदेशी की झंझट नहीं है। विदेशी शराब के झरने बह रहे हैं! नहाओ, धोओ, डुबकी लगाओ। पीओ, पिलाओ। या वहां कल्पवृक्ष हैं, जिनके नीचे बैठो और जो चाहो, तत्क्षण पूरा हो जाए। तत्क्षण--चाहा कि पूरा हो जाए।
स्वर्ग के चाहने वाले, तुम सोचते हो, आध्यात्मिक हैं? या कि तुम सोचते हो, मोक्ष को चाहने वाले आध्यात्मिक हैं? मोक्ष में भी क्या चाह रहे हो? यही कि शांति मिले; आनंद मिले; दुख से छुटकारा हो; पीड़ा न रहे।
मगर यही तो सांसारिक आदमी भी चाह रहा है। वह भी इसीलिए तो धन कमा रहा
है कि दुख न रहे। इसीलिए तो चाहता है बड़ा मकान बना ले कि थोड़ी सुविधा हो। तुम्हारी और उसकी चाह में कोई मौलिक भेद नहीं है। भेद होगा अगर तो परिमाण का होगा, गुण का नहीं है।
तुम भला उससे कह सकते हो कि तेरी चाह क्षणभंगुर है, हमारी चाह शाश्वत
की है। लेकिन इसका तो मतलब यही हुआ कि तुम उससे भी बड़े संसारी हो। उसकी चाह क्षणभंगुर की है; उसकी चाह छोटी है। तुम्हारी चाह बड़ी भयंकर है; सनातन की है; शाश्वत की है! तुम क्षणभंगुर से राजी नहीं होते। तुम्हारा लोभ बहुत बड़ा है। तुम भयंकर संसारी हो!
फिर मैं किसको आध्यात्मिक कहता हूं--जिसकी कोई चाह नहीं; जो बिना चाह जीता है। जो कहता हैः यहीं जीएंगे, अभी जीएंगे। जिसके लिए वर्तमान कल्पवृक्ष है। जिसके लिए, जैसा है, वैसा होना स्वर्ग है। जहां है, वहीं मोक्ष। ऐसा व्यक्ति आध्यात्मिक है। जिसके पास अन्यथा की कोई मांग नहीं है। कल जो आएगा, आएगा। अभी जो है, उसे भोगता है। अभी जो है, उसे बड़े आनंद से भोगता है, बड़े अनुग्रह से भोगता है।

पांचवां प्रश्नः ओशो, एक संत से आपके बारे में बातचीत होती थी। मैंने कहाः मेरे ओशो स्वयं सभी प्रश्नों के उत्तर हैं। उन्होंने कहाः नहीं; उत्तर तो बहुत हैं। मगर ओशो तो सभी उत्तरों के लिए एक प्रश्न बन गया है! ओशो, कृपया बताएं कि आप प्रश्न हैं या उत्तर?

जो सभी उत्तरों के लिए एक प्रश्न बन गया हो, वही सभी प्रश्नों का उत्तर हो सकता है। संत ने ठीक ही कहा।
अब उनसे मिलो, तो मेरी तरफ से उनसे यह कह देना--कि जो सभी उत्तरों के लिए प्रश्न बन गया हो, वही सभी प्रश्नों का उत्तर हो सकता है।

छठवां प्रश्नः संसार ने बड़ी क्रूरता से मेरी सारी आशाओं पर पानी फेर दिया है। मैं संसार को क्षमा करूं भी तो कैसे करूं!

संसार तुम्हारी आशाओं पर न तो पानी फेर रहा है, न सोना फेर रहा है। संसार को तुम्हारी आशाओं का पता ही नहीं है। तुम्हारी आशाओं का बस, तुम्हीं को पता है।
और जब तुम्हें लगता है कि संसार ने तुम्हारी आशा पर पानी फेरा, तो इतना ही समझना कि तुमने प्रकृति के प्रतिकूल कुछ करने की कोशिश की होगी। संसार ने कुछ नहीं किया है, तुम ही उलटे गए होओगे।
अब तुम वृक्ष पर से गिर पड़ो और कहो कि गुरुत्वाकर्षण ने मेरी टांग तोड़ दी! गुरुत्वाकर्षण को इससे क्या लेना-देना है! गुरुत्वाकर्षण को तुम्हारी टांग का पता भी नहीं है। तुम्हारी टांग इतनी महत्वपूर्ण भी नहीं है कि

गुरुत्वाकर्षण इसे तोड़ने के लिए कोई विशेष आयोजन करे। आप ही चूककर गिर गए हैं!
तुम्हारी आशाएं व्यक्तिगत हैं। और तुम्हारी व्यक्तिगत आशाओं के कारण
ही उन पर पानी फिर जाता है। समष्टि की भाषा में सोचो। समष्टि के साथ सोचो, विपरीत नहीं। धारा में बहो; धारा से लड़ो मत। फिर तुम्हारी किसी आशा पर कभी पानी न फिरेगा।
और अगर तुम ठीक से समझे, तो मतलब क्या हुआ? मतलब यह हुआ कि जब तुम समष्टि के साथ बहोगे, तो तुम अलग से आशा ही कैसे करोगे! जो समष्टि की नियति है, वही तुम्हारी नियति है। अलग से आशा करने की जरूरत क्या है? समझदार आदमी अलग से झंझटें नहीं लेता।
इतना विराट जिस सहारे चल रहा है, मैं, छोटा सा, उसके सहारे चल लूंगा। चांद-तारे नहीं चूकते! इतना विराट विश्व इतनी सुविधा और इतनी संगीतबद्धता से चल रहा है; एक मैं ही क्यों चिंता करूं! जो इस सबको चलाता है, मुझे भी चला लेगा। और जो मुझे न चला पाएगा, वह इतने विराट को कहां चला पाएगा!
इस भावदशा का नाम ही धार्मिकता है कि मैं अलग से निजी आशाएं न करूं; मैं निजी कामनाएं न करूं; मैं इस विराट के साथ तल्लीन होना सीखूं। इस तल्लीनता में प्रार्थना उमगती है।
पूछते होः "संसार ने बड़ी क्रूरतापूर्वक... ।"
किसको उत्सुकता है! बड़ी क्रूरतापूर्वक तुम्हारी टांग तोड़ दी गुरुत्वाकर्षण ने! तुम्हीं गिरे होओगे; तुम्हीं ऐसे ढंग से गिरे होओगे! तुमने देखा, कभी-कभी ऐसा हो जाता है। एक बैलगाड़ी में एक शराबी चलता हो
और एक होश वाला चलता हो। गाड़ी उलट जाए। होश वाले को चोट लग जाती है; शराबी को चोट नहीं लगती। मामला क्या है?
तुम शराबी को रोज देखते हो, सड़क पर पड़े हुए। तुम जरा दो-चार दफे वैसे गिरकर देखो! तुम सदा अस्पताल में ही रहोगे फिर। और शराबी रोज गिरता है! नाली में गिरता है, सड़क पर गिरता है, इस कोने, उस कोने। और सुबह तुम देखो, वे फिर मजे से चले जा रहे हैं दफ्तर। सब ठीक-ठाक है। कहीं कोई अड़चन नहीं है। शराबी का गिरने का ढंग... । जब शराबी गिरता है, तो उसे पता नहीं होता कि मैं गिर रहा हूं। इसलिए गिरने से बचने के कोई उपाय नहीं करता। उपाय न करने के कारण गुरुत्वाकर्षण उसके विपरीत नहीं पड़ता।
तुम जब गिरते हो, तो गिरते वक्त तुम एकदम सम्हल जाते हो। सम्हलने की कोशिश करते हो। सम्हलने की जितनी कोशिश करते हो, उतनी तुम्हारी हड्डियां सख्त हो जाती हैं; तनाव से भर जाती हैं। सम्हलते-सम्हलते गिरते हो, इसलिए चोट खाते हो। छोटे बच्चे रोज गिरते हैं तुम्हारे घर में; कोई ऐसी खास चोट नहीं खा जाते।
पश्चिम के एक वैज्ञानिक ने एक प्रयोग किया। एक विश्वविद्यालय में उसने यह प्रयोग किया। उसके घर में बच्चा पैदा हुआ था; बच्चे का अध्ययन करता था। वह यह सोचकर हैरान होने लगा कि बच्चा दिनभर में इतना काम करता है, हालांकि सब बेकाम काम करता है, उसके हिसाब से। मगर इधर दौड़ा; उधर गया। कूदा-फांदा। झाड़ पर चढ़ा। नाचा। करता ही रहता है कुछ न कुछ। गुड्डा-गुड्डी यहां से वहां ढोता रहता! इतना काम करता है; इतनी शक्ति इस छोटे से बच्चे में आती कहां से है?
उसने एक प्रयोग किया। उसने विश्वविद्यालय में जो पहलवानी में प्रथम आया था युवक, उसको कहा कि एक प्रयोग मैं करना चाहता हूं, अगर तुम साथ दो। तुम एक दिन सुबह से लेकर सांझ तक, मेरा बच्चा जो करे, वह करो। बस, इसके पीछे चलो।
वह सबसे मजबूत आदमी था विश्वविद्यालय में। वह चार घंटे में चारों खाने चित्त होकर पड़ गया! उसने कहाः यह बच्चा तुम्हारा मार डालेगा। सांझ तक मैं बचूंगा नहीं।
और बच्चे को आ गया मजा! आज कोई आदमी उसके पीछे-पीछे चल रहा है, तो वह और उछला, और कूदा। उसने देखा कि जो मैं करता हूं, वही यह भी करता है, तब तो उसकी हद्द हो गयी मजे की! झाड़ पर चढ़ा। टीन पर चढ़ गया। टीन पर से कूद पड़ा। झाड़ से

कूदा। हजार तरह की कवायदें करने लगा। उसने चार घंटे में उस पहलवान को पस्त कर दिया।
उसने कहाः तुम्हारा बच्चा मेरी जान ले लेगा। शाम तक यह प्रयोग नहीं
चल सकता। मुझे क्षमा करो। चार घंटा बहुत है।
बच्चे में इतनी ऊर्जा कहां से है? इतने छोटे प्राण, इतनी ऊर्जा! बच्चा अभी तक लड़ नहीं रहा है प्रकृति से; अभी प्रकृति के साथ है।
जब तक तुम प्रकृति के साथ हो, तब तक तुम्हारे लिए अपूर्व ऊर्जा मिलती रहेगी। जैसे ही तुम प्रकृति से अपने को भिन्न समझे, अलग समझे, जैसे ही अहंकार का जन्म हुआ, बस, वैसे ही अड़चन है। तुम्हारे अहंकार ने तुम्हारी दुर्दशा की है।
यह मत कहो कि "संसार ने मुझे क्रूरतापूर्वक, बड़ी कठोरता से मेरी आशाओं
पर पानी फेर दिया है।"
तुमने आशाएं ही ऐसी की होंगी कि कोई उपाय नहीं था; पानी उन पर फिरा ही होगा। और हर एक आदमी बड़ी आशाएं करता है! आशाएं करने में कोई कंजूस होता ही नहीं। तुम जिससे पूछो--उसकी आशाएं जरा पूछो--कि दिल खोलकर अपनी आशाएं कहो। तो वह ऐसी आशाएं बताएगा कि तुम चकित होओगे। सभी की ये पूरी भी कैसे हो सकती हैं!
हिंदुस्तान में ऐसा कोई आदमी है, जो प्रधानमंत्री नहीं होना चाहता? कहे, न कहे; चाहे ऊपर से विनम्रतावश कहे कि नहीं-नहीं! मगर भीतर गुदगुदी आ जाएगी कि आप पूछ रहे हैं--क्या विचार है! क्या गजब का विचार है! कैसे पहचाना आपने! यही तो मेरे भीतर उठता रहता है! अपने को किसी तरह सम्हालकर रखता हूं कि कहीं यह जोर से न पकड़ ले।
अब यह आदमी अंततः कहेगा एक दिन कि मेरी सारी आशाओं पर पानी फिर गया। कितने लोग प्रधानमंत्री हो सकते हैं? और अगर सभी प्रधानमंत्री हो सकें, तो प्रधानमंत्री कौन होना चाहेगा--यह भी सवाल है!
अगर मेरा वश चले, तो मैं एक कानून बना दूं कि सभी प्रधानमंत्री हैं।
बात खतम! झगड़ा खतम! मगर तब कोई नहीं होना चाहेगा। तब लोग कहेंगेः अब इस प्रधानमंत्री होने से कैसे छूटें! क्योंकि यह सामान्य हो गया। प्रधानमंत्री होने का मजा यह है कि साठ करोड़ के मुल्क में एक आदमी हो सकता है। साठ करोड़ को हराकर... । उसी हराने में मजा है।
अब साठ करोड़ लोग प्रधानमंत्री नहीं हो सकते। तो एक को छोड़कर बाकी दुखी होने वाले हैं। और कहेंगे, हमारी आशाओं पर पानी फेर दिया! और तुम यह मत सोचना कि जो प्रधानमंत्री हो गया, वह सुखी होने वाला है। वह प्रधानमंत्री होते ही कुछ और सोचने लगता है; कि मैं सारी दुनिया जीत लूं। कि हिंदुस्तान से क्या होगा। अखंड भारत बना लूं। पाकिस्तान को तो कम से कम हड़प ही लूं। कि बंगलादेश को तो पी ही जाऊं। कि सिक्किम तो गया; अब नेपाल; कि अब भूटान। कि कहीं थोड़े हाथ-पैर फैलाऊं। उसकी आशाओं पर भी पानी फिरने वाला है। वह भी दुखी मरेगा। वह भी सोचेगाः सब आशाओं पर पानी फिर गया! दुनिया नहीं जीत पाया!
सिकंदर जैसा आदमी भी दुखी मरता है।
और यहां कुछ लोग जरूर आनंद से जीते हैं और आनंद से विदा होते हैं। वे बुद्ध जैसे लोग हैं। वे कोई आशा ही नहीं करते। वे कहते हैं, जो हो जाए, सो ठीक है। जो न हो, बिल्कुल ठीक है। उनको तुम कैसे तोड़ोगे? उन पर तुम कैसे पानी फेरोगे?
ख्याल रखना, यहां तो हर एक आशाओं से भरा है--हर एक! कल मैं एक गीत पढ़ता थाः
खेत के सब्जे में बेसुध पड़ी है दुबकी
एक पगडंडी की कुचली हुई अधमुई-सी लाश
तेज कदमों के तले दर्द से कराहती है
दो किनारों पे जवां सिट्टों के चेहरे तक कर
चुप-सी रह जाती है यह सोच के बस
यूं मेरी कोख कुचल देते न रहगीर अगर
मेरे बेटे भी जवां हो गए होते अब तक

मेरी बेटी भी तो ब्याहने के काबिल होती।
पगडंडी! मगर यह बात मुझे प्यारी लगी।
खेत के सब्जे में बेसुध पड़ी है दुबकी
एक पगडंडी की कुचली हुई अधमुई-सी लाश
लेकिन पगडंडी भी ऐसी आशाएं रखती है! सभी रखते हैं।
तेज कदमों के तले दर्द से कराहती है
दो किनारों पे जवां सिट्टों के चहरे तक कर
चुप-सी रह जाती है यह सोच के बस
यूं मेरी कोख कुचल देते न रहगीर अगर
अगर राह चलने वालों ने मेरी कोख को कुचल न डाला होता चल-चलकर!
मेरे बेटे भी जवां हो गए होते अब तक
मेरी बेटी भी तो ब्याहने के काबिल होती।
सभी के भीतर हजार-हजार कामनाएं हैं, वासनाएं हैं, वे पूरी नहीं होतीं। पूरी भी हो जाएं, तो कुछ हल नहीं होता। एक पूरी होती है, तो दस पैदा हो जाती हैं।
इस व्यर्थता से जागने का नाम ही संन्यास है।
और फिर जब तुम बिना आशा के जीते हो, बुद्ध ने कहा है, जब तुम निराशा के साथ जीते हो, तभी तुम पहली दफा आनंद से जीते हो।
मगर निराशा का अर्थ समझ लेना। बुद्ध की निराशा का वही अर्थ नहीं, जो तुम्हारा होता है। तुम्हारा तो निराशा का अर्थ यह होता हैः आशा टूट गयी। बुद्ध की निराशा का अर्थ है, आशा से मुक्ति हो गयी।
बुद्ध की निराशा में आशा भी नहीं है, निराशा भी नहीं है। आशा के भाव से
ही छुटकारा हो गया। अब कोई मांग ही नहीं बची। और जब कोई मांग नहीं बचती, तब तुम्हारे भीतर परमात्मा प्रगट होता है। जब कोई प्रार्थना नहीं बचती, तब परमात्मा प्रगट होता है।
छोड़ो भिखमंगापन; सम्राट होने की घोषणा करो।
विराट के साथ एक होकर चलो। विराट के साथ नाचो। इस विराट की रासलीला में सम्मिलित होओ। अलग-थलग ख्याल न रखो। अलग-थलग न चलो। वृक्ष और नदियां और पहाड़ और चांद-तारे जिसमें जी रहे हैं; उसमें तुम भी जीओ। तुम भी हरे हो जाओगे। तुम्हारी लाली भी फूल बनकर प्रगट होगी। तुम्हारा सोना भी प्रगट होगा।
तुम्हारे जीवन की महिमा निश्चित प्रगट हो सकती है, मगर तुम अपना आपा छोड़ो; मैं-भाव छोड़ो।
इसलिए बुद्ध ने कहा हैः जो अनत्ता को उपलब्ध हो जाए, जो जान ले कि मैं नहीं हूं, वही ब्राह्मण है।
एस धम्मो सनंतनो।
आज इतना ही।